CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारत और मुस्लिम आक्रमण

(७००-१२०० ई.)

डॉ. कल्पनाथ शास्त्री

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में इस्लाम का प्रसार और विभिन्न मुस्लिम आक्रमणों का स्पष्ट और दुराग्रह-रहित विवरण उपलब्ध होता है। तदनन्तर मुस्लिम सफलता एवं हिन्दू प्रतिरोध की असफलता के कारणों का अत्यन्त सतर्कता के साथ विवेचन एवं विश्लेषण किया गया है।.....लेखक की हिन्दी शैली रोचक, उदात्त एवं प्रभावपूर्ण है।

प्रो० डॉ० ए० एल० बैशम
ए० एन० यू०, कैनबरा (आस्ट्रेलिया)

प्रस्तुत ग्रन्थ उत्तरी भारत के इतिहास के लिए एक विशिष्ट रचना है, जो हमारे विषय सम्बन्धी ज्ञान को बढ़ाने में स्पष्ट ही सफल हुआ है।..... यह विषय भारतीय इतिहास में अनेक स्थलों पर उलझा हुआ था। लेखक ने इसे निष्पक्ष भाव से प्रतिपादित एवं स्पष्ट करने में बड़ी सूझ-बूझ एवं योग्यता का परिचय दिया है।

प्रो० डॉ० भगवत शरण उपाध्याय
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

262

प्रेजय प्रो० डा० बी०एन०पुरी जी

को

सादर

कल्पनाथ शास्त्री

२६।८।८१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

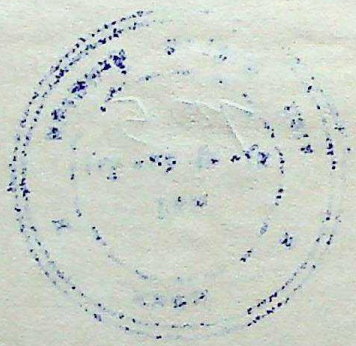

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारत और मुस्लिम आक्रमण

(७००—१२०० ई०)

डॉ० कल्पनाथ शास्त्री

विद्यावाचस्पति, एम० ए०

(मध्यकालीन भारतीय इतिहास तथा प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति)

डी० पी० ए०, साहित्य रत्न, साहित्यालंकार, काबिल, पी-एच० डी०

इतिहास विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी

प्रकाशन विभाग

काशी विद्यापीठ, वाराणसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डॉ० सर्वदमन सिंह, एम० ए०, पी-एच० डी (लन्दन) एफ० आर० ए० एस०, प्राचीन भारतीय इतिहास तथा पुरातत्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय के निर्देशन में पी-एच० डी० (इतिहास) उपाधि हेतु स्वीकृत तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, दिल्ली की सहायता से प्रकाशित शोध प्रबन्ध ।

प्रकाशक :
प्रकाशन विभाग,
काशी विद्यापीठ, वाराणसी

कापीराइट © लेखक

मार्च १९७४
मूल्य : पचीस रुपया ।

मुद्रक :
शिवमूरत पाठक,
व्यवस्थापक,
काशी विद्यापीठ मुद्रणालय,
वाराणसी ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदरणीय भाई श्रीयुत हेमवतीनन्दन बहुगुणा जी

मुख्यमंत्री

उत्तर प्रदेश

को

सादर समर्पित

7325

कल्पनाथ शास्त्री

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रवेशिका

सातवीं शताब्दी में इस्लाम की स्थापना विश्व के इतिहास में क्रान्तिकारी परिवर्तनों के आरंभ का कारण बनी। अनेक देशों में इस्लाम के आगमन ने राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्रों में ही नहीं सभ्यता और संस्कृति के अन्य दूसरे अंगों में भी युगान्तरकारी महत्व की प्रवृत्तियों का सूत्रपात किया। इनमें से कुछ तो इस्लाम और इस्लामी शक्तियों की देन थीं, कुछ नई परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुई थीं और कुछ के स्वरूप का निर्माण और उनका प्रसार इस्लाम के व्यापक प्रसार से संबंधित हुआ।

इस्लाम के प्रसार की कहानी स्वयं में अत्यन्त रोचक और अद्भुत है। अरब में एक नये धर्म के रूप में अपनी साधारण उत्पत्ति के बाद अल्प काल ही में इस्लाम की राजनीतिक शक्ति तत्कालीन सभ्य जगत् पर छा गई। चीन से स्पेन तक इस्लाम की विजय-वैजयन्ती लहराती थी। इतिहास में राजनीतिक प्रसार के इससे तुलनीय उदाहरण विरल हैं। इस्लाम की इस सफलता के लिए नये धर्म की चेतना और उत्साह और उसके कुछ विशिष्ट सिद्धान्त मूलभूत कारण बने। देश और परिस्थिति-विशेष के अनुसार कुछ सहायक कारण भी इनमें जुड़ जाते थे।

अद्यावधि भारतीय इतिहास के अन्तर्गत इस्लाम के प्रसार का जो अध्ययन हुआ है उसमें आक्रमणकारियों की सफलता अथवा राजपूतों की पराजय के कारणों की विवेचना को ही अधिक महत्व दिया गया है। इस विषय को जो आवश्यकता से अधिक महत्व प्राप्त हुआ उसके पीछे अध्येता विद्वानों की कौन सी मनोवृत्ति प्रेरक बनी यह विचारणीय है। कारण और प्रभाव की विवेचना इतिहास के विद्यार्थी का सर्वस्वीकृत कार्य है, किन्तु यदि इस प्रकार के अध्ययन को अपेक्षा और औचित्य से अधिक ध्यान दिया जाय तो यह संभावना उठती है कि इतिहास के शास्त्रीय उद्देश्यों से इतर तत्व प्रभावकारी हो रहे हैं। किन्तु किसी ने इस मनोवृत्ति और उसको जन्म देने वाले तत्वों का विधिवत् विश्लेषण नहीं किया है। अतएव इस संभावना के विषय में सम्प्रति कुछ कहना अनुमान की दिशा में प्रयास मात्र होगा।

पहले कुछ विद्वानों द्वारा सुझाये गये कारण सतही थे। इनमें से भी कई, यथा उत्तरी भारत के निवासियों का सैनिक कार्यों के लिए भोजन एवं जलवायु के प्रभाव के कारण तुलनात्मक रूप से अक्षम होना, भ्रान्तिपूर्ण अवधारणाओं पर आधारित थे। विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र में लम्बी अवधि में बिखरे हुए अनेक युद्धों में पराजय के लिए सर्वदा सतही और आकस्मिक कारण पर्याप्त नहीं होते; इनके लिए मूलभूत महत्व के कारणों की अपेक्षा होती है। ऐसे कारण राजनीतिक व्यवस्था, युद्ध-नीति, सामाजिक परिस्थिति और आर्थिक दशा में उपस्थित त्रुटि अथवा दोष हैं। इनके कारण प्रतिरोध दीर्घ काल तक प्रभावपूर्ण नहीं रह पाता; भीतर के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खोखलेपन के कारण इसका ढह जाना अवश्यम्भावी हो जाता है। इधर कुछ वर्षों में शोध-कर्ताओं ने पूर्व-मध्यकालीन समाज और जीवन की विवेचना उन्हें अशक्त करने वाले तत्वों और उनके सूचक तथ्यों को निश्चित करने के लिए की है। वास्तव में इस प्रकार के अध्ययन में समग्र दृष्टि की आवश्यकता होती है। ऐसे ऐतिहासिक विषयों के पीछे कारणों का जाल-सा होता है; किसी एक या दो कारण से इनकी उत्पत्ति नहीं होती। इतिहास की यह प्रक्रिया उतनी सरल नहीं है जितना कि हम इसे अध्ययन की सुविधा के लिए बनाना चाहते हैं। इतिहासकार कारणों के जटिल संबंध को समझ कर उनके आनुपातिक महत्व के अनुसार उनका उल्लेख करते हैं। स्थायी या मूलभूत कारणों को खोजने में तत्कालीन और आकस्मिक कारणों के महत्व को कम करना ठीक न होगा।

पूर्व-मध्यकालीन इतिहास के अन्य विषयों की भांति प्रस्तुत विषय का समुचित और सर्वांगीण अध्ययन नहीं हो सका है। प्राचीन भारतीय इतिहास के विद्यार्थी समकालीन राज-वंशों के इतिहास को प्राथमिकता देने के कारण मुस्लिम आक्रमण को अपने अध्ययन के क्षेत्र में परिधीय अथवा सीमान्त महत्व का मानते हैं। मध्यकालीन इतिहास का विद्यार्थी अपने अध्ययन के लिए इसको मुख्य कथा की प्रस्तावना से भी कम महत्व देता है; किसी दूसरे प्रकार से इसका अध्ययन करने की वह नहीं सोचता। किन्तु इस कथा का दूसरा रूप भी है। किसी मुद्रा को समझने के लिए उसका पूर्व भाग और पृष्ठ भाग दोनों ही देखना होता है। किसी भी वस्तु का सही रूप तभी उभरेगा जब हम उसके तीनों आयामों का अवलोकन करें। जैसा जैन दर्शन में कहा गया है कोई भी वस्तु अनन्तधर्मक होती है। एकान्तवादी दृष्टिकोण से उसका एक पक्ष ही सामने आयेगा। इतिहास का सत्य सर्वांगीण और सर्वपक्षीय विवेचन से ही उभड़ता है। मुस्लिम आक्रमण का संपूर्ण और सच्चा रूप तभी समझ में आयेगा जब हम आक्रमण के इतिहास के साथ ही आक्रमण के प्रतिरोध के इतिहास का भी समानान्तर अध्ययन करें।

प्रतिरोध का इतिहास प्रस्तुत करने में उपलब्ध प्रमाणों से कोई उल्लेखनीय सहायता नहीं प्राप्त होती। फारसी के ग्रंथों में प्राप्य विवरण यथातथ्य और निष्पक्ष नहीं हैं; आक्रमण-कारियों का गुणगान और उनके गौरव को बढ़ाना उनका अभीष्ट था। अतएव विजय के विवरण में प्रतिरोध के संकुचित तथ्य सिमट कर रह गये हैं। तत्कालीन राजवंशों से संबंधित ग्रंथों में प्रतिरोध की उन्हीं घटनाओं का उल्लेख है जो आश्रयदाता राजा के लिये यशकारी थीं। इन उल्लेखों में भी ऐतिहासिक घटनाओं के विवरण नहीं हैं; केवल परंपरागत अति-शयोक्तिपूर्ण शब्दावली में संक्षिप्त निर्देश हैं। ऐसे में इतिहासकार का कार्य अत्यन्त कठिन हो जाता है।

हमारे वर्तमान राष्ट्रीय जीवन की परिस्थितियों के कारण भी कुछ इतिहासकार मुस्लिम आक्रमण के इतिहास को प्रतिरोध के इतिहास की दृष्टि से देखने में संकोच करते हैं। कुछ प्रबुद्ध लोगों में भी यही भ्रांति विद्यमान है कि इस प्रकार के अध्ययन से हमारी राष्ट्रीय एकता को क्षति पहुँचेगी और साम्प्रदायिक कटुता की वृद्धि होगी। किन्तु ऐसी शंका उचित नहीं है। इतिहास का अध्ययन पहले की बातों को, गल्तियों और भूलों को, दोहराने की शिक्षा नहीं देता। यदि इतिहास से हमें ज्ञात होता है कि भारत में प्रवेश करनेवाले पूर्वकालीन मुस्लिम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और तत्कालीन भारतीय राजवंशों में युद्ध हुआ तो यह स्वाभाविक ही था। किन्तु इसके यह अर्थ नहीं हैं कि इतिहास दोनों के आधुनिक वंशजों को भी लड़ते रहने के लिए कहता है। जहाँ पूर्व-मध्यकाल में भारत आने वाले मुस्लिम आक्रमणकारी थे, वहाँ आधुनिक काल में मुस्लिम भारतवासी हैं। शताब्दियों के प्रवाह से भारतभूमि पर उनका अपनत्व का उतना ही दावा है जितना देश में रहने वाले अन्य लोगों का। हमारी राष्ट्रीय एकता ऐतिहासिक प्रवाह का परिणाम है; यह आदर्शों और वास्तविकताओं की आधारशिला पर आधारित है। इस प्रकार की निरर्थक भ्रांतियां उसे नहीं हिला सकतीं। हमारे राष्ट्रीय जीवन की विशेषता विविधता में एकता है; यह एकता यांत्रिक एकरूपता का परिणाम नहीं है। कोई भी राष्ट्र या समाज सत्य को दबाकर अधिक समय तक नहीं चल सकता। हम सत्य को जानकर, पिछली भूलों का परिहार कर, अपनी वर्तमान परिस्थिति के अनुसार अपने राष्ट्रीय जीवन को नई शक्ति और नई प्रेरणा दे सकते हैं।

किसी काल की घटना-विशेष का पृथक् इतिहास लिखने में सावधानी की आवश्यकता होती है अन्यथा इस प्रकार के प्रयासों में एकांश को सम्पूर्ण का महत्व देने की भूल हो सकती है; इतिहास का विकास अन्य तथ्यों के प्रभाव से अछूता केवल उसी घटना के रूप में दिखलाया जाता है; समकालीन अन्य तथ्यों से उसका संबंध स्पष्ट नहीं हो पाता। किन्तु इतिहास का प्रवाह इस प्रकार पूर्णरूपेण पृथक् धाराओं के रूप में नहीं होता। ये धारायें प्रधान धारा से ही निकली होती हैं और उससे असंबंधित इनका अस्तित्व नहीं होता। इतिहास में भी घटना-विशेषों को उस काल के प्रमुख प्रवाह के सन्दर्भ में ही समझने का प्रयत्न होना चाहिए। मुस्लिम आक्रमण और उसके प्रतिरोध की कथा को उस काल के अन्य महत्वपूर्ण विकास या परिवर्तनों से अलग नहीं किया जा सकता; उनके सन्दर्भ में अध्ययन करने पर ही उसका वास्तविक रूप समझ में आयेगा। तत्कालीन राजवंशों के इतिहास, उनके परस्पर राजनीतिक संबंध, साम्राज्य के विकास की लिप्सा, ईर्षा और कलह की यथार्थताओं ने अधीतव्य विषय के स्वरूप पर गहरा प्रभाव डाला है। उदाहरणार्थ, कुछ विद्वान भारत में अरब-शक्ति के प्रसार के प्रयास को तत्कालीन त्रिकोणात्मक संघर्ष से इतना अधिक संबद्ध मानते हैं कि इस संघर्ष को चतुष्कोणात्मक कहना चाहते हैं। अनुवर्ती काल के मुस्लिम आक्रमणों को भी तत्कालीन राजनीतिक इतिहास से संबंधित करके ही देखना चाहिए। ऐतिहासिक सत्य का यदि हम उसकी सम्पूर्णता में दर्शन करना चाहते हैं तो हमें अपने विषय का अध्ययन राजनीतिक विकास ही नहीं सामाजिक और सांस्कृतिक वास्तविकताओं के परिप्रेक्ष्य में करना होगा।

ऊपर के दृष्टिकोण के अनुसार डा० कल्पनाथ शास्त्री का प्रस्तुत प्रयास प्रशंसनीय है। उन्होंने अपने अध्ययन में समग्र दृष्टि अपनाई है। मुस्लिम आक्रमण के प्रतिरोध के इतिहास को तत्कालीन राजनीतिक इतिहास से संबद्ध करके और उसकी सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की विवेचना करके उन्होंने अपने विषय को सुस्पष्ट करने में अभीष्ट सफलता प्राप्त की है। अपने अध्ययन के लिए उन्होंने सभी संभव सामग्री का अवलोकन और प्रमाणों का उपयोग किया है। इससे उनका विवरण प्रामाणिक एवं सर्वांगीण हुआ है।

अपने प्रस्तुत अध्ययन से डॉ० शास्त्री ने उपेक्षित अतएव अल्पज्ञात पूर्व-मध्यकालीन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतिहास को प्रकाशित करने के प्रयास की दिशा में सफल योगदान दिया है। गंभीर शास्त्रीय शोधकार्य के लिये हिन्दी की उपयुक्तता और सामर्थ्य को भी उन्होंने अपनी सशक्त एवं प्रभाव-पूर्ण शैली के द्वारा समुचित प्रकार से सिद्ध किया है। उनके इस प्रकाशन का अभिनन्दन करते हुए हम आशा करते हैं कि हिन्दी के माध्यम से इतिहास-रचना के कार्यक्रम में डॉ० शास्त्री आगे भी योगदान देते रहेंगे।

लल्लनजी गोपाल

एम० ए०, डी० फिल० (इलाहाबाद)

पी-एच० डी० (लन्दन), एफ० आर० ए० एस०,

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष,

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूमिका

चिर स्वप्नों में निमग्न, धार्मिक रूढ़ियों में बंधन-बद्ध, आन्तरिक राजनीतिक कलह से संतप्त, बाह्य संसार से विरक्त भारत सहसा मुस्लिम आक्रमणों से विक्षिप्त हो उठा। इन आक्रमणों ने शताब्दियों तक भारतीय जन-जीवन को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक सभी प्रकार से प्रभावित किया। ऐसा नहीं है कि इन आक्रमणों के अतिरिक्त अन्य बाह्य जातियों तथा धर्मावलम्बियों ने आक्रमण न किया हो। पर वे आक्रमणकारी भारतीय जन-जीवन में घुल-मिल कर भारतीय हो गये। मुसलमानों से पूर्व आर्य, ग्रीक, शक, पह्लव, कुषाण, हूँण आदि सभी आक्रामक थे परन्तु वे सभी कालान्तर में भारतीय जीवन-स्रोत के अभिन्न अंग बन गए। इसके विपरीत मुस्लिम आक्रामकों की रीति-नीति सर्वथा भिन्न रही। यद्यपि भारत के बहु-संख्यक मुसलमान हिन्दू पुरखों की सन्तान हैं, फिर भी नाना समानताएं होते हुए भी वे रीति-रिवाज, खान-पान, वेश-भूषा आदि में भारतीयों से भिन्न हैं। सम्भवतः पाकिस्तान का निर्माण उसी दिशा में विलगाव का परिणाम है। बाहर से आये मुसलमानों के अतिरिक्त ९० प्रतिशत भारतीय मुसलमानों के पूर्वज बौद्ध अथवा हिन्दू थे, जिन्होंने विभिन्न कारणों से इस्लाम स्वीकार किया, परन्तु उनमें अधिकांश मूल मुसलमानों से भी कट्टर साबित हुए।

यद्यपि अतीत से ही भारत आक्रान्त रहा, भारतीयों ने कभी भी बढ़कर शत्रु को रोकने या पराजित करने का प्रयास नहीं किया, केवल अपने घर की रक्षा के लिए ही पग उठाए। यदि शत्रु पराजित हो गया, तो गर्व में उसे निर्मूल करने का प्रयास नहीं किया, और सुरक्षा की भी उपेक्षा की। परिणामतः परास्त शत्रु ने प्रतिशोध-वश क्रुद्ध भाव से और शक्ति-शाली रूप धारण कर आक्रमण कर मद एवं प्रमादोन्मत्त भारतीय शासकों की स्वतंत्र सत्ता समाप्त कर दी। भारतीय राजे तो सर्वदा पारस्परिक युद्धों में ही रत रहे; किसी के हृदय में न तो भारतीय सीमा लांघकर पार्श्ववर्ती प्रदेशों पर आक्रमण करने की लालसा ही उठी, और न किसी के पास इतना समय ही था। विलास एवं आन्तरिक संघर्ष ने भारतीय शासकों को विश्व सीमित बना कर उन्हें बाह्य जगत की गति-विधियों से पूर्णतः अनभिज्ञ बना दिया था।

भारत पर मुस्लिम आक्रमण लगभग सातवीं शताब्दी के मध्य में आरम्भ हो कर बारहवीं शताब्दी के अन्त तक होते रहे। जबतक मुस्लिम सत्ता का शिलान्यास नहीं हो गया, उन आक्रमणों ने बराबर भारतीय जन-जीवन को अस्त-व्यस्त एवं त्रस्त रखा। इन मुसलमान आक्रामकों तथा भारतीय आक्रान्ताओं के संघर्ष एवं उत्थान-पतन की लगभग साढ़े पाँच सौ वर्ष की अद्‌भुत गाथा इतिहास के विद्यार्थी के लिए शोध तथा चिन्तन का विषय है। इस युग के इतिहास का अध्ययन अनेक ग्रंथों में हुआ है। और अनेक ख्याति-प्राप्त विद्वानों ने इस काल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के इतिहास पर प्रकाश डाला है। परन्तु बहुत से विद्वानों ने अनेक स्थलों पर घटनाओं और परिस्थितियों के साथ न्याय नहीं किया है, क्योंकि उनका दृष्टिकोण साम्प्रदायिकता, जातीयता अथवा क्षेत्रीयता से प्रभावित हो गया है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में उपर्युक्त संकीर्णताओं से ऊपर उठकर, निष्पक्ष भाव से प्रत्येक घटना-क्रम का व्यापक एवं सूक्ष्म ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। साथ ही उक्त घटनाओं के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि पक्षों का भी यथाशक्ति सूक्ष्म अन्वेषण एवं पर्यवेक्षण भी किया गया है। नवीन प्राप्त सामग्रियों का उपयोग कर अनेक तथ्यहीन एवं सन्देहास्पद ऐतिहासिक स्थलों एवं भ्रमों का भी निवारण कर दिया गया है। आशा है कि राजनीतिक घटना-क्रम में आलोचनात्मक दृष्टि से जो सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि विवेचन किये गये हैं, उनसे तत्कालीन समाज का सही मूल्यांकन हो सकेगा, और मुस्लिम आक्रमणों के संदर्भ में भारतीय प्रतिक्रिया समझने में सहायता मिलेगी।

भारत में ग्रीस, अरब, फारस, अफ़ग़ानिस्तान, चीन आदि देशों की भाँति इतिहास नहीं लिखे गये, जिनसे प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध हो सके। यहाँ ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में जो अभिलेखीय एवं साहित्यिक सामग्री उपलब्ध है, उसमें अधिकांश अविश्वसनीय है, क्योंकि साहित्य रचना प्रायः दरबारी कवियों और लेखकों के द्वारा ही हुई, और अभिलेख शासकों अथवा उनके उत्तराधिकारियों द्वारा लिखवाए गए हैं। ऐसे साहित्य तथा अभिलेखों में तथ्य से हट कर किसी बात को बढ़ाचढ़ा कर कहने की प्रवृत्ति का होना स्वाभाविक है। यदि राजतरंगिणी आदि कतिपय ग्रंथ ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, तो उनका क्षेत्र सीमित है। अतः इस शोध-प्रबन्ध में मूल अरबी, फारसी के ग्रंथों तथा उनमें कुछ के अंग्रेजी अनुवाद, व इनके साथ-साथ अन्य विदेशियों के यात्रा विवरणों आदि का भी पूर्ण उपयोग किया गया है, जिससे भारतीय सूत्रों से प्राप्त सामग्रियों एवं तथ्यों का तुलनात्मक विवेचन हो पाया है। आशा है, इस दृष्टिकोण से इतिहास के जिज्ञासु पाठक वांछित लाभ उठायेंगे।

प्रस्तुत ग्रंथ लखनऊ विश्व-विद्यालय का स्वीकृत शोध-प्रबंध है, जिसका शीर्षक "भारत पर मुस्लिम आक्रमण तथा सुरक्षा के भारतीय प्रयास" (८००–१२०० ई०) है। किन्तु विद्वान मित्रों के मतानुसार इसका नाम बदल कर 'भारत और मुस्लिम आक्रमण' (७००–१२०० ई०) रखा गया है।

इस शोध-ग्रंथ में आठ अध्याय हैं। अध्याय प्रथम में संक्षिप्त रूप से इस्लाम के अभ्युदय एवं प्रसार की कहानी वर्णित है। अरब की मरु-भूमि पर किन परिस्थितियों में इस्लाम का अभ्युदय हुआ? कैसे-कैसे उसने योरप, अफ्रीका तथा एशिया के अधिकांश भू-भाग को अपने साम्राज्य प्रसार में आत्मसात कर लिया? किस प्रकार प्रसार तरंगों में भारत का सिन्ध प्रदेश भी समा गया, किन्तु अधिक समय तक अरब साम्राज्य के बन्धन में नहीं रहा? परन्तु इस अल्पकाल में ही सिन्ध की सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक स्थिति पर अरबों का क्या प्रभाव पड़ा? इन सभी प्रश्नों पर इस अध्याय में सविस्तार विचार किया गया है। उन परिस्थितियों एवं कारणों पर प्रकाश डाला गया है, जिनसे अनुप्राणित एवं आन्दोलित अरब आक्रामक भारत की ओर अग्रसारित हुए थे। अरब भारत राजनीतिक सम्बन्धों के अतिरिक्त प्राचीन काल से स्थापित व्यापारिक सम्बन्धों का भी इसमें संक्षिप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्णन है। अरब व्यापारी पहले ही से अपने व्यापार के लिए सारे विश्व में ख्याति प्राप्त कर चुके थे, और उनके प्रभाव से भारत भी अछूता नहीं था।

अध्याय दो में हर्ष के साम्राज्य के खण्डहरों पर निर्मित गुर्जर-प्रतिहारों तथा उनके समकालीन बंगाल के पालों, तथा मध्य-भारत के राष्ट्रकूटों का वर्णन आया है। इन तीनों राजवंशों की गणना सम्राटपदीय शक्तियों में होती है, जिनसे सम्पूर्ण भारत प्रभावित था। इस त्रिगुट ने साम्राज्य लिप्सा में बाह्य शत्रु की शक्ति का भय छोड़ आपस में सदैव संघर्ष किया। एक दूसरे को पतनोन्मुख करने के लिए कोई कोर-कसर नहीं उठा रखी। अतः इन तीनों राजवंशों का संक्षिप्त एवं अपेक्षित परिचय दिया गया है। साथ ही इनकी राजनीतिक भूलों और गुणों का भी मूल्यांकन एवं विवेचन किया गया है। इनका मुस्लिम आक्रामकों से जो सम्बन्ध रहा, उस पर ध्यानाकर्षण करते हुए इनकी स्वार्थपरता पर भी यथासम्भव प्रकाश डाला गया है। जैसे यदि गुर्जर-प्रतिहार मुसलमानों के शत्रु थे, तो राष्ट्रकूट उनके मित्र। अरब व्यापारी राष्ट्रकूट शासन में प्रश्रय पाते थे, तथा उन व्यापारियों के माध्यम से उन्हें धन प्राप्ति होती थी। इस मदान्ध त्रिगुट ने एक दूसरे को दुर्बल बना, बाह्य शत्रुओं को परोक्ष रूप से आमंत्रित कर, अपने-अपने सर्वनाश का मार्ग प्रशस्त किया। परिणामतः कालान्तर में ये राज-वंश निर्मूल होकर रह गये।

अध्याय तीन में तुर्कों के आगमन से पूर्व की भारत की सामाजिक दशा का चित्रण किया गया है। यह काल, वह काल है जब भारत में उपर्युक्त त्रिगुट आपस में एक दूसरे से टक्करें ले रहे थे और भारतीय जन-जीवन इस संघर्ष से चरमरा रहा था। अतः तत्कालीन सामाजिक स्थिति पर उपर्युक्त राजनीतिक संघर्ष के संदर्भ में अपेक्षित प्रकाश डाला गया है। किन्तु यह ध्यान रखा गया है, जिससे उन कारणों एवं परिस्थितियों का स्पष्टीकरण हो जाय, जिनके वश उपर्युक्त शक्तियां देश-रक्षा सम्बन्धी अपने कर्तव्यों एवं भावनाओं की अवहेलना कर अपने विनाश की ओर बढ़ी थीं।

अध्याय चार में पश्चिमोत्तर सीमान्त के पास गजनी में तुर्क सत्ता की स्थापना पर प्रकाश डालते हुए, भारत पर उसके प्रभाव का उल्लेख किया गया है। इसके पूर्व बलोचिस्तान तथा समुद्री मार्ग से अरबों ने आक्रमण किये थे। किन्तु वे उतने घातक एवं प्रभावकारी सिद्ध नहीं हुए जितने दसवीं शताब्दी के अन्त में ग़ज़नी साम्राज्य के आक्रमण हुए। इस राज्य के निर्माता सुबुक्तगीन ने तत्कालीन सीमान्त शासक जयपाल को पराजित कर ऐसा मार्ग प्रशस्त कर दिया, जिससे उसके उत्तराधिकारी महमूद को कालान्तर में महान सफलता मिली। अतः भारतीय संघर्ष के साथ-साथ सुबुक्तगीन द्वारा अफ़गानिस्तान एवं तुर्किस्तान में हुए संघर्षों का भी आवश्यक अंश उल्लिखित है, जिससे हमें भारत के सीमान्त पर विकसित साम्राज्यवादी गतिविधियों का आभास हो सके।

अध्याय पाँच सुल्तान महमूद के उत्तराधिकार सम्बन्धी संघर्ष से आरम्भ होकर, उसके द्वारा भारत पर किये आक्रमणों तथा उसके प्रभाव पर प्रकाश डालता है। महमूद महानीं विजेता था, जिसने भारत पर सत्रह आक्रमण किये, और उसे कभी असफलता हाथ नह लगी। यदि किसी परिस्थिति अथवा प्राकृतिक कारणों वश वह गज़नी लौट भी गया, तो वह भी उसकी योजनानुसार ही हुआ। महमूद ने ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथम चरण के छिन्न-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भिन्न भारत के दुर्बल राजाओं की विवशता का पर्याप्त लाभ उठाया। उसने इनसे अपार सम्पत्ति तो प्राप्त की ही, इनके यश गौरव को भी धूलि-धूसरित कर दिया। इसके साथ ही इन राजाओं और सामन्तों द्वारा संरक्षित हिन्दू मंदिरों में संग्रहीत अपार सम्पत्ति भी लूटने में उसने कोई कसर नहीं छोड़ी। वह उजाड़, पठारी गज़नी साम्राज्य को भारतीय सम्पत्ति से वैभवशाली बनाना चाहता था। उपर्युक्त विवरण के अतिरिक्त इस अध्याय में तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का भी सिंहावलोकन किया गया है, जिससे यह स्पष्ट हो जाय कि उस समय हिन्दू जनता तथा धर्म के कर्णधार ब्राह्मणों व पुजारियों आदि की क्या स्थिति थी। सामाजिक स्वरूप के दौर्बल्य पर विचार किया गया है।

छठवें अध्याय में ग्यारहवीं एवं बारहवीं शताब्दी के उन साम्राज्यपदीय राजवंशों का वर्णन है, जो गुर्जर प्रतिहारों, पालों और राष्ट्रकूटों के भग्नावशेषों पर खड़े हुए। अजमेर के चौहान, जेजाकभुक्ति के चन्देल, त्रिपुरी के कलचुरि, बंगाल के सेन, गुजरात के चालुक्य, कन्नौज के गाहड़वाल, तथा मालवा के परमार इनमें मुख्य थे। उपर्युक्त दोनों शताब्दियों में इस सातों राजवंशों का बोलबाला था, और ये सदैव साम्राज्य विस्तार के लिए आपस में संघर्षरत रहते थे। इस अध्याय में इन राजवंशों के आवश्यक परिचय के साथ-साथ इनकी राजनीतिक गतिविधियों पर वंशानुक्रम से पूर्ण प्रकाश डाला गया है। इनके उन समस्त कार्यों का विवेचन किया गया है, जिन पर किन्हीं कारणों वश अन्य विद्वानों ने पक्षपातपूर्ण प्रकाश डाला है, या घटना-क्रम को व्यक्त करने में अनावश्यक संकोच किया है। भारत में जिस समय ये राजवंश सत्ता संघर्ष में लिप्त थे, सीमा के पार सशक्त मुस्लिम साम्राज्य का विस्तार हो रहा था, जो निकट भविष्य में भारतीय शासकों को निगल गया। भारत के कर्णधार बिल्कुल भूल गए कि आठवीं शताब्दी के आरम्भिक दशकों में, तथा नवीं के अन्त एवं दसवीं से आरम्भ में, जिन मुस्लिम आक्रामकों ने भारतीय वैभव को ध्वस्त कर सीमान्त से लगे प्रदेश पर स्थायी अधिकार कर लिया था, उनके उत्तराधिकारी अवसर आते ही उन्हें भी धराशायी कर वैभव विहीन कर देंगे। वे तो आन्तरिक संघर्ष में लिप्त रहे। परिणामतः भारत अपनी चिर संचित स्वतंत्रता खो बैठा।

अध्याय सात में बारहवीं शताब्दी के तीन प्रमुख शासकों—पृथ्वीराजचौहान, जयचन्द्र गाहड़वाल तथा परमर्दिदेव चन्देल के कार्यकलापों का वर्णन है। इसके साथ ही गोरी और गज़नी के सम्राट मुइज़्ज़ुद्दीन मुहम्मद गोरी के जीवन एवं कार्यों पर भी विस्तृत प्रकाश डाला गया है। मुहम्मद गोरी की अफ़गानिस्तान में क्या स्थिति थी ? उसने किन परिस्थितियों में भारतीय सीमा में प्रवेश किया ? पृथ्वीराज और जयचन्द्र को पराजित कर उसने किस प्रकार सत्ता का शिलान्यास किया ? इन सभी प्रश्नों पर विधिवत् प्रकाश डाला गया है। तीनों भारतीय शासकों का विवरण देते हुए यह आवश्यक जान पड़ा कि उस वंश का भी अपेक्षित परिचय प्रस्तुत कर दिया जाय, जिसके कारण भारत सदियों परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा रहा। भारत के उपर्युक्त तीनों शासक न तो वीरता में कम थे, और न ही शक्ति में; किन्तु तीनों एक दूसरे के शत्रु थे, और मरणान्त संघर्ष रत रहे। उनकी मदान्धता के कारण ही उनका पतन हुआ; उनका प्रमाद बाह्य आक्रमणकारी की सफलता के लिए उत्तरदायी हुआ। सुल्तान मुहम्मद गोरी भारत में दो बार पराजित भी हुआ, किन्तु उसने हिम्मत न हारी। वह अथक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिश्रमी था, युद्धकला में निपुण था, अभूतपूर्व साहसी था, कृत-संकल्प था। उसकी लगन में ही उसकी सफलता का रहस्य था।

आठवां अध्याय इस शोध-प्रबन्ध का अन्तिम अध्याय है। इसमें ग्यारहवीं और बारहवीं शती की उस संक्रामक एवं विपन्न राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दशाओं के विशेष उल्लेख किये गये हैं, जिनके कारण भारतीय जन-जीवन का अधःपतन हुआ, और स्वतंत्र भारतीय राजतंत्र का दीपक सदैव के लिए बुझ गया। तत्कालीन भारतीय युद्ध परिपाटी पर भी प्रकाश डाला गया है। भारतीय सैनिकों एवं सेनापतियों में कौन से अवगुण थे, जिनके कारण वे आत्म-बलिदान की भावना से ओतप्रोत होते हुए भी पराजित हुए। सैन्य संचालन, सैनिक गुण, एवं अस्त्रों-शस्त्रों के समुचित प्रयोग का भी इस अध्याय में विश्लेषण किया गया है। भारतीय शासक तथा सैनिक युद्धप्रिय थे, साहस का अभाव नहीं था, किन्तु दो-चार अवसरों को छोड़ बाह्य आक्रामकों के सम्मुख उन्होंने सदैव पराजय का मुँह देखा। यह विचारणीय विषय है कि पारस्परिक युद्धों में रत, चाटुकारों के प्रशंसागान से उन्मत्त, बाह्य संसार की सामयिक प्रगति से अनभिज्ञ, भारत के प्रमुख नृपति अपने शौर्य से मुसलमानों को क्यों परास्त न कर सके। उनकी सफलता के प्रत्येक सम्भव कारण पर गवेषणापूर्वक दृष्टिपात किया गया है, जिससे भारतीय पराभव का जटिल प्रश्न अपेक्षाकृत सरल हो जाय।

मुस्लिम आक्रामकों से भारत के सुदूर दक्षिण, पूर्व, नेपाल तथा कश्मीर आदि के अन्तस्थल के भाग बचे रहे। इस बचाव के प्रमुख दो कारण थे। प्रथम यह कि वे क्षेत्र उनके आक्रमण-सीमा से दूर थे तथा धन व सम्पत्ति की दृष्टि से नगण्य थे। दूसरा कारण भौगोलिक था। क्योंकि उनकी प्राकृतिक बनावट जैसे पर्वत, नदियां तथा घने वन आदि इस प्रकार उस क्षेत्र को आच्छादित किये थे कि वहाँ सुगमतापूर्वक आना जाना कठिन था। ग़ज़नी, ग़ोर आदि से इतनी दूर बढ़कर आक्रमण करना भी खतरे से खाली नहीं था। अतः इन क्षेत्रों तक आक्रमणकारियों की बाहें न पहुंच सकीं।

प्रस्तुत ग्रंथ उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्रीयुत हेमवतीनन्दन जी बहुगुणा को समर्पित है। भाई श्रीबहुगुणा जी से पिछले लगभग दो दशकों से मेरा अटूट एवं निकटतम सम्बन्ध चला आ रहा है। हमने एक दूसरे को निकट से देखा है, परखा है। मेरे राजनीतिक जीवन का सबसे बड़ा आकर्षण भाई श्रीबहुगुणा जी का स्नेह एवं सौजन्य है। उनमें अन्य मानवीय गुणों के अतिरिक्त अध्ययन की अपार रुचि है। उनसे ऐतिहासिक एवं राजनीतिक आदि विषयों पर अनेक बार विचार-विनिमय हुए हैं, जिनसे उनके विषय ज्ञान की गम्भीरता एवं तीक्ष्णता का आभास मिला है। उनके इसी अध्ययन एवं विद्वता को देखकर मेरे मन में पर्याप्त समय से यह अभिलाषा थी कि इस देश के सजग-प्रहरी एवं जागरूक-राष्ट्र-नायक को कोई ऐसी चीज़ समर्पित करूँ जो उनके राष्ट्रप्रेम, धर्म निरपेक्षता एवं समाजसेवी प्रवृत्तियों के अनुकूल हो। संयोग से इस शोध-ग्रंथ को मैं उनकी अन्तरात्मा की रुचि के अनुकूल पाया हूँ। जिसमें अनेक धार्मिक, सामाजिक, प्रशासनिक तथा आर्थिक रूढ़ियों एवं कुरीतियों आदि का निष्पक्ष रूप से विवेचन एवं उद्घाटन किया गया है। अतः अपनी सम्मति में यह उपयुक्त भेंट उन्हें समर्पित कर रहा हूं।

यह शोध-प्रबन्ध इतिहास ही नहीं मानवशास्त्रीय एवं समाजशास्त्रीय विषयों में हिन्दी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाषा तथा देवनागरी लिपि में लिखित भारतीय विश्वविद्यालयों का पहला प्रबन्ध है, जो परीक्षण के लिए विदेश भेजा गया था। इसके परीक्षकों में अन्तरराष्ट्रीय ख्याति के विद्वान प्रो० डॉ० ए० एल० वैशम, लन्दन तथा प्रो० डॉ० भगवत शरण उपाध्याय उज्जैन हैं। उपर्युक्त दोनों विद्वानों ने इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है, इसके लिए मैं हृदय से आभारी हूँ।

डॉ० भगवत शरण उपाध्याय, भूतपूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, विक्रम-विश्वविद्यालय, उज्जैन के अनेक महत्वपूर्ण सुझावों से भी मैं लाभान्वित हुआ हूँ। उन्होंने मेरे प्रति जितनी उदारता एवं आत्मीयता दिखाई है, उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ।

प्रस्तुत प्रबन्ध में मैंने डॉ० रमेशचन्द्र मजूमदार, डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, डॉ० ताराचन्द, डॉ० मुहम्मद हबीब, श्री सी० वी० वैद्य, प्रो० एच० सी० राय, डॉ० ए० एस० अल्तेकर, डॉ० दशरथ शर्मा, डॉ० पी० वी० काणे, डॉ० वी० वी० मिराशी, डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, डॉ० ईश्वरी प्रसाद, डॉ० के० ए० निज़ामी, डॉ० एन० नाज़िम, सर यदुनाथ सरकार, डॉ० आर० पी० त्रिपाठी, डॉ० डी० सी० गांगुली, डॉ० के० आर० कानूनगो, डॉ० ए० वी० एम० हबीबुल्ला सरीखे विश्वविख्यात भारतीय विद्वानों की रचनाओं से लाभ उठाया है, इसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। साथ ही सर डब्ल्यु० हेग, डॉ० वी० ए० स्मिथ, डॉ० ए० एल० वैशम, एलेक्ज़ेण्डर कनिंघम, स्टेनली लेनपूल, सैमुअलबील प्रभृति पाश्चात्य, तथा अलबेरूनो, बिलाज़ुरी, गर्दीज़ी, उनसूरी, शेख इब्नबतूता, सुलेमान सौदागर इब्ने-उल-असीर ऐसे अरबी फारसी के इतिहासकारों के प्रति भी हार्दिक आभार एवं कृतज्ञता प्रकट करना, अपना कर्तव्य समझता हूँ, जिनके ज्ञान के प्रकाश में इस शोध-प्रबन्ध की रचना की गई है।

उपर्युक्त विद्वानों के ग्रंथों के अतिरिक्त अनेक भारतीय, पाश्चात्य तथा अरब-फारस के विद्वानों के ग्रंथों का भी इस प्रबन्ध प्रणयन में उपयोग किया है। अतः मैं उन सभी विद्वान लेखकों का कृतज्ञ हूँ और आभार प्रकट करता हूँ।

पुस्तकों के अतिरिक्त पत्रिकाओं, गज़ेटियर्स तथा मैमोइर्स आदि में प्रयुक्त सामग्री का भी इस प्रबन्ध में संदर्भ है। अतः मैं उन सभी विद्वानों को आदर से स्मरण करता हुआ, धन्यवाद देता हूँ।

प्रस्तुत प्रबन्ध को प्रस्तुत करने में उन्मुख करने के लिए मैं प्रो० डॉ० आर० के० दीक्षित, भूतपूर्व अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, लखनऊ का भी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने कृपापूर्वक प्रारम्भिक सभी कठिनाइयों को दूर कर मुझे उत्साहित किया। इसके साथ ही वर्तमान अध्यक्ष, प्रो० डॉ० बी० एन० पुरी ने भी मेरी सहायता की है, जिसके लिए मैं आभारी हूँ।

शोध-प्रबन्ध निर्देशक प्रो० डॉ० सर्वदमन सिंह, अध्यक्ष प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, विक्रम-विश्वविद्यालय, उज्जैन (तत्कालीन रीडर, लखनऊ विश्व-विद्यालय) का मैं हृदय से आभारी हूँ, जिनकी विद्वत्ता, कृपा एवं सौहार्द्र से पूरा प्रबन्ध प्रेरित एवं आच्छादित है। डा० सिंह के सरल स्वभाव एवं अनुग्रह के कारण ही मैं इतने अल्प समय में इस कार्य को पूरा कर सका। क्योंकि उन्होंने अपने अन्य कार्यों की उपेक्षा करके मेरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहायता करने में कोई कोर-कसर न उठा रखी। अतः डा० सिंह के प्रति हार्दिक कृतज्ञता एवं धन्यवाद प्रकाश करना मेरा पुनीत कर्तव्य है।

मैंने प्रो० डॉ० विशम्भरशरण जी पाठक, अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, स्व० प्रो० डॉ० बुद्ध प्रकाश जी भूतपूर्व अध्यक्ष प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग, कुरुक्षेत्र तथा पंजाब विश्वविद्यालय, प्रख्यात विद्वान आचार्य सीताराम जी चतुर्वेदी, वाराणसी, डॉ० राघवेन्द्र वाजपेयी, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, राजधानी कालेज, नई दिल्ली; प्रो० डॉ० लल्लन जी गोपाल, अध्यक्ष प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय; प्रो० हरिदत्त वेदालंकार निदेशक, अनुवाद तथा प्रकाशन निदेशालय, गो० व० पन्त विश्वविद्यालय, नैनीताल, प्रभृति ख्यातिलब्ध विद्वानों एवं शुभचिन्तकों के सत्परामर्शों से भी लाभ उठाया है। उपर्युक्त महानुभावों ने जिस सहज स्नेह एवं सौहार्द्रवश मुझे परामर्श देकर सहयोग दिया है, वह अविस्मरणीय है। मैं उपर्युक्त सभी विद्वानों के सम्मान में हार्दिक आभार प्रकट कर रहा हूँ।

प्रो० लल्लन जी गोपाल ने मेरे आग्रह पर अपने व्यस्त कार्यक्रम के बावजूद जिस अल्पकाल में प्रवेशिका लिख दी, यह उनके उदार स्वभाव एवं सहज स्नेह का परिचायक है। इसके लिए मैं डॉ० गोपाल का विशेष आभारी हूँ।

शोध-ग्रंथ को प्रकाशित करने में काशी विद्यापीठ के कुलपति श्रद्धेय श्री रघुकुल तिलक जी तथा इतिहास विभाग के अध्यक्ष श्रद्धेय प्रो० भगवती प्रसाद जी पांथरी ने जो उदारता-पूर्वक सहयोग दिया है, एतदर्थ दोनों महानुभावों को कोटिशः धन्यवाद।

आदरणीया, सहृदया, श्रीमती अन्नपूर्णा भाभी, लखनऊ का मैं हृदय से आभारी, तथा कृतज्ञ हूं। जिन्होंने मेरी कठिनाइयों को अपने सहज स्नेह से सुगम बनाकर शोधकार्य में सहायता की।

सचिवालय पुस्तकालय के पुस्तकाध्यक्ष, श्री इन्द्र नारायण त्रिपाठी ने पुस्तकों का जिस उदारता से संग्रह करवाया, तथा दुर्लभ ग्रंथों को जिस भाव से संग्रहीत कर मुझे उपलब्ध कराया, यह सब उनके स्नेह तथा मैत्रीभाव का परिचायक है, जिसके लिए मैं उनका अतीव आभारी हूँ।

पाण्डुलिपि तैयार करने तथा टंकित प्रतियों को संशोधित करने में मेरे मित्र श्री गजेन्द्र सिंह भदौरिया, प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग, श्री बृजराज सिंह सिरोही, प्राध्यापक, मिलिटरी साइन्स, डा० रामफेर त्रिपाठी, प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, डा० त्रिलोकी नाथ सिंह, प्राध्यापक हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, श्री अयोध्यासरण तिवारी, अध्यापक, जयनारायण डिग्री कालेज, लखनऊ तथा श्री देवी शंकर त्रिपाठी, लखनऊ ने जो सहयोग दिया है, उसके लिए इन लोगों को साधुवाद।

शोध-प्रबन्ध को आद्योपान्त एवं पूर्णरूपेण हिन्दी में प्रस्तुत किया गया है। यदि इस प्रयास में कोई त्रुटि हो, साथ ही सावधानी के बावजूद मुद्रण में भी कुछ त्रुटियां रह गई हों तो मैं इनके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शब्दानुक्रमणिका तैयार करने में, मेरे मित्र डॉ० निसार अहमद, प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दूविश्वविद्यालय तथा इसी विभाग के वरिष्ठ शोध-छात्र डॉ० झिनकू यादव ने जो सहयोग दिया है, इसके लिए इन लोगों को अनेक धन्यवाद ।

प्रूफ संशोधन में मेरे मित्र श्री बृजेन्द्र किशोर जी अग्रवाल, प्राध्यापक अर्थशास्त्र विभाग काशी विद्यापीठ तथा मेरे शिष्य श्री छेदी लाल खरे, श्री राम अनन्त पांडेय, श्री बब्बन पांडेय ने जो सहयोग दिया है इसके लिए इन लोगों को साधुवाद ।

अन्त में समय से पुस्तक मुद्रित करने के लिए काशी विद्यापीठ मुद्रणालय के व्यवस्थापक श्री शिवमूर्ति पाठक एवं अन्य कर्मचारियों को अनेक धन्यवाद जिन्होंने तत्परता एवं लगन से मुद्रण कार्य सम्पन्न कर दिया ।

रामनवमी, सोमवार
१ अप्रैल, १९७४

कल्पनाथ शास्त्री

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारत और मुस्लिम आक्रमण

(७००–१२०० ई०)

विषय-सूची

			पृष्ठ सं०
प्रवेशिका			१–४
भूमिका			५–१२
विषय-सूची			१३–१७
संकेत-सूची			१९–२०
अध्याय	१	अरब साम्राज्यवाद का अभ्युदय एवं प्रसार	१–२०
		अरब और इस्लाम का अभ्युदय,	३–४
		अरब साम्राज्य का अभ्युदय (६३२ ई०- ६६१ ई०),	४–५
		अरब साम्राज्य का प्रसार (६६१ ई०–७१२ ई०),	५–७
		मुस्लिम अरबों द्वारा भारत पर आक्रमण के कारण,	७–८
		सिंध-विजय (७१२ ई०),	८–१२
		मुल्तान	१२–१३
		अरबों की सफलता के कारण,	१३–१५
		अरब साम्राज्य का पतन तथा सिंध,	१५–१६
		दक्षिणी भारत में मुस्लिम बस्तियों का प्रसार,	१६–१७
		अरब नीति,	१७–१८
		भारत की तत्कालीन धार्मिक स्थिति,	१८–१९
		सामाजिक स्थिति ।	१९–२०
अध्याय	२	भारत में अरब प्रसार के प्रयास और भारत की राजनीति (८०० –१००० ई०)	२१–४८
		गुर्जर-प्रतिहारों का उद्भव,	२३
		गुर्जर-प्रतिहारों और अरबों का संघर्ष,	२३–२९
		राष्ट्रकूटों एवं गुर्जर-प्रतिहारों का अंतिम संघर्ष-गुर्जर-प्रतिहार शक्ति का ह्रास,	२९
		महमूद तथा गुर्जर-प्रतिहार,	२९–३०
		गुर्जर-प्रतिहारों का अंत–नवराज्यों का उदय,	३१
		बंगाल के पाल,	३१–३३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

		पाल प्रतिहार संघर्ष—राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय का उत्तरी भारत पर आक्रमण,	३३
		देवपाल द्वारा पाल शक्ति का प्रसार,	३३–३५
		देवपाल के दुर्बल उत्तराधिकारी एवं प्रतिहार शक्ति का प्रसार,	३५
		पाल साम्राज्य का पतन,	३६
		पालों एवं चौलों का संघर्ष,	३६–३७
		पालों और कलचुरियों में संघर्ष,	३७–३८
		पालों और चालुक्यों का संघर्ष,	३८
		पालों एवं सोम-वंशियों का संघर्ष,	३८–३९
		पालवंश का अन्त एवं नवीन शक्तियों का अभ्युदय,	३९–४०
		राष्ट्रकूट—दन्तिदुर्ग द्वारा राष्ट्रकूट वंश की स्थापना, चालुक्यों और अरबों का संघर्ष तथा राष्ट्रकूट शक्ति का अभ्युदय,	४०–४१
		राष्ट्रकूट शक्ति का प्रसार,	४१–४२
		राष्ट्रकूटों का पालों तथा प्रतिहारों से संघर्ष,	४२–४३
		गोविन्द की दक्षिण विजय,	४३–४४
		अमोघवर्ष के विजयाभियान,	४४–४८
अध्याय	३	तुर्कों के आगमन से पूर्व भारत की सामाजिक दशा	४९–६७
		तत्कालीन सामाजिक समस्यायें,	५१
		तत्कालीन शिक्षा प्रणाली,	५१–५२
		नारी तथा शिक्षा,	५२
		सामाजिक विभाजन,	५२–५४
		जाति प्रथा के कुप्रभाव,	५४-५६
		ब्राह्मणों के विशेषाधिकार,	५६–५७
		क्षत्रिय,	५७–५८
		वैश्य, शूद्रों की दयनीय स्थिति,	५८–६१
		धार्मिक सम्प्रदाय,	६१
		सामाजिक कटुता एवं दौर्बल्य,	६१–६२
		दास प्रथा,	६२
		विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध और प्रथाएँ,	६२–६३
		सती प्रथा,	६३
		देवदासियां,	६३
		वेश्यावृत्ति,	६३–६४
		नगरों का अभाव,	६४
		समुदाय,	६४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

		विलासिता,	६४–६६
		सुरापान,	६६
		अन्धविश्वास तथा कूपमण्डूक वृत्ति,	६६–६७
		भाग्यवाद ।	६७
अध्याय	४	अफ़गानिस्तान में तुर्कों का उत्थान तथा भारत	६९–८०
		अफ़गानिस्तान की स्थिति में परिवर्तन,	७१–७२
		गज़नी में तुर्क सत्ता की स्थापना,	७२
		अलप्तगीन—राज्य प्रसार,	७२–७४
		अलप्तगीन के दुर्बल उत्तराधिकारी और सुबुक्तगीन,	७४–७५
		सुबुक्तगीन और पश्चिमोत्तर भारत,	७६-७७
		जयपाल पर आक्रमण और पेशावर पर अधिकार,	७७–७८
		पश्चिमोत्तर भारत पर सुबुक्तगीन के आक्रमण के प्रभाव,	७९
		भारतीय प्रतिक्रिया ।	७९–८०
अध्याय	५	महमूद और भारत	८१–१२४
		महमूद का उत्तराधिकार सम्बन्धी संघर्ष और सफलता,	८३–८४
		महमूद की विस्तारवादी नीति,	८४
		लमग़ान के समीप आक्रमण (सितम्बर, १००० ई०),	८४
		पेशावर और वैहिन्द पर आक्रमण (सितम्बर, १००१ ई०),	८५
		भटिण्डा (भाटिय) पर आक्रमण (अक्टूबर, १००४ ई०),	८५–८६
		सिंध तथा मुल्तान पर आक्रमण (मार्च-अप्रैल, १००६ ई०),	८६–८७
		भेरा के राज्यपाल सुखपाल पर आक्रमण (जनवरी, १००८ ई०),	८७
		वैहिन्द पर आक्रमण तथा नगरकोट पर अधिकार (दिसम्बर, १००८ ई०),	८७–९१
		आनन्दपाल का आत्म-समर्पण तथा नारायणपुर (अलवरराज्य) पर आक्रमण (अक्टूबर, १००९ ई०),	९१–९२
		मुल्तान पर पुनः आक्रमण (अक्टूबर, १०१० ई०),	९२
		थानेश्वर पर आक्रमण (अक्टूबर, १०१४ ई०),	९२–९३
		त्रिलोचनपाल पर आक्रमण तथा नन्दन (नारदीन) पर अधिकार (नवम्बर, १०१३–मार्च, १०१४ ई०),	९३–९५
		कश्मीर पर आक्रमण (१०१५ ई०),	९५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

		दोआब पर आक्रमण तथा मथुरा और कन्नौज पर अधिकार (सितम्बर, १०१८ ई०),	९५–९९
		बारी और कालिंजर पर आक्रमण तथा रामगंगा का युद्ध (अक्टूबर, १०१९ ई०),	९९–१०१
		कश्मीर पर पुनः अभियान (१०२१ ई०),	१०१–१०२
		ग्वालियर और कालिंजर पर आक्रमण (१०२२ ई०),	१०२
		सोमनाथ पर आक्रमण (जनवरी, १०२६ ई०),	१०३-१०६
		जाटों के विरुद्ध आक्रमण (मार्च, १०२७ ई०),	१०७
		महमूद गज़नवी के आक्रमणों का स्वरूप तथा उद्देश्य,	१०७–११०
		महमूद के आक्रमणों का परिणाम,	११०
		महमूद की जीत के कारण,	१११–११२
		तत्कालीन भारतीय समाज ।	११२–१२४
अध्याय	६	महमूद के पश्चात्-भारतीय स्वतन्त्रता के डेढ़ सौ वर्ष	१२५–१५८
		ग्यारहवीं एवं बारहवीं शताब्दी के प्रमुख राजवंश,	१२७
		कान्यकुब्ज के गाहड़वाल,	१२७–१३०
		शाकम्भरी के चौहान,	१३०–१३२
		गुजरात के चालुक्य,	१३३–१३६
		मालवा के परमार,	१३६–१३९
		पूर्व बंगाल के सेन,	१३९–१४१
		मध्यय भारत के कलचुरि,	१४१
		सरयू पार के कलचुरी, रत्नपुरी के कलचुरी	१४१–१४२
		त्रिपुरी के कलचुरी	१४३–१५१
		जेजाकभुक्ति के चन्देल,	१५१–१५८
अध्याय	७	भारत में इस्लाम तथा तुर्कसत्ता का संस्थापन	१५९–२०६
		तुर्क प्रभाव का प्रसार,	१६१–१६२
		ग़ोरी विजय से पूर्व भारत में मुसलमानों की उपस्थिति,	१६२–१६४
		ग़ोर तथा शिहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी के पूर्वज	१६४–१६६
		शिहाबुद्दीन के भारतीय अभियान,	१६६–१६९
		शाकम्भरी के चौहान,	१६९–१७०
		पृथ्वीराज तृतीय (११७९–११९२ ई०),	१७०–१७२
		जयचन्द्र गाहड़वाल (११७०–११९४ ई०),	१७२–१७४
		परमर्दिदेव (परमल) चन्देल (११६५–१२०३ ई०),	१७४–१७५
		मुहम्मद ग़ोरी और पृथ्वीराज तृतीय,	१७५–१७७
		मुइज्जुद्दीन द्वारा युद्ध की तैयारी,	१७७–१७८
		तराइन का द्वितीय युद्ध	१७८–१८१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

		पृथ्वीराज की पराजय के कारण,	१८१–१८४
		पृथ्वीराज के उत्तराधिकारी,	१८४–१८६
		कुतुबुद्दीन ऐबक के विजयाभियान,	१८६–१८७
		गाहड़वालों पर आक्रमण,	१८७–१९०
		ऐबक का अनवरत संघर्ष,	१९०–१९३
		मलिक बहउद्दीन तुग़रिल,	१९४
		इख्तियारउद्दीन मुहम्मद बख्तियार ख़लजी,	१९४–२०४
		मुइज्जुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी का अन्त,	२०४–२०५
		कुतुबुद्दीन का राज्यारोहण।	२०६
अध्याय	८	भारतीय पराभव—विस्तृत विश्लेषण–	२०७–२४२
		मुइज्जुद्दीन का चरित्र तथा उसकी उपलब्धियां,	२०९–२१०
		ग़ोरी अभियानों के कारण,	२१०–२११
		तुर्क विजय के कारण,	२११–२१७
		राजनीतिक कारण,	२१७–२२०
		सैनिक कारण,	२२०–२२७
		सामाजिक कारण,	२२७–२३३
		आर्थिक कारण,	२३३–२३६
		धार्मिक कारण।	२३६–२४२
उपसंहार			२४३–२४७
सहायक ग्रंथों की सूची			२४८–२६४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संकेत-सूची

अलबेरूनी, अबूरैहा अलबेरूनी, किताबुल-हिन्द ।

ए० एस० आई० आर०, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया एनुअल रिपोर्ट्स ।

ए० एस० आर० आई०, आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट्स ऑफ इंडिया ।

ए० एस० आई०, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया एनुअल रिपोर्ट्स ।

ए० आर०, राष्ट्रकूट्ज एण्ड देयर टाइम्स, ए० एस० अल्तेकर ।

ए० आर० एस० आई० ई०, एनुअल रिपोर्ट्स ऑन साउथ इंडिया ऐपिग्राफी ।

ए० एस० आर०, आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट बाइ कनिंघम ।

अ० भा० ओ० रि० इ०, ऐनाल्स ऑफ दि भंडारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट ।

आ० स० रि०, आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट ।

आ० स० सी०, आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज़ ।

इ० क० चे० इ०, इन्सक्रिप्शन्स ऑफ दि कलचुरि चेदि इरा, वी० वी० मिराशी ।

इंडि० ऐन्टि०, इंडियन ऐन्टिक्वेरी ।

आई० जी० आई०, इम्पीरियल गज़ेटियर ऑफ इंडिया ।

इ० हि० क्वा०, इंडि० हि० क्वा०, आई० एच० क्यू०, इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली ।

इलि० एण्ड डाउ०, इलि०, एच० एम० इलियट एण्ड जे० डाउसन ।

इ० सी०, ऐपिग्राफया कर्नाटिका ।

उत्बी, अबूनस्र बिन मुहम्मद अल जबरुल उत्बी, तारीख़े-उल-यामिनी ।

उनशुरी, हसन बिन अहमद उनशुरी, दीवान ।

एशामी, ख़्वाजा अबूबक्र एशामी, फ़ुतूहुस्सलातीन ।

ऐपि० इडि०, ऐपिग्राफिया इंडिका ।

क्र० सं०, क्रम संख्या ।

गर्दीज़ी, अबुल हई बिन अश्रजहाक बिन महमूद गर्दीज़ी, किताब-जैन-उल- अखबार ।

जी० ओ० सी०, गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरीज ।

गृहस्थ०, गृहस्थ रत्नाकर ।

जे० आर० एस० बी० एल०, जर्नल ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल लैटर्स ।

जे० डी० एल०, जर्नल ऑफ दि डिपार्टमेंट ऑफ लेटर्स, कलकत्ता युनिवर्सिटी ।

जे० आर० ए० एस०, जर्नल ऑफ़ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑग ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैंड, लन्दन ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जे० ए० एस० एल०, जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसाइटी लेटर्स, कलकत्ता
जे० बी० ओ० आर० एस०, जर्नल ऑफ दि बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना।
जे० ए० एस० बी०, जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता।
टि०, टिप्पणी।
डो० एच० बी०, ढाका युनिवर्सिटी, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग १।
डी० एच० एन० आई०, डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इंडिया।
तबरी, अल तबरी, तारीखे-उल-रसूल।
द्वि०, सं०, द्वितीय संस्करण।
एन० एस०, न्यू सीरीज़।
नाज़िम, मुहम्मद नाज़िम, दि लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ सुल्तान महमूद ऑफ गजनां।
नदवी, सैय्यद सुलेमान नदवी, अरब भारत के सम्बन्ध।
नरशखी, अबूबक्र मुहम्मद बिन जाफर नरशखी, तारीखे-बुखारा।
पी० आई०, एच० आर० सी, प्रोसीडिंग्स ऑफ दि इंडियन हिस्टारिकल रिकार्ड कमीशन।
पृ०, पृष्ठ।
पी० ओ० सी०, प्रोसीडिंग्स ऑफ दि ऑल इंडिया ओरिएन्टल कान्फ्रेंस।
फ़सीही, फ़सीहुद्दीन अहमद बिन मुहम्मद फ़सीही, मुज़मले-फ़सीही।
फ़रिश्ता, मुहम्मद क़ासिम फ़रिश्ता, तारीखे फ़रिश्ता।
फो०, फोलियो।
बैहक़ी, अबुल फ़ज़ल मुहम्मद बिन हुसैन बैहक़ी, तारीखे बैहक़ी, तारीखे मसूदी।
बिलाजुरी, अहमद बिलाजुरी, फुतूह-उल-बुल्दान।
बौम्बे गज़े०, बौम्बे गज़ेटियर।
मसूदी, अबुल हसन अली मसूदी, मुरुजुज़ जहबव मआदनुल जौहर।
मनु०, मनुस्मृति।
एम० ए० एस० आई०, मेमॉइर्स ऑफ दि आर्कियोलॉजिक्ल सर्वे ऑफ इंडिया।
म० प्र० का इतिहास, मध्य प्रेदश का इतिहास।
वि० स०, विक्रम सम्बत्।
सचाऊ, ई० सी० सचाऊ, अलबेरूनीज़ इंडिया।
एस० आई० आई०, साउथ इंडियन इन्सक्रिप्शन्स।
सं०, संख्या, संपादक।
सी० सी० आई० एम०, कैटलॉग ऑफ क्वाइन्स इन दि इंडियन म्युजियम।
हबीब, मुहम्मद हबीब, सुल्तान महमूद ऑफ गज़नी।
एच० ओ० एस०, हार्वर्ड ओरिएन्टल सीरीज़।
हि० हिज़री।
जेड० डी० एम० जी०, Zeitschrift Der Deutschen Morgenlandischen Gesellschaft.

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १

अरब साम्राज्यवाद का अभ्युदय एवं प्रसार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अरब और इस्लाम का अभ्युदय :

अरब की मरुभूमि में छठवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में इस्लाम का उदय विश्व-इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना थी। अरब में भी भारत के समान ही इस्लाम के पूर्व भिन्न-भिन्न प्रकार की जातियां रहती थीं। वहाँ के निवासी अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियों की पूजा करते थे, साथ ही उनमें आपस में धर्म भेद भी था।[1] देश में अनेक छोटे बड़े राजा एवं सरदार थे, जिनमें निरन्तर लड़ाई-झगड़े हुआ करते थे। वहाँ की सामान्य जनता प्रायः असभ्य और अशिक्षित थी, जो अनेकानेक अन्धविश्वासों की शिकार थी।[2] यद्यपि लोग वीर प्रकृति के थे, तथापि आपसी मतभेद एवं लड़ाई-झगड़ों से देश का नाश कर रहे थे। एक प्रकार से समस्त अरब धार्मिक रूढ़िवादी विचारों के प्रगाढ़ अन्धकार से आच्छादित था, जिसका अन्त इस्लाम की उषा-लालिमा ने किया।

इस्लाम से अनुप्राणित अरब गतिमान हो उठा तथा थोड़े ही समय में भारत के सिंधुनद और चीन से स्पेन तक और मास्को से नील नदी पर्यन्त समस्त भू-प्रसार अरब की इस्लामी सत्ता से उद्वेलित हो उठा।[3] इस्लाम के उदय एवं प्रसार की कहानी उस साम्राज्य के प्रसार की कहानी है, जिसे महान् सम्राटों ने नहीं अपितु धर्म के कबीलाई दीवानों ने स्थापित किया।

उन दीवानों का रहबर वह स्वप्नद्रष्टा नवयुवक मुहम्मद था, जो ५७१ ई० में मक्का के कुरेश कबीले के एक महत्वपूर्ण घराने में जन्मा था।[4] उसका इल्हाम विशेष रूप से ६१० ई० में घोषित हुआ, जिसका सिद्धान्त था—"ला इलाह इल्लिलाह मुहम्मदुर्रसूल अल्लाह।"[5] इस्लाम का यह एकेश्वरवाद अरब के बद्दू मूर्ति पूजकों के विश्वास में क्रान्ति बनकर उदय हुआ, तथा धार्मिक सिद्धान्तों के इतिहास में इस्लाम यहूदियों के एकेश्वरवाद 'यहोवा' और मिस्री फ़राउन इख़नातून के 'अतून' की परम्परा में जा खड़ा हुआ।

हजरत मुहम्मद का देहान्त ६३२ ई०[6] में हुआ, तदुपरान्त इस्लाम की बागडोर ख़लीफों के हाथ में आई।[7] पहले ख़लीफा हज़रत मुहम्मद की पत्नी आयशा के पिता अबूबक्र

---

१. ओझा, राजपूताना का इतिहास, भाग १, पृ० २८०; पी० के० हिट्टी, हिस्ट्री ऑफ अरब्स, पृ० १२१; इब्नेखलदून का मुक़द्दमा, पृ० ९।
२. ओझा, भाग १, पृ० २८०; हिट्टी, हिस्ट्री ऑफ दि अरब्स, पृ० १२१; सुलेमान नदवी, अरब और भारत के सम्बन्ध, पृ० २०९।
३. ओझा, भाग १, पृ० २८२; इब्नेखलदून का मुक़द्दमा, पृ० १६।
४. हिट्टी, पृ० १११; ओझा, भाग १, पृ० २८०; इब्नेखलदून का मुक़द्दमा, भूमिका, पृ० ७।
५. हिट्टी, पृ० १३०; इब्नेखलदून का मुक़द्दमा, पृ० ९।
६. हिट्टी, पृ० ११९; ओझा, भाग १, पृ० २८१; बेनी प्रसाद, भारत की प्राचीन सभ्यता, पृ० ३८४।
७. ओझा, भाग १, पृ० २८१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(६३२-६३४ ई०) हुए,[१] जिनकी खिलाफत पाने के दो साल पश्चात् ही मृत्यु हो गई। हज़रत उमर (६३४-६४४ ई०) दूसरे ख़लीफा हुए,[२] जिनके समय में मुस्लिम साम्राज्य का विशेष विस्तार हुआ। उमर के बाद हज़रत उस्मान (६४४-६५५ ई०) ख़लीफा बने,[३] जिनके पश्चात् उस बढ़ते हुए साम्राज्य के सूत्र हज़रत मुहम्मद के दामाद हज़रत अली (६५५-६६१ ई०) ने संभाले।[४] ये चारो ख़लीफा चारो (चहार) यार कहलाते थे। हज़रत अबूबक्र के अतिरिक्त शेष तीनों ख़लीफा हत्यारों के हाथ मरे। इन चारों ख़लीफाओं के शासन काल में जिस गति से साम्राज्य की सीमाएँ बढ़ीं, वे साम्राज्य प्रसार के इतिहास में अद्वितीय हैं। सिकन्दर, हनीबाल और रोमन साम्राज्य भी इस्लाम के साम्राज्य की छोरों में समा सकते थे।

अरब साम्राज्य का अभ्युदय (६३२-६६१ ई०) :

ख़लीफा अबूबक्र (६३२-६३४ ई०) के शासनकाल में साम्राज्य की विशेष प्रगति तो नहीं हुई, पर ख़ालिद बिन वलीद ने अरब के अनेक विद्रोहों को कुचल कर खिलाफत की नींव सुदृढ़ कर दी।[५] विजयों का तांता वस्तुतः ख़लीफा उमर (६३४-६४४ ई०) के शासनकाल में लगा।[६] ख़ालिद ने अगले ही साल दमिश्क को जीत लिया[७] और दो साल बाद सन् ६३७ ई० में साद ने फारस की राजधानी टेसीफोन पर अधिकार कर लिया।[८] ईरान की विजय के उपरान्त अरबों ने अपनी छावनी बसरे में बनाई, जहाँ से उनके आक्रमण इराक, एशियायी-कोचक तथा आमू नदी की दिशा में होने लगे।[९] हज़रत उमर के ही खिलाफत काल में बलूचिस्तान के समुद्र तट का वह भाग जो मकरान कहलाता था, अरबों के अधिकार में आ गया।[१०] पूर्व के अतिरिक्त पश्चिम में ६४२ ई० तक प्रायः समूचे मिस्र पर अरबों का अधिकार हो गया था।[११] मुआविया ने जो कुछ ही काल बाद ख़लीफा बना ६४९ ई० में रोमन सम्राट् के प्रसिद्ध द्वीप साइप्रस पर अधिकार कर लिया[१२] और छः साल बाद सम्राट के बेड़े को तहस-नहस कर उसके पाँच सौ जहाज छीन लिए।[१३] इस बीच हज़रत उमर के बाद हज़रत उस्मान

---

१. हिट्टी, पृ० १७८; ओझा, भाग १, पृ० २८१-२८२।
२. हिट्टी, पृ० १७८; ओझा, भाग १, पृ० २८२, टिप्पणी १।
३. हिट्टी, पृ० १७९; ओझा, भाग १, पृ० २८२।
४. हिट्टी, पृ० १७९; ओझा, भाग १, पृ० २८२।
५. हिट्टी, पृ० १४८; इब्नेखलदून का मुक़द्दमा, पृ० १३।
६. इब्नेखलदून का मुक़द्दमा, पृ० १२।
७. वही; हिट्टी, पृ० १५०।
८. इब्नेखलदून का मुक़द्दमा, पृ० १२; हिट्टी, पृ० १५६।
९. इब्नेखलदून का मुक़द्दमा, पृ० १२; हिट्टी, पृ० १५७-५९।
१०. इब्नेखलदून का मुक़द्दमा, पृ० १२; आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, दिल्ली सल्तनत, पृ० १३।
११. इब्नेखलदून का मुक़द्दमा, पृ० १३।
११. वही।
१३. वही; हिट्टी, पृ० १६७, १६८, १९४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(६४४-६५६ ई०) की खिलाफत चल रही थी, जिनके बाद हज़रत अली (६५६-६६१ ई०) ख़लीफा हुए। अब तक मैसोपोटामिया, ईरान, मिस्र, आर्मीनिया, सीरिया, लघुएशिया, अज़रबैजान, जार्जिया (गुर्जी) और ख़ुरासान, सब अरबों के अधिकार में आ चुके थे।[1]

उपर्युक्त चारों ख़लीफाओं के शासनकाल में विजयों के अतिरिक्त जो एक विशेष घटना घटी, वह थी हज़रत उमर द्वारा २४ सितम्बर, ६२२ ई० को हिजरी सदी का आरम्भ करना।[2]

अरब साम्राज्य का प्रसार (६६१-७१२ ई०) :

हज़रत अली की मृत्यु के उपरान्त ख़िलाफत की बागडोर हज़रत अली के एक दूर के चचेरे भाई एवं उस्मान के सेनापति मुआविया के हाथ में आ गई।[3] हज़रत अली का ज्येष्ठ पुत्र हसन केवल ६ माह ही ख़लीफा रह पाया कि मुआविया ने गद्दी छीन ली, और वहीं से मुआविया वंश के ख़लीफाओं की वंश परम्परा आरम्भ हुई। ख़लीफा मुआविया के शासन काल में उसके सेनापति उक़बा ने ६७० ई० में मिस्र में क़ैरवान नगर[4] की स्थापना की और बर्बर कबीलों पर छापे मारने आरम्भ कर दिये। मिस्र की विजय अब तक हो ही चुकी थी, कि अब उत्तरी अफ्रीका के पश्चिमी भाग पर भी अरबों के अभियान आरम्भ हो गये। शीघ्र ही उन्होंने बर्बरों को कुचल कर उनके इलाकों पर अधिकार कर लिया। मुआविया ने मरते समय ६८० ई० में अपने पुत्र यज़ीद (६८०-६८३ ई०) को ख़िलाफत का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया[5] जिससे ख़िलाफत अब निर्वाचन का विषय न रहकर वंशगत उत्तराधिकार का विषय बन गई। यज़ीद के चार वर्ष के शासनकाल की मुख्य घटना हज़रत अली के द्वितीय पुत्र इमाम हुसैन, तथा उनके साथियों की करबला के मैदान में शहादत थी।[6]

उमय्या वंश के ख़लीफाओं में अब्दुल मलिक (६८५-७०५ ई०) और अल वलीद (७०५-७१५ ई०) अत्यन्त प्रसिद्ध हुए हैं। इनके शासनकाल में अनेक विजयाभियान हुए और साम्राज्य की व्यवस्था की गई[7] अल हज्जाज इब्नेयूसूफ जो हिजाज़ का रहने वाला एक एक युवक अध्यापक था, ६९२ ई० में अरब का गवर्नर नियुक्त हुआ[8] उसने हिजाज़ के विद्रोहियों को बुरी तरह कुचल दिया और कुछ ही काल में इराक़ और ईरान की अशान्ति को समाप्त कर दिया[9] अब्दुल मलिक के ही शासन काल में कुतैबा ने बल्ख की विजय के लिए पूर्व

१. हिट्टी, पृ० २०६-२०७; बेनी प्रसाद, पृ० ३८४; आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पृ० १४।
२. इब्नेख़लदून का मुक़द्दमा, पृ० ८।
३. इब्नेख़लदून का मुक़द्दमा, पृ० १५
४. वही, पृ० १६।
५. मसऊदी, भाग ५, पृ० ६९, ३; तबरी, भाग २, पृ० १७४-१७७; इब्नेख़लदून का मुक़द्दमा, पृ० १५; हिट्टी, पृ० १९६।
६. इब्नेख़लदून का मुक़द्दमा, पृ० १५; हिट्टी, पृ० १९०।
७. इब्नेख़लदून का मुक़द्दमा, पृ० १५।
८. वही, पृ० १५; हिट्टी, पृ० २०७।
९. इब्नेख़लदून का मुक़द्दमा, पृ० १५; हिट्टी, पृ० २०८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की ओर कदम बढ़ाये।[1] परन्तु कुतैबा का यह विजय अभियान ख़लीफा अलवलीद के समय में सफल हुआ।[2] उसने ७१२ ई० तक बल्ख, बुखारा, समरकन्द तथा ख्वारिज्म के इलाके जीतकर अरबों के साम्राज्य में मिला लिये।[3] ख़लीफा हिसाम (७२४-७४३ ई०) के गवर्नर नस्र ने ७४० ई० तक अरबी साम्राज्य की सीमा चीन तक पहुँचा दी।[4] उधर उत्तरी अफ्रीका की विजय के बाद अरबों की दृष्टि मोरक्को के समुद्र के पार यूरोप की ओर पहुँची। मूसा लगभग ६९९ ई० से अफ्रीका का गवर्नर था; उसके बर्बर सहायक तारिक ने ७११ ई० में मोरक्को और स्पेन के बीच का संकरा सागर स्यूटा के पास लांब जिब्राल्टर पर अधिकार कर लिया,[5] उसी विजेता तारिक के नाम पर उस स्थान का नाम जबल तारिक या जिब्राल्टर पड़ा। तारिक ने शीघ्र ही एक के बाद एक नगर जीत लिए, फिर तो मूसा भी वहीं जा पहुंचा, और दोनों ने मिलकर समूचे स्पेन पर अधिकार कर लिया।[7]

कुछ काल उपरान्त ७३२ ई० में अरबों ने स्पेन और फ्रांस के मध्य की पर्वतमाला पिरेनीज़ लांघकर फ्रांस जितने के उपक्रम किये। अनेक छोटे-छोटे नगरों पर उन्होंने अधिकार भी कर लिया।[6] बोरदो तक उनके अधिकार में आ गया; पर प्वातिये के पास तूर्स के युद्ध में चार्ल्स मार्तेल ने उनके रिसालों की बाग रोक दी और उन्हें पराजित कर दिया।[9] फिर भी वे दूसरी राह बढ़ते चले गये, और तूलों और लोयो पर अधिकार कर लिया। अब तक हज़रत मुहम्मद की मृत्यु हुए १०० वर्ष बीत चुके थे, और अरबों का साम्राज्य चीन की सीमा और भारत के सिन्धुनद से लेकर अटलांटिक महासागर तक, और जार्जिया से नील नदी तक, फैल चुका था।[10] इसी के भीतर भारत का सिन्ध प्रान्त भी समा गया था, जिसकी विजय ७१२ई० में मुहम्मद बिन-कासिम ने की थी।[11] उसका उल्लेख आगे करेंगे। यहाँ उस कालकी ख़िलाफत द्वारा व्यवस्थित प्रान्तों से अरबों के साम्राज्य का विस्तार स्पष्ट हो जायेगा। वे प्रान्त इस प्रकार थे—

१—सीरिया, फिलिस्तीन २—कूफ़ा, इराक़ सहित, ३—बसरा ईरान, सिजिस्तान, खुरासान, बहरैन, उमान, नज्द एवं यमाम सहित, ४—आर्मीनिया, ५—हिजाज़, ६—करमान

---

१. सुलेमान नदवी, पृ० १५७; हिट्टी, पृ० २०८।
२. हिट्टी, पृ० २०९।
३. वही, पृ० २०९; इब्नेखलदून का मुक़द्दमा, पृ० १५।
४. हिट्टी, पृ० २१०; इब्नेखलदून का मुक़द्दमा, पृ० १५।
५. हिट्टी, पृ० २१४; इब्नेखलदून का मुक़द्दमा, पृ० १६; बेनी प्रसाद, पृ० ३८४-८५।
६. इदरीसी, पृ० ३६; हिट्टी, पृ० ४९३।
७. हिट्टी, पृ० २१४।
८. वही।
९. वही, पृ० २१४-२१५; इब्नेखलदून का मुक़द्दमा, पृ० १६; हिन्दुस्तान की कहानी, पृ० ३०८।
१०. हिट्टी, पृ० २१५; इब्नेखलदून का मुक़द्दमा, पृ० १६।
११. हिट्टी, पृ० २१०; इब्नेखलदून का मुक़द्दमा, पृ० १६; बेनी प्रसाद, पृ० ३८५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा भारत के सीमान्त प्रदेश, ७—मिस्र, ८—इफ़रीक़िया, ९—यमन तथा शेष दक्षिणी अरब।[1]

मुस्लिम अरबों द्वारा भारत पर आक्रमण के कारण—

खलीफा अलवलीद के समय में हज्जाज बड़ा ही शक्तिशाली एवं योग्य शासक माना आता था। अतः खलीफा ने इराक़, ईरान एवं मकरान आदि का शासन कार्य हज्जाज को सौंप दिया था।[2] खुरासान आदि पर अरबों का अधिकार हो ही चुका था; और चीन की ओर बढ़ना खतरे से खाली नहीं था, जहाँ तांग राजवंश के सम्राट शुआन-त्सुंग के प्रताप का सूर्य तप रहा था। इससे पूर्व में प्रसार की दृष्टि से सिन्ध ही अरबी अभियान की दिशा मानी गई; सो उस और कारण अकारण आक्रमण करना अनिवार्य था।[3]

इसके अतिरिक्त अरबों को तर्कयुक्त बहाना भी मिल गया। सरन्दीप यानी सिंहल (लंका) में कुछ अरबी मांझियों और इस्लाम के बन्दों की मृत्यु हो गई।[4] लंका के राजा ने उनकी स्त्रियों तथा बच्चों को उनकी प्रार्थना पर अरब भेजने का प्रबन्ध कर दिया और उन्हें अरबी जहाजों पर चढ़ाकर भारत के तटवर्ती समुद्री मार्ग से अरब भेजा गया।[5] किन्तु देबल के पास इन जहाजों पर छापे पड़े, और स्त्रियां, बच्चे और उनकी सम्पत्ति आदि उतार लिए गए।[6] कुछ लोगों ने जो किसी प्रकार बच निकले इस घटना की सूचना जब इराक, ईरान और मकरान के शासक हज्जाज को दी तो उसने तत्काल सिन्ध के राजा दाहिर के पास दूत भेजे, और उससे बन्दियों को शीघ्र मुक्त करके उसके पास भेज देने का आदेश दिया।[7] दाहिर ने उत्तर भेजा कि इस घटना का सम्बन्ध उससे नहीं था; यह कार्य समुद्री डाकुओं का था, जो उसके अधिकार में नहीं थे। इसमें सन्देह भी नहीं कि इन जल-दस्युओं के अड्डे अलबेरूनी के समय (४२४ हि०) तक सोमनाथ और कच्छ में थे।[8] यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा

---

१. इब्नेखलदून का मुक़द्दमा, पृ० १७।

२. सुलेमान नदवी, पृ० १३; फारेन इन्फ्लूएन्स इन ऐन्शेन्ट इण्डिया, पृ० १६४।

३. सुलेमान नदवी, पृ० १२; फारेन इन्फ्लूएन्स इन ऐन्शेन्ट इण्डिया, पृ० १६३-१६४।

४. चचनामा, भाग, १, पृ० १२७; अरब और भारत के सम्बन्ध, पृ० १३।
(ओझा जी ने राजपूताने के इतिहास में लिखा है कि अरब मांझियों की मृत्यु होने के उपरान्त उनका परिवार नहीं उतारा गया जो अरब भेजा जा रहा था, बल्कि सरन्दीप के राजा द्वारा खलीफा वलीद के लिए भेंट स्वरूप भेजा गया लदा माल उतार लिया गया था। राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृ० २८५। किन्तु ऐसा नहीं प्रतीत होता। वास्तव में उक्त जहाज पर अरब मांझियों के ही परिवार थे, नदवी, पृ० १३)

५. सुलेमान नदवी, पृ० १३।

६. वही, पृ० १३; ओझा, भाग १, पृ० २८५; किन्तु जयराज भाई इस कथन से सहमत नहीं हैं। देखिये, फारेन इन्फ्लूएन्स इन ऐन्शेन्ट इण्डिया, पृ० १६४।

७. सुलेमान नदवी, पृ० १३; चचनामा, भाग १, पृ० १२७।

८. किताब-उल-हिन्द, पृ० १०२ (लंदन संस्करण); सुलेमान नदवी, पृ० १३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकता कि इसमें दाहिर दोषी था, अथवा जलदस्यु दोषी थे। पर निःसन्देह हज्जाज के लिए सिन्ध पर आक्रमण करने के लिए एक बहाना मिल गया, और उसने एक सेना इतना उन स्त्रियों-बच्चों के उद्धार के लिए नहीं, जितना सिन्ध को जीतने एवं इस्लाम के प्रसार के लिए भेजी।[1]

उपर्युक्त घटना के साथ-साथ एक और घटना घट गई। मकरान के कुछ अपराधी एवं विद्रोही भाग कर सिन्ध में दाहिर की शरण में आ गये, और उन्होंने दाहिर के नेतृत्व में अरबों के विरुद्ध एक संगठन बना लिया।[2] इस घटना ने हज्जाज को और उत्तेजित कर दिया। परिणामतः उसने अपने नव-युवक भतीजे मुहम्मद बिनकासिम को सिन्ध पर आक्रमण करने का आदेश दिया। सिन्ध पर आक्रमण के लिए उपर्युक्त दोनों राजनीतिक घटनाएँ भी किसी सीमा तक उत्तरदायी हो सकती हैं; परन्तु इसके मूल में इस्लाम के प्रचार एवं प्रसार की अदम्य लालसा ही थी। अतः इस स्वार्थ ने भी भारत की ओर अरबों को अग्रसरित करने में सहायता दी।[3]

सिन्ध विजय (७१२ ई०)—

सिन्ध विजय की वास्तविक तिथि तो निःसन्देह ७१२ ई० है,[4] जब मुहम्मद बिनकासिम ने उस पर अधिकार किया था। परन्तु निश्चय ही अरबों का यह अभियान भारत के प्रति प्रारम्भिक नहीं, अन्तिम था। ख़लीफा हज़रत उमर (६३४–६४४ ई०) के समय से ही भारत के पश्चिमी सागर तट पर अरबों के धावे होते आये थे।[5] छापे मारने वाले अरबी जहाजों ने अनेक बार अनेक भारतीय बन्दरगाहों का जीवन कठिन बना दिया था। थाना, भड़ौच तथा देबल पर कई बार उन्होंने छापे मारे थे, और ६३५ ई० में तो तटवर्ती कई नगरों पर उन्होंने अधिकार भी कर लिया था।[6] किन्तु सिन्ध पर एक उल्लेखनीय आक्रमण ६४३ ई० के लगभग हुआ, जब देबल के बन्दरगाह पर एक नाविक प्रहार किया गया। अरब इतिहासकार इस्लाम की विजय का उल्लेख करते हैं, किन्तु चचनामा के अनुसार मुसलमानों की हार हुई तथा इस देबल के युद्ध में उनका नेता मारा गया।[7]

---

१. ओझा, भाग १, पृ० १८५।
२. सुलेमान नदवी, पृ० १४।
३. ओझा, भाग १, पृ० २८५; जयराज भाई, पृ० १६४। डा० ताराचन्द इस आक्रमण के लिए पूर्ण रूप से दाहिर की जलदस्युओं को दण्ड न देने की नीति को उत्तरदायी मानते हैं। देखिये–इन्फ्लूएन्स ऑफ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर, पृ० ३२।
४. चचनामा, भाग १, पृ० १२७; नदवी, पृ० १४; ओझा, भाग १, पृ० २८६; जयराज भाई, पृ० १६४।
५. नदवी, पृ० १२, इलि० एण्ड डाउ०, भाग १, पृ० ४१५–४१६; ओझा, भाग १, पृ० २८३–२८४; जयराज भाई, पृ० १६३।
६. नदवी, पृ० १२–१३; जयराज भाई, पृ० १६३–१६४; बिलाजुरी, भाग २, पृ० २०९।
७. दि क्लासिकल एज, पृ० १६९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस अरब पराजय ने कुछ काल के लिए मुसलमानों को सिन्ध पर पुनः आक्रमण करने के विषय में हतोत्साहित किया। खलीफा उमर ने पुनः आक्रमण करना चाहा, किन्तु ईराक़ के गवर्नर से यह सूचना पाकर, कि सिन्ध का राज्य बड़ा शक्तिशाली है, उन्होंने यह विचार छोड़ दिया। अगले ख़लीफा उस्मान ने भी इसी प्रकार का समाचार पाकर सिन्ध पर आक्रमण का विचार त्याग दिया।[1]

हज़रत अली के ख़िलाफत में भारत के विरुद्ध ६६० ई० के लगभग एक बड़ा अभियान संगठित किया गया। मुस्लिम सेना किकान अथवा किकनान तक बिना किसी विरोध के बढ़ती चली गई। यह बोलन के दर्रे के पास का इलाका था जिस पर चचनामा के अनुसार सिन्ध के शासक का आधिपत्य था। किकान की जनता ने बड़ी वीरता से शत्रु का सामना किया, तथा उन्हें अत्यधिक क्षति पहुंचा कर खदेड़ दिया। मुस्लिम सेनानायक अपने बहुत से साथियों सहित युद्ध में मारा गया।[2] तत्पश्चात् मुसलमानों की दृष्टि किकान पर लग गई। अगले २० वर्षों में किकान पर लगभग छः आक्रमण हुए[3], किन्तु उनका कोई स्थायी प्रभाव न हो सका। अरब लोग केवल मकरान पर ही विजय प्राप्त कर सके। ख़लीफा हज़रत अली ने मकरान की देखभाल के लिए जिस हाकिम को भेजा था, उसकी वहाँ ६६५ ई० में हत्या भी कर दी गई थी।[4] इससे स्पष्ट है कि विद्रोह का भाव जन-मानस में बना हुआ था।

बलूचिस्तान और उसके तटवर्ती प्रदेश मकरान पर तो अरबों का अधिकार हो गया था,[5] जिसकी सीमा सिन्ध से लगी हुई थी। कुतैबा ने जब बल्ख, बुखारा, समरकन्द ख्वारिज्म और चीन के सीमावर्ती प्रान्तों को जीतकर ख़िलाफत के साम्राज्य में शामिल कर लिया,[6] तब स्वाभाविक ही ख़लीफाओं की ललचाई नज़र सिन्ध पर भी पड़ी। साथ ही आक्रमण करने के लिए तत्काल ही कारण भी उपस्थित हो गये।[7] अतः ख़लीफा ने हज्जाज के आग्रह पर आक्रमण की अनुमति दे दी। हज्जाज ने उबैदुल्ला को देबल पर आक्रमण करने के लिए भेजा; किन्तु वह परास्त कर दिया गया, तथा मारा गया।[8] तब एक दूसरा अभियान समुद्री रास्ते से ओमान से बुदैल के नेतृत्व में भेजा गया। बुदैल देबल की ओर बढ़ा, किन्तु उसका सामना दाहिर के पुत्र जयसिंह ने किया। घमासान युद्ध हुआ, जो दिन भर चला। अन्त में मुस्लिम सेना भाग खड़ी हुई और बुदैल मारा गया।[9]

दाहिर के पूर्व सिन्ध का यह छोटा सा राज्य सातवीं सदी के प्रथम चरण में थानेश्वर

---

१. वही।
२. वही।
३. वही; बिलाजुरी, भाग २, पृ० २१०–२१२।
४. नदवी, पृ० १३; जयराज भाई, पृ० १६४।
५. इलियट, भाग १, पृ० ४१७; ओझा, भाग १, पृ० २८४; जयराज भाई, पृ० १६४।
६. इब्नेख़लदून का मुक़दमा, पृ० १५; जयराज भाई, पृ० १६३ और उससे आगे।
७. देखिये पीछे, पृ० ७, ८।
८. दि क्लासिकल एज, पृ० १७०; बिलाजुरी, भाग २, पृ० २१६।
९. दि क्लासिकल एज, पृ० १७०; बिलाजुरी, भाग २, पृ० २१६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और कन्नौज के राजा हर्षवर्धन के अधिकार में आ गया था। बाण भट्ट के 'हर्षचरित' में लिखा है कि "हर्ष ने सिन्धु राज को मथकर उसकी लक्ष्मी छीन ली।"[१] किन्तु डा० आर० सी० मजूमदार इस बात से सहमत नहीं हैं कि कुछ काल के लिए सिन्ध पर हर्ष का अधिकार हो गया होगा।[२] यह सम्भव हो सकता है कि मुस्लिम आक्रमणकारियों का हर्ष के शक्तिशाली साम्राज्य के कारण सिन्ध पर आक्रमण करने का साहस न हुआ हो और दाहिर के राजा होते ही वे उत्साहित हो, उसे जीतने के प्रयास में लग गए हों।

सिन्ध विजय की लालसा, उबैदुल्ला तथा बुदैल का भारतीय युद्धों में मारा जाना सीमान्त शासक हज्जाज के लिए अत्यन्त दुःखदायी एवं आश्चर्यजनक रहा। जिस मुस्लिम सेना ने देखते देखते स्पेन से चीन की सीमा तक एशिया, अफ्रीका एवं यूरोप के तमाम देशों को जीत लिया, उसका भारतीयों से सामान्य संघर्ष में पराजित हो जाना हज्जाज के लिए लज्जाजनक हो गया। अतः उसने सिन्ध पर आक्रमण करने के लिए अपने युवक भतीजे मुहम्मद-बिन-कासिम को नियुक्त किया। आक्रमण की तैयारियां बड़े भारी पैमाने पर की गईं, तथा ख़लीफा ने भी छः हजार अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित सीरियन सिपाही इस आक्रमण के लिए भेजे।[३]

चूँकि मकरान आदि सीमान्त प्रदेश पर अरबों का प्रभुत्व स्थापित हो चुका था[४], अतः मुहम्मद-बिन-कासिम को मकरान की पूर्वी सीमा तक पहुँचने में देर नहीं लगी। शीराज से मंजिल पर मंजिल मारता, पंजगुर, कौवती आदि होता वह सीधा देबल पहुँच गया।[५] उसकी कुल सेना लगभग १५ हजार थी, जिसका विशिष्ट भाग छः हजार सीरियन अश्वारोही थे।[६] उपर्युक्त सेना के अतिरिक्त हज्जाज ने कुछ सामग्री तथा सेना की एक टुकड़ी समुद्र के रास्ते से भी सिन्ध की ओर भेजी और साथ ही उसकी सहायता के लिए ईरान के पुराने स्थल मार्ग से भी कुछ सेनाएँ भेजी गईं।[७] इनमें पत्थर फेंकने वाली सेना भी थी।[८] दाहिर की राजधानी अलौर से लगभग १५० मील दूर स्थित देबल पर अरबों का प्रबल आक्रमण हुआ।[९] दाहिर राजधानी में ही पड़ा रहा और देबल की रक्षक सेना अरबों से जूझती रही।[१०] देबल के मंदिर के शिखर पर जो झंडा फहरा रहा था, उसे अरब बालिश्तों ने पत्थर फेंक

---

१. बाण भट्ट, हर्षचरित, पृ० १०१।
२. आर० सी० मजूमदार, दि क्लासिकल एज, पृ० ९७-९८।
३. वही, पृ० १७०।
४. जयराज भाई, पृ० १६४।
५. आर० सी० मजूमदार, हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल, भाग ३, पृ० १७०; हिट्टी, पृ० २१०; बेनी प्रसाद, पृ० ३८५।
६. ओझा, भाग १, पृ० २८५; हिट्टी, पृ० २१०; नदवी, पृ० १४।
७. नदवी, पृ० १४।
८. ओझा, भाग १, पृ० २८५; बेनी प्रसाद, पृ० ३८५-३८६।
९. एस० आर० शर्मा, क्रेसेन्ट इन इंडिया, पृ० ३६; ओझा, भाग १, पृ० २८५।
१०. एस० आर० शर्मा, पृ० ३६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर गिरा दिया, जिसे देबल के सैनिक अशुभ समझ कर रणक्षेत्र से भाग चले।[1] अरबों ने नगर का पत्थर का प्रबल परकोटा चढ़कर पार कर लिया और नगर में भीषण हत्याकाण्ड मचा दिया।[2] १७ वर्ष से ऊपर के पुरुष मार डाले गये और बच्चों एवं स्त्रियों को दास बना लिया गया।[3] लूट के माल का पांचवां भाग ख़लीफा को भेज दिया गया।[4]

देबल के बन्दरगाह पर अधिकार हो जाने पर चार हजार सैनिकों की सेना उसकी रक्षा के लिए पीछे छोड़ मुहम्मद उत्तर-पूर्व की ओर बढ़ा और वर्तमान हैदराबाद के दक्षिण में देबल से पाँच मील दूर स्थित नैरून पर बिना युद्ध के ही अधिकार कर लिया।[5] फिर तो अरब सेना सेहबान आदि स्थानों पर अधिकार करती हुई, दाहिर की ओर बढ़ी।[6] अगला मोर्चा जाटों से था, जिन्होंने शीशम नामक स्थान पर अरबों की राह रोकी।[7] दो दिन के युद्ध में उस पर भी अधिकार कर मुहम्मद वापस नैरून की राह लौट ब्राह्मनाबाद की ओर जा पहुंचा। अरब लेखकों के कथनानुसार दाहिर पचास हजार सैनिक लिए ब्राह्मनाबाद में डेरा डाले पड़ा था, और आक्रमणकारी का सामना करने के लिए रावर की ओर बढ़ा।[8] २० जून, ७१२ ई० को दाहिर और अरबों में घमासान युद्ध हुआ, किन्तु भाग्य दाहिर के विरुद्ध था, जिससे उसके हाथी के हौदे में अरबों का छोड़ा एक नफ्था (आग्नेयबाण-नफ्था एक तरल पदार्थ की गोली, जो बाण पर रख कर शत्रु पर फेकी जाती थी) जा लगा और उसमें आग लग गई।[9] दाहिर का श्वेत हाथी भागा, जिससे उसकी सेना में भगदड़ मच गई।[10] दाहिर हाथी को जैसे-तैसे लौटा कर पुनः अरबों की ओर बढ़ा पर वह उनके तीर से घायल होकर हाथी से गिर गया। दाहिर के गिरते ही उसकी सेना के पैर पूरी तरह उखड़ गये।[11]

अगला मोर्चा दाहिर की वीर रानी रानीबाई ने सम्भाला, और सिन्ध की स्त्रियों ने उसके नेतृत्व में पुरुषों से कहीं अधिक तत्परता दिखलाई।[12] उसने रावर के किले में जमकर

---

१. वही; ओझा, भाग १, पृ० २८५; बेनी प्रसाद, पृ० ३८६।
२. जयराज भाई, पृ० १६४; बेनी प्रसाद, पृ० ३८६।
३. ओझा, भाग १, पृ० २८५–८६।
४. वही, पृ० २८६; ब्रिग्स, फ़रिश्ता, भाग ४, पृ० ४०५।
५. ओझा, भाग १, पृ० २८६।
६. वही।
७. चचनामा, (मिर्जा क़लीचबेग) पृ० १२४, १३७; कानूनगो, हिस्ट्री ऑफ दि जाट्स, पृ० २८।
८. ओझा, भाग १, पृ० २८६; आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, दिल्ली सल्तनत, पृ० १८।
९. ओझा, भाग १, पृ० २८६–८७, (नफ्था के सम्बन्ध में, देखिये-ओझाकृत राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृ० २८६, टि० २) बेनी प्रसाद, पृ० ३८६।
१०. ओझा, भाग १, पृ० २८७; बेनी प्रसाद, पृ० ३८६; आशीर्वादी लाल, पृ० १८।
११. चचनामा इन इलि० एण्ड डाउ०, भाग १, पृ० १७०; पावेल प्राइस, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० १००; आशीर्वादी लाल, पृ० १८; ब्रिग्स, फ़रिश्ता, जि० ४, पृ० ४००।
१२. ओझा, भाग १, पृ० २८७; बेनी प्रसाद, पृ० ३८६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शत्रुओं से भयंकर लोहा लिया, और जब आगे कुछ न बन पड़ा, तब अन्य स्त्रियों, बच्चों को अग्नि की लपटों को समर्पित कर स्वयं अपने गौरव की रक्षा के लिए शत्रुओं से युद्ध करती हुई असिधारा में तन त्याग पतिलोक को प्रस्थान कर गई।[१] ब्राह्मनाबाद में भी दाहिर के बचे हुए सैनिकों ने उसके पुत्र जयसिंह के नेतृत्व में शत्रु का अन्तिम सामना किया, परन्तु वे काफी संख्या में मारे गये। अतः विवश होकर जयसिंह ने चित्तूर में शरण ली।[२] नगर की सम्पत्ति के साथ अरबों ने दाहिर की दो पुत्रियाँ सूर्य देवी और परमाल देवी और दाहिर की दूसरी विधवा रानी लाडी को भी पकड़ लिया।[३] राजधानी अलौर की रक्षा दाहिर का दूसरा पुत्र कर रहा था, परन्तु अरबों के सामने उसकी कुछ न चली और उन्होंने सिन्ध के ऊपर पूर्ण अधिकार कर लिया।[४]

मुहम्मद-बिन-कासिम के लौट जाने पर उसकी मृत्यु का समाचार पाकर सिन्ध के सरदारों ने मुस्लिम सत्ता से मुक्ति पाने का पुनः प्रयास किया। दाहिर के पुत्र जयसिंह ने ब्राह्मनाबाद पर फिर से अधिकार कर लिया। खलीफा ने सिन्ध पर अधिकार बनाये रखने के लिए हबीब को भेजा, जिसने अलौर विजय की तथा कुछ अन्य छोटी-मोटी विजयें भी प्राप्त कीं।[५]

अगले खलीफा उमर द्वितीय (७१७-७२० ई०) ने सिन्ध के शासकों को अपने आधीन वास्तविक स्वतन्त्रता देने का इस शर्त पर आश्वासन दिया कि वे इस्लाम स्वीकार कर लें। जयसिंह सहित अन्य कई सरदारों ने यह शर्त मान ली। किंतु हिशाम की खिलाफत (७२४–७४३ ई०) में जयसिंह ने इस्लाम त्याग दिया और जुनैद के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। किंतु जुनैद ने उसे परास्त कर बन्दी बना लिया, तथा इस प्रकार सिन्ध पर हिन्दू राज्य का अन्त हो गया।[६]

मुल्तान :

७१२ ई० में सिन्ध को विजय कर मुहम्मद-बिन-कासिम ने अगले वर्ष के आरम्भ में मुल्तान की राह ली।[७] राहके अवरोधोंको निरस्त करता हुआ वह मुल्तानके द्वार पर जा पहुँचा मुल्तान पर घेरा डाल अरबों ने जल प्राप्ति के मार्ग को काट दिया, तथा इस स्थिति में विवश

---

१. इलि० एण्ड डाउ०, खण्ड १, पृ० १०७; ब्रिग्स-फ़रिश्ता, भाग ४, पृ० ४०९; ओझा भाग १, पृ० ३८७; बेनी प्रसाद, पृ० ३८७।

२. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, पृ० १८।

३. ओझा, भाग १, पृ० २८८; पावेल प्राइस, पृ० १००; आशीर्वादी लाल, पृ० १९।

४. पावेल प्राइस, पृ० १००; नदवी पृ० १४; आशीर्वादी लाल, पृ० १९।

५. दि क्लासिकल एज, पृ० १७२।

६. वही।

७. अबुल फ़िदा कृत, तकवीमुल बुलदान, पृ० ३५०, (यहाँ मुल्तानसे एक नगर का बोध न होकर एक प्रांत का बोध होता है); नदवी, पृ० २४८; बेनी प्रसाद, पृ० ३८७; आशीर्वादी लाल श्रीस्तव पृ० १९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होकर नगर को आत्म समर्पण करना पड़ा। नगर में भीषण रक्तपात हुआ तथा यहाँ लूट में इतनी सम्पत्ति प्राप्त हुई कि अरबों ने इसका नाम स्वर्ण नगर रख दिया।[1]

मुहम्मद-बिन-कासिम के बाद सिन्ध के शासक हिशाम एवं जुनैद हुए। ये दोनों शासक महत्वाकांक्षी थे।[2] अतः उन्होंने आस-पास के स्थानों जैसे सम्मैद, भीममाल, मालवा, कच्छ, भड़ौंच आदि पर आक्रमण कर उन्हें परास्त किया तथा अरब साम्राज्य का विस्तार करने का प्रयास किया।[3]

अरबों की सफलता के कारण :

हिन्दू सेना-नायकों में उस रण-कौशल की कमी थी जिसमें अरब सेनापति विशेष दक्ष थे। दूसरी महत्त्व की बात यह थी कि अरबों में नये धर्म के प्रति जिस लगन और उत्साह ने अटलांटिक महासागर से चीन की सीमा तक की भूमि पर अधिकार करा दिया था, वही लगन और उत्साह सिंध के विजेताओं में भी था। और यह विजय वस्तुतः अरबों की विश्व-व्यापी विजय का अंश मात्र थी। उनमें धर्म के साथ-साथ आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति-संवर्धन की प्रबल भावना भी थी। नये अपरिचित देश में नव युवक मुहम्मद बिन-कासिम के अभियान एवं विजय निःसन्देह उस उत्साह के ही परिणाम थे, जिससे सभी अरबी सेनापति प्रेरित थे। अरब कबीलों तथा मुसलमानों के आंतरिक संघर्ष एवं द्वेष चतुर्मुखी विजय तथा प्रसार के प्रयास में विलुप्त हो गये। अरबों की सिन्ध-विजय का तीसरा कारण तत्कालीन बौद्ध और ब्राह्मण धर्म का परस्पर विरोध था। वह विरोध इस मात्रा में बढ़ गया था कि उसका उल्लेख चचनामा में भी हुआ है। इस ग्रन्थ से प्रमाणित है कि तत्कालीन ब्राह्मणों और श्रमणों में भयंकर शत्रुता थी।

दाहिर के पिता चच ने बौद्ध राजा से सिन्ध का राज्य छीन कर वहाँ ब्राह्मण राज्य स्थापित किया था।[4] चच ने अनेक छोटे-मोटे चीवरधारी बौद्ध राजाओं को परास्त कर या तो उनके राज्य पर अधिकार कर लिया था, अथवा उन्हें करद बना लिया था।[5] इस स्थिति में ब्राह्मणों से पराजित होकर बौद्धों ने मुसलमानों से मैत्री स्थापित की[6] और जिस समय मुहम्मद-बिन-कासिम की विजयी सेना नैरून नगर में पहुँची, श्रमण उनसे मित्र भाव से जा मिले थे।[7] इसके अतिरिक्त उन्होंने अरबों द्वारा सिन्ध-विजय

---

१. अलबेरूनी, पृ० ५६; आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, पृ० १९; भगवत शरण उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ३३५।
२. नदवी, पृ० १५; ओझा, पृ० २८९।
३. इलि० एण्ड डाउ०, खण्ड १, पृ० १०९; नदवी, पृ० १५; अल्तेकर, राष्ट्रकूटज़ एण्ड देयर टाइम्स, पृ० ३२।
४. दि क्लासिकल एज, पृ० १६४-१६५।
५. चचनामा, इलि० एण्ड डाउ०, खण्ड १, पृ० १४२-१५२।
६. दि क्लासिकल एज, पृ० १७५।
७. नदवी, पृ० १९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से पूर्व अल हज्जाज के पास अपने दूत भेजकर अपनी सुरक्षा के लिए उससे प्रार्थना की थी। सिन्ध में सदौसान पहुँचते ही बौद्धों के दूतों ने इस्लाम की सेना का स्वागत किया था; फिर सीजिस्तान में अपने स्थानीय राजा विजयराय को छोड़कर अरबों का साथ दिया था।[१] इसी प्रकार राजा दाहिर के अनेक विरोधी बौद्ध अधिकारियों ने अरबों से सम्बन्ध स्थापित कर लिया था,[२] जिससे अरबों का सिन्ध जीतना सरल हो गया था और दाहिर की कठिनाइयां भी बढ़ गई थीं। बौद्ध-धर्म के अनुयायियों के साथ-साथ सिन्ध में जैनियों का असन्तोष भी ब्राह्मण राजा के प्रति कम न था, अतः बौद्धों के साथ-साथ जैनियों ने भी षड़यंत्र में भाग लिया।[३]

जहाँ तक बौद्धों का इस्लाम एवं अरबों के प्रति आकर्षित होने का प्रश्न हैं, उसमें यह भी विचारणीय है कि इससे पूर्व तुर्किस्तान एवं अफ़ग़ानिस्तान में भारी संख्या में बौद्ध इस्लाम धर्म स्वीकार कर चुके थे और उनके साथ अरबों ने अच्छा व्यवहार किया था।[४] हो सकता है कि इस्लाम के प्रति आकर्षण एवं ब्राह्मण धर्म के प्रति अनादर का एक यह भी कारण रहा हो। इन कारणों के अतिरिक्त मेद, जाट आदि भी ब्राह्मण राजा से असन्तुष्ट थे, जिनका पूर्ण सहयोग दाहिर को न मिल सका। इन जातियों के असन्तोष का कारण इनके आर्थिक जीवन का वैषम्य था।

चच जाटों का घोर शत्रु था, जिनका उसने भीषण दमन किया। उनके सरदारों को बन्दी बनाकर उसने ब्राह्मनाबाद के किले में क़ैद कर दिया। उनको तलवार रखने के अधिकार से वंचित करने का प्रयास किया; उनके वस्त्रादि पर भी प्रतिबन्ध लगाया; उनके घोड़ों पर जीन न लगाये जाने का आदेश दिया; तथा उन्हें जासूसी कार्य करने के लिए बाध्य किया।[५] अतः जब मुहम्मद-बिन-कासिम ने दाहिर के राज्य पर आक्रमण किया, तो पश्चिमी प्रदेश के जाटों ने उसका साथ दिया, किन्तु पूर्वी प्रदेश के जाट दाहिर की ओर से लड़े।[६]

पश्चिमी भारत पर अरब चार मार्गों से आक्रमण कर सकते थे। खैबर का दर्रा, बोलन का दर्रा, मकरान का तटवर्ती इलाक़ा, तथा समुद्र, यही चार मार्ग थे जिनसे भारत में प्रसार का प्रयास किया जा सकता था। अरबों ने इन सभी मार्गों से प्रवेश करने का प्रयास किया। थाना भड़ौंच तथा देबल पर नाविक आक्रमण विफल हुए। खैबर के दर्रे की रक्षा काबुल और जाबुल ने की; तथा बोलन की रक्षा किकान के जाटों ने की। इन शक्तियों के साथ अरबों का लम्बा संघर्ष उनके भारत प्रवेश के असफल प्रयास की कहानी है। इन पहाड़ी

---

१. बिलाजुरी, भाग २, पृ० ४३७-३८।
२. इलि० एण्ड डाउ०, भाग १, पृ० १०६।
३. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, पृ० १९।
४. नदवी, पृ० २०-२१।
५. चचनामा, इलि० एण्ड डाउ०, भाग १, पृ० १५१; कानूनगी, हिस्ट्री आफ दि. जाटस् पृ० २८।
६. कानूनगो पृ० २८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इलाकों के वीर योद्धाओं ने बड़ी कट्टरता से शत्रु का सामना किया और कभी कभी हार कर भी आत्म समर्पण नहीं किया दो शताब्दियों तक इन लोगों ने इस्लाम को भारत में प्रविष्ट नहीं होने दिया।

जब अन्य तीनों मार्ग अवरुद्ध हो गये, अरबों ने मकरान के तटवर्ती मार्ग से प्रवेश करने का प्रयास किया। अरबों की सेना अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित थी और उसमें सीरिया तक के सैनिक थे। इसके विपरीत सिन्ध गृहयुद्धों से विक्षिप्त था, आन्तरिक कलह से उद्वेलित था, तथा लगभग ५० वर्षों से बाह्य आक्रमणों से पीड़ित था। दाहिर युद्ध कौशल तथा कूटनीति में मुहम्मद-बिन-कासिम का पासंग भी न था। जो अरब जहाजी बेड़ा अरब आक्रमणकारियों की सहायता के लिए घेरा डालने की सामग्री तथा अन्य फौजी सामान लाया था, उसका विरोध दाहिर ने न जाने क्यों नहीं किया। मकरान की ओर से अरब आक्रमण की आशंका थी। तिस पर भी दाहिर ने अपनी नाविक शक्ति की उन्नति की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। लगभग ६७० ई० से ७०० ई० तक सिन्ध के दक्षिणी भाग पर दाहिर का कोई अधिकार नहीं था। और यह प्रदेश उसके अधिकार में अरब आक्रमण से कुछ ही समय पूर्व आया था। यह भी एक कारण था कि नैरून और सीजिस्तान ने अपने द्वार बिना विरोध के अरबों के लिए खोल दिये। दाहिर ने देबल तथा सिन्ध के अन्य नगरों की रक्षा के लिए सेना न भेजकर शत्रु को उन्हें एक-एक करके जीतने का अवसर प्रदान किया। इससे बड़ी मूर्खता और क्या हो सकती थी? जब मुहम्मद-बिन-कासिम घोड़ों की बीमारी के कारण असमर्थ होकर दो माह तक अपने को आमने-सामने की लड़ाई के लिए शक्तिहीन समझ कर सिन्धु नदीके किनारे पड़ा रहा, उस समय भी दाहिर को उस पर आक्रमण करने की एक बार भी न सूझी।[1] बौद्धों का देशद्रोह, जनता का अन्ध-विश्वास, ब्राह्मण शासकों की दमन कारी नीति के कारण राजवंश के प्रति भक्ति का अभाव, तथा दाहिर की असावधानी, यह सभी कारण सिन्ध में अरब विजय के लिए उत्तरदायी थे।

सिन्ध विजय से मुसलमानों की सैनिक श्रेष्ठता सिद्ध नहीं हुई, क्योंकि अरबों की भारत में यह पहली तथा अन्तिम उपलब्धि थी। जुनैद सिन्ध व समीपवर्ती छोटे-छोटे राज्यों पर विजयी अवश्य हुआ, किन्तु जब उसकी टक्कर कश्मीर, कन्नौज के प्रतिहारों एवं चौलुक्यों से हुई, तो उसे मुँह की खानी पड़ी। साथ ही सिन्ध का एक बड़ा भाग भी अरबों के हाथ से निकल गया। तीन शताब्दियों के अथक परिश्रम के बाद भारत में अरब साम्राज्य केवल मन्सूरा और मुल्तान के छोटे से राज्यों तक ही सीमित रहा।

अरब साम्राज्य का पतन तथा सिन्ध :

आठवीं शताब्दी के मध्य तक उमय्या वंश एवं अब्बासी वंश के खलीफाओं का पारस्परिक संघर्ष इतना व्यापक हो गया कि उन्हें उत्तरी अफ्रिका और दक्षिणी यूरोप तक फैले हुए अरब साम्राज्य को संभालना कठिन हो गया। स्थान-स्थान पर विद्रोह तथा स्वतंत्र जनपदी राज्यों के उदय होने की सम्भावना बलवती हो उठी। स्वयं पूर्व से तुर्की

१. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, दिल्ली सल्तनत, पृ० ४५ चतुर्थ संस्करण, आगरा, १९६२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बादल उमड़ते आ रहे थे, जिससे सिन्ध ऐसे क्षुद्र राज्य की और खलीफाओं की दृष्टि नहीं जा सकी। उसकी रक्षा तक का प्रयास नहीं किया गया और यह स्वाभाविक ही था कि अपनी आन्तरिक स्थिति के कारण भारतीय शासकों से संघर्ष करने के विचार खलीफओं में न उठे। परिणामतः सिन्ध क्रमशः सर्वथा स्वतंत्र हो गया।

दक्षिणी भारत में मुस्लिम बस्तियों का प्रसार—

अरब में अमन, हजमौत आदि प्रदेश उपजाऊ थे और वहाँ गुग्गल, अगरु और सुगन्धित लकड़ियों की पैदावार होती थी। इसलिए इस प्रदेश का व्यापारिक महत्व बहुत बढ़ गया था। वहाँ के व्यापारी मोती, जवाहर, गर्म मशाले, चीनी, रेशम, भारतीय कपड़े, तलवार, हब्शी गुलाम, बन्दर, हाथी दांत, सोना और शुतुर्मुर्ग के परों आदि का व्यापार करके मालामाल हो रहे थे।[1] ये व्यापारी भारतीय समुद्र के किनारे-किनारे (श्री लंका) होते हुए पूर्वी द्वीप समूह तथा चीन तक चले जाते थे। चूंकि भारत उनके मार्ग में पड़ता था, अतः भारत से भी इनका सम्बन्ध चिरकाल से था।[2] व्यापारिक सम्बन्ध होने के कारण ये पश्चिमी समुद्र तट पर आया जाया करते थे, और इनका वहाँ हार्दिक स्वागत होता था। भारतीय राजा तथा प्रजा भौतिक समृद्धि की वृद्धि के लिए अत्यन्त उत्सुक थे।[3] परिणामतः वे अरब व्यापारियों के सम्पर्क से अति प्रसन्न थे। इन व्यापारियों को राजाओं की ओर से मस्जिद आदि बनवाने की भी छूट दे दी गई थी।

सिन्ध पर मुस्लिम आक्रमण हुआ, किन्तु दक्षिण में अरब व्यापारियों का कार्य पूर्ववत् चलता रहा और उनके व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आया। ये मुस्लिम व्यापारी भारत के दक्षिणी तट पर तीन नगरों में आबाद हुए। रोलेंडसन के अनुसार अरब सर्व प्रथम मालाबार तट पर सातवीं शताब्दी के अन्त के लगभग जा बसे।[4] फ्रांसिस डे भी यही कहता है।[5] स्टरक भी मोंपला लोगों के वृतान्त में यही उल्लेख करता है।[6] राइस के अनुसार हज्जाज ने हिशाम के घराने के कुछ मुसलमानों को इतना तंग किया कि वे आठवीं शती के आरम्भ में भागकर कोंकण तथा कन्याकुमारी के पूर्ववर्ती प्रदेश में बस गये।[7] आठवीं एवं नवीं शताब्दी में राजनीतिक प्रभाव के प्रबल होने के साथ-साथ इस्लाम का धार्मिक प्रभाव भी बढ़ा और परिणामतः सिन्ध से लेकर कन्याकुमारी तथा पश्चिमी तट पर मुसलमानों की अच्छी खासी बस्तियाँ बस गईं। मालाबार आदि स्थानों पर तो जैसा पहले कहा गया है, वे सौ वर्ष पहले ही बस गये थे। इस प्रकार उन्हें हिन्दू समाज में

---

१. डा० बुद्ध प्रकाश, एशिया के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास की रूपरेखा, पृ० १८४।
२. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, दिल्ली सल्तनत पृ० १२।
३. वही।
४. रोलेंडसन, तुहफ़त उल मुजाहदीन, भूमिका।
५. डे, दि लैंड आफ दि पैरुमाल्स, पृ० ३६५।
६. स्टरक, साउथ कनाडा, मद्रास डिस्ट्रिक्ट-मैनुअल्स, पृ० १८०।
७. राइस, मैसूर एण्ड कुर्ग, भाग १, पृ० ३५३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पैर रखने की जगह मिल गई तथा अपने विचित्र विश्वासों, पूजा तथा धर्मोत्साह से उन्होंने हिन्दू जगत में उथल-पुथल मचा दी।

अरब नीति :

यह शासन निश्चय ही स्थानीय शक्तियों को अपना आधार बनाकर चल सकता था। विशेष कर हिन्दू धर्मावलम्बियों से उनका मित्र-भाव रखना अनिवार्य था। स्थानीय शक्तियों में विशेष प्रभावशाली ब्राह्मण थे जिन्हें परास्त कर अरबों ने सत्ता प्राप्त की थी। इस कारण ब्राह्मणों के सहयोग की अरब शासकों ने न केवल अपेक्षा की, बल्कि उन्हें सद्व्यवहार द्वारा जीत भी लिया।[1] सिन्ध के अरब शासन का कर आदि वसूल करने का भार अधिकतर यहाँ के ब्राह्मण अधिकारियों के ऊपर छोड़ दिया गया, जिसे उन्होंने बड़ी तत्परता एवं सफलता से सम्पन्न भी किया।[2]

हिन्दुओं के साथ मुहम्मद-बिन-कासिम ने सामान्यतः उदार नीति अपनायी, जिससे उनमें विद्रोह का भाव न उठे। मुहम्मद ने सिन्ध को शासन की सुगमता के लिए चार भागों (इक्तों) में बांट दिया, और प्रत्येक में एक-एक सैनिक अधिकारी रख दिया।[3] उनके नीचे अन्य अधिकारी अधिकतर हिन्दू और विशेषतः ब्राह्मण थे।[4] फ़कीरों और विद्वानों को उसने जागीरें दीं और अरबों की अनेक बस्तियां बसाईं। देश के कानूनों के सम्बन्ध में उसने कोई परिवर्तन नहीं किया, जिससे वहाँ किसी प्रकार की अशान्ति नहीं हुई। देश के ही विधान और देशी अधिकारियों के द्वारा ही शासन का कार्य चलता रहा। लगान आदि वसूल करने के लिए जो नियम ब्राह्मण राजा दाहिर के समय में प्रचलित थे, अब भी वही प्रचलित रहे।

न्याय के लिए साधारण तौर पर स्थान-स्थान पर क़ाज़ी नियुक्त थे, पर अधिकतर वे इस्लाम के नियमों के अनुसार मुसलमान प्रजा का ही न्याय करते थे; हिन्दुओं का न्याय हिन्दू धर्म शास्त्रों, नियमों तथा परम्पराओं के अनुकूल ही होता रहा। विवाह, दाय और समाज सम्बन्धी अन्य झगड़े पंचायतों द्वारा निपटा लिए जाते थे।

अरबों की धार्मिक नीति अत्यन्त सहिष्णु थी। हिन्दू अपने मंदिरों में अथवा सार्वजनिक स्थानों में पूजा आदि करने में सर्वथा स्वतंत्र थे। जज़िया सम्बन्धी कर जारी जरूर था, पर उसकी वसूली कठोरता से नहीं की जाती थी। इसी सद्भाव के कारण सिन्ध का अरब राज्य वहां की प्रजा को सम्मत हो सका। जनता के साधारण जीवन में, उसके सामाजिक अथवा धार्मिक व्यवहार में, किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया गया; जिससे सम्भवतः सिन्ध की अरब-आधीन अन्य हिन्दू प्रजा हिन्दू राज्यों की प्रजा की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र थी।

हम यदि सिन्ध और अन्दलूसिया (स्पेन) की अरब विजयों की तुलना करें तो हमें आश्चर्य हुए बिना नहीं रहेगा कि जहां स्पेन में निरन्तर कठोर शासन तथा रक्तपात की आव-

---

१. बेनी प्रसाद, पृ० ३८७।
२. नदवी, पृ० १६५।
३. इलि० एण्ड डाउ०, भाग १, पृ० १, ६, ७, १३ आदि; बेनी प्रसाद, पृ० ३९५।
४. इलि० एण्ड डाउ०, भाग १, पृ० १८२-१८४; नदवी, पृ० १६४-६५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्यकता पड़ी, वहां सिन्ध का शासन इससे सर्वथा विहीन रहा। यहां एक बड़े महत्व की बात यह थी कि जहां स्पेन में अरबों ने ज्ञान-विहीन बर्बर सामाजिक जीवन का अनुभव किया था, भारत में उनका अनुभव उससे सर्वथा विपरीत हुआ। अपनी परम्परा के अनुसार उन्होंने भारत को आदम का आदि स्थान करके तो जाना ही, साथ ही उन्हें यह जानते देर न लगी कि यह देश अपनी सभ्यता एवं ज्ञान में असाधारण रूप से समृद्ध था, जिसकी जनता का समूचा जीवन सहस्राब्दियों से नियमतः व्यवस्थित रहा था। इस दृष्टि ने अरबों में भारतीयों के प्रति एक प्रकार की श्रद्धा भी उत्पन्न कर दी, जिसका परिणाम भी असाधारण हुआ।

अल-मामून ने बग़दाद में ८३० ई० में जो (बैत-अल-हिकमा) ज्ञान-संस्थान स्थापित किया, उसके कार्य-कलाप में चीनी तथा यूनानी विद्याओं से कहीं अधिक भारतीय विद्याओं को आदर दिया गया। चिकित्सा, गणित, ज्योतिष आदि के अनेक संस्कृत के ग्रन्थों का वहां अनुवाद हुआ, और न केवल अरबों द्वारा शासित देशों में उनका प्रचार हुआ, बल्कि उन विद्याओं का साहित्य अरबी के माध्यम से अन्य यूरोपीय भाषाओं में भी अनूदित हुआ, जिससे उनका वहां प्रचार हुआ।

भारत की तत्कालीन धार्मिक स्थितिः

ब्राह्मण तथा बौद्ध धर्म भारत के तत्कालीन विशिष्ट धर्म थे। दोनों धर्मों के विविध सम्प्रदायों के सदस्य तथा साधु वर्ग अपने-अपने नियमों द्वारा व्यवस्थित थे तथा प्रायः देश के विभिन्न स्थानों में भ्रमण किया करते थे। यद्यपि उनमें परस्पर शास्त्रार्थ और धार्मिक कथोपकथन प्रचण्ड रूप से होते थे, तथापि दोनों धर्मावलम्बी प्रव्रजित और गृहस्थ, सहिष्णु राजा के राज्य में समान रूप से निवास करते थे। भारतीय सांस्कृतिक विधान में धर्मों की पारस्परिक सहिष्णुता आधारभूत नीति रही है, जिसकी तात्विक सत्यता अशोक के काल से ही धार्मिक संस्थाओं के आचरण और व्यवहार में उतर आयी। नाना प्रकार के साधु वर्गों के संक्रमण करते रहने के बावजूद कभी उनमें रक्तपात नहीं हुआ और जैन साधुओं ने तो अहिंसा को सर्वोच्च मान कर सर्वदा उसका प्रचार किया।

ब्राह्मण धर्म में वैष्णव, शैव, पाशुपत, शाक्त आदि अनेकानेक सम्प्रदाय विश्वास के भाजन बन गये थे, यद्यपि उनमें विभिन्न तर्कहीन विश्वासों का बाहुल्य था।[1] उत्तर पश्चिम भारत में, लमग़ान, गांधार, उद्यान, कश्मीर, पंजाब, में महायान तो प्रचलित था ही, किन्तु हिन्दू देवी देवताओं के भी अनेक मंदिर थे। ह्वेन-त्सांग शिव पशुपति की उपासना के विस्तृत प्रचलन का विशेष उल्लेख करता है। स्वात की घाटी में शिव की उपासना का महत्व था।[2] मकरान में सैकड़ों देवताओं के मंदिर थे, तथा पाशुपतों का प्रभाव था।[3] पा—ल—न (बलूचिस्तान) में भी अधिकतर मंदिर पाशुपतों के थे;[4] वैसे ही सिन्ध के पूर्व महेश्वरपुर

---

१. ताराचन्द, इन्फ्लुएन्स ऑफ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर, पृ० ६-७।
२. वाटर्स, युवांगच्यांग, भाग १, पृ० २२९–३०।
३. वही, भाग २, पृ० २५७।
४. वही, पृ० २६२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में भी अधिक मंदिर पाशुपतों के ही थे।[1] खोतान तक में पाशुपतों का प्रभाव था।[2] सातवीं, आठवीं शताब्दी में शिव की उपासना भारत में प्रसारित थी।[3] विष्णु के उपासकों का इतना प्रभाव नहीं था। शिव और विष्णु के अतिरिक्त शक्ति, सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, स्कन्द, गणेश, यम, कुबेर आदि की पूजा भी होती थी।[4]

यज्ञ आदि से लेकर साधरण टोने-टोटके तक में सर्वसाधारण का विश्वास था। व्रत, पर्व, धार्मिक पूजन आदि जनता के जीवन के सामान्य अंग थे और साधुओं का संख्यातीत भार उनके औदार्य पर पलता था। प्रव्रजित साधुओं के अनन्त परिवार थे, जैसे—जटिल, दण्डी, परमहंस, कापालिक, औघड़, नागा आदि।

बौद्ध धर्म देश में व्यापक रूप से प्रचलित था, जैसा उनके असंख्य विहारों और उनमें रहनेवाले भिक्षुओं से प्रकट है। बौद्ध विहारों तथा भिक्षुओं के सम्बन्ध में ह्वेनत्सांग और इत्सिंग के यात्रा विवरणों में भी पूर्ण उल्लेख मिलता है। देश के बाहर सिंघल, बर्मा, स्याम, कम्बुज, चीन, कोरिया, जापान, मंगोलिया, तिब्बत, खोतान और प्रायः समस्त दक्षिण पूर्वी मध्य एशिया में भी उनके मठ एवं विहार फैले हुए थे, जहाँ बुद्ध और बोधिसत्वों की मूर्तियों की पूजा होती थी। मध्य एशिया में तो भारतीय बौद्धों के अनेक उपनिवेश भी बस गये थे, जिनका ह्वेनत्सांग ने विस्तृत उल्लेख किया है। देश विदेश दोनों में बौद्ध धर्म के असंख्य अनुयायी हो गये थे। इसके साथ ही देश में विशेषकर पाल राजाओं की संरक्षता में तांत्रिक वज्रयान का विकास हुआ, जिसका विशेष प्रचार तिब्बत में हुआ।[5] नालन्दा में उसका एक विशेष केन्द्र भी स्थापित हो चुका था।

सामाजिक स्थिति :

हिन्दुओं में वर्ण-व्यवस्था तो अति प्राचीन काल से चली आ रही थी। अब उनकी परस्पर संकीर्णता और भी बढ़ गई थी, और वर्णों के भी अनन्त आन्तरिक अंग बन गये थे। वर्णों का स्थान असंख्य जातियों ने ले लिया, जिनकी सीमाओं को लांघना गृहस्थों के लिए असम्भव हो गया। दिन पर दिन सवर्ण हिन्दुओं की संख्या घटने और निर्वर्ण समुदायों एवं जातियों की संख्या बढ़ चली, जिससे अस्पृष्यों का एक बहुत बड़ा समाज बन गया। बाहरी जातियों का इस मात्रा में आयात होने पर भी भारतीय जाति व्यवस्था को कोई हानि नहीं पहुँची, बल्कि उस सम्पर्क से उसकी स्थिति कठोर से कठोरतर और संकीर्ण से संकीर्णतर होती गई। भिन्न जातियों में पारस्परिक वैवाहिक सम्बन्ध वर्जित हो गये; विधवा विवाह असम्भव हो गया; तथा बाल विवाह नियम बन गया।

---

१. बील, बुद्धिस्ट रिकार्ड्स ऑफ दि वेस्टर्न वर्ल्ड, भाग २, पृ० २७१।
२. वाटर्स, युवानच्वांग, भाग २, पृ० २९६।
३. ताराचन्द, पृ० १०–११।
४. वही, पृ० ११।
५. ए० एल० वैशम, दि वण्डर दैट वाज़ इण्डिया, लन्दन, १९६१, पृ० २८०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अरब सफलता के कारणों पर दृष्टिपात करते समय हम विविध सामाजिक विषमताओं एवं कुरीतियों का उल्लेख ऊपर ही कर चुके हैं। सामाजिक विभाजन, ऊँच-नीच की कटुता, दलित वर्गों का शोषण, ब्राह्मणों का अनाचार, कौटुम्बिक कुरीतियाँ, अंध-विश्वास, वज्रयान तथा तन्त्रवाद द्वारा प्रोत्साहित कामज्वर, राजनीतिक क्षीणता,आदि प्रस्तुत कारणों ने आक्रामकों की सफलता के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि का निर्माण कर दिया था।

—:०:—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

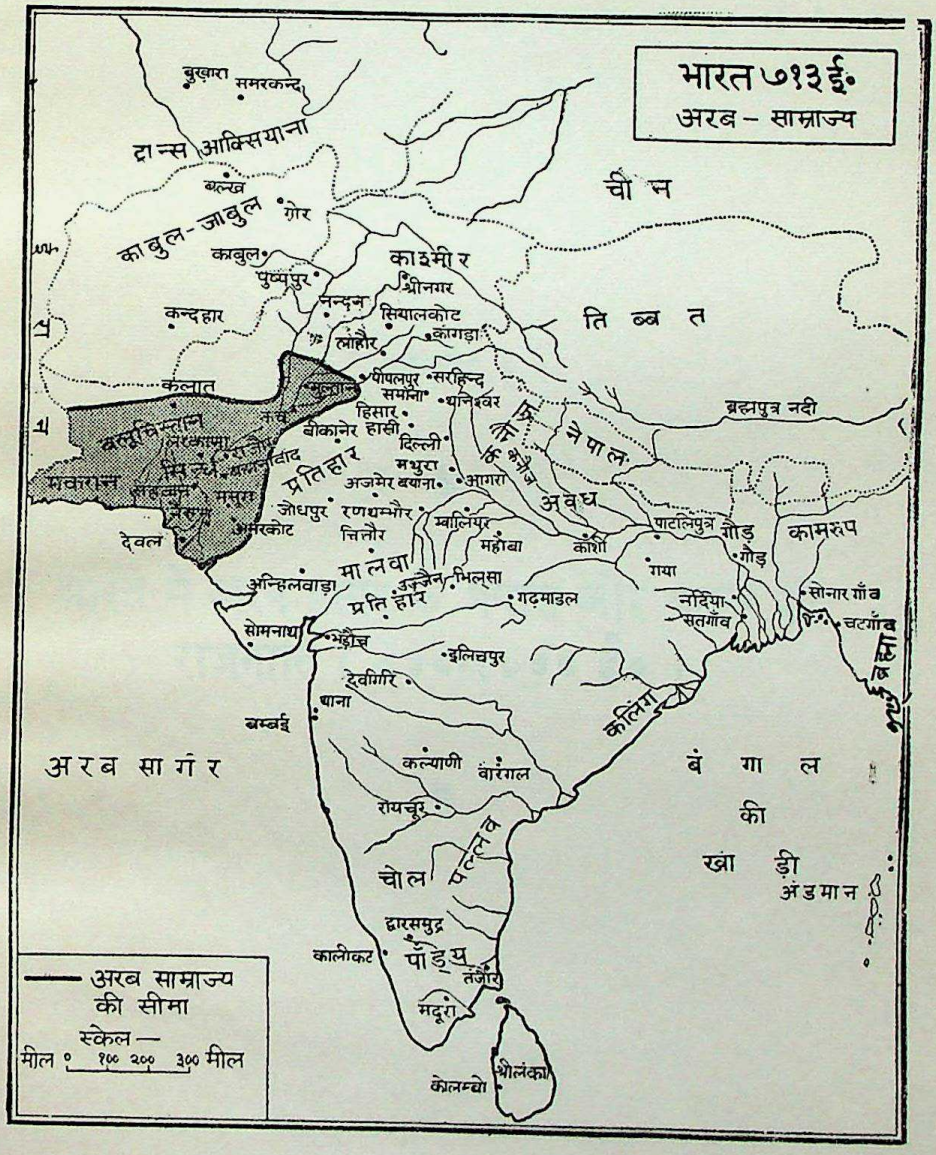

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

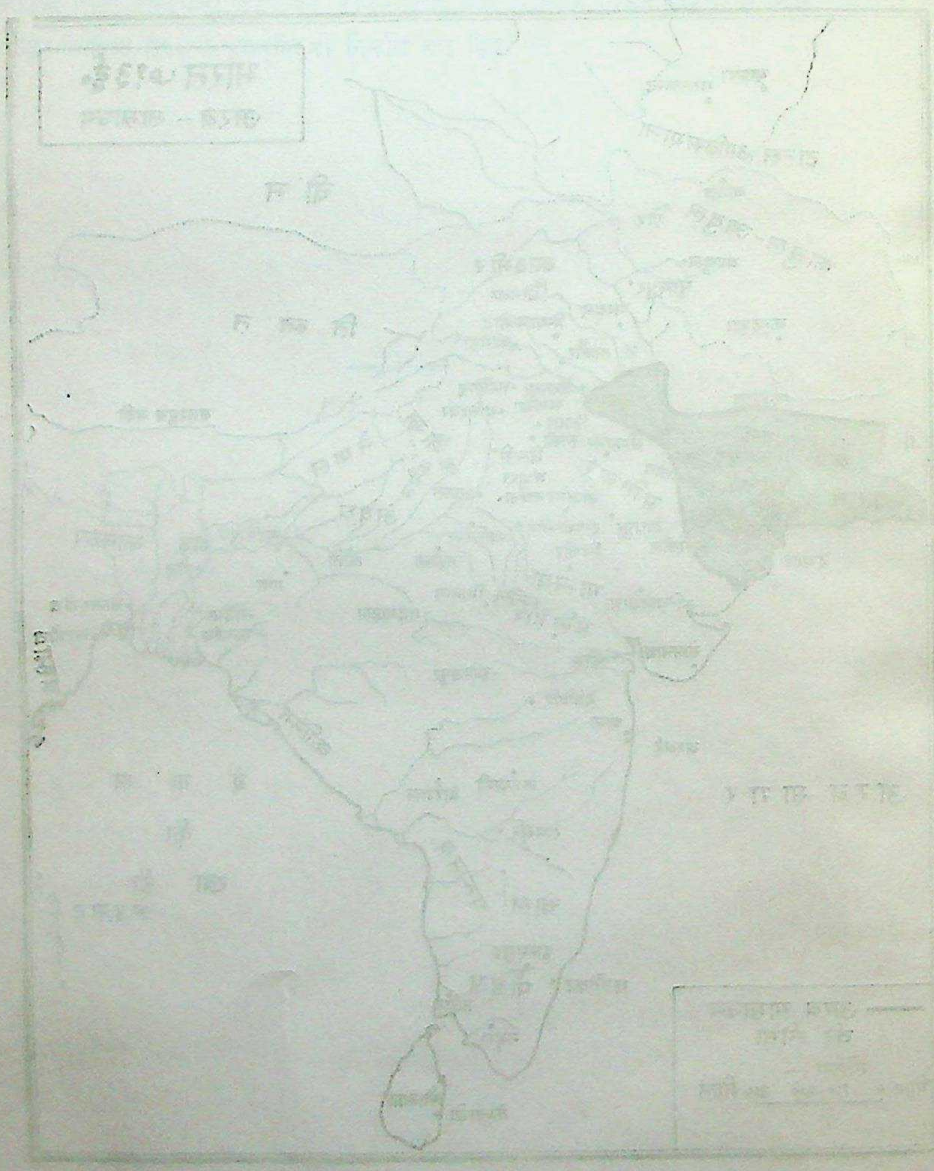

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय २

भारत में अरब प्रसार के प्रयास और भारत की राजनीति (८००-१००० ई०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुर्जर प्रतिहारों का उद्भव :

जोधपुर के समीप मंदौर में गुर्जर प्रतिहारों के राज्य की नींव पड़ी, जिसके संस्थापक हरिचन्द्र के पश्चात गुर्जरों की दो शाखाएं उज्जैन तथा कन्नौज पर भी शासन करने लगीं।[1] अमोघवर्ष प्रथमके संजन लेखमें प्रतिहार शासक को 'गुर्जरराज'[2] कहा गया है; राजौर अभिलेख में भी प्रतिहारों के प्रति 'गुर्जर प्रतिहारान्वयः' पद का प्रयोग हुआ है,[3] जिससे उस वंश के गुर्जर होने में किसी प्रकार का सन्देह सम्भव नहीं।

गुर्जर प्रतिहारों तथा अरबों का संघर्ष :

गुर्जर वंश के प्रारम्भिक शासकों में नागभट प्रथम इतना सशक्त हुआ कि उसने सिन्धु के अरब मुसलमानों पर आक्रमण कर उन्हें परास्त कर दिया और भड़ौंच पर्यन्त प्रदेश पर अपना आतंक स्थापित कर लिया।[4] इस्लाम की सेनाओं को परास्त करने के परिणाम-स्वरूप उसने जो ख्याति अर्जित की, उसका उल्लेख भोज की ग्वालियर प्रशस्ति में प्राप्त होता है। अरब सेना को परास्त करके वह अपने अस्त्र-शस्त्रों सहित देदीप्यमान हो उठा।[5] अरब इतिहासकार अलबिलाजुरी ने भी अरब सेनाओं के पीछे हटने का उल्लेख किया है।[6] बिलाजुरी के अनुसार अरबों ने उज्जैन पर आक्रमण किया तथा बहरीमद पर भी आक्रमण करके उसके बाहरी भागों को जला दिया। अरबों द्वारा विजित स्थानों की सूची में उज्जैन का नाम नहीं मिलता, जिससे गुर्जर प्रतिहारों की उत्कृष्ट शक्ति का आभास होता है। बिलाजुरी के अनुसार जुनैद के उत्तराधिकारी दुर्बल थे, अतः इस काल में मुसलमानों को भारत के कई स्थानों से हटना पड़ा।[7]

प्रतिहारों के राज्य का विशेष प्रसार वत्सराज के शासन काल में हुआ। अवन्ति पर उसके अधिकार का प्रमाण जैन हरिवंश में मिलता है।[8] उसी के शासन-काल में गौड़ के पालों,

---

१. गुर्जर प्रतिहारों की उत्पत्ति पर विभिन्न मतों के लिए देखिये, पुरी, दि हिस्ट्री ऑफ दि गुर्जर प्रतिहारज़, पृ० १–१४।

२. ऐपि० इंडि०, खं० १८, पृ० २४३, २५२, श्लोक ९।

३. वही, भाग ३, पृ० २६३–६७।

४. वही भाग १२, पृ० २०३-४, पं० ३४; देखिए, पुरी, पृ० ३६–३७।

५. येनासौ सुकृतिप्रमाथिवबलवान्।
म्लेच्छाधिपाक्सौहिनीः क्षुन्दान।
स्फुरदुग्रहेतिरुचिरेरैर्द्दोभिस चतुर्भिर्वभो (श्लोक ४)

६. पुरी, पृ० ३७।

७. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० २०।

८. ऐपि० इंडि०, खं० ६, पृ० १९५–९६; बाम्बे गज़े०, पृ० १–२, पृ० १९७ नोट २।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और राष्ट्रकूटों से प्रतिहारों का संघर्ष प्रारम्भ हुआ। वत्सराज ने गौड़ाधिपति धर्मपाल को परास्त कर दिया,[२] परन्तु स्वयं उसे राष्ट्रकूटों से पराजित होकर उज्जैन छोड़, राजपूताने की मरुभूमि की ओर भागना पड़ा।[३] इस प्रकार राष्ट्रकूट मध्य भारत में भी प्रबल हो चले। वत्सराज के पश्चात् उसके पुत्र नागभट द्वितीय को भी राष्ट्रकूट गोविन्द द्वितीय से परास्त होना पड़ा।[४] दक्षिण से राष्ट्रकूट, तथा पूर्व से पाल बारम्बार कन्नौज पर चोट करने लगे। नागभट ने दक्षिण की ओर राष्ट्रकूटों से परास्त हो अपने प्रसार की दिशा उत्तर की ओर मोड़ी। उसने कन्नौज पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया, वहाँ के शासक चक्रायुध को अन्यत्र शरण लेनी पड़ी। ८१४ ई० में गोविन्द तृतीय की मृत्यु हो जाने के कारण राष्ट्रकूट चुप रह गये, किन्तु गौड़ के शासक धर्मपाल ने चक्रायुध की सहायता हेतु पश्चिम की ओर प्रयाण किया। मुंगेर के पास भीषण युद्ध हुआ, जिसमें नागभट की विजय हुई तथा धर्मपाल तथा चक्रायुध दोनों परास्त हुए।[५] उसके पौत्र मिहिर भोज के ग्वालियर अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने आन्ध्र, सैन्धव, विदर्भ और कलिंग के शासकों पर अपना आतंक स्थापित कर दिया, तथा चक्रायुध और वंगाधिपति को परास्त कर के आनर्त, मालव, किरात, तुरुष्क, वत्स तथा मत्स्य के पर्वतीय दुर्गों पर अधिकार कर लिया।[६] आनर्त से उत्तरी काठियावाड़ का समीकरण कर सकते हैं, तथा वत्स कौशाम्बी के चारों ओर का भू-भाग अथवा रीवा प्रदेश है। इस प्रकार नागभट ने सिन्ध के अरबों को पराजित किया और साथ ही साथ तुरुष्कों को भी उसके हाथों हार खानी पड़ी।

अगली ही पीढ़ी में अधिकतर प्रान्त प्रतिहारों के हाथ से निकल गये, किन्तु मिहिरभोज ने विचलित-कुल-लक्ष्मी को पुनः दृढ़ बनाकर अपने पिता रामभद्र द्वारा खोये अनेक प्रदेश फिर अधिकृत कर लिए। बुन्देलखण्ड[७] और गुर्जरत्रा[८] भूमि पर फिर प्रतिहारों का अधिकार हो

---

१. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० २२-२४; दशरथ शर्मा, जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, भा० २२, पृ० ९३ और आगे, १९४४, इस त्रिकोणात्मक संघर्ष पर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में एच० ए० फड़के द्वारा एक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया है, १९६५।

२. ऐपि० इंडि०, खं० ६, पृ० २४३, २४८, श्लोक ८; इण्डि०, एन्टि०, खं० ११, पृ० १५७–६१, पं० १२।

३. ऐपि० इंडि० भाग ६, पृ० २३९ तथा उसके आगे के पृष्ठ पर, दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० २३; पुरी, पृ० ४१; इण्डि०, एन्टि०, भाग ११, पृ० १५६–५७।

४. संजन ताम्रपत्र, श्लोक २२।

५. ए० एस० आर०, १९०३–४, भोज का ग्वालियर लेख; पुरी, पृ० ४३; दि एज-आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० २४।

६. देखिए, जे० आर० ए० एस०, १९०९, पृ० २५७–५८; ऐपि० इंडि०, खं० १८, पृ० १०८, ११२।

७. ऐपि० इंडि०, खं० १९, पृ० १५–१९।

८. वही, खं० ५, पृ० २०८–२९३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया। पूर्व में मिहिर भोज के राज्य की सीमा गोरखपुर तक जा पहुँची।[1] मिहिर भोज की बढ़ती हुई शक्ति की राष्ट्रकूटों तथा पालों से टक्कर अवश्यम्भावी हो उठी। बंगाल के धर्मपाल की पराजय से क्षुब्ध उसका पुत्र देवपाल गद्दी पर बैठते ही कन्नौज पर चढ़ दौड़ा और 'गुर्जर-नाथ के दर्प को नष्ट कर दिया।'[2] किन्तु भोज हिम्मत न हारा और ८७६ ई० के एक अभिलेख में उसके त्रैलोक्यविजय के दृढ़ निश्चय का उल्लेख प्राप्त होता है।[3] मजूमदार के अनुसार देवपाल की मृत्यु के पश्चात् उसने पुनः अपना विजय अभियान प्रारम्भ किया। पाल वंश के अगले दो शासक दुर्बल एवं शान्ति प्रिय थे। राष्ट्रकूट शासक अमोघवर्ष ने भी पालों को परास्त किया। इस अवसर का लाभ उठा कर भोज ने पाल शासक नारायणपाल को पूर्णतः परास्त कर उसके राज्य के पर्याप्त पश्चिमी भू-भाग पर अपना अधिकार कर लिया।[4]

भोज का राष्ट्रकूटों से भी संघर्ष हुआ। भोज ने ही सम्भवतः आक्रमण किया और पर्याप्त सफलता प्राप्त की। एक प्रतिहार लेख के अनुसार नर्मदा तट पर कृष्ण द्वितीय की हार हुई।[5] मालवा पर अधिकार कर भोज गुजरात की ओर बढ़ा। राष्ट्रकूट अभिलेखों के अनुसार भी खेटक अथवा कैड़ा जिला तथा उसके आस-पास के क्षेत्र पर उसका अधिकार हो गया। किन्तु इन लेखों से यह भी विदित होता है कि कृष्ण द्वितीय ने इन प्रदेशों पर पुनः अधिकार कर लिया, तथा उज्जयिनी में भोज के साथ उसका घनघोर युद्ध हुआ।[6] कुछ विद्वानों के अनुसार भोज पराजित हुआ तथा मालवा उसके अधिकार से निकल गया। किन्तु यह बात निश्चित नहीं है, क्योंकि प्रतापगढ़ के एक अभिलेख से ९४६ ई० तक मालवा प्रदेश पर गुर्जर प्रतिहारों का आधिपत्य स्पष्ट होता है।[7]

काठियावाड़ के समस्त प्रदेश पर भोज का अधिकार बना रहा। इसका अनुमान अरब लेखक सुलेमान के वर्णन से किया जा सकता है, जिसके अनुसार भोज के राज्य का आकार एक पृथ्वी-रूपी जिह्वा की भांति था। इसकी पुष्टि स्कन्द पुराण द्वारा भी होती है।[8]

उत्तर पश्चिम में उसका राज्य पंजाब तक व्याप्त था। पूर्व में गोरखपुर के कलचुरि उसके आधीन थे, तथा सम्भवतः समस्त अवध उसके राज्य का अंग था। बुन्देलखण्ड के चन्देल

---

१. ऐपि० इंडि०, खं० ७ पृ० ८५–९३।

२. वही, खं० २, पृ० १६३–६५। (डॉ० पुरी, पृ० ६३, के अनुसार ग्वालियर प्रशस्ति के अठारहवें श्लोक के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मिहिर भोज ने भी देवपाल को परास्त किया था)।

३. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३०।

४. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३९।

५. ऐपि० इंडि०, खं० १९, पृ० १७४।

६. कृष्ण द्वितीय का बेगुमरा अभिलेख; इंडि० एन्टि०, भाग १३, पृ० ६६; इन्द्र तृतीय का बेगुमरा अभिलेख, नम्बर १, श्लोक १५; ऐपि० इंडि०, भाग ९, पृ० ३१।

७. ऐपि० इंडि०, खं० १४, पृ० १७६; देखिए, दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३१।

८. आई० एच० क्यू०, ५, पृ० १२९–३३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी उसकी आधीनता स्वीकार करते थे। इस प्रकार भोज ने एक भव्य एवं विशाल साम्राज्य का सृजन किया, जिसका केन्द्र कन्नौज बना।[1]

धौलपुर से विक्रम सम्वत् ८९५ अर्थात् ८४६ ई० का चौहान चण्ड महासेन का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है[2], जिसके अनुसार उसकी आज्ञा का पालन चर्मणावती अथवा चम्बल के निकटवर्ती म्लेच्छ करते थे। मुसलमानों पर इस प्रकार आतंक स्थापित करना इस छोटे से शासक की सामर्थ्य से परे था। इससे यही सिद्ध होता है कि भोज ने म्लेच्छों पर अपना आतंक स्थापित कर लिया था, और चौहान शासक तो भोज का एक सामन्त मात्र था। भोज द्वारा परास्त अरब उसके शासन काल में पुनः उभर न सके। उसकी महती शक्ति ने तथा उसके उत्तराधिकारियों के प्रचण्ड शासन ने भी भारतवर्ष को २०० वर्ष तक विदेशी आक्रमणों से मुक्त रखा। भोज ने ४६ वर्ष से भी अधिक शासन किया। उसके राज्य काल की दो विदित तिथियां ८३६ ई० तथा ८८२ ई०हैं।[3] ८५१ ई० में लिखित एक अरब वृत्तान्त में, जिसे साधारणतः सुलेमान कृत मानते हैं, जुज्र के शासक की महान शक्ति तथा उसके विशाल साधनों का उल्लेख है। जुज्र निश्चयतः गुर्जर के लिए प्रयुक्त हुआ है और यह अरब वृत्तान्त भोज से ही सम्बन्ध रखता है।[4] यह उद्धरण यहाँ प्रस्तुत करना न्यायसंगत होगा।

"यह शासक बहुत बड़ी सेनायें रखता है तथा अन्य किसी भारतीय राजा के पास उतनी उत्तम अश्वारोही सेना नहीं है। वह अरबों के प्रति द्वेष भाव रखता है, फिर भी यह मानता है कि अरबों का नृपति सबसे महान शासक है। भारत के शासकों में उससे बढ़ कर इस्लाम का कोई शत्रु नहीं है। उसका प्रदेश जिह्वा-रूपी है। उसके पास धन है तथा उसके ऊँट और घोड़े बहुत हैं।.....भारत में और कोई प्रदेश डाकू-लुटेरों से इतना सुरक्षित नहीं है।[5]" इससे स्पष्ट है कि भोज एक सशक्त शासक था, जिसने अपने राज्य की सीमाओं को मुसलमानों के आक्रमणों से सुरक्षित रखा। उसके राज्य में वे प्रदेश सम्मिलित रहे होंगे जहाँ ऊँटों तथा घोड़ों का बाहुल्य था। पहोवा अभिलेख से ज्ञात होता है कि पृथुदक घोड़ों के व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। राजपूताना ऊँटों के लिए सर्वदा उल्लेखनीय रहा है, अतः यह कहना सही होगा कि भोज का राज्य सिन्ध की सीमा तक प्रसारित था तथा सम्भवतः उसमें सिन्ध का भी कुछ भाग सम्मिलित रहा होगा।

भोज की मृत्यु लगभग ८८५ ई० के आस-पास हुई, तथा उसके बाद महेन्द्रपाल प्रथम सिंहासन पर आया। महेन्द्रपाल की प्रथम ज्ञात तिथि ८९३ ई० है। महेन्द्रपाल ने विशाल

---

१. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३२।
२. जेड० डी० एम० जी०, भाग ४०, पृ० ३९ तथा उसके आगे। (अरबों के लिए म्लेच्छ शब्द का प्रयोग भोज के सागरताल अभिलेख, ग्वालियर अभिलेख में तथा बाद के कई अभिलेखों में हुआ है। देखिए भंडारकर की सूची संख्या ४७५, ५७९ आदि)।
३. पहोवा अभिलेख (ऐपि० इंडि०, खं० १, पृ० १८४)।
४. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३२; होडीवाला, स्टडीज़ इन इन्डो-मुस्लिम हिस्ट्री, पृ० २५; पुरी, पृ० ६६।
५. इलि० डाउ०, भाग १, पृ० ४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रतिहार साम्राज्य को सशक्त बनाये रखा और पूर्व की ओर प्रसार भी किया। उसके अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उसने मगध और उत्तरी बंगाल के कुछ भाग पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया। उसके अभिलेख काठियावाड़, पूर्वी पंजाब, झाँसी तथा अवध में भी प्राप्त हुए हैं, जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि उसका साम्राज्य हिमालय से विन्ध्याचल तक तथा अरब सागर से बंगाल की खाड़ी तक व्याप्त था।[1] इस सुगठित शक्ति के परिणामस्वरूप अरब लोग आगे न बढ़ सके, तथा उनका अधिकार थोड़े से ही प्रदेश में सीमित रहा।

महेन्द्रपाल की अन्तिम ज्ञात तिथि ९०७-९०८ ई० है।[2] विद्वानों के अनुसार उसके पश्चात् भोज द्वितीय गद्दी पर बैठा तथा विनायकपाल अर्थात् महीपाल उसके बाद सिंहासनारूढ़ हुआ।[3] एक राष्ट्रकूट अभिलेख के अनुसार कृष्ण द्वितीय ने प्रतिहार साम्राज्य पर आक्रमण किया तथा गंगा जमुना के दोआब पर अधिकार कर लिया। किन्तु कुछ विद्वानों ने इसकी सत्यता पर सन्देह प्रकट किया है।[4] ९१४ ई० के एक अभिलेख से काठियावाड़ प्रदेश पर महीपाल का अधिकार सिद्ध होता है। बग़दाद का निवासी अल-मसूदी ९१५-९१६ ई० में भारत आया तथा उसने कन्नौज के प्रतिहार शासक की शक्ति तथा वैभव का वर्णन किया है। उसका राज्य विस्तृत था। दक्षिण में उसके साम्राज्य की सीमायें राष्ट्रकूट राज्य से तथा पश्चिम में मुल्तान के मुसलमान राज्य से मिलती थीं, तथा इन दोनों से ही उसके युद्ध हुए। उसके पास ऊँट तथा घोड़ों का बाहुल्य था तथा चार सेनायें थीं जो चारों दिशाओं में रहती थीं, तथा प्रत्येक सेना की संख्या सात लाख से नौ लाख थी।[5]

यह शक्ति अरब प्रसार के लिए प्रतिबन्ध स्वरूप थी। किन्तु पुनः एक बार राष्ट्रकूटों ने दक्षिण से चढ़ कर प्रतिहार साम्राज्य पर घोर आघात किया। ९१५ ई० तथा ९१८ ई० के बीच किसी समय इन्द्र तृतीय ने यह आक्रमण किया। मालवा से बढ़ते हुए यमुना पार कर उसने कन्नौज का नगर ध्वस्त कर डाला।[6] महीपाल को जान बचाकर भागना पड़ा तथा इन्द्र के आधीन शासक नरसिंह चालुक्य ने उसका पीछा करते हुए गंगा के संगम पर अपने घोड़ों को नहलाया।

किन्तु राष्ट्रकूट उत्तर में अधिक नहीं ठहरे, तथा महीपाल ने पुनः अपने वंश की सत्ता स्थापित कर ली। इसमें उसकी सहायता उसके सामन्तों ने की, जिनमें चन्देल शासक

---

१. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३३।

२. सियादोनी अभिलेख : ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० १६२।

३. विनायक पाल का समीकरण महीपाल, क्षितिपाल, हेरम्बपाल के साथ किया जाता है। इसकी विदित तिथियां ९१४ ई०, ९१७ ई० तथा ९२१ ई० हैं। देखिए, दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३३–३४।

४. वही, पृ० ३४–३५।

५. इलि० डाउ०, भाग १, पृ० २१–२३; हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, पृ० २६८–६९।

६. ऐपि० इंडि०, भाग ७, पृ० ३८।

७. वही, भाग १, पृ० १२२।

८. ए० आर०, १०१–१०२; त्रिपाठी, हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, पृ० २६०; जे० डी० एल०, भाग १०, पृ० ६६; कर्नाटक भाषा भूषण-भूमिका, पृ० १४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हर्ष विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[१] साहित्यिक एवं अभिलेखीय सूत्रों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ९३१ ई० में महीपाल विनायकपाल के राज्य में पश्चिम में सौराष्ट्र तथा पूर्व में बनारस सम्मिलित थे, तथा ९४२–४३ ई० में दक्षिण में चन्देरी तक इनका साम्राज्य व्याप्त था।[२] यद्यपि महीपाल ने अपने साम्राज्य का अधिकतर भाग पुनः जीत लिया, फिर भी प्रतिहारों के यश को क्षति पहुँची। धीरे-धीरे सामन्त शासकों ने अपनी स्वतंत्र सत्ता घोषित की, तथा नये राजवंश सत्तारूढ़ हुए–– जैसे चन्देल, चेदि तथा परमार।

महीपाल के शासन के अन्तिम दिनों में राष्ट्रकूटों ने पुनः उत्तर पर आक्रमण किया। ९४० ई० के एक राष्ट्रकूट अभिलेख में लिखा हैं कि "कृष्ण तृतीय द्वारा दक्षिण भारत के समस्त दुर्गों की विजय की खबर सुनकर गुर्जर के हृदय से कालिंजर तथा चित्रकूट की आशा विलुप्त हो गई।"[३] ऐसा अनुमान है कि प्रतिहारों के ये दोनों दुर्ग शत्रु अर्थात् राष्ट्रकूटों द्वारा ९४० ई० में अधिकृत कर लिए गये।[४]

महीपाल के पश्चात् प्रतिहार साम्राज्य की चूलें ढीली हो गईं। उसने लगभग ९४२ ई० तक शासन किया।[५] उसके बाद महेन्द्रपाल द्वितीय सिंहासन पर आया, जिसकी ज्ञात तिथि ९४५–९४६ ई० है। अगले पन्द्रह वर्षों में कम से कम चार शासक आये—(१) देवपाल (९४८–४९ ई०); (२) विनायकपाल द्वितीय (९५३–९५४ ई०); (३) महीपाल द्वितीय (९५५ ई०); (४) विजयपाल (९६० ई०)।[६] यह कहना भी कठिन है कि इन में से दो या दो से भी अधिक एक ही व्यक्ति के नाम थे।[७]

इसमें कोई सन्देह नहीं कि गुर्जर प्रतिहारों की शक्ति एवं सत्ता का क्रमिक ह्रास हुआ। ९५४ ई० के एक अभिलेख में चन्देल घोषणा करते हैं कि उन्होंने गुर्जरों को परास्त किया और कालिंजर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया, यद्यपि विनायकपाल को वे अब भी पृथ्वी का रक्षक कहते थे।[८] ९६० ई० के राजौरगढ़ अभिलेख में महाराजाधिराज—परमेश्वर

---

१. खजुराहो अभिलेख—ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० १२१।
२. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३६; ए० एस० आई०, (१९२४–२५), पृ० १६८।
३. देवली अभिलेख, श्लोक २५; ऐपि० इंडि०, भाग ५, पृ० १८८।
४. त्रिपाठी, हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, पृ० २६७–६८; अल्तेकर, राष्ट्रकूटज़ एण्ड देयर टाइम्स, पृ० ११३।
५. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३७; ए० एस० आई०, १९२४–२५, पृ० १६८।
६. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३७।
७. देखिये, भंडारकर की अभिलेख सूची, पृ० ४००; डॉ० निहार रंजन राय, इंडि० एन्टि०, खं० ५७, पृ० २३४; त्रिपाठी, पृ० २७१, २७४, २७५; दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३७, ४३, टि० १०२।
८. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

–मदनदेव की एक आज्ञा का उल्लेख है। वह भी वस्तुतः गुर्जर प्रतिहारों से स्वतन्त्र हो चुका था।[१]

राष्ट्रकूटों एवं गुर्जर-प्रतिहारों का अन्तिम संघर्ष-गुर्जर-प्रतिहार शक्ति का ह्रास :

९६३ ई० के आस-पास राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय ने उत्तरी भारत पर पुनः आक्रमण किया। उपके सामन्त गंगमार सिंह ने इतनी वीरता प्रदर्शित की कि वह गुर्जरों का शासक कहलाने लगा।[२] इससे यह सिद्ध होता है कि प्रतिहारों को मुँह की खानी पड़ी। राष्ट्रकूट राजा की असफलता बुन्देलखण्ड में महियर के पास जूर नामक स्थान पर प्राप्त एक कन्नड़ अभिलेख से सिद्ध होती है।[३] यद्यपि राष्ट्रकूटों को स्थायी सफलता न मिल सकी, तथापि मध्य भारत में उन्होंने प्रतिहारों का आधिपत्य नष्ट कर दिया। चन्देल शासक धंग कहता है कि वह कान्यकुब्ज के शासक को पराजित कर सर्वोच्च नृप बन गया।[४] ग्वालियर पर भी चन्देलों का अधिकार हो गया। कुछ वर्षों बाद कच्छपघात शासक वज्रदामन ने प्रतिहार शासक को हराकर ग्वालियर पर अधिकार कर लिया।[५]

शाकम्भरी के चौहानों ने तथा गुहिलों आदि अन्य शासकों ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया।[६] मध्य भारत में कलचुरियों की नयी शक्ति का अभ्युदय हुआ। मालवा में परमार उदित हुए। गुजरात में चालुक्यों ने नवीन शक्ति अर्जित की। इस प्रकार प्रतिहारों की शक्ति उत्तरोत्तर क्षीण होती गई। दशवीं शताब्दी के मध्य के लगभग प्रतिहार साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया, तथा कन्नौज के समीपवर्ती प्रदेश तक ही सीमित रह गया। विजयपाल ९६० ई० में सिंहासन पर आसीन था; उसके पश्चात प्रतिहारों का लगभग ५० वर्ष तक कोई अभिलेख नहीं प्राप्त होता है। १०१९ ई० में प्रतिहार साम्राज्य प्रायः नष्ट हो चुका था, तथा उत्तरी भारतवर्ष में फिर वही अराजकता तथा अशान्ति व्याप्त हो गई थी। राज्यपाल ने कन्नौज के छोटे से सीमित राज्य पर शासन किया, किन्तु वंश परम्परा तथा ख्याति कुछ दिन और बनी रही। पर महमूद गजनवी के आक्रमणों ने प्रतिहारों का सर्वनाश ही कर दिया।

महमूद तथा गुर्जर प्रतिहार :

महमूद २० दिसम्बर, १०१८ ई०[७] को कन्नौज पहुँचा, और उसने एक भव्य नगर देखा जो अपना शीश आकाश की ओर उठाये था, तथा शक्ति एवं सौंदर्य में अद्वितीय था।[८] महमूद के अचानक आगमन से भयभीत हो राज्यपाल गंगापार कर बारी भाग

१. वही, पृ० ३७–३८।
२. वही, पृ० ३८।
३. ऐपि० इंडि०, खं० १९; पृ० २८७।
४. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३८।
५. इन्डि० एन्टि०, भाग १५, पृ० ३६।
६. देखिये, दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, अध्याय ५।
७. देखिये, त्रिपाठी, हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, पृ० २८५, टि० १।
८. ब्रिग्स—फ़रिश्ता, भाग १, पृ० ५७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया, तथा महमूद ने बिना किसी विरोध के कन्नौज के सातों दुर्गों को अधिकृत कर लिया। उसकी आज्ञानुसार उसके सैनिकों ने नगर को निर्दयता-पूर्वक लूटा, मंदिरों का विध्वंश किया तथा काफिरों का संहार किया।[1] महमूद गुर्जर-प्रतिहारों की कमर तोड़कर मालामाल हो स्वदेश लौट गया। राज्यपाल की कायरता से भारत के अन्य शासक अत्यन्त कुपित हुए, तथा महमूद के लौटने पर चन्देल शासक गंड ने राज्यपाल को दण्ड देने के लिए अन्य पड़ोसी राज्यों के साथ एक संघ बनाया।[2] चन्देल राजकुमार विद्याधर को सेनापतित्व सौंपा गया। घनघोर युद्ध हुआ तथा राज्यपाल युद्ध-भूमि में ही मारा गया।[3] इस प्रकार गुर्जर प्रतिहारों का वैभव नष्ट हो गया। हिन्दुओं का यही परस्पर कलह इस काल के इतिहास में निरन्तर दृष्टिगोचर होती है। राजनीतिक फूट तथा भारतीयता की भावना के अभाव से मुसलमान आक्रामकों को भारत विजय में सुविधा हुई। शत्रु के अनवरत आक्रमणों से भी परस्पर द्वेष-रत एवं पतनोन्मुख राज्यों ने एक सूत्र हो उनका सामना करने की प्रेरणा ग्रहण नहीं की। राज्यपाल ने तो दो बार जन-धन से जयपाल और आनन्दपाल की सहायता भी की थी, किन्तु चन्देल शासक स्वयं भी महमूद की सेना का सामना करने में सर्वथा असमर्थ रहा। उसका यह कृत्य अत्यन्त कायरतापूर्ण था।

राज्यपाल के पश्चात् उसका पुत्र त्रिलोचनपाल सिंहासन पर बैठा।[4] निज़ामुद्दीन के वृत्तान्त में भी उसका उल्लेख है।[5] महमूद ने राज्यपाल के वध का वृत्तान्त सुन, पुनः अपरा-धियों को दण्डित करने के लिए सैनिक अभियान किया। ४१० हि०, अक्टूबर सन् १०१८ में उसने तरूजैबाल अथवा तरूजैपाल (त्रिलोचनपाल) पर आक्रमण किया, क्योंकि वह चन्देल शासक गंड की सहायता से सिंहासन पर बैठा था।[6] त्रिलोचनपाल ने उसका सामना किया, किन्तु महमूद के कुछ चुने हुए सैनिकों ने रामगंगा पार कर अचानक भीषण आक्रमण कर दिया। त्रिलोचनपाल की सेना इस असम्भावित आघात को न सह सकी और वह पराजित हुआ। उसकी राजधानी वारी,[7] जो कन्नौज से तीन-चार दिन के सफ़र की दूरी पर थी, महमूद द्वारा ध्वस्त कर दी गई।

---

१. त्रिपाठी, हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, पृ० २८५, विस्तृत वर्णन हेतु आगे देखिये अध्याय ४ में, सुल्तान महमूद का भारत पर बारहवां आक्रमण।

२. इलि०, भाग २, पृ० ४६३, टि० १; ब्रिग्स-फरिस्ता, भाग १, पृ० ६३; स्मिथ, जे० आर० ए० एस०, १९०९, पृ० २७८।

३. ईलि०, भाग २, पृ० ४६४; जे० आर० ए० एस०, १९०९, पृ० २८०, टि०; ऐपि० इंडि०, भाग २, पृ० २३३–३७, पंक्ति १२। इस घटना का उल्लेख 'कामुल तवारीख' में भी मिलता है, बुलाक द्वारा सम्पादित, १८७४ ई०, भाग ९, पृ० ११५ तथा उससे आगे।

४. उसका झांसी अभिलेख, वि० सं० १०५४ का प्राप्त हुआ है; इंडि० एन्टि०, भाग १८, पृ० ३४।

५. तबक़ाते अकबरी, बिबलियोथेका इंडिका-अनूदित बी० डे, पृ० १२।

६. त्रिपाठी, हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, पृ० २८७।

७. इलि० भाग १, पृ० ५४; वही, भाग २, पृ० ४६४; अल्बेरूनीज़ इंडिया, भाग १, पृ० १९९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुर्जर प्रतिहारों का अंत-नव राज्यों का उदय:

इस विषय में हमारा ज्ञान शून्य है कि इस पराजय के उपरान्त त्रिलोचनपाल बारी में रहा कि नहीं किन्तु यह निश्चित है कि वह बाद में भी बारी के समीपवर्ती क्षेत्र पर शासन करता रहा। यह बात झूसी अभिलेख से प्रमाणित होती है, जिसमें उसके द्वारा लभुन्दक ग्राम के दान का उल्लेख है।[1] इस अभिलेख में उसके लिए प्रयुक्त उपाधियों से ज्ञात होता है कि वह १०२७ ई० तक इस प्रदेश पर स्वतंत्र शासक के रूप में शासन करता रहा।

त्रिलोचनपाल की मृत्यु की तिथि ज्ञात नहीं है, और न ही उस के उत्तराधिकारी के विषय में कोई सूचना प्राप्त होती है। किन्तु कड़ा (इलाहाबाद) अभिलेख में वि० सं० १०९३ अर्थात् १०३६–३७ ई० में महाराजाधिराज यशःपाल देव का उल्लेख है।[2] यशःपाल का त्रिलोचनपाल के साथ क्या सम्बन्ध था, इसका कोई ज्ञान नहीं है। वह केवल एक 'महाराज' था, जो सम्भवतः इलाहाबाद के समीपवर्ती क्षेत्र पर शासन करता था। गुर्जर-प्रतिहार वंश के इस अन्तिम शासक का अन्त कब और कैसे हुआ, ज्ञात नहीं है। किन्तु उसके साथ ही इस विशाल वंश का लोप हो गया।

प्रतिहारों ने उत्तरी भारत को राजनैतिक एकता के सूत्र में पिरोया, एवं उसे स्थायित्व प्रदान किया, और सफलतापूर्वक मुसलमानों के आक्रमणों को विफल कर ऐतिहासिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कार्य किया। वे जुनैद (७२५ ई०) के काल से महमूद (१००१ ई०) के समय तक मुसलमानों के साथ संघर्षरत रहे, एवं उन्हें विफल-मनोरथ कर भारत की रक्षा की। इसकी पुष्टि अरब लेखक स्वयं करते हैं। एलफिन्सटन के काल से भारत के इतिहासकार इस बात पर आश्चर्य करते आये हैं कि भारत में आक्रमण के उपरान्त मुसलमानों को आगे बढ़ने में इतना समय क्यों लगा ? नाना प्रकार के तर्क यह बात समझाने के लिए दिये गये हैं, किन्तु वास्तव में प्रतिहारों की महान शक्ति ही मुसलमानों को ३०० वर्ष पर्यन्त सिन्ध प्रदेश से आगे न बढ़ने देने के लिए उत्तरदायी है। यही गुर्जर-प्रतिहारों का भारतीय इतिहास में सबसे बड़ा योगदान है।

गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य के भग्नावशेषों पर आठ नवीन राजपूत कुलों का उदय हुआ। ये राजकुल निम्न थे :—

१—अन्हिलवाड़ा के चालुक्य; २—जेजाक भुक्ति के चन्देल; ३—ग्वालियर के कच्छ-पघात; ४—डाहर के चेदि; ५—मालवा के परमार; ६—दक्षिण राजपूताने के गुहिल; शाकम्भरी के चौहान; तथा ८—कन्नौज के केन्द्रीय भूमि पर अधिष्ठित गाहड़वाल।[3]

बंगाल के पाल :

बंगाल की अराजकता को ७६५ ई० के लगभग समाप्त कर गोपाल गौड़ की गद्दी पर

---

१. इंडि० एन्टि०, भाग १८, ३३–३५।

२. जे० आर० ए० एस०, १९२७, पृ० ६९४।

३. भगवत शरण उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ३१७–१८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बैठा।[1] गौड़ साम्राज्य के यश एवं शक्ति का विस्तार उस के पुत्र धर्मपाल (७७०–८१० ई०) ने सम्पन्न किया। गुर्जर-प्रतिहारों तथा तत्कालीन दक्षिण भारत के सर्व शक्तिशाली राष्ट्रकूटों से लोहा लेकर उसने उत्तरी भारत में सर्वशक्तिमान होने का प्रयास किया। सर्वप्रथम उसका संघर्ष गंगा के दोआब में किसी स्थान पर प्रतिहार शासक वत्सराज के साथ हुआ, जिसमें वत्सराज विजयी हुआ और गौड़ नरेश का छत्रादि, धन सम्पत्ति छीन ले गया। किन्तु वह इस विजय से लाभ न उठा सका, क्योंकि इसी समय राष्ट्रकूट शासक ध्रुव ने उस पर आक्रमण कर दिया और उसे पराजित कर राजपूताने के मरुस्थल में शरण लेने की विवश कर दिया। आगे बढ़ कर ध्रुव ने दोआब में धर्मपाल को पराजित किया,[2] परन्तु उसके बाद शीघ्र ही वह दक्षिण को लौट गया।

ध्रुव के आक्रमण से वत्सराज की शक्ति नष्ट हो गई और धर्मपाल को उत्तरी भारत में अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ। बहुत से सैनिक अभियानों के फलस्वरूप वह उत्तरी भारत के विशाल भू-भाग का अधिपति बन बैठा। उसके साम्राज्य-विस्तार की सूचना उसके द्वारा कन्नौज में आयोजित दरबार के वृत्तान्त से प्राप्त होती है। कन्नौज के शासक इन्द्रायुध को परास्त कर चक्रायुध को सिंहासनारूढ़ कराने के लिए ही उस दरबार का आयोजन किया गया था।[3] इस दरबार में भोज, मत्स्य, मद्र, कुरु, यदु, यवन, अवन्ति, गान्धार तथा कीर के शासक सम्मिलित हुए थे, जिन्होंने नत-मस्तक हो उसके प्रभुत्व को स्वीकार किया था।[4] ग्यारहवीं शताब्दी के एक गुजराती कवि ने धर्मपाल को 'उत्तरापथ-स्वामिन्' कहा है।[5] उपर्युक्त राज्यों में से अधिकतर राज्यों का उल्लेख तत्कालीन साहित्य में प्राप्त होता है। गान्धार पश्चिमी पंजाब एवं काबुल की घाटी का निचला भाग था। मद्र मध्य पंजाब में था। कीर का तात्पर्य कांगड़ा से है। कुरु अर्थात् वर्तमान थानेश्वर तथा मत्स्य निश्चय ही जयपुर के आस-पास का भाग था। अवन्ति का समीकरण मालवा प्रान्त से किया जाता है; तथा यवन का तात्पर्य सिन्धुघाटी में स्थित मुसलमान राज्य से है। यदु सम्भवतः पंजाब स्थित सिंहपुर में शासन करते थे, तथा भोज बरार के शासक थे। धर्मपाल ने इन राज्यों को अपने साम्राज्य में मिलाया नहीं, परन्तु उनसे अपनी आधीनता स्वीकार करवा कर राज्य करने दिया।[6]

इस प्रकार केवल बंगाल और बिहार ही उसके साम्राज्य के अन्तर्गत न था, अपितु कन्नौज पर भी उसका अधिकार था, तथा वहां का शासक उसी के द्वारा मनोनीत किया

---

१. बंगाल की प्रकृतियों द्वारा शासक का चुनाव धर्मपाल के ३२वें वर्ष के खालीमपुर ताम्रपत्र में उल्लिखित है। ऐपि० इंडी०, भाग ४, पृ० २४३। इसका उल्लेख तारानाथ ने भी किया है; देखिए, हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज़्म इन इन्डिया, अनूदित, ए० शीफ़नर।
२. संजन ताम्रपत्र ५।१४; ऐपि० इंडि०, भाग १८, पृ० २४४।
३. देखिए, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग १, पृ० १०७।
४. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ४६।
५. सोड्ढल कृत, 'उदयन सुन्दरी कथा'; जी० ओ० एस० एडीशन, पृ० ४०६।
६. देवपाल का मुंगेर ताम्रपत्र, वर्ष ३३; ऐपि० इंडि०, भाग १८, पृ० ३०४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया था। इसके अतिरिक्त पश्चिम तथा दक्षिण में, पंजाब में, पश्चिमी पहाड़ी राज्यों में, राजपूताना, मालवा तथा बरार में भी उसके कई आधीन शासक थे। स्वयंभू पुराण के अनुसार नेपाल भी उसका अधीनस्थ राज्य था।[1]

पाल-प्रतिहार संघर्ष–राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय का उत्तरी भारत पर आक्रमण :

धर्मपाल के प्रभुत्व को वत्सराज के उत्तराधिकारी नाग भट द्वितीय ने अस्वीकार कर दिया। उसने कन्नौज पर पुनः आक्रमण कर उसे हस्तगत कर लिया तथा चक्रायुध को सिंहासन से अपदस्थ कर दिया। यह धर्मपाल के लिए भी संकट का संकेत था। दोनों शासकों में अपने-अपने प्रतिनिधि शासक के स्थायित्व हेतु संघर्ष अवश्यम्भावी हो गया। प्रतिहार अभिलेखों के अनुसार मुंगेर के समीप एक भीषण युद्ध हुआ, जिसमें बंगाधिपति की पराजय हुई,[2] किन्तु नाग भट द्वितीय को भी अपने पिता की भांति राष्ट्रकूट शासक गोविन्द तृतीय के द्वारा परास्त होना पड़ा। इस प्रकार उसका साम्राज्य निर्माण का स्वप्न राष्ट्रकूट आक्रमण से नष्ट हो गया।[3] राष्ट्रकूट अभिलेखों के अनुसार धर्मपाल और चक्रायुध ने स्वयं ही गोविन्द तृतीय के सम्मुख आत्म-समर्पण कर दिया।[4] यह भी सम्भव है कि गोविन्द तृतीय ने उन्हीं के आग्रह से नाग भट की वर्धमान शक्ति से उन्हें मुक्त करने के लिए उत्तरी भारत पर आक्रमण किया हो, तथा इसी कारण उन्होंने राष्ट्रकूटों की सत्ता स्वीकार की हो। किन्तु गोविन्द तृतीय के दक्षिण लौट जाने पर धर्मपाल ने पुनः अपने साम्राज्य विस्तार के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये। लगभग ३२ वर्ष के दीर्घ शासन के उपरान्त उसने अपने पुत्र देवपाल के निमित्त एक विशाल एवं संगठित साम्राज्य छोड़ा।[5] वह एक प्रतापी सम्राट् था, तथा एक विशाल साम्राज्य का अधिपति था; इसका अनुमान उसकी 'परमेश्वर', 'परमभट्टारक' तथा 'महाराजाधिराज' आदि उपाधियों से सहज ही लगाया जा सकता है। तिब्बती परम्परा के अनुसार प्रशासन तथा सुव्यवस्था स्थापित करने के अतिरिक्त धर्मपाल ने बौद्ध धर्म को आश्रय दिया तथा विक्रमशील विहार का भी संस्थापन किया।[6] इसके अतिरिक्त उसने सोमपुरी (राजशाही), ओदन्तपुरी (बिहार) आदि में भी विहारों का निर्माण कराया।[7] बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार से जनता की मनोवृत्ति में क्या क्या परिवर्तन हुए तथा उनसे सामाजिक दशा पर क्या प्रभाव पड़ा, यह अध्ययन का एक महत्वपूर्ण विषय है।

देवपाल द्वारा पाल शक्ति का प्रसार :

देवपाल (८१०–८५० ई०) ने पाल साम्राज्य का योग्यतापूर्वक संरक्षण किया।

---

१. इण्डियन कल्चर, भाग ४, पृ० २६६।
२. भोज का ग्वालियर अभिलेख—श्लोक १०; (ऐपि० इंडि०, भाग १८, पृ० ११२)।
३. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ४८।
४. संजन ताम्रपत्र, ऐप० इंडि०, भाग १८, पृ० २५३।
५. देवपाल का मुंगेर ताम्रपत्र (ऐपि० इंडि०, भाग १८, श्लोक १२)।
६. देखिए, मजूमदार, हिस्ट्री ऑफ बंगाल; बाग १, पृ० ११५।
७. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ४९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बादल स्तम्भ लेख[1] के अनुसार उसने हिमालय से विन्ध्य पर्यन्त तथा पूर्वी समुद्र से लेकर पश्चिमी समुद्र तक के समस्त क्षेत्र से कर वसूल किया। मुंगेर ताम्रपत्र के अनुसार उसके विजय अभियान पश्चिम में काम्बोज तथा दक्षिण में विन्ध्य तक हुए, तथा उसने उत्कलों को भी परास्त किया था। उसने प्राग्ज्योतिष पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। हूणों का दर्प दमन किया तथा द्रविड़ एवं गुर्जरों के अभिमान को दलित किया।[2] देवपाल ने इस प्रकार अपनी शक्ति का प्रसार किया, जिसमें उसकी सहायता उसके चचेरे भाई जयपाल ने की। किन्तु उत्कल एवं प्राग्ज्योतिष अधिक दिनों तक उसके आधीन न रहे और शीघ्र ही उन्होंने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया।

जिन गुर्जर शासकों से देवपाल का संघर्ष हुआ वे प्रतिहार ही थे। ऐसा सम्भव है कि धर्मपाल की मृत्यु के पश्चात नागभट द्वितीय ने अपनी शक्ति का पुनः प्रसार किया हो तथा अपनी राजधानी कन्नौज में स्थापित भी की हो। किन्तु देवपाल ने फिर से पालों के प्रभुत्व का वर्धन किया तथा प्रतिहारों को परास्त करने के पश्चात हूण तथा काम्बोज प्रदेशों पर आक्रमण किया। नागभट के पुत्र रामभद्र के साम्राज्य पर भी देवपाल ने आक्रमण किया।[3]

अगले प्रतिहार शासक भोज को देवपाल के विरुद्ध प्रारम्भिक सफलता मिली, किन्तु बाद में उसे भी मुँह की खानी पड़ी, और देवपाल के शासनकाल में वह अपनी सत्ता सुदृढ़ न कर सका। इस प्रकार देवपाल ने सफलतापूर्वक प्रतिहारों की तीन पीढ़ियों से संघर्ष किया।[4]

यहाँ इस विषय में मतभेद है कि देवपाल द्वारा परास्त द्रविड़ शासक कौन था? क्या वह राष्ट्रकूट शासक अमोघवर्ष था, अथवा पांड्य शासक श्रीमार श्री वल्लभ था?[5] मुँगेर ताम्रपत्र के अनुसार उसका साम्राज्य हिमालय से सेतुबन्ध-रामेश्वर तक विस्तृत था। किन्तु यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होता है।

देवपाल के शासनकाल में राष्ट्रकूटों ने उत्तरी भारत में हस्तक्षेप नहीं किया। उसने अपनी सेना सिन्धु नद तक पहुंचा दी, तथा उत्तरी भारत में सर्वोच्च शक्ति स्थापित की।[6] इससे स्पष्ट होता है कि ऐसी ही राजनीतिक एवं सैनिक शक्ति के कारण मुसलमान विजेता इस काल में सिन्धु नद से भारत में आगे प्रवेश न कर सके।

देवपालने लगभग ४० वर्ष राज्य किया। वह अपने पिता की भांति बौद्ध धर्म का अनुयायी एवं आश्रयदाता था। पाल साम्राज्य के स्वर्णिम दिनों का वृत्तान्त ८५१ ई० के अरब व्यापारी सुलेमान ने दिया है।[7] पाल राज्य को उसने रुहमी कहकर सम्बोधित किया है, जिसका तात्पर्य स्पष्ट नहीं है।[8] उसके अनुसार पाल शासक गुर्जर तथा राष्ट्रकूटों से युद्ध

१. श्लोक ५ (ऐपि० इंडि०, भाग २, पृ० १६०)।
२. मुगेर ताम्रपत्र, श्लोक १३; दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ५०।
३. देखिए, त्रिपाठी, हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, पृ० २६३।
४. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ५१।
५. वही, पृ० ५१।
६. वही, पृ० ५२।
७. इलि० डाउ०, भाग १, पृ० ५, २५।
८. आई० एच० क्यू०, भाग १८, पृ०, २३२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया करता था, तथा उसकी सेना उसके शत्रुओं की सेना से विशाल थी। उसमें ५० हजार हाथी थे तथा १० से १५ हजार तक पुरुष सेना में वस्त्रादि धोते थे।

तिब्बती सूत्रों के अनुसार पाल साम्राज्य पर तिब्बत के शासकों का प्रभाव विशेषकर ७५०-८५० ई० तक सिद्ध होता है। परन्तु यह तो मानना कठिन है कि तिब्बत के शासकों ने पालों के साम्राज्य को जीत लिया था तथा धर्मपाल ने उनकी आधीनता स्वीकार की थी।[1]

देवपाल के दुर्बल उत्तराधिकारी एवं प्रतिहार शक्ति का प्रसार :

देवपाल के पश्चात विग्रहपाल सिंहासन पर बैठा, किन्तु तीन या चार वर्ष के शासन के पश्चात उसने सन्यास ग्रहण कर लिया। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी नारायणपाल ने ५० वर्ष से अधिक राज्य किया। किन्तु वह भी शान्तिप्रिय एवं धार्मिक शासक था।[2] इन दोनों के शासन काल में पाल साम्राज्य धराशायी हो गया। राष्ट्रकूटों ने ८६० ई० के कुछ समय पश्चात पाल शासकों को पराजित किया।[3] प्रतिहारों ने पाल शासकों की क्षीणता से लाभ उठा कर अपनी शक्ति बढ़ाई भोज और महेन्द्रपाल दोनों ने ही पूर्व की ओर अपनी शक्ति का प्रसार किया। नारायणपाल के हाथ से मगध निकल गया तथा कुछ समय के लिए उत्तरी बंगाल भी महेन्द्रपाल के अधिकार में चला गया। दक्षिणी बिहार में महेन्द्रपाल के बहुत से अभिलेख प्राप्त हुए हैं, तथा एक अभिलेख पहाड़पुर में भी मिला है,[4] जिससे उसके साम्राज्य विस्तार का ज्ञान होता है। प्रतिहारों की विजय से प्रभावित होकर पालों के आधीन शासकों ने उनकी सत्ता को तिरस्कृत कर दिया। आसाम के शासक हर्जर ने महान उपाधियाँ धारण कीं तथा कई विजयें भी प्राप्त कीं। शैलोद्भवों ने भी उड़ीसा में अपनी सत्ता स्थापित की।[5] इस प्रकार पाल साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। किन्तु अपने राज्य के ५४वें वर्ष के कुछ पूर्व (अर्थात् ९०८ ई०) नारायणपाल ने पुनः उत्तरी बंगाल तथा दक्षिणी बिहार पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। ऐसा करने में उसे इस बात से सम्भवतः बड़ी सहायता मिली कि राष्ट्रकूटों ने प्रतिहारों पर आक्रमण कर दिया। किन्तु राष्ट्रकूट शासक कृष्ण द्वितीय के अनुसार उसने न केवल प्रतिहारों को ही हराया, अपितु गौड़ों को भी परास्त किया। यह सम्भव है कि नारायणपाल भी उसके द्वारा पराजित हुआ हो।[6] किन्तु पुनः शान्ति हो गई और नारायणपाल के पुत्र राज्यपाल के साथ राष्ट्रकूट तुंग की कन्या का विवाह हो गया। यह राष्ट्रकूट तुंग सम्भवतः कृष्ण द्वितीय का पुत्र जगतुंग था।[7]

---

१. हिस्ट्री ऑफ़ बंगाल, भाग १, पृ० १२४; दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ५२।
२. इडि० एन्टि०, भाग ४, पृ० ११०।
३. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ५३।
४. पालस् ऑफ बंगाल, पृ० ६४; एम०ए० एस० आई०, सं० ५५ पृ० ७५।
५. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ५३।
६. देवली ताम्रपत्र, (ऐपि० इंडि०, भाग ५, पृ० १९३; पिथापुरम अभिलेख, श्लोक ११ (ऐपि० इंडि०, भाग ४, पृ० ४०)
७. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ५३; देखिए, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग १, पृ० १३१, टि० ४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाल साम्राज्य का पतन :

९०८ ई० के लगभग नारायणपाल की मृत्यु हुई, तथा उसका पुत्र राज्यपाल उत्तराधिकारी के रूप में सिंहासन पर बैठा। राज्यपाल तथा उसके उत्तराधिकारियों गोपाल द्वितीय तथा विग्रहपाल द्वितीय के शासनकाल में पाल राज्य उत्तरोत्तर क्षीण होता चला गया। प्रतिहार साम्राज्य के अन्त से पालों को अनवरत युद्धों से विश्राम अवश्य मिला, किन्तु वे भी नवोदित शक्तियों के द्वारा विशेष रुप से संतप्त हुए। चन्देलों और कलचुरियों के अभिलेखों से विदित होता है कि उन्होंने गौड़, राढ़, अंग तथा बंगाल के शासकों को परास्त किया। इन भिन्न-भिन्न प्रदेशो के उल्लेख से यह सिद्ध होता हैं कि पाल साम्राज्य कई छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो गया।[1]

ऐसे दो राज्यों के विषय में हमें स्पष्ट ज्ञान है। पश्चिमी बंगाल में काम्बोज बंश का संस्थापन हुआ।[2] चटगांव में प्राप्त एक ताम्रपत्र में हरिकेश के बौद्ध शासक महाराजाधिराज कान्तिदेव का उल्लेख है।[3] कान्तिदेव के पश्चात् पूर्वी बंगाल में हम कुछ ऐसे शासकों को राज्य करते हुए पाते हैं, जिनका नामान्त चन्द्र से होता था।

गोपाल द्वितीय ने कुछ समय पूर्वी तथा उत्तरी बंगाल पर शासन किया।[4] किन्तु शनैः शनैः उसके उत्तराधिकारी विग्रहपाल द्वितीय के हाथों से बंगाल निकल गया और उनका राज्य क्षेत्र केवल बिहार में ही सीमित रह गया। विग्रहपाल का पुत्र एवं उत्तराधिकारी महीपाल प्रथम ९८२ ई० के लगभग गद्दी पर बैठा। उसने पाल वंश का पुनरुत्थान किया केवल ३ वर्ष के अन्दर ही पूर्वी एवं उत्तरी बंगाल पर पुनः अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।[5] इस प्रकार पाल वंश पूर्वी भारत में लगभग १५० वर्ष और चला।

पालो एवं चोलों का संघर्ष :

महीपाल प्रथम के राज्यकाल में सबसे महत्वपूर्ण घटना बंगाल पर राजेन्द्र चोल का आक्रमण था। यह संघर्ष १०२१ ई० से १०२३ ई० तक चला। चोल सेनापति ने महीपाल को परास्त कर उत्तर राढ़ पर अधिकार कर लिया,[6] किन्तु चोलों का यह अभियान लूट-मार के रूप तक ही सीमित रहा।[7] चोल विजय ने हानि तथा सार्वजनिक यातना अवश्य उत्पन्न की, किन्तु देश की राजनीतिक दशा में इससे कोई परिवर्तन नहीं हुआ। ऐसा भी प्रतीत होता है कि चोल आक्रमण के समय दण्डभुक्ति, दक्षिणी राढ़ तथा बंगाल स्वतंत्र राज्य थे, और मही-

---

१. दि एज ऑफ हम्पीरियल कन्नौज, पृ० ५३।
२. वही, पृ० ५४।
३. ऐपि० इंडि०, भाग २६, पृ० ३१३।
४. गोपाल द्वितीय का मन्धुक अभिलेख; इंडि० हि० क्वा०, भाग २८, पृ० ५५; जाजिलपारा ताम्रपत्र-जे० ए० एस० एल०, भाग १७, पृ० १३७।
५. महीपाल का बानगढ़ अभिलेख-ऐपि० इंडि०, भाग १४, पृ० ३२४।
६. हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग १, पृ० १३८।
७. के० ए० नीलकण्ठ शास्त्री, चोलाज, पृ० २४७; प्रो० आयंगर, जे० आर० ए० एस० १९३७, पृ० ८५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाल का इन पर प्रशासनिक अधिकार नहीं था।[१] उत्तरी तथा दक्षिणी बिहार पर महीपाल का राज्य बना रहा।

पाल और कलचुरियों में संघर्ष :

अपने शासन के अन्तिम समय में महीपाल को कलचुरि शासक गांगेयदेव से भी युद्ध करना पड़ा। कलचुरि अभिलेखों के अनुसार अंग के शासक की हार हुई।[२] बैहाक़ी के अनुसार बनारस पर १०३४ ई० में अहमद नियाल्तिग़ीन के आक्रमण के समय कलचुरि शासक का अधिकार था।[३] महीपाल ने महमूद गजनवी के विरुद्ध शाहीय शासकों की कोई सहायता नहीं की, जिसके लिए उसकी कटु आलोचना की जाती है। कुछ विद्वानों का मत है कि उसने हिन्दू धर्म के विरुद्ध होने के कारण तथा हिन्दू-राजाओं के प्रति ईर्ष्यालु होने के कारण ऐसा नहीं किया।[४] परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि उसे अपनी राज्यश्री का पुनःसंस्थापन करना था, तथा उसे राजेन्द्र चोल एवं गांगेयदेव से भी टक्कर लेनी पड़ी।[५] महीपाल के पुत्र एवं उत्तराधिकारी नयपाल ने १०३८ ई० में सिंहासन ग्रहण किया और लगभग १०५५ ई० तक शासन किया। कलचुरि शासक कर्ण अथवा लक्ष्मीकर्ण के साथ उसका भीषण युद्ध हुआ।[६] तिब्बती साहित्य में भी उसका उल्लेख मिलता है।[७] प्रारम्भ में कर्ण ने नयपाल को परास्त कर दिया, किन्तु बाद में सम्राट कर्ण स्वयं नयपाल के हाथों पराजित हुआ। किन्तु अतिस दीपंकर के परिश्रम के परिणामस्वरूप दोनों राजाओं में सन्धि हो गई, जिसके अनुसार दोनों ने एक दूसरे के विजित भू-भागों तथा धनादि लौटाने का समझौता कर लिया।[८]

विग्रहपाल तृतीय के शासनकाल (१०५५-१०७० ई०) में कर्ण ने पालों पर पुनः आक्रमण कर दिया। उसने परमारों एवं चन्देलों को परास्त कर अपना साम्राज्य महानदी की ऊपरी घाटी तक विस्तृत कर लिया।[९] कलचुरि अभिलेखों के अनुसार वंग कर्ण के भय से कम्पायमान हो उठा तथा गौड़ के शासक ने उसका अभिनन्दन किया।[१०] पाईकोर (वीर-भूमि)

---

१. हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग १, पृ० १३९।
२. बोहरवा ताम्रपत्र-ऐपि० इंडि०, भाग ११, पृ० १४३, श्लोक १७।
३. हिस्ट्री ऑफ बंगाल, पृ० १४१, टि० ३।
४. रमा प्रसाद चंदा-गौड़ राजमाला, पृ० ४१-४३; आर० डी० बनर्जी-बांगालार इतिहास, भाग १, (द्वि० सं०), पृ० २५६।
५. हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग १, पृ० १४१-४२; एच० सी० राय, डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग १, पृ० ३२४; इंडि० हि० क्वा०, भाग १५, पृ० ५०७।
६. भेराघाट अभिलेख-ऐपि० इंडि०, भाग २, पृ० ११, १५; कर्णवेलि अभिलेख, इंडि० एन्टी०, भाग १८, पृ० २१५-२१७; रीवा प्रस्तर अभिलेख, ऐपि० इंडि०, भाग २४, पृ० ११२।
७. हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग १, पृ० १४४, टि० ३।
८. वही, पृ० १४४-१४५।
९. एच० सी० राय—डी० एच० एन० आई०, भाग २, पृ० ७७९।
१०. हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग १, पृ० १४६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्तम्भ लेख[1] से सिद्ध होता है कि कर्ण पश्चिमी बंगाल की सीमा तक निश्चय ही पहुँच गया था, परन्तु रामचरित के अनुसार विग्रहपाल तृतीय ने कर्ण को परास्त किया तथा उसकी पुत्री यौवनश्री से विवाह सम्पन्न किया।[2] इस प्रकार सम्भवतः सन्धि हो गई। गौड़ का शासक सम्भवतः पाल शासक था किन्तु यह बात संदिग्ध है कि बंग का शासक पाल था अथवा नहीं? महीपाल ने यद्यपि पूर्वी बंगाल चन्द्रों से छीन लिया था, तथापि वे लोग दक्षिणी बंगाल में शासन करते रहे। पूर्वी बंगाल का भी कुछ भू-भाग कालान्तर में चन्द्र राजाओं ने हस्तगत कर लिया।[3] यही चन्द्र शासक अथवा उनके उत्तराधिकारी वर्मन कर्ण के आक्रमण के समय बंग पर शासन कर रहे होंगे।[4]

पालों और चालुक्यों का संघर्ष :

नयपाल और विग्रहपाल तृतीय निःसन्देह पश्चिमी बंगाल में अपनी शक्ति खो रहे थे।[5] पूर्वी बंगाल पालों के हाथ से निकल भी चुका था, और इस प्रकार बंगाल कई छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। पाल कलचुरियों के साथ संघर्षरत रहने के कारण बंगाल पर पुनः अपना प्रभुत्व स्थापित न कर सके। ग्यारहवीं शताब्दी के तृतीय चरण में कर्ण को उसके पड़ोसी शासकों ने परास्त कर दिया।[6] परन्तु कलचुरि शक्ति के ह्रास से पाल शासक लाभ न उठा सके, क्योंकि उन पर कर्नाट के चालुक्यों ने आक्रमण कर दिया। विल्हण के अनुसार विक्रमादित्य षष्ठम ने अपने पिता सोमेश्वर प्रथम के शासन काल में ही गौड़ एवं कामरूप के शासकों को पराजित किया।[7] यह अभियान १०६८ ई० के आस-पास हुआ होगा।[8] चालुक्य अभिलेखों में बंगाल पर किये गये आक्रमणों का भी उल्लेख है।[9] इन आक्रमणों के परिणाम स्वरूप राढ़ अथवा पश्चिमी बंगाल पर सेन नामक एक कर्नाट क्षत्रिय राजवंश का अधिकार हो गया तथा सिंहपुर के वर्मनों का अधिकार बंग अथवा पूर्वी बंगाल पर हो गया।[10]

पालों एवं सोमवंशियों में संघर्ष :

ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में उड़ीसा के सोमवंशीय शासक महाशिव गुप्त ययाति ने

---

१. ए० एस० आई०, १९२१-२२, पं० ११५; वीर भूमि विवरण, द्वारा एस० के० मुखोपाध्याय, २-९।
२. १।९, टीका।
३. मजूमदार, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग १, पृ० १४६।
४. वही।
५. मजूमदार, हिस्ट्री ऑफ़ बंगाल, भाग १, पृ० १४६।
६. डी० एच० एन० आई०, भाग २, वृ० ७८०।
७. विक्रमांक देव चरित, ३, ७४।
८. मजूमदार, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग १, पृ० १४७।
९. वही, पृ० १४७, टि० ४।
१०. वही, पृ० १४७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी बंगाल पर आक्रमण किया।[1] इस प्रकार इस प्रहार से बंगाल ध्वस्त हो गया। उड़ीसा के एक अन्य शासक उद्योत्त केशरी के कथनानुसार उसने भी गौड़ों को पराजित किया।[2]

पश्चिम तथा दक्षिण से किये गये आक्रमणों ने पालों की शक्ति तथा साम्राज्य को नष्ट कर दिया। उनकी शक्ति बंगाल से तो उखड़ ही चुकी थी, मगध में भी प्रतिबिम्बमात्र शेष रह गई थी।[3]

पाल वंश का अन्त एवं नवीन शक्तियों का अभ्युदय :

विग्रहपाल तृतीय के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र महीपाल द्वितीय सिंहासन पर बैठा। परन्तु विद्रोहियों ने उसकी हत्या कर दी, तथा वरेन्द्री का भू-भाग कैवर्त जाति के दिव्य नामक पुरुष के अधिकार में आ गया। महीपाल के भाई रामपाल ने पुनः वरेन्द्री पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया, जिसका उल्लेख संस्कृत काव्य रामचरित में उपलब्ध होता है।[4] इसी ग्रन्थ में उल्लिखित उसके सहायकों के विवरण से बंगाल के विभाजन एवं पालों की अधोगति का आभास होता है।[5] रामपाल ने पाल शक्ति के पुनरुत्थान का भरसक प्रयास किया, तथा वह एक प्रभावशाली शासक बन गया, क्योंकि रामचरित के अनुसार पूर्व अर्थात् पूर्वी बंगाल में वर्मन शासक ने उसे भेंट इत्यादि दी थी।[6] कामरूप पर भी उसका आधिपत्य पुनः स्थापित हो गया।[7] कलिंग पर्यन्त उसने अपनी विजय पताका फहरायी।[8] उड़ीसा में पालों का पूर्वी गंग शासकों के साथ संघर्ष हुआ। यह सम्भव है कि रामपाल ने चोल शासक कुलोतुंग के साथ सन्धि भी की हो, जिससे वह पूर्वी गंगों से तथा उत्तरकालीन चालुक्यों से अपनी रक्षा कर सके।

इसी समय पश्चिमी बंगाल में सेन तथा मिथिला में नान्यदेव ने अपने वंशों की स्थापना की। रामपाल ने सेन शासकों से संघर्ष भी किया, परन्तु अन्ततोगत्वा उन्होंने पालों को बंगाल से निष्कासित कर दिया। नान्यदेव ने भी पालों को अपार क्षति पहुंचाई।[9] रामपाल से मिथिला छीन कर वह १०९७ ई० के लगभग वहाँ के सिंहासन पर आसीन हुआ।

रामपाल का संघर्ष गाहड़वालों से भी हुआ। रामपाल की मृत्यु लगभग ७० वर्ष की अवस्था में हुई।[10] वह पाल वंश का अन्तिम जाज्वल्यमान रत्न था। उसने ४२ वर्ष के लगभग शासन किया। रामपाल के पश्चात् पाल वंश का दीपक शीघ्र ही बुझ गया। उनके सामन्त

---

१. सोनपुर अभिलेख, जे० बी० ओ० आर० एस०, भाग २, पृ० ४९–५९।
२. मजूमदार, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग १, पृ० १४८, टि० ४।
३. मजूमदार, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग १, पृ० १४८।
४. वही, पृ० १५०।
५. वही, पृ० १५६, १५७, १५८।
६. वही, पृ० १६०।
७. वही, पृ० १६०।
८. वही पृ० १६१।
९. मजूमदार, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग १, पृ० १६४-६५।
१०. वही, पृ० १६६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शासकों ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया। कुमारपाल, गोपाल तृतीय एवं मदनपाल (११२०-११५५ ई०) के शासन-काल में पाल सत्ता समाप्त हो गई। बाह्य आक्रमण तथा आन्तरिक विद्रोह इस पतन के कारण बने। मदनपाल महान् पाल वंश का अन्तिम ज्ञात शासक था। कुमारपाल के मंत्री वैद्यदेव ने प्राग्ज्योतिष, भुक्ति तथा कामरूप मंडल पर अपना अधिकार स्थापित कर दिया।[1] पूर्वी बंगाल में वर्मन वंश सत्तारूढ़ हो गया। पूर्वी गंग शासक ने भी ११३५ ई० से कुछ पूर्व मिदनापुर तक के समस्त भू-भाग पर छापा मारा तथा हुगली जिले तक जा पहुँचा।[2] पालों के एवं पूर्वी गंगों के संघर्ष का लाभ उठाकर दक्षिणी बंगाल में सेन शासकों ने अपनी शक्ति का विस्तार किया।

राष्ट्रकूट :

दन्तिदुर्ग (७३३-७५८ ई०)[3] द्वारा प्रतिष्ठापित राष्ट्रकूट वंश के शासकों ने उत्तरी भारत, पर समय-समय पर आक्रमण कर प्रतिहार शक्ति को अन्त में जर्जर कर दिया। परिणाम स्वरूप मध्य देश में केन्द्रीय राजनीतिक शक्ति का ह्रास हो गया तथा प्रतिहारों के सामन्त स्वतंत्र हो चारों ओर उठ खड़े हुए।

दन्तिदुर्ग द्वारा राष्ट्रकूट वंश की स्थापना; चालुक्यों और अरबों का संघर्ष तथा राष्ट्रकूट शक्ति का अभ्युदय :

दन्तिदुर्ग केवल नाम मात्र के लिए ही चालुक्य शासक विक्रमादित्य द्वितीय के अधीन था और सम्भवतः उसकी प्रारम्भिक विजयें अपने अधिपति की अधीनता में ही हुई। विक्रमादित्य द्वितीय तथा उसके आधीन गुजरात के शासक पुलकेशिन का संघर्ष जब अरब आक्रमणकारियों से हुआ तो दन्तिदुर्ग ने भी ७३८ ई० के लगभग नवसार के इस युद्ध में अग्रगण्य भाग लिया। मुसलमान बुरी तरह परास्त हुए तथा उन्होंने पुनः गुजरात पर आक्रमण का प्रयत्न नहीं किया।[4] पुलकेशिन तथा दन्तिदुर्ग के राज्य क्षेत्र क्रमशः गुजरात तथा बरार में थे।[5] इसी कारण कालान्तर में इन्हीं शासकों को मुसलमान आक्रमणकारियों से निरन्तर लोहा लेना पड़ा।

दन्तिदर्ग ने अपने चालुक्य अधिपति की सैनिक सहायता कांची के अभियान में भी की थी, तथा ७४३ ई० के लगभग पल्लवों पर किये गये आक्रमण में भी उसका महत्वपूर्ण योगदान रहा।[6] ७४७ ई० में विक्रमादित्य द्वितीय की मृत्यु हो गई, तथा दन्तिदुर्ग ने अपना साम्राज्य विस्तार प्रारम्भ किया। इसी राज्य प्रसार की आकांक्षा से उसने नन्दिपुरी के गुर्जर राज्य को हस्तगत कर अपने भतीजे कर्क को वहाँ का शासक नियुक्त किया।[7] तत्पश्चात् मालवा पर

---

१. वही, पृ० १६८।
२. वही, पृ० १६८।
३. अल्तेकर—दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० १, ३, १७, टि० ५।
४. अल्तेकर, दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० २।
५. इंडि० एन्टि०, २०, पृ० १००; देखिये, अल्तेकर, राष्ट्रकूटाज एण्ड देअर टाइम्स, पृ० ३०।
६. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० २।
७. वही।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिकार कर उसकी राजधानी उज्जैनी में हिरण्यगर्भ दान किया।[1] उसके अन्य अभियानों द्वारा पूर्वी मध्य प्रदेश पर भी उसका आतंक स्थापित हो गया। ७५० ई० तक वह मध्य तथा दक्षिणी गुजरात एवं मध्य प्रदेश और बरार का अधिपति बन चुका था।[2]

कीर्तिवर्मन द्वितीय चालुक्य ने अपने सामन्त की वर्धमान शक्ति को सीमित करना चाहा, जिसके परिणामस्वरूप खानदेश में किसी स्थान पर युद्ध हुआ। दन्तिदुर्ग विजयी हुआ, और महाराष्ट्र छीन लिया।[3] इस प्रकार ७५३ ई० के अन्त तक दन्तिदुर्ग सम्पूर्ण महाराष्ट्र का स्वामी बन गया। इन विजयों के उपरान्त उसने महाराजाधिराज, परमेश्वर, परम-भट्टारक आदि उपाधियों से अपने को विभूषित किया।[4] ७५८ ई० से कुछ पूर्व उसकी मृत्यु हो गई। यह उसके उत्तराधिकारी कृष्ण प्रथम की पहली विदित तिथि है।[5]

राष्ट्रकूट शक्ति का प्रसार :

कृष्ण प्रथम ने दन्तिदुर्ग द्वारा स्थापित साम्राज्य को ज्यों का त्यों ही नहीं बनाये रखा, अपितु उसके प्रसार का भरसक प्रयास भी किया। ७६० ई० के लगभग चालुक्य साम्राज्य का सूर्य अस्त हो गया। कृष्ण ने मैसूर के गंगों से और बेंगी के चालुक्यों से लोहा लिया। हैदराबाद राज्य का समस्त भू-भाग उसके अधिकार में आ गया। दक्षिणी कोकण पर भी उसने आधिपत्य स्थापित कर लिया। मध्य प्रदेश के समस्त मराठी भाषी क्षेत्र पर उसका अधिकार हो गया।[6]

कृष्ण प्रथम की मृत्यु ७७३ ई० के लगभग हो गई,[7] तथा उसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी गोविन्द द्वितीय सिंहासन पर बैठा। परन्तु वह अत्यन्त विलासी शासक था और राजकाज से जी चुराता था।[8] अतः राज्य का समस्त भार उसके छोटे भाई ध्रुव पर आ पड़ा। ध्रुव ने शासन को हस्तगत करने का प्रयास किया, अतः गोविन्द ने रुष्ट होकर उसे राजकार्यों से निवृत्त कर दिया।[9] चूंकि गोविन्द एक अत्यन्त दुर्बल शासक था, अतः ध्रुव के अलग होते ही साम्राज्य की शासन व्यवस्था बिगड़ गई और सामन्तों ने विद्रोह के झण्डे खड़े कर दिये। ध्रुव ने अवसर का लाभ उठाया और स्वयं विद्रोही के रूप में अपने भाई गोविन्द के विरुद्ध युद्ध भूमि में आ डटा। गोविन्द पराजित हुआ तथा राष्ट्रकूट सिंहासन पर ध्रुव का अधिकार हो गया। वह ७८० ई० के समाप्त होने के पूर्व सत्तारूढ़ हो चुका था।[10] ध्रुव ने

---

१. वही।
२. वही।
३. ऐपि० इंडि०, २५ पृ० २५-३१।
४. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० २।
५. वही, पृ० ३, टि० १३।
६. वही, पृ० ३।
७. अल्तेकर, राष्ट्रकूटज़ एण्ड देयर टाइम्स, पृ० ४५।
८. ऐपि० इंडि०, ४, पृ० २७८ और आगे; इंडि० एन्टि०, १२ पृ० २६३ और आगे।
९. अल्तेकर, राष्ट्रकूटज़ एण्ड देअर टाइम्स, पृ० ५०।
१०. दि एज आफ इम्पीरियल कन्नौज पृ० ४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने विरुद्ध गोविन्द को सहायता करने वाले समस्त शासकों को दण्डित किया। वह दक्षिण का निर्विरोध अधिपति बन गया, तथा उसकी महत्वाकांक्षा ने उसे उत्तरी भारत की विजय के लिए भी प्रेरित किया।[1]

राष्ट्रकूटों का पालों तथा प्रतिहारों से संघर्ष :

हर्ष के युग से कन्नौज उत्तरी भारत की राजनीति का प्रमुख केन्द्र बन गया था, किन्तु यहां के तत्कालीन शासक इन्द्रायुध की शक्ति सर्वथा क्षीण हो चुकी थी। बंगाल के पालों ने तथा राजपूताने के प्रतिहारों ने उत्तरी भारत के इस महत्वपूर्ण नगर कन्नौज पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का भरसक प्रयत्न किया। वत्सराज ने कन्नौज विजय पर वहां के शासक इन्द्रायुध को अपनी आधीनता में शासन करने की अनुमति दे दी। वत्सराज की इस सफलता से क्रुद्ध होकर पाल शासक धर्मपाल ने दोआब पर आक्रमण कर दिया, परन्तु वह वत्सराज द्वारा पराजित हुआ और वत्सराज ने पाल नरेश के राजछत्र छीन लिए।[2] धर्मपाल ने पुनः एक बार उत्तरी भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने का प्रयास किया। किन्तु ठीक इसी समय राष्ट्रकूट शासक ध्रुव ने भी कन्नौज पर आक्रमण कर अपनी महत्वाकांक्षा की तृप्ति करनी चाही। उसने नर्मदा पार कर मालवा पर अधिकार कर लिया तथा झांसी के समीप वत्सराज से उसका भीषण संघर्ष हुआ। वत्सराज की पराजय हुई, तथा वह राजपूताने की मरुभूमि में शरण लेने के लिए बाध्य हो गया। इस विजय से उत्साहित होकर ध्रुव ने धर्मपाल पर भी आक्रमण कर दिया। धर्मपाल उसके भयावह आक्रमण का मुक़ाबला न कर सका और युद्ध भूमि से भाग खड़ा हुआ।[3] विजय के बाद भी ध्रुव के पास समय का अत्यन्त अभाव था, अतः वह कन्नौज पर अधिकार करने न जा सका। एक तो वह वृद्ध हो चुका था; तथा दूसरे अपने घर से बहुत दूर निकल आया था। साथ ही उसके समक्ष अपने उत्तराधिकारी के चयन की भी समस्या थी। अतः वह ७९० ई० के लगभग दक्षिण लौट गया।[4]

इन विजयों के फलस्वरूप राष्ट्रकूटों की शक्ति एवं सत्ता इस समय अपनी पराकाष्ठा पर थी। गंग, पल्लव, प्रतिहार तथा पाल इत्यादि समस्त राजवंश राष्ट्रकूटों से परास्त हुए। ध्रुव ने अपने कनिष्ठ एवं योग्यतम पुत्र गोविन्द तृतीय को अपना उत्तराधिकारी चुना[5] तथा उसे सिंहासन सौंप कर स्वयं अवकाश ग्रहण कर लिया। एक अभिलेख के अनुसार गोविन्द तृतीय अपने समस्त भाइयों में सर्वाधिक योग्य होने के कारण ही पिता द्वारा शासक नियुक्त किया

---

१. बहुत से अभिलेखों में ध्रुव तथा गोविन्द तृतीय की विजयों का उल्लेख है। देखिए, गोविन्द तृतीय के राधनपुर तथा बनी अभिलेख, इंडि० एन्टि०, भाग ११, पृ० १५७; बड़ौदा अभिलेख–इंडि० एन्टि०, भाग १२, पृ० १५८; अमोघवर्ष के नीलगुन्ड, सिरूर तथा संजन अभिलेख—ऐपि० इंडि०, भाग ६, पृ० ९८; भाग ७, पृ० २०३; भाग १८, पृ० २४४।

२. ऐपि० इंडि०, खं० १८, पृ० २४४, २५२।

३. अल्तेकर, राष्ट्रकूटज़ एण्ड देअर टाइम्स, पृ० ५७।

४. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ५।

५. ऐपि० इंडि०, ४, पृ० २४२ और आगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया था। गोविन्द तृतीय ने अपने कृत्यों द्वारा इस सत्य को प्रमाणित कर दिया। वह लगभग ७९३ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ। कुछ समय के उपरान्त उसके बड़े भाई स्तम्भ[1] ने बारह अन्य सामन्त शासकों के प्रोत्साहन एवं सहयोग से गोविन्द के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, परन्तु वह परास्त हुआ। गोविन्द ने गंगों एवं पल्लवों को भी अपनी आधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य कर दिया। वेंगी का शासक विष्णुवर्धन चतुर्थ उसका नाना था। अतः गोविन्द को उस ओर से कोई भय नहीं था। दक्षिण में अपना आधिपत्य स्थापित कर उसने उत्तर की ओर दृष्टि फेरी। कन्नौज के सिंहासन पर इस समय धर्मपाल की कृपा से चक्रायुध आसीन था। परन्तु शीघ्र ही वत्सराज के उत्तराधिकारी नाग भट द्वितीय ने धर्मपाल एवं चक्रायुध को परास्त कर कनौज पर पुनः अधिकार कर लिया।[2] किन्तु इसी समय पाल-प्रतिहार संघर्ष में राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय ने हस्तक्षेप किया। भोपाल तथा झांसी होता हुआ वह कन्नौज की ओर बढ़ा। नाग भट ने भी आगे बढ़ कर बुन्देल खण्ड में उसके तूफानी आक्रमण को रोकना चाहा, परन्तु विजय श्री ने राष्ट्रकूट शासक गोविन्द का ही वरण किया, और पराजित नागभट राजपूताने की ओर भाग निकला। कन्नौज के पूर्व शासक चक्रायुध ने गोविन्द की आधीनता स्वीकार कर ली तथा आत्म समर्पण कर दिया। अतः संतुष्ट हो गोविन्द ने कन्नौज पर आक्रमण का विचार त्याग दिया। धर्मपाल ने भी उसकी आधीनता स्वीकार कर ली,[3] क्योंकि वह जानता था कि गोविन्द शीघ्र ही दक्षिण लौट जायगा। उत्तरी भारत के तत्कालीन अन्य शासकों को भी उसके समक्ष नतमस्तक होना पड़ा। उसकी विजयों का उल्लेख उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी के संजन दान पत्रों में मिलता है।[4] विद्वानों की ऐसी धारणा है कि उत्तरी भारत की ये विजयें ८०० ई० के लगभग सम्पन्न हुई थीं।[5]

गोविन्द की दक्षिण विजय :

वेंगी के नये शासक विजयादित्य द्वितीय ने राष्ट्रकूट सत्ता को चुनौती दी, किन्तु गोविन्द ने उसे केवल पराजित ही नहीं किया, अपितु ८०२ ई० के लगभग उसके भाई भीम सलुविक को उसके स्थान पर वेंगी के सिंहासन पर बैठा दिया।[6]

चोल, कांची, पांड्य, केरल तथा गंग के शासकों ने एक संघ का निर्माण कर उसका

---

१. ध्रुव के समय में स्तम्भ गंगवाडी का प्रतिनिधि-शासक था। देखिये, ऐपि० इंडि०, ४, पृ० ९३। किन्तु उसे जब ध्रुव ने उत्तराधिकार से वंचित कर दिया तो उसने गोविन्द तृतीय के विरोधियों के सहयोग से एक संघ बनाया और विद्रोह कर दिया। देखिये, अल्तेकर, राष्ट्रकूटज़ एण्ड देअर टाइम्स, पृ० ६१, टि० ३३।

२. अल्तेकर, राष्ट्रकूटज़ एण्ड देअर टाइम्स, पृ० ६४, ६५।

३. ऐपि० इंडि०, १८, पृ० २४३, २५३; वही, ६, पृ० १०२, १०५।

४. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ७।

५. अल्तेकर तथा मिराशी—डी० आर० भंडारकर वाल्यूम, पृ० १५३ तथा उसके आगे; ऐपि० इंडि०, खं० २३, पृ० २१४-१७, २९३-९७।

६. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामना करना चाहा, परन्तु गोविन्द ने ८०२ ई० के पूर्व ही उन्हें छिन्न-भिन्न कर दिया।[१] कांचो पर राष्ट्रकूटों का अधिकार स्थापित हो जाने से सिंहल का शासक भी भयाक्रान्त हो उठा, तथा उसने भी गोविन्द के लिए दो मूर्तियां भेंट स्वरूप भेजीं।[२] राष्ट्रकूटों की शक्ति की यह चरम सीमा थी। कन्नौज से कन्याकुमारी तक तथा बनारस से भड़ौच तक इनका बोलबाला था। वेंगी पर उनके आधीन शासक का राज्य था। द्रविड़ शासकों की शक्ति टूट चुकी थी। राष्ट्रकूट शक्ति एवं सामर्थ्य का तत्कालीन भारत में कोई साम्य न था।

अमोघवर्ष के विजयाभियान :

गोविन्द तृतीय के पश्चात् उसका पुत्र शर्व अथवा अमोघवर्ष ८१४ ई० के लगभग सिंहासन पर बैठा। नये शासक की आयु इस समय केवल तेरह या चौदह वर्ष की ही थी। किन्तु अपने संरक्षक कर्क की सहायता से उसने ८२१ ई० से पूर्व ही सिंहासन पर अपना पूर्ण अधिकार जमा लिया।[३] पांच-छः वर्ष के उपरान्त अमोघवर्ष ने वेंगी के शासक विजयादित्य को परास्त कर वेंगी पर अधिकार कर लिया जिसे वह बारह वर्ष तक निरन्तर बनाये रहा।

गंगों तथा राष्ट्रकूटों का परस्पर संघर्ष तथा युद्ध लगभग बीस वर्षों तक थोड़े बहुत काल-व्यवधान के साथ निरन्तर चलता रहा, किन्तु अन्त में गंगों ने अपने साम्राज्य के बड़े भू-भाग से राष्ट्रकूटों के अधिकार का अन्त कर दिया। अमोघवर्ष ने इस प्रदेश पर अपनी शक्ति स्थापित करने का कोई प्रयास नहीं किया, और ८६० ई० के आस-पास अपनी पुत्री 'चन्द्रोबलव्वे' का विवाह बूतुग नामक गंग राजकुमार से कर दिया। इस प्रकार दोनों राजवंशों की कटुता को मैत्री एवं प्रेम में परिवर्तित कर दिया गया।[४]

सीरूर पत्रों के अनुसार अंग, बंग, मगध, मालवा तथा वेंगी के शासक उसकी आधीनता स्वीकार करते थे।[५] मालव प्रदेश के लिए राष्ट्रकूट तथा प्रतिहारों में निरन्तर संघर्ष होता रहा, परन्तु अन्ततोगत्वा इस पर प्रतिहारों का ही आधिपत्य स्थापित हो गया। अंग, बंग तथा मगध पर पालों का अधिकार था। देवपाल के अभिलेखों के अनुसार उसने द्रविड़ शासक को परास्त किया, जिसका समीकरण अमोघवर्ष से किया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में देवपाल को तथा बाद में अमोघवर्ष को कुछ सफलता मिली। यह सम्भावना की जा सकती है कि अमोघवर्ष ने बंगाल एवं बिहार पर भी आक्रमण किया हो, परन्तु पुष्ट प्रमाण का अभाव है।

अमोघवर्ष के शासन के अन्तिम दिन विद्रोहों के दमन करने में ही व्यतीत हुए जिनमें गुजरात की राष्ट्रकूट शाखा का विद्रोह सबसे गम्भीर सिद्ध हुआ। अन्ततोगत्वा दोनों

---

१. ऐपि० इंडि०, १८, पृ० २४६।
२. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ८।
३. ऐपि० इंडि०, २१, पृ० १३३, १४७।
४. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ९।
५. वही, पृ० ९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शाखाओं में सन्धि हो गई।[1] क्योंकि दोनों को ही गुर्जर-प्रतिहार शासक भोज प्रथम के आक्रमण का भय उत्पन्न हो गया था, यद्यपि यह आक्रमण कभी हुआ नहीं, और छिट-पुट मुठभेड़ों में राष्ट्रकूटों ने प्रतिहारों को नर्मदा पार कर आगे नहीं बढ़ने दिया।

८७८ ई० के लगभग अमोघवर्ष प्रथम की मृत्यु हुई, तथा उसका पुत्र कृष्ण द्वितीय सिंहासन पर बैठा। कई राष्ट्रकूट अभिलेखों में यह उल्लेख मिलता है कि कृष्ण द्वितीय ने गुर्जरों को संत्रस्त कर दिया;[2] लाट का मान मर्दन कर दिया; गौड़ों को भी नम्रता सिखा दी; समुद्र तटवर्ती जनता की भी निद्रा हर ली; तथा अंग, कलिंग, गंग एवं मगध के शासक उसकी आज्ञा का पालन करते थे। इस विवरण में अतिशयोक्ति तो हो सकती है, परन्तु सत्यांश भी अवश्य है। इसमें सन्देह नहीं कि उसके शासनकाल में अनेक युद्ध हुए। गुर्जर-प्रतिहार शासक भोज के साथ उसके संघर्ष का उल्लेख कई अभिलेखों में मिलता है। ९१४ ई० के बेगुमरा ताम्र पत्रों में उल्लेख है कि उस समय भी वृद्धजनों के हृदय से उस भयावह युद्ध की स्मृतियाँ नष्ट नहीं हुई थीं।[3] लाट अथवा गुजरात की राष्ट्रकूट शाखा के अधिपति कृष्ण-राज ने इस संघर्ष में विशिष्ट भाग लिया। भोज की प्रगति बाधित हुई, किन्तु शीघ्र ही लाट की राष्ट्रकूट शाखा का अन्त हो गया। राष्ट्रकूटों को पूर्वी चालुक्यों से भी घोर संघर्ष करना पड़ा। प्रारम्भ में तो उन्हें सफलता नहीं मिली, किन्तु अन्त में कृष्ण विजयी हुआ, और चालुक्य शासक भीम को बन्दी बना लिया गया। कुछ समय पश्चात उसे कारागार से मुक्त कर एक सामन्त के रूप में शासक नियुक्त कर दिया गया। परन्तु भीम ने शक्ति अर्जित कर पुनः विद्रोह किया पर फिर पराजित कर दिया गया।

चोल शासक आदित्य प्रथम की मृत्यु के पश्चात उसके उत्तराधिकारी परान्तक पर कृष्ण द्वितीय ने आक्रमण कर दिया, परन्तु स्वयं पराजित हुआ। ९१४ ई० के अन्त के लगभग कृष्ण के निधन पर उसका पौत्र इन्द्र तृतीय शासक बना। इन्द्र तृतीय अपने पूर्वज गोविन्द तृतीय की भाँति पराक्रमी शासक एवं निडर सैनिक था। उसका साहस एवं शौर्य अद्वितीय था। गुर्जर प्रतिहार शासक महीपाल पर उसने आक्रमण कर दिया। भोपाल, झांसी तथा कालपी होते हुए यमुना पार कर वह कन्नौज पर टूट पड़ा तथा उस पर अधिकार कर लिया। इससे राष्ट्रकूटों का दबदबा और बढ़ गया। महीपाल पराजित होकर भाग निकला। इन्द्र ने अपने सामन्त शासक नरसिंह द्वितीय चालुक्य को उसका पीछा करने के लिए भेजा।

वेंगी राज्य के साथ संघर्ष उसके शासन काल में भी चलता रहा। ९२७ ई० के कुछ समय पश्चात इन्द्र तृतीय की मृत्यु हो गई, तथा अमोघवर्ष द्वितीय सिंहासन पर बैठा।[4] किन्तु अमोघवर्ष को उसके भाई गोविन्द चतुर्थ ने पदच्युत कर दिया।

---

१. अल्तेकर, राष्ट्रकूटज़ एण्ड देअर टाइम्स, पृ० ८५।
२. करहद अभिलेख, ऐपि० इंडि०, भाग ४, पृ० २८७।
३. ऐपि० इंडि०, ९, पृ० २४; अल्तेकर, राष्ट्रकूटज़ एण्ड देअर टाइम्स, पृ० ६७; दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ११।
४. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० १३, टि० २२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिंहासन पर आने के समय गोविन्द की आयु केवल २५ वर्ष की थी। वह अत्यन्त विलासी शासक सिद्ध हुआ।[1] अपनी तानाशाही के कारण वह प्रजा में अत्यन्त अप्रिय बन गया। अतः मंत्रियों एवं सामन्तों ने उसे निरापद करना आवश्यक समझ कर उसके चाचा अमोघवर्ष से सिंहासन ग्रहण करने का निवेदन किया। अमोघवर्ष ने बिना किसी कठिनाई के उसे सिंहासन से अपदस्थ कर ९३६ ई० में स्वयं को शासक घोषित कर दिया। अपने पुत्र कृष्ण तृतीय की सहायता से उसने केवल तीन वर्ष शासन किया। युवराज कृष्ण ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण कर कालिंजर तथा चित्रकूट के दुर्ग जीत लिए।[2]

कृष्ण तृतीय अपने पिता की मृत्यु के बाद ९३९ ई० के उत्तरार्ध में सिंहासनासीन हुआ। दक्षिण में कृष्ण का चोलों से संघर्ष हुआ, तथा ९६३ ई० में उसने उत्तरी भारत पर पुनः आक्रमण किया। वह बुन्देलखण्ड की ओर बढ़ा तथा बाद में उसने मालवा पर भी आक्रमण किया, और उज्जैन पर अधिकार स्थापित कर लिया। वेंगी पर अधिकार कर बाड़प नामक व्यक्ति को सामन्त शासक के रूप में वहाँ नियुक्त किया। कृष्ण वास्तव में दक्षिणी भारत का स्वामी था।

उसके पश्चात ९६७ ई० में उसका छोटा भाई खोट्टिग सिंहासन पर बैठा। किन्तु वह परमार शासक सीयक के आक्रमण से अपनी राजधानी मान्यखेट की रक्षा न कर सका। राष्ट्रकूट राजधानी ९७२ ई० में परमारों द्वारा तहस-नहस कर दी गई। इसी पराजय से दुःखी खोट्टिग की तत्पश्चात शीघ्र ही मृत्यु हो गई।

उसके पश्चात उसका भतीजा कर्क द्वितीय सिंहासन पर आया। राष्ट्रकूटों की शेष ख्याति को भी उसके दुःशासन ने विनष्ट कर दिया। उसकी दुर्बलता एवं अकर्मण्यता का लाभ उठा कर तैल द्वितीय चालुक्य ने उसे १८ माह के शासन के उपरान्त सिंहासन से पदच्युत कर दिया।[3]

तैल द्वितीय उस समय बीजापुर जिले में स्थित तर्दवाड़ि नामक क्षेत्र पर एक सामन्त के रूप में शासन कर रहा था। वह अपने को बादामी के चालुक्य वंश से सम्बन्धित समझता था।[4] अतः राष्ट्रकूटों द्वारा विनष्ट की गई अपने पूर्वजों की कीर्ति को पुनः अर्जित करना चाहता

---

१. अल्तेकर, राष्ट्रकूटज एण्ड देअर टाइम्स, द्वितीय संस्करण, १९६७, पृ० १०६–७। सांगली ताम्र पत्रों के अनुसार वह कामदेव की भाँति सुन्दर था। खरेपाटन ताम्रपत्रों के अनुसार वह प्रेम भावना का निकेतन था, तथा सर्वदा नर्तकियों से घिरा रहता था (ऐपि० इंडि०, ३, पृ० २९८)। देवली तथा करहद अभिलेखों के अनुसार वह प्रेम-क्रीड़ा का मूर्तिमान् स्वरूप था, तथा इसी कारण उसने अनुचित मार्ग का अनुसरण करके अपने विनाश का स्वयं आवाहन किया।

२. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० १३।

३. अल्तेकर, राष्ट्रकूटज एण्ड देअर टाइम्स, पृ० १२५।

४. देखिए, कौथेम, येवूर, नीलगुण्ड तथा मिराज दानपत्र, अल्तेकर, वही, पृ० १२७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। ९७३ ई० के अन्त में पूर्ण सैनिक तैयारी के साथ उसने कर्क के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। कर्क ने आक्रमण कर उसे दबाना चाहा परन्तु स्वयं पराजित हुआ।[1] कर्नाटक के उत्तरी क्षेत्र में लड़े गये इस भीषण युद्ध में पराजित कर्क ने भाग कर मैसूर के सोरब नामक तालुका में एक छोटे से राज्य की स्थापना की; जहाँ वह ९९१ ई० तक शासन करता रहा। कर्क ने अपनी असमर्थता का अनुभव करके राष्ट्रकूट सत्ता के पुनर्संस्थापन का प्रयास छोड़ दिया। गंग शासक गंगमारसिंह ने कृष्ण तृतीय के पौत्र इन्द्र की ओर से तैल पर आक्रमण किया, किन्तु तैल ने ९७५ ई० में हुए युद्ध में गंगमारसिंह को परास्त कर दिया। इस दुर्गति से क्षुब्ध होकर गंगमारसिंह तथा इन्द्र जैन भिक्षु हो गये। इन विजयों के कारण तैल दक्षिण का अधिपति बन गया।

लगभग ७५३ ई० से ९७५ ई० तक दक्षिण में राष्ट्रकूट शक्ति सर्वोपरि एवं सर्वमान्य रही। ध्रुव, गोविन्द तृतीय तथा इन्द्र तृतीय ने उत्तरी भारत पर सफल सैनिक अभियान किये तथा उत्तर के सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न शासकों के दर्प को चूर कर दिया। इन सफल सैनिक अभियानों के परिणामस्वरूप उत्तरी भारत के इतिहास की रूपरेखा ही परिवर्तित हो गई। दक्षिण में कृष्ण तृतीय ने रामेश्वर तक अपनी विजय पताका फहराई। किसी न किसी समय राष्ट्रकूटों ने प्रतिहारों, पालों, पूर्वी चालुक्यों, चोलों अर्थात् तत्कालीन भारतवर्ष की समस्त अग्रगण्य शक्तियों को परास्त किया। यद्यपि उन्हें कभी-कभी पराजय का भी वरण करना पड़ा, तथापि उन्हें असाधारण सफलता मिली। जो अरब लेखक इस काल में पश्चिमी भारत की ओर गये, सभी ने राष्ट्रकूट शासकों की उत्कृष्ट वीरता की प्रशंसा की, जिन्हें वह बल्हरा (बल्लभराज) कहते हैं। उनके अनुसार बल्हरा भारत का सबसे महान शासक था, तथा समस्त अन्य शासक उसका आदर करते थे। उसकी सेना विशाल तथा सुसंगठित थी। अतुल सम्पत्ति के स्वामी राष्ट्रकूट शासक अपने सैनिकों को नियमित रूप से वेतन देते थे। मसूदी के अनुसार उस की सेना एवं हाथियों की संख्या अगणित थी। उसकी राजधानी पठारी क्षेत्र में स्थित होने के कारण उसकी सेना में पैदल सैनिकों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक थी।[2] राजा तथा प्रजा दोनों ही मुसलमानों के प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार करते थे, तथा कुछ लेखकों के अनुसार कुछ नगरों के प्रशासक भी मुसलमाम ही नियुक्त कर दिए गये थे। अलइस्तखरी[3] के अनुसार "(इस राज्य के) नगरों में मुसलमान निवास करते हैं, तथा मुसलमान ही इन के ऊपर बल्हरा की ओर से शासन करते हैं। इनमें जामा मस्जिदें बनी हैं (जहाँ मुसलमान नमाज पढ़ने के लिए एकत्रित होते हैं)"।[4] मसूदी कहता है, "सिन्ध

---

१ वही, पृ० १२५–२६, १३०, १३१।

२. इलि० डाउ०, भाग १, पृ० ३, २१।

३. इलि० डाउ०, भाग १, पृ० ३४।

४. कोष्ठक वाला भाग इब्नहौक़ल के लेख में भी मिलता है, जो उपर्युक्त अन्य बातों को दोहराता है, वही, इलि० डाउ०, भाग १, पृ० ३४। इन्द्र तृतीय के एक अरब सामन्त के एक अभिलेख से सिद्ध होता है कि राष्ट्रकूट नरेश अरबों को उच्च पदों पर भी नियुक्त करते थे—देखिये जे० एन० बनर्जी वाल्यूम (कलकत्ता १९६०) पृ० ९६-१०९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और हिन्द के शासकों में से कोई भी ऐसा नहीं है जो अपने राज्य में मुसलमानों का राजा बल्हरा की भांति आदर न करता हो। उसके राज्य में इस्लाम का सत्कार तथा उसकी रक्षा होती है। उनके लिए मस्जिदें तथा जामा मस्जिदें बनाई गई हैं, जो सर्वदा भरी रहती हैं, जहाँ पाँच बार नमाज़ पढ़ी जाती है।"[1]

—:o:—

१. पी० ओ० सी०, १०, पृ० ४०६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ३

तुर्कों के आगमन से पूर्व भारत की सामाजिक दशा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तत्कालीन सामाजिक समस्यायें

इस काल की सामाजिक दशा में अरब आक्रमणों के कारण एक विचित्र उथल-पुथल रही। उत्तर-पश्चिम में कुछ भू-भाग अधिकृत कर लेने के पश्चात् मुसलमानों में और आगे बढ़ने का उत्साह बढ़ा, तथा भारत में इस्लाम का प्रसार करने की भावना भी बलवती हुई। इस का सामाजिक ढांचे पर गम्भीर प्रभाव पड़ा। हिन्दू पुरुष एवं स्त्रियाँ मुसलमान लुटेरों द्वारा प्रायः बन्दी तथा गुलाम बना लिये जाते थे। अतः समाज को अपने हितों की रक्षा करने के लिए तथा खोये हुए सदस्यों को पुनः अपनी परिधि में लाने के लिए विशुद्धीकरण के नवीन विधानों का सृजन करना पड़ा। जाति प्रथा की कठोरता तथा नव-मुस्लिमों का विशुद्धीकरण समाज के सम्मुख दो गहन प्रश्न थे। इस युग में भारतीयों की पराजय क्यों हुई? मुस्लिम आक्रमणकारियों ने जनता के मनोभाव एवं मनोबल पर क्या प्रभाव डाला? क्या इसके फलस्वरूप नैतिक अधःपतन हुआ? अन्धविश्वास एवं धर्म तथा जाति के पृथकत्व ने किस प्रकार सामाजिक सुरक्षा का प्रश्न अति जटिल बना दिया? यह सभी समस्यायें इस काल के ऐतिहासिक अध्ययन में महत्वपूर्ण हैं।

तत्कालीन शिक्षा प्रणाली :

उत्तर-कालीन स्मृतियों में एक नवीन विद्यारम्भ संस्कार का उल्लेख मिलता है। बच्चों को ५ वर्ष की आयु में अक्षराभ्यास प्रारम्भ करा देना चाहिए।[1] प्रारम्भ में मात्रि-कान्यास तथा गणित का अध्ययन कराया जाता था।[2] प्रथम तीन वर्णों के लिए वैदिक अध्ययन की एक पाठ-विधि प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रतिपादित है। इसमें उत्तर-कालीन स्मृतियों ने कुछ संशोधन किये हैं। प्रायः स्मृतियों में परस्पर बड़ा मतभेद है।[3]

तकनीकी शिक्षा का उल्लेख इस काल की स्मृतियों में नहीं के बराबर है। दसवीं शताब्दी की 'भविष्यतकथा' में एक नवयुवक व्यापारी की शिक्षा का अत्युक्ति पूर्ण विवरण मिलता है।[4] मेधातिथि वैश्य के लिए तकनीकी शिक्षा का उल्लेख करता है।[5] तथा वैदिक

१. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३६६।
२. याज्ञवल्क्य, १।१३१ पर दिये अपरार्क में उद्धरण; स्मृतिचन्द्रिका १।२६; तथा संस्कार प्रकाश, पृ० ३२१-३२६; विद्यारम्भ-संस्कार का पूर्ण वृत्तान्त उत्तर-मध्य-युगीन गोपीनाथ दीक्षित कृत 'संस्कार रत्नमाला' में मिलता है।
३. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३३६-३७।
४. 'भविष्यतकथा,' २।१-३।
५. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३६७, तथा टि० १३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विद्यार्थी के लिए शास्त्रों का और अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए विदेश-भ्रमण का महत्व बतलाता है।[1] 'कुट्टनीमतम्' में भी सामान्य शिक्षा के लिए विदेश यात्रा के माध्यम की ओर संकेत किया गया है।[2] 'पालकाप्य संहिता' के अनुसार ब्राह्मण तीन वर्णों को, क्षत्रिय दो वर्णों को, तथा वैश्य एक वर्ण को पढ़ा सकता है। किन्तु गुणवान शुद्र का शिक्षण वर्जित है।[3] इस प्रकार के अनुचित विचारों ने सामाजिक स्थिति में जनता के विशाल भाग को शिक्षा से वंचित कर घोर वैषम्य उत्पन्न कर दिया। यही नैतिक अधःपतन आर्थिक एवं सामाजिक अधोगति, आत्मविश्वास के विलोप तथा नैराश्य के प्रसार का प्रमुख कारण बना।

नारी तथा शिक्षा :

इस काल के बहुत पूर्व ही स्मृतियों ने स्त्री समाज को वैदिक अध्ययन के अधिकार से वंचित कर दिया था। अल्प आयु में कन्याओं का विवाह सम्पन्न करने की प्रथा के कारण वे अध्ययन से वंचित रह जाती थीं। इस काल में नारी शिक्षकों का भी कोई उल्लेख नहीं मिलता। मेधातिथि के अनुसार भी स्त्रियां संस्कृत भाषा से प्रायः अनभिज्ञ थीं।[4] फिर भी स्त्रियों को शिक्षा-प्राप्ति तथा कला कौशल के अभ्यास का कुछ अवसर प्राप्त हो ही जाता था। राजशेखर ने राजकुमारियों, महामात्यों की पुत्रियों, गणिकाओं आदि की कविता करने की योग्यता तथा उनके शास्त्रविद् होने का उल्लेख किया है।[5] राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी स्वयं संस्कृत की उच्चकोटि की विदुषी थी। किन्तु अल्पसंख्यक स्त्रियों को छोड़ कर बहुसंख्यक नारी-समुदाय सर्वथा अशिक्षित एवं ज्ञानहीन था, जिसका परिणाम समाज के लिए सामान्य रूप से अहितकर सिद्ध हुआ। मानसिक, नैतिक एवं चारित्रिक दौर्बल्य तथा आत्म-निर्भरता के अभाव का प्रमुख कारण अशिक्षित मातृत्व था।

सामाजिक विभाजन :

समाज का विभाजन इब्नेखुर्दाद्ब के वृत्तान्त में दृष्टिगोचर होता है, जहां वह चार या चार से अधिक वर्गों का उल्लेख करता है।[6] वह हिन्दुओं के सात वर्गों का उल्लेख करता है। सर्व प्रथम कुफ्रीअ हैं, जिनमें उच्च जाति के लोग हैं। शासकों का चुनाव इसी वर्ग

---

१. मनु० ९।७६ पर मेधातिथि।
२. 'कुट्टनीमतम्' पृ० २९२।
३. संस्कार प्रकाश, पृ० ५१३ में उद्धृत।
४. मनु० २।११२ पर मेधातिथि।
५. काव्य मीमांसा, १०, ५३; सूक्ति मुक्तावली (जी० ओ० एस० संस्करण ४७), एक बारहवीं शताब्दी का पद्य संग्रह जिसका संकलन जल्हण ने किया, जिसमें राजशेखर द्वारा लिखे ऐसे श्लोक उद्धृत हैं जिनमें पांच ऐसी कवित्रियों का उल्लेख है—शीलभट्टारिका, विकटनितम्बा, विजयांका, प्रभुदेवी तथा सुभद्रा। देखिए, काव्य मीमांसा, अध्याय ५, ९ तथा ११, जहां राजशेखर साहित्यिक विषयों पर अपनी पत्नी का मत उद्धृत करता है; उपमिति, पृ० ३५४, ४५३-५९, ८७५-९२।
६. इलि० डाउ०, भाग १, पृ० १६-१८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में से होता है। शेष छः वर्ग इनका सम्मान करते हैं। दूसरा वर्ग ब्रह्म है, जो मदिरा आदि से सर्वथा दूर रहता है। तीसरा वर्ग कतरिय है, जो तीन प्याले मदिरा से अधिक नहीं पीते। इनकी कन्यायें विवाह में ब्रह्मों को ही दी जा सकती हैं, किन्तु ब्रह्मों की कन्याओं के साथ ये विवाह सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकते। चौथा वर्ग सुदरिअ है, जो खेती करते हैं। पांचवां बसुरिअ है, जो कारीगरी तथा नौकरी करने वालों से सम्बन्धित है। छठां वर्ग सन्दलिअ है, जो निम्न श्रेणी के कार्य करते हैं। सातवां लाहुद है, जिनकी स्त्रियां अपने आप को सुसज्जित करती हैं, तथा जिनके पुरुष लोग आमोद-प्रमोद तथा कला-कौशल के खेल-कूद में व्यस्त रहते हैं।[१] अलइदरीसी इन सामाजिक जातियों के विषय में कुछ अन्य बातें भी बतलाता है। उसके अनुसार ब्राह्मण व्याघ्र-चर्म पहनते थे, तथा मूर्ति-पूजा करते थे; क्षत्रिय तीन रतल शराब पी सकते थे, अधिक नहीं। उसके अनुसार क्षत्रिय, ब्राह्मण स्त्री से विवाह कर सकता था, किन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय स्त्री से विवाह नहीं कर सकता था। यह बात इब्नेखुर्दाद्ब के कथन के विरुद्ध है। मर्वज़ी के अनुसार भी ब्राह्मण क्षत्रिय स्त्रियों से विवाह कर लेते थे, किन्तु क्षत्रियों को अपनी कन्यायें नहीं देते थे।[२] अलइदरीसी तथा मर्वज़ी के अनुसार सुदरिअ खेती करते थे। मर्वज़ी के अनुसार क्षत्रिय उनकी स्त्रियों से विवाह कर लेते थे, तथा अपनी कन्यायें भी उन्हें दे देते थे। यह कथन सत्य प्रतीत नहीं होता, क्योंकि अभिलेखों में इस प्रकार के अन्तर्जातीय विवाहों का उल्लेख नहीं है। वैश्यों के विषय में मर्वज़ी कहता है कि वे लोग कारीगर तथा व्यापारी थे; अलइदरीसी के अनुसार वे कारीगर तथा कलाकार थे; इब्नेखुर्दाद्ब के अनुसार वे लोग घरेलू नौकरों का भी काम करते थे। मर्वज़ी के अनुसार कोई अन्य जाति उनसे विवाह नहीं करती थी। इब्नेखुर्दाद्ब के अनुसार सन्दलिअ वर्ग के लोग घरेलू काम काज करते थे। किन्तु अलइदरीसी का कथन है कि वे लोग गाने बजाने का भी काम करते थे, तथा उनकी स्त्रियां अपने सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध थीं। इस कथन की पुष्टि मर्वज़ी भी करता है। मर्वज़ी बतलाता है कि कभी-कभी ब्राह्मण भी उनके सौन्दर्य पर मोहित हो जाते थे और उनके लिए अपना धर्म भी त्याग देते थे। किन्तु साधारणतया अन्य जातियों के लोग उनका स्पर्श भी नहीं करते थे।[३] इनका समीकरण मनु के चाण्डालों के साथ किया जा सकता है। लाहुद जो आमोद-प्रमोद एवं खेल-कूद के शौकीन थे, अलइदरीसी के द्वारा ज़वय कहे गये हैं। तथा उसी के अनुसार ये लोग जादूगर, कलाबाज़ तथा विभिन्न यंत्रों को बजाने वाले थे। मर्वज़ी दुभिअ अथवा डोम्ब को अन्तिम वर्ग बतलाता है, जिनका रंग गहरा था, तथा जो कलाबाज़ तथा संगीतज्ञ थे।

ऊना अभिलेख में भी ब्राह्मणों, महत्तरों तथा व्यापारियों का उल्लेख है।[४] राजोर

---

१. हिन्दू समाज का सात वर्गों में विभाजन ग्यारवीं शताब्दी के अन्त के लगभग अलइदरीसी द्वारा भी वर्णित है—नुज़हकुतुल मुश्ताक़-इलि० डाउ०, भाग १, पृ० ७४-९३; मर्वज़ी ने भी ११२० ई० के आस-पास 'शराफ़-अलज़मा तहीर' में इसका उल्लेख किया है। देखिए, यू० मिनोर्स्की द्वारा संपादित तथा अनूदित, लंदन, १९४२।

२. मिनोर्स्की, उपर्युक्त ग्रन्थ, पृ० ३९।

३. देखिए, बी० एन० पुरी, दि हिस्ट्री ऑफ गुर्जरप्रतिहारज़, पृ० ११८, टि० ४।

४. ऐपि० इंडि०, भाग ९, पृ० ६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अभिलेख में भी महत्तर, महत्तमस, व्यापारी तथा प्रवणियों का उल्लेख है जो व्याघ्र-पटक नामक ग्राम में रहते हैं।[१] महत्तर तथा महत्तमस उच्च वर्ग के थे। घटियाल अभिलेख में प्रतिहार वंश के कक्क के पुत्र कक्कुक का उल्लेख है, जिसने एक बाजार का निर्माण कराया, जिसमें सुसज्जित सड़कें थीं, तथा जो ब्राह्मण (विप्र), वैश्य तथा प्रकृति वर्ग के लोगों के पास गया, तथा जिन्हें उसने जीवन-यापन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने का आश्वासन दिया।[२]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि समाज जातियों में विभाजित था। इस काल के कुछ अभिलेखों में दान दायकों की जाति तथा उनके पेशे के विषय में भी उल्लेख है।[३] जातियां भी कई छोटे-छोटे वर्गों में विभाजित थीं, जैसे ब्राह्मणों में भट्ट तथा चातुर्वेद्य। ब्राह्मणों के गोत्र तथा शाखाओं का भी उल्लेख है।[४] क्षत्रिय तथा वैश्य भी अपने पेशों के अनुसार कई वर्गों में विभाजित थे। क्षत्रिय कृषि कर्म, वाणिज्य, तथा तेल-व्यापार करते थे।[५] वैश्य भी कई वर्गों में विभक्त थे।[६]

अरब आक्रमणों के कारण तथा अन्य कारणों से भी लोग एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते रहते थे। एक कथन के अनुसार १८००० लोगों ने भीमल छोड़ कर आनन्दपुर में शरण ली।[७] यदि यह सत्य है तो इसका कारण अरब आक्रमण के अतिरिक्त शायद ही कोई और हो।

जाति प्रथा के कुप्रभाव :

जाति प्रथा के कुप्रभाव इस काल में स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। मेधातिथि के अनुसार यदि शूद्र की मृत्यु हो जाय तो उसके शव को दक्षिण की ओर नगर से बाहर ले जाया जाय; वैश्य के शव को पश्चिम को ओर, क्षत्रिय के शव को उत्तर की ओर; तथा ब्राह्मण के शव को पूर्व की ओर ले जाना चाहिए।[८] सामाजिक वर्गीकरण का वैषम्य मृत्यु के पश्चात् भी इस प्रकार की प्रथा में प्रतिबिम्बित है। 'मत्स्य पुराण' के अनुसार ब्राह्मण ने चाहे

---

१. इंडि० एन्टि०, भाग १९, पृ० २२।
२. ऐपि० इंडि०, भाग ९, पृ० २८०।
३. देखिए, वही, भाग १, पृ० १५९ तथा उसके आगे; ऐपि० इंडि०, भाग ३, पृ० २६६।
४. वराह अभिलेख, ऐपि० इंडि०, भाग १९, पृ० १७ तथा आगे; दौलतपुर अभिलेख, ऐपि० इंडि०, भाग ५, पृ० २२९ तथा उसके आगे; आहार अभिलेख, क्रमांक ९, ऐपि० इंडि०, भाग १९, पृ० ५५-५६; दिघवा-दुबौली अभिलेख, इंडि० एन्टि०, भाग १५, पृ० ११२ तथा उससे आगे; झूंसी अभिलेख, इंडि० एन्टि०, भाग १८, पृ० ३४।
५. ग्वालियर अभिलेख, क्रम सं० १, ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० १५९ तथा उससे आगे।
६. आहार अभिलेख, क्रम सं० २, तथा १०।
७. बाम्बे गजेटियर, भाग १, परिशिष्ट ७३७।
८. मनु०, ५।५१, पर मेधातिथि।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कितना ही घोर अपराध किया हो, उसे मृत्यु दण्ड के बजाय दाग़ दिया जाय तथा देश से निष्कासित कर दिया जाय।[१] मेधातिथि अपराधी ब्राह्मण को शारीरिक दण्ड देना या उस पर जुर्माना करना भी वर्जित करता है। यदि कोई ब्राह्मण विद्वान, चरित्रवान एवं कुलीन हो, तो उसे प्रथम अपराध के लिए आर्थिक दण्ड नहीं देना चाहिए। सुमन्तु के अनुसार आततायी ब्राह्मण को भी नहीं मारना चाहिए।[२] एक स्मृतिकार के अनुसार युद्ध में भी आतताई ब्राह्मण को नहीं मारना चाहिए।[३] 'स्कन्द पुराण' के अनुसार जो भी किसी ब्राह्मण को बिना पूछताछ किये दान देता है, अपने पितरों एवं देवताओं को सन्तुष्ट करता है।[४] 'वराह-पुराण' में ऐसे ब्राह्मणों की लम्बी सूचियां हैं जिन्हें उनकी शारीरिक आकृति के कारण अथवा उनके पेशे के कारण अथवा उनके चरित्र के कारण किसी मृत्युभोज में नहीं जाना चाहिये।[५] इन्हीं में एक देवलक भी है, जो किसी देवता की ३ वर्ष पर्यन्त धन के हेतु पूजा करता है। एक स्मृतिकार के अनुसार ऐसा व्यक्ति इतना अपवित्र होता है कि उससे स्पर्श के पश्चात् मनुष्य को अपने पवित्रीकरण के लिए वस्त्र पहने ही नहा लेना चाहिए।[६] ब्राह्मणों के ऐसे छः वर्गों की सूची अपरार्क द्वारा उद्धृत शातातप में मिलती है, जो ब्राह्मण वंश में उत्पन्न होने पर भी ब्राह्मण नहीं हैं।[७] इस सूची में ऐसे ब्राह्मण आते हैं जो राजा के यहां नौकरी करते हों, या बहुत लोगों के लिए यज्ञ करते हों, या समस्त ग्राम के लिए यज्ञ करते हों, या किसी ग्राम और नगर के सेवक हों, या सन्ध्या न करते हों। इस प्रकार के विचारों में सामाजिक सेवा एवं सामूहिक दायित्व की भर्त्सना परिलक्षित होती है। यही इस काल की सामाजिक समस्याओं के कारण थे, जिन्होंने अत्याचार, शोषण तथा विभाजन की शक्तियों को बल प्रदान किया।

विदेशों में रहने से भी ब्राह्मण भ्रष्ट एवं पतित मान लिए जाते थे। 'मत्स्य पुराण' के अनुसार त्रिशंकु, बर्बर, औड्र, आन्ध्र, टक्क (पंजाब), द्रविड़ तथा कोंकण आदि म्लेच्छ देशों में रहने वाले ब्राह्मणों को मृत्यु-भोज में नहीं बुलाना चाहिए।[८] इस काल की कुछ स्मृतियों में आततायी ब्राह्मण का वध वर्जित नहीं किया गया है। वृद्ध हारीत तथा मत्स्य पुराण, मनु को दोहराते हुए कहते हैं कि विद्वान किन्तु आततायी ब्राह्मण का वध यदि आदेशित नहीं हो तो क्षम्य है।[९] सामाजिक असमानता तथा ऊंच-नीच के विरुद्ध थोड़ी प्रतिक्रिया करते हुए विश्व-रूप कहता है कि आततायी ब्राह्मण का वध करने वाले को कोई दण्ड न

---

१. मत्स्य पुराण, २१७।१६३ तथा उससे आगे।
२. याज्ञवल्क्य, २।२९ पर विज्ञानेश्वर द्वारा उद्धृत।
३. स्मृति चन्द्रिका १।३० में उद्धृत।
४. याज्ञवल्क्य, १।२२४ पर अपरार्क द्वारा उद्धृत।
५. वराह पुराण, १४, ४ तथा उससे आगे; १५०।८३ तथा उससे आगे।
६. याज्ञवल्क्य, ३।३० पर अपरार्क द्वारा उद्धृत।
७. याज्ञवल्क्य, १।२० पर अपरार्क।
८. मत्स्य पुराण १६।१६।
९. वृद्ध हारीत, ९।३४९-५०; मत्स्य पुराण, २२७।११५-१७; मनु०, ८।३५०-५१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिया जाय, और ब्राह्मण को युद्ध में मारने वाला भी दण्ड का भागी न हो। ऐसे मनुष्य को भी दण्ड न दिया जाय जिसने किसी ब्राह्मण का वध किसी दूसरे व्यक्ति के प्रोत्साहन पर धन के लिए किया हो।[1]

ब्राह्मणों के विशेषाधिकार :

स्मृति-पुराणों में ब्राह्मणों को जो विशेषाधिकार प्रदान किये गये हैं, उनमें करों तथा मृत्यु दण्ड से मुक्ति प्रमुख हैं। यह विशेषाधिकार सैद्धान्तिक रूप में तो श्रोत्रीय अथवा विद्वान् ब्राह्मणों के लिए हैं, किन्तु अन्य ब्राह्मण भी इनसे अवश्य लाभ उठाते होंगे। राष्ट्रकूट अभिलेखों से विदित होता है कि जिन ब्राह्मणों को ब्रह्मदेय दान दिया जाता था, वे उस क्षेत्र के निवासियों से वे सारे कर वसूल करते थे जो साधारणतया जनता राजा को देती थी। किन्तु ये ब्राह्मण इस धनराशि में से कुछ भी राजा को नहीं देते थे।[2] तथापि यह बात संदिग्ध है कि साधारण ब्राह्मण करों से मुक्त थे। कृष्ण तृतीय के 'तुप्पड़ पुरहट्टी' अभिलेख[3] से, सोमेश्वर के होनावाड़[4] अभिलेखों से तथा अन्य कई चोल अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि मन्दिरों को दान दी हुई पृथ्वी भी करों से मुक्त नहीं थी। राजा द्वारा प्रायः सामान्य दर का ५० प्रतिशत कर वसूल कर लिया जाता था। अतः यह कहना कठिन जान पड़ता है कि साधारण ब्राह्मणों से, जो सामाजिक एवं सामान्य व्यवसायों में रत थे, कोई कर न लिया जाता हो। सोमदेव के अनुसार आपत्तिकाल में राजा ब्राह्मणों तथा मन्दिरों की सम्पत्ति से भी कुछ भाग ले सकता था। किन्तु उसे इन लोगों के पास पूजा तथा यज्ञादि करने के लिए पर्याप्त धन छोड़ना भी अनिवार्य था।[5] इससे भी यही सिद्ध होता है कि समस्त ब्राह्मण करों से सर्वथामुक्त नहीं थे। १२३० ई० के गुजरात में प्राप्त एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि राजा सोमसिंह ने ब्राह्मणों को करों से मुक्त कर दिया था।[6] किन्तु यह कथन हमें शासक की प्रशस्ति में मिलता है, अतः इस पर कोई विशेष भरोसा नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार यह विश्वास करना भी कुछ कठिन प्रतीत होता है कि उसने बहुत से शत्रुओं को परास्त कर दिया था।[7]

बहुत से ऐसे श्रेष्ठ एवं विद्वान ब्राह्मण भी थे जिनको उनकी विद्या के कारण अथवा विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा देने के फलस्वरूप भूमि दान दे दिया जाता था। इस दान में दी हुई भूमि पर प्रायः कोई कर नहीं लिया जाता था। इस बात का संकेत हमें धर्मशास्त्रों में

---

१. याज्ञवल्क्य, ३।२२२ पर विश्वरूप।
२. अल्तेकर, राष्ट्रकूटज़ एण्ड देयर टाइम्स, द्वि० सं० पृ० ३२७।
३. ऐपि इंडि०, भाग १४, पृ० ३६६।
४. इंडि० एण्टि, भाग १९ पृ० २७२।
५. नीतिवाक्यामृतम् २१, १४।
६. ऐपि० इन्डि०, भाग ८, पृ० २११।
७. अल्तेकर, राष्ट्रकूटज एण्ड देयर टाइम्स, पृ० ३२८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपलब्ध होता है, जहाँ यह लिखा है कि किसी विद्वान् ब्राह्मण को अथवा श्रोत्रीय को कर से मुक्त रखना चाहिये।[१]

ब्राह्मण का दूसरा विशेषाधिकार जिसका उल्लेख कई स्मृतियों में है, मृत्यु-दण्ड से मुक्ति है। ब्रह्म-हत्या को जघन्य पाप समझा जाता था। इस कारण हिन्दू राजा भी इस पाप से बचने का प्रयास करता था। 'आपस्तम्ब धर्मसूत्र' के अनुसार जिन अपराधों के लिए अन्य जाति के लोगों को मृत्यु-दण्ड दिया जाता था, उनके लिए ब्राह्मण को नेत्रविहीन कर राज्य से निष्कासित कर देना चाहिए।[२] कभी-कभी तो ब्राह्मण को भी मृत्यु-दण्ड दे दिया जाता था, जैसा कौटिल्य के अर्थशास्त्र से स्पष्ट है। उसके अनुसार देशद्रोही ब्राह्मण को पानी में डुबाकर मृत्यु दण्ड देना चाहिए।[३] 'राजतरंगिणी' में भी निरंकुश शासकों द्वारा ब्राह्मण वध कराये जाने का उल्लेख है।[४] किन्तु प्रायः ब्राह्मणों को मृत्यु-दण्ड से मुक्त ही रखा जाता था। ऐसे भी प्रमाण हैं कि दिद्दा[५] तथा भिक्षाचर[६] जैसे शासकों ने भी बाध्य होकर ब्राह्मणों के हठ को स्वीकार किया, क्योंकि उन्होंने अन्न त्याग कर प्राण दे देने की धमकी दी थी।[७] ब्रह्महत्या के पाप के भय से ही उन शासकों ने उन ब्राह्मणों की बात मानी, जिन्होंने कई बार दुःखी एवं संतप्त प्रजा के कष्टों के निवारण हेतु उपवास करके प्राणान्त करने की धमकी राजा को दी। करों से तो सम्भवतः विद्वान् तथा धार्मिक ब्राह्मण ही मुक्त थे, यद्यपि थोड़ा-बहुत लाभ अन्य ब्राह्मणों को भी प्राप्त होता होगा। किन्तु प्राण-दण्ड से तो लगभग सभी ब्राह्मण मुक्त थे। फिर भी जो ब्राह्मण सैनिक सेवा में संलग्न थे, वे अवध्य नहीं थे। इस प्रकार के सामाजिक प्रशासन में विशेषाधिकारी वर्ग अन्य वर्गों का शोषण करते थे। ऐसी स्थिति में अशान्ति, अव्यवस्था एवं असन्तोष का संचार अवश्यम्भावी था।

क्षत्रिय :

क्षत्रिय या तो शासन करते थे, अथवा शासकों से सम्बन्धित होने के कारण समाज में सर्वोच्च स्थान का उपभोग करते थे। न तो सभी क्षत्रिय योद्धा थे, और न सभी योद्धा क्षत्रिय थे। बहुत से क्षत्रियों ने इस प्रकार के पेशे अपना लिए थे जिनका सैनिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं था। हुएन-त्सांग ने अपने समकालीन शासकों की जाति का उल्लेख किया है; इनमें पांच क्षत्रिय, तीन ब्राह्मण, दो वैश्य तथा दो शूद्र थे।[८] अतः

---

१. अल्तेकर, राष्ट्रकूटज़ एण्ड देयर टाइम्स, पृ० ३२८।
२. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, २।२७, १६।
३. अर्थशास्त्र, ४। ११।
४. कल्हण, ८। १०१३, २०६०।
५. वही, ६।३०७।
६. वही, ८।९०८।
७. देखिए, वही, ७।४००-७७३; ८।२०७६,२२२१। यह सन्दर्भ बड़ा रोचक है। अनशन रूपी अस्त्र का आश्रय लेकर महात्मा गांधी ने भी २०वीं शताब्दी में अंग्रेजों पर नैतिक विजय प्राप्त की।
८. हुइली, लाइफ ऑफ हुएन-त्सांग, पृ० ७९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह बात भी स्पष्ट है कि राजत्व पर क्षत्रियों का एकाधिकार नहीं था। इस काल के क्षत्रिय शासक यज्ञादि नहीं करते थे, क्योंकि किसी भी शासक द्वारा सम्पन्न किये गये अश्वमेध अथवा अन्य किसी भी प्रकार के यज्ञ का उल्लेख नहीं मिलता। क्षत्रिय वेदाध्ययन कर सकते थे, किन्तु दैनिक जीवन में पुराणों का महत्व बढ़ गया था, तथा क्षत्रिय लोग धार्मिक अनुष्ठान-पौराणिक ढंग से सम्पन्न करते थे। इस कारण वे तीव्र गति से वैश्य एवं शूद्रों की धार्मिक स्थिति के समीप पहुँच रहे थे।[१] इस काल के ताम्रपत्रों में भी शासकों के गोत्रों का उल्लेख नहीं है।

वैश्य :

वैश्य भी त्रैवर्णिकों में अपने स्थान से गिर रहे थे। कृष्ण ने 'गीता' में भी शूद्रों के साथ उनका उल्लेख करते हुए कहा है कि वे पिछड़े हुए थे तथा धार्मिक अयोग्यताओं से 'संतप्त' थे।[२] 'बोधायन धर्मसूत्र' से स्पष्ट होता है कि वैश्य वास्तव में शूद्रों की गति को पहुँच गये थे, क्योंकि दोनों वर्ग समान व्यवसाय कर रहे थे, जैसे नौकरी तथा खेती, और इसी प्रकार विवाह भी कर रहे थे।[३] स्मृतिकार वैश्यों को आपत्तिकाल में सैनिक वृत्ति धारण करने की अनुमति प्रदान करते हैं। दक्षिण में बहुत से व्यापारी संघ अपनी सैनिक टुकड़ियां रखते थे, और जैन भी दक्षिण के योद्धा वर्गों में थे।[४]

शूद्रों की दयनीय स्थिति :

सामाजिक स्थिति का वैषम्य शूद्रों की दुर्दशा से स्पष्ट होता है। उत्तरकालीन स्मृतियां पूर्वकालीन स्मृतियों की अपेक्षा इस दलित वर्ग की धार्मिक अयोग्यताओं पर और भी बल देती हैं। पराशर के अनुसार शूद्र का भोजन खाना, शूद्र की संगति, शूद्र के साथ एक ही आसन पर बैठना तथा शूद्र से कोई पाठ लेना ऐसे कार्य हैं जिनसे देदीप्यमान पुरुष भी पद-दलित हो जाता है।[५] एक स्मृति के अनुसार शूद्र ब्राह्मणों के लिए भोजन नहीं बना सकता था।[६] कुछ ग्रन्थों के अनुसार तो शूद्र का स्पर्श मात्र भी, अथवा दर्शन भी अपवित्र करने के लिए पर्याप्त है। एक स्मृतिकार के अनुसार यदि कोई द्विज किसी शूद्र को देख ले तो उसे अपना धार्मिक अनुष्ठान बन्द कर देना चाहिए। और यदि उसे छू ले तो उसे तुरन्त स्नान कर लेना चाहिए।[७] गर्ग के अनुसार यदि कोई द्विज किसी शूद्र एवं निषाद को स्पर्श कर ले तो उसे पुनः पवित्र होने के लिए प्रतिपादित नियमों के अनुसार जलाचमन करना चाहिए।[८] प्राचीन गृह्य सूत्रों एवं धर्म सूत्रों में कहा गया है कि शूद्र ब्राह्मण तथा अन्य अतिथियों के चरणों का

१. अल्तेकर, राष्ट्रकूटज एण्ड देयर टाइम्स, पृ० ३३२।
२. गीता, ९।३२।
३. बौधायन धर्मसूत्र, १।२, ४।
४. अल्तेकर, राष्ट्रकूटज एण्ड देयर टाइम्स, पृ० ३३३।
५. संस्कार प्रकाश, ५१३।
६. स्मृति चन्द्रिका, १।३१ में उद्धृत।
७. याज्ञवल्क्य, ३।२९२ पर अपरार्क द्वारा उद्धृत।
८. याज्ञवल्क्य, ३।२९२ पर अपरार्क द्वारा उद्धृत।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रक्षालन करें, जिससे यह तो स्पष्ट है कि शूद्र अस्पृश्य नहीं माना जाता था।[1] वेदाध्ययन शूद्रों के लिए वर्जित था, तथा लघु व्यास के अनुसार शूद्रों के पड़ोस में भी वेद नहीं पढ़ाना चाहिए।[2] 'काशीखण्ड' के अनुसार भी ब्राह्मण को चाहिए कि शूद्र को वेद मंत्र न सुनने दे।[3]

मेधातिथि के अनुसार एक स्थान पर मनु कहता है कि शूद्र का कार्य दासता करना है, तथा उसे स्वतन्त्रता का अधिकार नहीं है; किन्तु यह केवल अर्थवाद है, क्योंकि दूसरे स्थान पर मनु ने ही कहा है कि विशेष परिस्थितियों में शूद्र भी दासत्व से मुक्त हो सकते हैं।[4] मेधातिथि के अनुसार दासत्व शूद्र में निहित नहीं होता, किन्तु ऐच्छिक होता है; क्योंकि वह पुण्य प्राप्त करने के लिए इसे स्वीकार करता है। उसे किसी को दिया नहीं जा सकता, अथवा गिरवी नहीं रखा जा सकता, जैसे किसी खरीदे हुए अथवा घर में पैदा हुए दास को दिया जा सकता है।[5] मेधातिथि के अनुसार यदि शूद्र धनवान है तथा ब्राह्मण की सहायता के बिना रहता है, तो कोई बुरा कार्य नहीं करता। इससे यह सिद्ध होता है कि मेधातिथि अन्य स्मृतिकारों के विपरीत शूद्रों के पूर्ण स्वतन्त्रता के अधिकार को स्वीकार करता है। मनु द्वारा उल्लिखित शूद्र शिष्य का अर्थ मेधातिथि के अनुसार यह है कि शूद्र कभी कभी व्याकरण तथा अन्य विज्ञानों के अध्यापक भी होते थे।[6] किन्तु मेधातिथि भी कहता है कि ब्राह्मणों की सेवा करके तथा गृहस्थ आश्रम में रहकर शूद्र समस्त आश्रमों का फल प्राप्त करता है। केवल मोक्ष से वंचित रह जाता है, क्योंकि वह चतुर्थ आश्रम से ही प्राप्त हो सकता है।[7] एक गृहस्थ के रूप में उसे विवाह के स्मृति-संस्कार सम्पन्न करने के अधिकार नहीं, किन्तु यदि वह चाहे तो किसी देवता का नाम ले सकता है।[8] मेधातिथि के अनुसार शूद्र श्रोत-संस्कार सम्पन्न नहीं कर सकता। किन्तु स्मृतियों में जो संस्कार सबके लिए प्रतिपादित हैं, उन्हें सम्पन्न करने से वह वर्जित नहीं है।[9] इसी प्रकार विश्वरूप के अनुसार भी शूद्रों के लिए नामकरण तथा अन्य संस्कार सम्पन्न करने चाहिए; किन्तु मन्त्रोच्चारण के बिना।[10] मेधातिथि के अनुसार शूद्र के कर्तव्य भी उसके सीमित अधिकारों की तरह सीमित हैं। शूद्र तभी पाप करता है जब वह ऐसे कार्य करता है जो उसके लिए स्पष्टतः वर्जित हों। यज्ञोपवीत आदि संस्कार उसके निमित्त नहीं हैं, और यदि वह स्नान नहीं करता या उपवास नहीं करता, या देवोपासना नहीं करता, तो वह कोई पाप नहीं करता है।[11] मेधातिथि के अनुसार चाण्डाल को भी सम्पत्ति के स्वामित्व

---

१. देखिए, हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र, १।१२, १८-२०; आपस्तम्ब धर्मसूत्र, २।३, ६, ९-१०।
२. संस्कार प्रकाश, ५२५ तथा स्मृतिचन्द्रिका, १।१३७ में उद्धृत।
३. संस्कार प्रकाश, उपर्युक्त में उद्धृत।
४. मनु०, ८।४१३-१४ पर मेधातिथि।
५. वही, ८।४१५ पर मेधातिथि।
६. वही, ३।१५६ पर मेधातिथि।
७. मनु०, ६।५७ पर मेधातिथि।
८. वही, ३।६७ तथा १२१ पर मेधातिथि।
९. वही, १०।१२७ पर मेधातिथि।
१०. याज्ञवल्क्य, १।१३ पर विश्वरूप।
११. मनु०, १०।१३६ पर मेधातिथि।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का अधिकार था, तथा यदि उसकी चोरी हुई सम्पत्ति मिल जाय तो राजा को चाहिए कि वह उस सम्पत्ति को उसे लौटा दे।[1]

मेधातिथि के अनुसार द्विज के जो पुत्र निम्नवर्णीय स्त्रियों से उत्पन्न हों, जो शूद्र न हों, वे यज्ञोपवीत तथा द्विजों के लिए प्रतिपादित अन्य संस्कार सम्पन्न करने के अधिकारी हैं।[2] औशनस तथा वैखानस 'स्मार्तसूत्र अम्बष्ठों' की उत्पत्ति ब्राह्मण पुरुष तथा वैश्य स्त्रियों से बतलाते हैं।[3] 'वृहद्धर्म पुराण' के अनुसार अम्बष्ठ शूद्र थे।[4] औशनस एक अन्य जाति का उल्लेख करता है जो ब्राह्मण पुरुषों तथा क्षत्रिय स्त्रियों से उत्पन्न हुई तथा भिषक कहलाई।[5] ये लोग औषधि, नक्षत्र-विद्या, ज्योतिष तथा गणित का अध्ययन करते थे। करण जाति का भी उल्लेख है जो वैश्य पुरुषों तथा शूद्र स्त्रियों से उत्पन्न हुई। 'वृहद्धर्म पुराण' के उपर्युक्त संदर्भ में इन्हें भी शूद्र कहा गया है। कायस्थों का उल्लेख भी 'वेदव्यास स्मृति' में शूद्र जातियों की सूची में है।[6] चाण्डालों का उल्लेख बहुत सी स्मृतियों में मिलता है। 'अग्नि पुराण' के अनुसार चाण्डालों की नियुक्ति अपराधियों को प्राण दण्ड देने के लिए करनी चाहिए; उन्हें मृत पुरुषों के वस्त्र पहनने चाहिए तथा गांव से बाहर रहना चाहिए और दूसरों को स्पर्श नहीं करना चाहिए।[7] मेधातिथि स्वपाकों का उल्लेख करता है जो चाण्डाल पुरुष तथा पुक्कश स्त्रियों से उत्पन्न होते थे, तथा जिन्हें अपराधियों को प्राण दण्ड देने के लिए, लावारिस मुर्दों को ले जाने के लिए तथा उनके कपड़े लेने के लिए, मृत पुरुषों के लिए दिये गये भोजन का उपभोग करने के लिए प्रयुक्त करना चाहिए।[8] इस काल के पुरुष को चाण्डालों के स्पर्श से बचने की बड़ी चिन्ता रहती थी। चाण्डालों से यदि स्पर्श हो जाय, तो उसे बहुत प्रकार के प्रायश्चित्त करने पड़ते थे।[9] मेधातिथि के अनुसार चाण्डालों के स्पर्श से लकड़ी, लकड़ी से बनी हुई वस्तुएँ तथा मकानों की दीवारें भी अपवित्र हो जाती थीं।[10] यदि सोने और चांदी के बर्तनों को छोड़कर अन्य किसी धातु के पात्रों में चाण्डाल और स्वपाक भोजन कर लें तो उन्हें फेंक देना चाहिए।[11] मेधातिथि के अनुसार चाण्डालों को इधर-उधर जाते समय पहचान के लिए कुछ चिह्न अपने साथ ले जाना चाहिए।[12] सूत, मागध, आयोगव नामक प्रतिलोम जातियां भी

---

१. मनु० ७।४० पर मेधातिथि।
२. मनु० १०।४१ पर मेधातिथि।
३. औशनस धर्मसूत्र, ३१।३२; वैखानस स्मार्तसूत्र, १०,१२; मनु०, १०।४७।
४. वृहद्धर्म पुराण, २।१३-१४।
५. औशनस, २६-२७।
६. वेदव्यास स्मृति, १।१०-११।
७. अग्नि पुराण, १९१।१० तथा उससे आगे।
८. मनु०, १०।३८ पर मेधातिथि।
९. याज्ञवल्क्य, ३।२९२ पर अपरार्क में उद्धृत।
१०. मनु०, ५।१२ पर मेधातिथि।
११. वही, १०।५१ पर मेधातिथि।
१२. वही, १०।५५ पर मेधातिथि।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मेधातिथि के अनुसार अस्पृश्य थीं। इस काल की कड़ी जाति प्रथा का संकेत इस बात से मिलता है कि चाण्डाल की छाया भी अपवित्र मानी जाती थी। 'अत्रि', 'अंगिरस', 'शातातप' तथा 'औशनस' स्मृतियों के अनुसार चाण्डाल की छाया पड़ जाने पर पवित्र होने के लिए स्नान करना चाहिए।[1] व्याघ्रपाद तथा वृहस्पति के अनुसार चाण्डाल को प्रतिपादित सीमा के बाहर रखना चाहिए।[2]

इस सामाजिक अत्याचार के विरुद्ध भी कभी-कभी विचार व्यक्त किये गये। 'शिव-धर्मोत्तर' के अनुसार चाण्डालों अथवा जाति-विहीनों की छाया से कोई अपवित्र नहीं होता।[3] मेधातिथि भी कहता है कि चाण्डाल की छाया दूसरों को अपवित्र नहीं बनाती।[4]

धार्मिक सम्प्रदाय :

इस काल की स्मृतियों के अध्ययन से विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के प्रति ब्राह्मणों के दृष्टिकोण पर अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। ऐसे कई सम्प्रदाय थे जिनके सदस्यों के स्पर्श की तो बात ही क्या, उनके दर्शन मात्र से ही अशुद्धि का भय था। 'ब्रह्माण्ड पुराण' के अनुसार शैवों, पाशुपतों, लोकायतों तथा इस प्रकार के अन्य सम्प्रदायों के स्पर्श के बाद मनुष्य को अपने वस्त्र धारण किये हुए ही स्नान करना चाहिए।[5] 'षट्त्रिंशनमत' के अनुसार बौद्धों, पाशुपतों, लोकायतों आदि के स्पर्श के बाद स्नान आवश्यक था।[6] वृद्ध हारीत के अनुसार शैवों के स्पर्श के पश्चात अथवा किसी शैव अथवा बौद्ध मन्दिर में प्रवेश के पश्चात पवित्रीकरण के लिए स्नान की आवश्यकता है।[7] एक स्मृति ग्रन्थ के अनुसार जिसका नाम अज्ञात है, जैन, पाशुपतों, बौद्धों, कौलों आदि को देखने के बाद मनुष्य को शुद्धि के लिए सूर्य की ओर देखना चाहिए। और यदि उन्हें छू ले तो स्नान करना चाहिए।[8]

सामाजिक कटुता एवं दौर्बल्य :

यह स्पष्ट है कि हिन्दू समाज न जाने कितने सम्प्रदायों, जातियों तथा वर्गों में विभाजित था। इस विभाजन की कटुता, ऊँच-नीच एवं शुद्ध-अशुद्ध की भावना ने प्रबल बना दी थी। जिस समाज में किसी वर्ग के मनुष्यों का स्पर्श अथवा दर्शन मात्र भी अन्य जनों के लिए अपवित्रीकरण का कारण हो, वह समाज कभी बाहरी संकट का सुसंगठित ऐक्य के साथ सामना नहीं कर सकता। जहाँ एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय को अपवित्र समझे तथा अस्पृश्य माने, वहाँ सामाजिक विषमता सुरक्षा की जड़ों को दुर्बल बना देगी। यही कारण थे कि भारत

---

१. अत्रि, २८८-८९; याज्ञवल्क्य, ३।३० पर विज्ञानेश्वर द्वारा उद्धृत अंगिरस; याज्ञवल्क्य ३।२९२ पर अपरार्क द्वारा उद्धृत शातातप; औशनस स्मृति, ९।१।५५२।
२. याज्ञवल्क्य, ३।३० पर विज्ञानेश्वर द्वारा उद्धृत तथा स्मृतिचन्द्रिका, १।१७।
३. याज्ञवल्क्य, १।१९३ पर अपरार्क द्वारा उद्धृत।
४. मनु०, ५।१३३ पर मेधातिथि।
५. याज्ञवल्क्य, ३।३० पर विज्ञानेश्वर द्वारा उद्धृत।
६. वही, ३।३० पर अपरार्क द्वारा उद्धृत।
७. वृद्ध हारीत, ९।३५९, ३६३-६४।
८. याज्ञवल्क्य, ३०३० पर अपरार्क द्वारा उद्धृत।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विदेशी आक्रामकों के प्रहारों का समुचित उत्तर न दे सका। तत्कालीन ऐतिहासिक प्रमाणों में स्मृतिकारों की संकीर्णता के प्रभाव का संकेत मिलता है। अभिलेखों में इतस्ततः ब्राह्मणों को दिये गये भूमिदान का उल्लेख है तथा उन्हें वेदों के अध्ययन एवं अन्य धार्मिक क्रिया कलापों में व्यस्त बताया गया है। किन्तु ब्राह्मण ऐसे पेशे भी अपनाते थे जो आपद्धर्म के अन्तर्गत ही उपयुक्त हो सकते थे।[1] इसी प्रकार क्षत्रिय भी बहुत से ऐसे कार्य करते थे जो साधारणतः उनके लिए धर्म-विरुद्ध थे।[2] अन्य अभिलेखों में चारों वर्णों के पुनर्विभाजन तथा विभिन्न जातियों का उल्लेख मिलता है। विभिन्न वैश्य जातियों का भी उल्लेख साहित्य एवं अभिलेखों में मिलता है।[3]

बाह्य जातियां जो भारत में निवास करने लगीं थीं, सभी हिन्दू गर्त में विलीन हो गईं। किन्तु मुसलमान इस प्रभाव से मुक्त रहे। शक तथा हूणों का भारतीयकरण हो चुका था। हूण तथा अन्य शासकों के ब्राह्मण वंशों में विवाह के भी कतिपय उदाहरण प्राप्त होते हैं।

दास प्रथा :

दास प्रथा भी भारतीय समाज में विद्यमान थी। मेधातिथि दास तथा उसकी पत्नी के प्रति उचित व्यवहार करने की संस्तुति करता है,[4] जिससे यह निष्कर्ष निकालना कठिन नहीं कि अनुचित व्यवहार करने वालों की संख्या कम न होगी। दक्षिण भारत में मंदिरों के लिए दास खरीदे जाते थे, तथा प्रायः निर्धन लोग अपने आप को दास के रूप में मंदिरों को बेच देते थे, ताकि वे दुर्भिक्ष-वश भूखे न मरें।[5] मंदिर तथा देवालय भी इस प्रकार दासता की प्रथा को प्रोत्साहित करते थे।

विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध एवं प्रथायें :

सामाजिक विभाजन के नियम कठोर थे। यह बात विवाह-पद्धति से भी सिद्ध होती है। क्षत्रिय तथा वैश्य स्त्रियों के साथ ब्राह्मण का विवाह मेधातिथि के अनुसार सर्वथा असामान्य था।[6] शूद्र कन्या के साथ ब्राह्मण का विवाह वर्जित था। 'नारदीय पुराण' के अनुसार द्विजों का विवाह अन्य वर्णों की कन्याओं के साथ कलियुग में वर्जित है।[7] मेधातिथि के अनुसार कन्याओं का विवाह तभी कर देना चाहिए जब वे छः अथवा आठ वर्ष की हों, तथा नग्निका कहलाती हों।[8] एक अन्य स्थान पर वह कहता है कि कन्या के विवाह की उपयुक्त

---

१. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३७३-७४ तथा टिप्पणी ८८।
२. वही, पृ० ३७४ तथा टि० ८९।
३. देखिए, ऐपि० इंडि०, १९, पृ० ५८ और उससे आगे; दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३७४ तथा टि० ९१।
४. मनु०, ८।२९९ पर मेधातिथि।
५. देखिए, ए० आर० एस० आई० ई०, संख्या २१६-१९ (१९२५), ९४ (१९२६)।
६. मनु०, ३।१४ पर मेधातिथि।
७. नारदीय पुराण, १।२४।१३-१६।
८. मनु०, ९।८८ पर मेधातिथि।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आयु उसके आठवें वर्ष तथा उसके रजस्वला होने के मध्य का काल है।[1] इससे यह स्पष्ट है कि बाल-विवाह की प्रथा का प्रचलन था जो सामाजिक दौर्बल्य के लिए उत्तरदायी था।

सती प्रथा :

समाज के कुछ वर्गों में सती प्रथा का प्रचलन था। कुछ ग्रन्थकारों ने इसे स्वीकार किया है, किन्तु कुछ ने इसकी निन्दा भी की है।[2] अरब लेखक सुलेमान के अनुसार राजाओं की पत्नियां अपने आप को अपने पतियों की चिता पर कभी कभी भस्म कर देती थीं, किन्तु इस विषय में उन्हें स्वयं ही निर्णय करने का अधिकार था।[3] सती के कतिपय ऐतिहासिक उदाहरण उपलब्ध हैं।[4] मुस्लिम आक्रामकों से सतीत्व की रक्षा हेतु जौहर का उल्लेख इतिहास में आगे भी मिलता है।

देवदासियां :

मंदिरों में देवदासियों का बाहुल्य था। कुमारियां मंदिरों को दान में दे दी जाती थीं, जिसका उल्लेख मेधातिथि भी करता है।[5] इस काल के अभिलेख भी इसके साक्षी हैं।[6] राजराज प्रथम का अभिलेख जिसमें चोल राज्य के विभिन्न मंदिरों से ४०० देवदासियों को राजा के तंजौर मंदिर में ले जाये जाने का उल्लेख है, इस विषय में महत्वपूर्ण प्रमाण प्रस्तुत करता है।[7] अबू ज़ैद भी देवदासियों का उल्लेख करता है।[8]

वेश्या-वृत्ति :

वेश्याओं के अनेक उल्लेख मिलते हैं। 'मत्स्य पुराण' में वेश्या धर्म का उल्लेख है तथा उनके कर्तव्यों का निरूपण किया गया है।[9] एक अरब भूगोलकार बतलाता है कि सार्वजनिक स्थानों पर इस प्रकार की स्त्रियों के अड्डे होते थे तथा अन्य लेखकों के अनुसार भारतवासी वेश्यावृत्ति को वैध समझते थे।[10] यह भी प्राचीन भारतीय प्रथा है कि यात्रियों की विश्रामशालाओं में वेश्यायें रखी जाती थीं। राजघरानों में वेश्यायें सदैव उपस्थित रहती थीं। उदाहरण रूप में रोचक उल्लेख मिलता है कि राजकुमार नन्दिवर्धन एवं राजकुमारी कनक मंजरी

---

१. मनु०, ९।४ पर मेधातिथि।
२. याज्ञवल्क्य, १।८७ पर अपरार्क; मनु०, ५।१५६ पर मेधातिथि।
३. इलि० डाउ०, भाग १, पृ० ९९।
४. राज तरंगिणी, ६।१०७, १९५, १९६; १९०३ का अभिलेख संख्या ३७६ तथा १९०२ का अभिलेख संख्या २३६ तथा एस० आई० आई०, ३९३ तथा उससे आगे।
५. मनु०, ९।१३३ पर मेधातिथि।
६. ऐपि० इंडि०, खं० २२, पृ० १२२ तथा उससे आगे; ऐपि० इंडि०, खं० १७, पृ० ८ और उससे आगे।
७ एस० आई० आई०, २, संख्या ६६।
८. इलि० डाउ०, भाग १, पृ० ११।
९. मत्स्य पुराण, ७०।२८ तथा उससे आगे; २२।१४४ तथा उससे आगे।
१०. देखिये, अबूज़ैद, होडीवाला में उद्धृत, १२; फैरेन्ड, २८, ६३, ७३ में उद्धृत इब्ने-खुर्दाद्ब; इब्ने अलफक़ीह तथा इब्ने रोस्तेह।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के विवाह के अवसर पर वर को वेश्याओं ने स्नान कराया था।[1] 'उपमितिभव प्रपंच कथा' में उच्चकोटि की तथा साधारण स्तर की गणिकाओं का उल्लेख मिलता है।[2] 'कुट्टनीमतम्'[3] नामक ग्रन्थ में तो तत्कालीन गणिका के जीवन का पूर्ण प्रतिबिम्ब मिलता है। सामाजिक विलासिता के ये प्रमाण राजवंशों की जनता तथा राष्ट्ररक्षा के प्रति उदासीनता के कारण बने।

स्त्रियां पुरुषों पर आश्रित रहती थीं। इस काल के ग्रन्थों में नारी की स्वाधीनता दृष्टिगत नहीं होती, किन्तु अबूज़ैद लिखता है कि अधिकतर भारतीय शासक दरबार में अपनी स्त्रियों को बिना पर्दे बिठाते थे। देशी तथा विदेशी सभी देख सकते थे।

नगरों का अभाव :

पूर्व-कालीन अरब भूगोलकारों ने इस बात की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि नवीं एवं दसवीं शताब्दी में भारत में चीन की अपेक्षा नगरों की संख्या कम थी।[4] भारतीय जीवन में ग्रामों की प्रधानता परम्परागत रही। ग्राम्य जीवन की सीमा सदैव संकीर्ण रही। जनता रूढ़िवाद, धर्म, अन्ध विश्वास आदि के बन्धनों में जकड़ी रही तथा प्रगतिशील न रही। यातायात तथा बाह्य जगत से सम्पर्क के उपयुक्त साधनों के अभाव के कारण असंख्य ग्रामों के निवासी कूप-मंडूक वृत्ति के शिकार रहे, तथा कभी राष्ट्र के संकट का उचित भास भी न कर पाये। सुरक्षा के प्रयास का तो कहना ही क्या ?

समुदाय :

तत्कालीन सामाजिक चित्र बिना विभिन्न सम्प्रदायों के उल्लेख के सम्पूर्ण नहीं होगा। ग्रामों तथा नगरों में ये समुदाय अपना-अपना विशिष्ट महत्व रखते थे। मेधातिथि के अनुसार एक ग्राम के लोग जब एक अन्य ग्राम के लोगों के द्वारा अपने चरागाहों तथा जल के साधनों के अनधिकार उपभोग से तंग आ गये, तो उन्होंने अपने प्राचीन अधिकारों की रक्षा के लिए एक समझौता किया।[5] उसके अनुसार यदि कोई व्यक्ति अन्य जनों से मिल जायगा तो उसे ग्राम से निष्कासित कर दिया जायगा, अथवा उसे आर्थिक दण्ड देने को बाध्य किया जायगा। मेधातिथि जाति-संघों का भी उल्लेख करता है।[6] ग्रामों के समुदाय अलग थे तथा विभिन्न जातियों के समुदाय अलग थे। इसके अतिरिक्त कुछ संघ सम्मिलित जातियों के भी थे।

विलासिता :

'कुट्टनीमतम्' तथा 'काव्य मीमांसा' आदि में तत्कालीन विलासिता का चित्र दृष्टिगत होता है। राज प्रासाद में सम्पन्नता एवं विलासिता अपनी पराकाष्ठा पर दृष्टिगोचर होती है। राज महल में कदलीगृह का उल्लेख है, जिसके मध्य में रत्नजटित राज्यासन होता था।[7]

---

१. देखिये, उपमिति, पृ० ३८५।
२. वही, ३७४ तथा उसके आगे, पृ० ६१८ तथा उससे आगे।
३. कुट्टनीमतम्, श्लोक २५६ तथा उससे आगे, श्लोक १०६ तथा उससे आगे।
४. इब्ने अलफ़क़ीह (फेरेन्ड, ६३); सुलेमान (फेरेन्ड, ६३ टि०)।
५. मनु०, ८।२१९-२० पर मेधातिथि।
६. वही, ८।२२१।
७. कर्पूरमंजरी, २।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजा के शयनागार का उल्लेख है, जिसमें पच्चीकारी युक्त स्तम्भ थे, तथा रत्नजटित आंगन था।[१] 'कर्पूरमंजरी' में रनिवास का उल्लेख है। पांच चंवर हिलाने वाली कुमारियों का, पांच सहगामिनी सेविकाओं, पाँच पानदान रखने वाली सेविकाओं, तथा पाँच स्नानागार की सेविकाओं का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त पाँच निरीक्षकों का भी सल्लेख है, जिनके हाथ में सुनहले दण्ड होते थे।[२]

अरब लेखकों के अनुसार भी भारतीय विलासप्रिय थे, तथा आभूषणों से अत्यधिक प्रेम करते थे। सुलेमान के अनुसार पुरुष तथा स्त्री अपने आप को बाजूबन्द तथा अन्य बहुमूल्य मणियों से अलंकृत करते थे। इब्ने अलफ़कीह के अनुसार भी इन आभूषणों के अतिरिक्त पुरुष एवं स्त्रियां कर्णबाली पहनते थे। अबूज़ैद के अनुसार भारतीय शासक लाल तथा हरी मणियों से जटित सुवर्णहार पहनते थे तथा मणिमुक्ताओं से बड़ा अनुराग रखते थे। इब्ने हौक़ल के अनुसार चोल के क्षेत्र के लोग बढ़िया मलमल के वस्त्र पहनते थे।[३] आभूषणप्रियता तथा विलासप्रियता के ये चित्र शासकों एवं शासितों के भोग-विलास, आलस्य एवं दौर्बल्य के प्रतीक हैं।

कहीं-कहीं साहित्य में आमोद-प्रमोद की विचित्र प्रथाओं का उल्लेख है। एक स्थान पर कुमारियों के नृत्य का उल्लेख मिलता है। जहाँ वे पहाड़ी वेश-भूषा धारण करती हैं, अथवा श्मशान के चित्र प्रस्तुत करती हैं, और अपने हाथों से मनुष्य मांस अर्पित करती हैं।[४] साहित्य में विभिन्न गोष्ठियों का उल्लेख मिलता है। 'अभिधान रत्नमाला' में मदिरापान के आयोजन के लिए 'आपान' अथवा 'पान' गोष्ठी प्रयुक्त हुआ है; तथा मिल-जुल कर पीने के लिए 'सहपीति' एवं 'सहपानक' प्रयोग हुए हैं।[५] 'रति रहस्य' में प्रेमियों का वर्णन है, जो अपनी प्रेमिकाओं से रात्रि को 'नर्मगोष्ठियों' में मिलते हैं।[६] उद्यान यात्राओं, पान-यात्राओं तथा जलावतार का भी उल्लेख है, जिनमें अपवित्र पत्नियां अपने प्रेमियों से मिलती थीं।[७] 'उपमितिभव प्रपंचकथा' में एक राजधानी में वसंत विहार का चित्र प्रस्तुत किया गया है। भवचक्र नामक नगरी के लोग नगर के बाहर जाकर बलुक, अशोक आदि वृक्षों के नीचे प्रणय क्रीड़ा करते हैं; रत्न-जटित मदिरा पात्रों से पान-पात्रों को भर-भर कर युवक अपनी प्रियतमाओं के अधरों से लगाते हैं। नाच गानों के साथ लोग बाग बहुत सी मदिरा पान करती हुई टुकड़ियों अथवा आपानकों में बट जाते हैं। तब राजा एक विशाल हाथी पर अपने अनुचरों के साथ नगर के बाहर आता है और इस आमोद-प्रमोद में सम्मिलित होता है। उसके आते ही वाद्यवादनों की ध्वनि होती है। नृत्य तथा गीत आदि होते हैं। राजा मदिरा चंडिका की उपासना करता है, तथा एकत्रित जनों के साथ मदिरापान करता है। राजा के भाई की पत्नी रति-

१. विद्धशालभंजिका, १।
२. कर्पूरमंजरी, ४।
३. फेरेन्ड, ६३; इलि० डाउ०, १।३९।
४. देखिये, कर्पूरमंजरी, २; विद्धशालभंजिका, २; काव्यमीमांसा, १८; उपमिति, पृ० ३५४।
५. अभिधान रत्नमाला, २।१७३-७५।
६. रति रहस्य, १०।१-२।
७. वही, १३।९३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ललिता अपने मदमत्त पति के आग्रह से उपस्थित जनों के बीच में नाचती है, जिसे देखकर काम-संतप्त राजा उसे पकड़ने का प्रयास करता है। वह उससे बच कर भागती है, तथा अपने पति का आश्रय लेती है, जो राजा को युद्ध के लिए ललकारता है तथा मार डालता है। यद्यपि यह कथा कल्पित है, तथापि तत्कालीन सामाजिक वातावरण पर पूर्ण प्रकाश डालती है। मदमत्त, विलास-रत, भारतीय शासक इतने जागरूक न रह गये थे, जितना विदेशी आक्रामकों के पदचापों को रोकने के लिए आवश्यक था। जब संकट प्रस्तुत हुआ, सुरक्षा प्रयास अतीव आवश्यक था, किन्तु क्षीण शासक समय की गति से अनभिज्ञ थे।

सुरापान :

प्राचीन काल में मनु तथा याज्ञवल्क्य ने ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए सुरापान वर्जित किया था। किन्तु इस युग में मदिरा पान का प्रचलन बढ़ गया। उदाहरण रूप में मेधातिथि[२] तथा विश्वरूप[३] के अनुसार ब्राह्मणों को छोड़ कर क्षत्रिय तथा वैश्य सुरापान कर सकते हैं। यद्यपि स्मृतियों के अनुसार मांस भक्षण की आज्ञा है तथापि बौद्ध तथा जैन प्रभाव खाने-पीने की आदतों में दृष्टिगत होता है। कुछ राजकुमार मांस-भक्षण तथा सुरापान की भर्त्सना करते हैं।[४] साहित्यिक प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि ब्राह्मणों को छोड़ कर पुरुष तथा स्त्रियां सभी स्वच्छन्दता पूर्वक सुरापान करते थे।[५] राजशेखर के अनुसार दक्षिणी द्रविड़ महिलाएँ सामान्य रूप से मधुपान करती थीं। मेधातिथि[६] के अनुसार क्षत्रिय स्त्रियां उत्सवों पर बहुत अधिक मदिरापान करती थीं। अरब लेखकों[७] का यह कथन कि भारतीय मदिरापान नहीं करते थे, उनके अज्ञान का परिचायक है।

साहित्यिक साक्ष्यों के उपर्युक्त उल्लेख से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पुरुष तथा स्त्रियों के सुरापान से तामसिक प्रवृत्तियां जागृत हुईं, विलासिता बढ़ी तथा क्षीणता का संचार हुआ। बौद्ध तथा जैन अहिंसा के सिद्धान्तों ने मांस भक्षण आदि कम करके दौर्बल्य एवं भीरुता को प्रोत्साहन दिया। सुरक्षा की भावना का स्थान आत्म समर्पण के विचार ने ले लिया। भारत की आगामी कठिनाइयों के सन्दर्भ में इस प्रकार की जीवन वृत्ति देश के भविष्य के लिए श्रेयस्कर सिद्ध न हुई।

अंध-विश्वास तथा कूप-मंडूक वृत्ति :

लोग शकुन तथा अपशकुन पर अधिक विचार करने लगे। 'मत्स्य पुराण' में शकुनों की एक लम्बी सूची मिलती है, तथा उनके कुप्रभाव का अन्त करने के लिए उपायों का भी

---

१. उपमिति, ५९०-६०३।
२. मनु०, ११।९३-४ पर मेधातिथि।
३. याज्ञवल्क्य, ३।२२२ पर विश्वरूप।
४. उपमिति, ६०३-४; ६२७-२९।
५. काव्यमीमांसा, ८।३९; देखिए, उपमिति, ५९० और उसके आगे।
६. मनु०, ९।८४ पर मेधातिथि।
७. सुलेमान, इलि० डाउ०, भाग १, पृ० ७; मसूदी, वही, भाग १, पृ० २०; इब्ने खुर्दाद्ब, फेरेन्ड, २८; इब्ने रोस्तेह, फेरेन्ड, ७०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उल्लेख है।[१] नक्षत्रों को प्रसन्न करने के उपाय का एक अन्य अध्याय में उल्लेख है।[२] मेधातिथि भी सामान्य अन्धविश्वास का उल्लेख करता है।[३] उसके अनुसार 'अभिचार' ऐसी रूढ़ियां हैं जिनसे शत्रु की शीघ्र मृत्यु हो जाती है। 'जादू' अथवा 'कृत्या' लोगों को विक्षिप्त करने अथवा उनके मध्य फूट डालने के लिए किये जाते हैं। उच्च स्तर के लोगों के जीवन पर इस प्रकार के अन्धविश्वासों की गंहरी छाप थी। राजा प्रायः ज्योतिषियों से भविष्य के विषय में प्रश्न किया करते थे। अबूज़ैद भी ज्योतिर्विदों तथा अन्य जनों का उल्लेख करता है, जो कौवों की उड़ान से शकुन तथा अपशकुन निकाला करते थे।[४]

विदेश गमन तथा समुद्री यात्रा पर 'नारदीय महापुराण' प्रतिबन्ध का प्रतिपादन करता है।[५] आत्महत्या एक धार्मिक प्रक्रिया, तथा शारीरिक दुःखमोचन का साधन मानी गई। कन्नड़ देश में एक पुरुष अपने राजा के पुत्र की उत्पत्ति की प्रसन्नता में अपना सिर देवी को अर्पण करता है।[६] अबूज़ैद तथा मसूदी उन लोगों का उल्लेख करते हैं जो राज्याभिषेक के समय राजा के साथ चावल खाते हैं तथा उसकी मृत्यु पर अपने आप को भस्म कर देते हैं। अबूज़ैद तथा इब्ने खुर्दाद्ब के कथन से प्रतीत होता है कि वृद्ध जन प्रायः डूब कर अथवा जल कर आत्म हत्या कर लेते थे।[७]

भाग्यवाद :

उपर्युक्त प्रमाण जीवन में भाग्यवाद एवं निराशा के परिचायक हैं। अन्धविश्वास, ज्यौतिष, समुद्र-यात्रा निषेध, शत्रु दमन के लिए टोटके-टमनों का आयोजन, ये समस्त बातें असहायता की भावना की ओर संकेत करती हैं। जिस युग में आत्महत्या को भी धार्मिक प्रोत्साहन मिले, उसके नैराश्य की गहनता सर्वथा स्पष्ट है। विलासिता, अहिंसा आदि देश रक्षा के उपयुक्त अस्त्र नहीं हैं।

---

१. मत्स्य पुराण, २०८-२३९।
२. वही, ९३।
३. मनु०, ९।२९० पर मेधातिथि।
४. इलि० डाउ०, भाग १, पृ० १०।
५. नारदीय महापुराण, १।२४, १३-१६।
६. ई० सी०, ८।
७. इलि० डाउ०, भाग १, पृ० ९, १०, १६४; होडीवाला, ९-१०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ४

अफ़गानिस्तान में तुर्कों का उत्थान तथा भारत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अफ़गानिस्तान की स्थिति में परिवर्तन :

दशवीं शताब्दी अफ़गानिस्तान एवं मध्य एशिया की राजनीतिक स्थिति में एक बड़ा परिवर्तन आने लगा था। उस समय वर्तमान समय का समूचा अफ़गानिस्तान भारतवर्ष का अंग समझा जाता था और दो भागों में विभाजित था। उत्तरी अफ़गानिस्तान को काबुल या काबुलिस्तान कहा जाता था। वहाँ इस शताब्दी के प्रारम्भ में लल्लीय अथवा कल्लण नामक राजवंश शासन करता था।[१] दक्षिणी अफ़गानिस्तान को उस समय जाबुल या जाबुलिस्तान कहते थे। इस प्रदेश पर सम्भवतः भट्टीय कहलाने वाले राजपूतों अथवा क्षत्रियों का शासन था। इन दोनों राज्यों को शीघ्र ही बुख़ारा (मध्य एशिया) में इस समय प्रबल होने वाले सामानी साम्राज्य से संघर्ष करना पड़ा। इसी सामानी साम्राज्य के सामन्तों ने ही बाद में गज़नी में तुर्क राज्य की नींव डाली, तथा भारत पर आक्रमण किये।

सामानी राजवंश का उत्कर्ष ख़लीफ़ा अल-मामू के समय में आरम्भ हुआ। इन्होंने सर्वप्रथम असद-बिन-सामान के चारों बेटों को आमू नदी के पार (ट्रान्सआक्सियाना) के महत्वपूर्ण नगरों का शासन सौंपा।[२] इसके बाद इनके राज्य का विस्तार शनैः-शनैः जैक्सार्टीज़ से बग़दाद तक और ख़्वारिज़्म तथा कैस्पियन सागर से भारतवर्ष की सीमाओं तक हुआ। काशगर के राजा इलक खां तथा सुल्तान महमूद द्वारा ९९९ ई० में क्रमशः ख़ुरासान और बुख़ारा जीते जाने के बाद इस वंश का अन्त हो गया।[३] इस सामानी राजवंश के इतिहास पर उत्बी तथा अन्य मुस्लिम इतिहासकारों ने प्रकाश डाला है।[४] इससे यह ज्ञात होता है कि बुख़ारा में इस वंश की स्थापना ८२५ ई० में मुसलमान बने जर्थुस्त्री असद ने की थी।[५] यह पहले पारसी धर्म का उपासक था, किन्तु बाद में इस्लाम का अनुयायी हो गया। इसके बेटे अहमद ने अपने पैतृक राज्य का विस्तार करते हुए समरकन्द और फरग़ना को जीत लिया।[६] इसके पौत्र एवं उत्तराधिकारी इस्माइल ने ९०३ ई० में बुख़ारा में विज्ञान और साहित्य को प्रोत्साहन देकर उसे तत्कालीन ज्ञान-विज्ञान का एक महान केन्द्र बनाया।[७] बुख़ारा के राजाओं

---

१. इलि० एण्ड डाउ०, भाग १, पृ० २०१।
२. सी० वी० वैद्य, डाउनफाल ऑफ हिन्दू इण्डिया, पृ० १०।
३. उत्बी, पृ० १३१, १३३, १३४; गर्दीज़ी, पृ० ६२, ६३; नाज़िम, पृ० ४४।
४. जे० आर० ए० एस० बी०, खण्ड १५, भाग १; सी० वी० वैद्य, डाउन फाल-ऑफ हिन्दू इण्डिया, पृ० १०।
५. सी० वी० वैद्य, पृ० १०।
६. सी० वी० वैद्य, डाउनफॉल ऑफ हिन्दू इण्डिया, पृ० १०।
७. वही।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की उपाधि अमीर थी। इस्माइल के बाद अगले शासक अहमद के एक युद्ध में मारे जाने के कारण वह अमीर शहीद कहलाता है।[1] इसका पुत्र नसर द्वितीय था।

नसर द्वितीय के समय में ही बुखारा के शासकों द्वारा भारत पर आक्रमण किया गया। इसका एक साहसी एवं महत्वाकांक्षी सेनापति याकूब-ए-लैश था। उसने सेना एकत्र कर भारत पर आक्रमण किया और ९१२ ई० में हिरात को जीत लिया।[2] उन दिनों उत्तरी अफ़ग़ानिस्तान का हिरात प्रदेश भारत का ही अंग माना जाता था। इस याकूब-ए-लैश को ग़ज़नी नगर की स्थापना करने और वहाँ एक किला बनवाने का श्रेय दिया जाता है।[3] उसने ज़ाबुलिस्तान अथवा दक्षिणी अफ़ग़ानिस्तान को भी जीता और वहाँ शासन करने वाले राजपूतों को वहाँ से भगा दिया। यह सम्भवतः सिन्धु के पार पंजाब में बस गये।[4] याकूब-ए-लैश की सफलताएँ क्षणिक थी। वह एक धूमकेतु की भांति थोड़े समय के लिए अपनी विजयों के कारण बहुत चमका, किन्तु शीघ्र ही यह चमक समाप्त हो गई।[5] उसने किसी नये राजवंश की स्थापना नहीं की। सामानी वंश के सामन्तों के रूप में ग़ज़नी के राजवंश का अभ्युदय हुआ और इसने भारत की राजनीति पर गहरा प्रभाव डाला।

ग़ज़नी में तुर्क सत्ता की स्थापना :

सामानी राजवंश के सामन्त अलप्तगीन ने ग़ज़नी में एक नवीन राज्य की स्थापना की।[6] यह वंश सुल्तान महमूद के समय में इतना शक्तिशाली हो गया कि इसके साम्राज्य में न केवल पश्चिम में खुरासान और ख़्वारिज्म के प्रदेश सम्मिलित थे, अपितु पूर्व में समूचा पंजाब भी इसका अंग बन गया। इस वंश के राजाओं का भारतीय इतिहास के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस वंश के प्रमुख शासक निम्नलिखित थे।

अलप्तगीन-राज्यप्रसार—अलप्तगीन का जन्म लगभग ८८०-८८१ ई० में हुआ था।[7] उसे सामानी वंश के शासक अहमद-बिन-इस्माइल ने दास के रूप में खरीद कर अपने अंग-रक्षकों की सेना में भर्ती किया था।[8] किन्तु अगले शासक नसर-बिन-अहमद ने उसे दासता से मुक्त कर दिया,[9] और नूह-बिन-नसर ने उसे कुछ सेनाओं का नायक बना दिया।[10] इस स्थिति से उन्नति करते हुए वह कुछ समय पश्चात् राजा का प्रधान अंग-रक्षक (हाजिब-हुल-हुज्जाब)

---

१. वही।
२. वही।
३. वही, पृ० ११।
४. वही।
५. वही।
६. नाज़िम, पृ० २०५; नदवी, पृ० २५९।
७. मुजमले फसीही, फो० २०७ बी; नाज़िम, पृ० २४।
८. तारीखे गुज़ीदा, पृ० ३८१; सुबहे सादिक़, फो० ९९८ ए; देखिये, नाज़िम, पृ० २४।
९. मुजमले फ़सीही, फो० २०७ बी; नाज़िम, पृ० २४।
१०. तारीखे गुज़ीदा, पृ० ३८४; नाज़िम, पृ० २४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नियुक्त हो गया।[1] सामानी अमीर अब्दुल मलिक की राजधानी बुखारा पर ९५६ ई० में जब खुरासान की सेनाओं के सेनापति बक़र-बिन-मलिक ने आक्रमण किया, तो अलप्तगीन ने इस संकट से अमीर की रक्षा की और बकर-बिन-मलिक को सैनिक संघर्ष में मार डाला।[2] अमीर अब्दुल मलिक ने अलप्तगीन के इस कार्य से प्रसन्न होकर अथवा अपने एक प्रबल सामन्त को राजधानो से हटाने के लिए उसे बल्ख के प्रान्त का शासन भार सौंप दिया। किन्तु अलप्तगीन इससे सन्तुष्ट नहीं था।[3] इस स्थिति में अमीर ने खुरासान की सेनाओं का नेतृत्व भी उसे सौंपा। अलप्तगीन ने १० फरवरी, ९६१ ई० को खुरासान में अपनी नई सेना का कार्यभार सम्भाल लिया।[4]

इसके दस महीने बाद (नवम्बर ९६१ ई०) अमीर अब्दुल मलिक का देहान्त हो जाने पर उसके वज़ीर अबू-अली-बलमी ने सिंहासन के उत्तराधिकार के विषय में अपने सहयोगी अलप्तगीन से सलाह मांगी। अलप्तगीन दिवंगत अमीर के बेटे को अमीर बनाना चाहता था।[5] किन्तु वह अभी अल्पवयस्क था। अलप्तगीन का उत्तर राजधानी में पहुँचने से पहले ही दिवंगत अमीर का भाई मंसूर सेना की सहायता से बुखारा की गद्दी पर बैठ गया।[6] अलप्तगीन ने सैनिक बल से उसे सिंहासन से हटाने का निश्चय कर तूस के शासक अबू-मंसूर-मुहम्मद से शक्ति संवर्धन हेतु समझौता कर लिया। अबू-मंसूर-मुहम्मद इससे पूर्व खुरासान का भी शासक रह चुका था। अतः अलप्तगीन ने पुनः उसे खुरासान का शासक बनाया, और स्वयं बुखारा की ओर बढ़ा। अमीर मंसूर ने बड़ी चतुराई से अपने इन दोनों शत्रुओं में फूट डाल दी। उसने अबू-मंसूर-अहमद को स्थायी रूप से खुरासान का शासन देने का प्रलोभन दिया, जिसके कारण वह अलप्तगीन से अलग हो गया। इसके बाद उसने उसे यह आदेश दिया कि वह अलप्तगीन को आमू नदी न पार करने दे।[7] यद्यपि अलप्तगीन नदी पार करने में सफल हो गया, किन्तु अब वह दोनों ओर में शत्रुओं से घिर गया। अमीर ने उसके कुछ अधिकारियों को लालच देकर अपनी ओर मिला लिया।[8] अतः उसे अब अपने शिविर में ही विद्रोह की आशंका होने लगी। इन सब कारणों से विवश होकर अलप्तगीन बुखारा की ओर बढ़ने का विचार छोड़ कर बल्ख की ओर लौट पड़ा।[9] अमीर ने उसका पीछा करने के लिए अशस-बिन-मुहम्मद के सेनापतित्व में १२ हजार घुड़सवारों की एक सेना भेजी।[10] खुलम के दर्रे के

---

१. गर्दीजी, पृ० ४२; नाज़िम, पृ० २४।
२. गर्दीजी, पृ० ४१; नाज़िम, पृ० २४।
३. नाज़िम, पृ० २४।
४. गर्दीजी, पृ० ४२; नाज़िम, पृ० २४।
५. गर्दीजी, पृ० ४३; तबक़ाते नासिरी, पृ० ४२।
६. नाज़िम, पृ० २४।
७. गर्दीजी, पृ० ४३।
८. नाज़िम, पृ० २५।
९. गर्दीजी, पृ० ४३-४४।
१०. तारीखे बुखारा, पृ० ९७; गर्दीज़ी, पृ० ४४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पास अमीर मंसूर के सेनापति ने अलप्तगीन की सेना पर हमला किया। यह मुठभेड़ अप्रैल ९६२ ई० के मध्य के लगभग हुई, तथा जमकर युद्ध हुआ। विजयश्री अलप्तगीन को प्राप्त हुई। उसने अमीर के अनेक महत्वपूर्ण अफसरों को बन्दी बना लिया, जिनमें अमीर का एक मामा भी था।[1]

विजय पाने के बाद भी अलप्तगीन यह जानता था कि उसने बुखारा के अमीर को रुष्ट कर दिया है, जो अपनी पराजय का प्रतिशोध लेने के लिए दुबारा उस पर अवश्य आक्रमण करेगा। इस आशंका से भयभीत होकर उसने यह निश्चय किया कि वह ऐसे स्थान पर चला जाय कि बुखारा के अमीर के हमले की कोई आशंका न रहे। इस दृष्टि से अलप्तगीन गज़नी की ओर बढ़ा, क्योंकि यह स्थान बुखारा से बहुत दूर था। उसने वहाँ के शासक अबू-बक्र-लविक को हराया,[2] तथा इसके उपरान्त चार महीने के घेरे के बाद इस दुर्ग को जीतकर अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया।[3] गज़नी के पहले शासक अबू-बक्र-लविक ने काबुल के हिन्दू राजा के यहाँ शरण ली। किन्तु अमीर मंसूर ने अलप्तगीन को गज़नी में भी चैन से नहीं बैठने दिया। उसने शीघ्र ही अबूजाफ़र के नेतृत्व में २० हजार सैनिकों को उस पर आक्रमण करने के लिए प्रेषित किया। अलप्तगीन ने इस सेना को बुरी तरह हराकर अबू-जाफ़र को लौटने के लिए विवश कर दिया।[4] अमीर ने अलप्तगीन की शक्ति का अनुमान लगा कर यही अच्छा समझा कि वह उससे समझौता कर ले। अतः उसने अलप्तगीन द्वारा जीते गये प्रदेशों का शासन भार अपनी ओर से उसे सौंप दिया।[5] इसके बाद अलप्तगीन ने राज्य विस्तार की दृष्टि से काबुल के राज्य का कुछ भाग तथा बुस्त जीता, किन्तु वह अधिक समय तक अपने साम्राज्य का उपभोग नहीं कर पाया और १३ सितम्बर, ९६३ ई० को उसका देहान्त हो गया।[6] भारतीय इतिहास की दृष्टि से उसका विशेष महत्व इस बात में है कि उसने अफ़गानिस्तान में एक ऐसे तुर्क राजवंश की स्थापना की जिसके शासकों ने बाद में भारत पर प्रबल आक्रमण किये।

अलप्तगीन के दुर्बल उत्तराधिकारी और सुबुक्तगीन :

अलप्तगीन का उत्तराधिकारी अबू इशाक इब्राहीम बड़ा ही निर्बल शासक था।[7] उसने अपने पिता द्वारा छोड़े राज्य पर केवल ३ वर्ष (सितम्बर, ९६३ ई० नवम्बर, ९६६ ई०) शासन किया। उसके शासन के आरम्भ में ही सेना पर उसका नियन्त्रण नहीं रहा। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर अबूबक्र-लविक के पुत्र अबू-अली-लविक ने अपने पिता के राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिए गज़नी पर आक्रमण कर इब्राहीम को हरा दिया, तथा गज़नी पर अधिकार कर लिया। इब्राहीम

१. तजारिब, भाग २, पृ० १९२; इब्ने-उल-असीर, भाग ८, पृ० ४०४; नाज़िम, पृ० २५।
२. तलक़ाते नासिरी, पृ० ७१; तारीखे गुज़ीदा, पृ० ३८५।
३. मज्म-उल-अनसाब, फो० २२४ ए; नाज़िम, पृ० २५।
४. तारीखे गुज़ीदा पृ० ३८५।
५. तबक़ाते नासिरी, पृ० ४३।
६. मज्म-उल-अन्साब, फो० २२४ ए; सुबहे-सादिक, फो० ९९९ ए; नाज़िम, पृ० २६।
७. इब्ने हौक़ल, पृ० १३; गर्दीज़ी, पृ० ४१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अमीर मंसूर की सहायता प्राप्त करने के लिए बुख़ारा भाग गया।[१] वहाँ से अगले वर्ष एक बहुत बड़ी सेना लेकर लौटा। इस सेना की सहायता से उसने अबू-अली-लविक को पराजित किया और गज़नी पर २६ दिसम्बर, ९६५ ई० को पुनः अधिकार कर लिया।[२] इब्राहीम का १२ नवम्बर, ९६६ ई० को स्वर्गवास हो गया।[३] उसके राज्य को संभालने वाला उसका कोई योग्य पुत्र नहीं था।[४] अतः उसकी मृत्यु के बाद अमीरों ने उसके उत्तराधिकारी के रूप में बिलकातिगीन का चयन किया। यह अलप्तगीन का दास तथा उसकी अंगरक्षक सेना का सेनापति था।[५] बिलकातिगीन सुप्रसिद्ध योद्धा एवं वीर सैनिक था। उसका वैयक्तिक जीवन बड़ा ही पवित्र था। उसने न्याय की व्यवस्था का कठोरतापूर्वक पालन किया। अतः प्रजा उससे बहुत स्नेह रखती थी।[६] दस वर्ष शासन करने के बाद ९७५ ई० में जब वह गर्दिज़ में घेरा डाले हुए पड़ा था, उसका देहान्त हो गया।[७]

बिलकातिगीन के बाद अलप्तगीन का एक दूसरा दास पिरीतिगीन गद्दी पर बैठा।[८] इसने अपने अत्याचारपूर्ण शासन से प्रजा को अत्यन्त रुष्ट कर दिया। जनता ने इससे असन्तुष्ट होकर गज़नी के पूर्व शासक अबू-अली-लविक को अपना राजा बनाने का निमंत्रण दिया, जो काबुल के राजा के यहाँ शरण में था। इस आमंत्रण पर अबू-अली ने तुरन्त गज़नी पर चढ़ाई कर दी। इस चढ़ाई में उसके साथ काबुल के राजा का लड़का भी था।[९] पिरीतिगीन ने इस आक्रमण को रोकने के लिए सुबुक्तगीन को भेजा। काबुल से ग़ज़नी जाने वाली सड़क पर चरख नामक स्थान के निकट दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई।[१०] सुबुक्तगीन ने ५०० दासों की सेना की सहायता से अबू-अली को बुरी तरह हराया। उसने अबू-अली और काबुल के राजा के लड़के दोनों को बन्दी बना लिया और दोनों को तलवार के घाट उतार दिया।[११] इस विजय के बाद अमीरों ने सर्वसम्मति से पिरीतिगीन को गद्दी से हटाया और सुबुक्तगीन को २० अप्रैल ९७७ ई० को राजसिंहासन पर बिठाया।[१२]

---

१. तबक़ाते नासिरी, पृ० ७१; उत्बी, पृ० १४।
२. फ़सीही, फो० २८९ बी; जहांन आरा, फो० ८२ ए; नाज़िम, पृ० २६।
३. तबक़ाते नासिरी, पृ० ७२।
४. उत्बी, पृ० १५।
५. तबक़ाते नासिरी, पृ० ७३।
६. नाज़िम, पृ० २७।
७. आदाब-उल-मलूक, फो० ७५ए; नाज़िम, पृ० २७।
८. सर हेग, केंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, खण्ड ३, पृ० ११। इन्होंने इसे पीराई लिखा है, लेकिन यह ग़लत है।
९. तबक़ाते नासिरी, पृ० ७३।
१०. नाज़िम, पृ० २७।
११. तबक़ाते नासिरी, पृ० ७३।
१२. वही।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुबुक्तगीन और पश्चिमोत्तर भारत :

पश्चिमोत्तर भारत पर सर्व प्रथम आक्रमण करने वाले गज़नी के शासक अबू-मंसूर सुबुक्तगीन का जन्म ९४२-४३ ई० में हुआ था।[1] उसके पिता का नाम जूक था। वह तुर्किस्तान में एक छोटे से राज्य का स्वामी और विलक्षण शारीरिक शक्ति रखने वाला व्यक्ति था।[2] जब सुबुक्तगीन १२ वर्ष का था, उस समय एक विरोधी पड़ोसी जाति ने उसके पिता के राज्य पर आक्रमण किया और वे लड़ाई में सुबुक्तगीन को बन्दी बना कर ले गये। वह चार वर्ष तक इस जाति के पास बन्दी के रूप में रहा। इसके बाद उन्होंने उसे दास के रूप में हाजी नस्र नामक व्यक्ति के हाथ बेच दिया।[3] सुबुक्तगीन बीमार पड़ गया और नस्र को उसे तीन वर्ष तक नखशब में छोड़ना पड़ा। इस अवधि में उसने युद्ध कला एवं तलवार चलाने में निपुणता प्राप्त कर ली जिससे नस्र ने उसे दासों का नेता बना दिया।[4] सम्भवतः ९५९ ई० में सुबुक्तगीन बुखारा लाया गया। यहाँ अमीर अब्दुल मलिक के प्रधान अंगरक्षक (हाजिब-उल-हुज्जाब) अलप्तगीन ने इसे खरीद लिया।[5] अलप्तगीन सुबुक्तगीन के व्यवहार, स्वभाव और कौशल से इतना प्रसन्न एवं प्रभावित हुआ कि उसने इसे अनेक ऊँचे पद दिये।[6] अलप्तगीन के देहान्त के बाद सुबुक्तगीन अबू-इशाक-इब्राहीम का अधिकतम विश्वासपात्र अधिकारी और प्रधान अंगरक्षक (हाजिब-उल-हुज्जाब) बन गया।[7] इसका विवाह अलप्तगीन की एक लड़की के साथ हुआ।[8] बिलकातिगीन और पिरीतिगीन के दरबार में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी।[9] अमीरों ने २० अप्रैल, ९७७ ई० को सर्वसम्मति से उसे अपना राजा बनाया।[10] यद्यपि सुबुक्तगीन की बाल्यावस्था दासता में बीती थी, तथापि उसमें न्यायप्रियता के अद्भुत गुण विद्यमान थे।[11]

राज सिंहासन पर बैठने के बाद पहले अथवा दूसरे वर्ष में उसने बुस्त और कुसदाह के प्रदेश जीत कर अपने राज्य में मिला लिए।[12] तदुपरान्त उसने भारतीय प्रदेशों की ओर दृष्टि डाली। उन दिनों लमग़ान से चिनाब नदी तक के समूचे प्रदेश पर जयपाल का शासन

---

१. तबक़ाते नासिरी, पृ० ७५।
२. मज्म-उल-अन्साब, फो० २२६ बी; नाज़िम, पृ० २८।
३. बैहाकी, पृ० १०७; तबक़ाते नासिरी, पृ० ७०।
४. नाज़िम, पृ० २८।
५. तबक़ाते नासिरी, पृ० ७१; मज्म-उल-अन्साब, फो० २२७ बी।
६. सियासत नामा, पृ० ९५-९७।
७. उत्बी, पृ० १५।
८. तारीखे गुज़ीदा, पृ० ३९३।
९. तबकाते नासिरी, पृ० ७१-७३।
१०. वही, पृ० ७३।
११. हबीब, सुल्तान महमूद, पृ० १२।
१२. उत्बी, पृ० १७-१९, २०-२१; नाज़िम, पृ० १९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था।[1] जयपाल की राजधानी वैहिन्द (उद्भांड) थी।[2] वह हिन्दू शाहीय नामक राजवंश से सम्बन्ध रखता था।[3] इस वंश का संस्थापक लल्लिय तुर्कीशाहीय[4] राजवंश के अन्तिम राजा लगतुर्मान[5] का मंत्री था। नवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में लल्लिय ने अपने स्वामी को पदच्युत कर स्वयं गद्दी पर प्राप्त कर ली।[6] परन्तु उसके स्वर्गवास के उपरान्त पिछले तुर्की शाहीय राजवंश के एक व्यक्ति सामन्त देव ने पुनः राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया।[7] परन्तु यह अधिकार अस्थायी रहा और ९०३ ई० के लगभग कश्मीर के राजा गोपाल वर्मन ने सामन्तदेव को हराकर लल्लिय के पुत्र तोरमाण कमलुक को गद्दी पर बिठाया।[8] कमलुक का पुत्र भीम था और भीम का पुत्र जयपाल, जो ९६० ई० में राजगद्दी पर बैठा।[9] जयपाल का राज पश्चिम में लमग़ान तथा पूर्व में चिनाब नदी तक, उत्तर में कश्मीर की पहाड़ियों तथा दक्षिण में मुल्तान तक फैला हुआ था।[10] गज़नी का पड़ोसी राज्य होने के कारण शीघ्र ही जयपाल एवं सुबुक्तगीन में संघर्ष आरम्भ हो गया।

जयपाल पर आक्रमण और पेशावर पर अधिकार :

सुबुक्तगीन ने ९७७ ई० के आरम्भ में जयपाल के राज्य पर आक्रमण किया।[11] इसका प्रतिशोध लेने के लिए ९८६-८७ ई० में जयपाल ने एक बड़ी सेना के साथ गज़नी पर चढ़ाई की।[12] गज़नी और लमग़ान के बीच में गूज़क नामक पहाड़ी के पास सुबुक्तगीन और जयपाल की सेनाओं की मुठभेड़ हुई। इस युद्ध में भारतीय बड़ी वीरता से लड़े किन्तु सहसा बर्फ का तूफान आ जाने से वे घबड़ा गये और जयपाल को सन्धि करने के लिये बाध्य होना पड़ा।[13] इस समय सुबुक्तगीन तो संधि करने के पक्ष में था, किन्तु उसका पुत्र महमूद यह चाहता था कि जयपाल से तब तक लड़ाई की जाय, जब तक उसका पूर्ण पराभव न कर दिया जाय। किन्तु सुबुक्तगीन को यह आशंका थी कि यदि इस प्रकार का लम्बा युद्ध चला और यदि निराश हो कर हिन्दू अपने आप को अपने धन सहित जला डालते तो

---

१. जे० आर० ए० एस० (१९२७) पृ० ४९१-९२; स्मिथ, पृ० ३९६।
२. नाज़िम, पृ० १९४।
३. कल्हण, २, ३३६-३९।
४. नाज़िम, पृ० १९४।
५. अलबेरूनी, खण्ड २, पृ० ११; कनिंघम, क्वाइन्स ऑफ मेडिवल हिन्दू इण्डिया, पृ० ५५।
६. कल्हण, २, ३३६-३९।
७. वही।
८. वही।
९. अलबेरूनी, भाग २, पृ० १३; फ़रिश्ता, पृ० १९। अलबेरूनी ने जयपाल को भीम का पुत्र माना है, किन्तु फ़रिश्ता ने इसे इशतपाल का पुत्र माना है।
१०. जे० आर० ए० एस० (१९२७) पृ० ४८५-८६; स्मिथ, पृ० ३९६।
११. ओझा, भाग १, पृ० २९२।
१२. उत्बी, पृ० ९–२२।
१३. नाज़िम, पृ० २९; ओझा, भाग १, पृ० २९२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह उस धन से भी वंचित रह जाता जो उसे मिल रहा था। अतः उसने जयपाल की सन्धि सम्बन्धी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

जयपाल ने उसे यह बचन दिया कि वह युद्ध की क्षतिपूर्ति करने के लिए १० लाख दीनारें और ५० हाथी देगा, तथा साथ ही सीमावर्ती कुछ किले और नगर भी प्रदान करेगा। इन शर्तों की पूर्ति के लिए सुबुक्तगीन को आश्वस्त करने के हेतु जयपाल ने अपने कुछ सम्बन्धियों को बन्धक रूप में रख दिया, तथा वह अपनी राजधानी लौट आया।[1] कुछ समय उपरान्त अपने को सुरक्षित समझते हुए जयपाल ने अपने बचन भंग कर दिये। साथ ही सुबुक्तगीन के द्वारा सन्धि के अनुसार दिये गये दुर्गों और नगरों को लेने के लिए भेजे गये अधिकारियों को भी उसने बन्दी बना लिया।[2] सुबुक्तगीन को जब इस घटना का समाचार मिला तो उसने एक बहुत बड़ी सेना के साथ जयपाल के राज्य पर आक्रमण किया। उसने इस आक्रमण में लमग़ान के पास के अनेक नगरों को जीत लिया।[3] इसका प्रतिशोध लेने के लिए जयपाल ने हिन्दू राज्यों का एक संघ बनाया और विभिन्न भारतीय राज्यों की सहायता से एक बहुत बड़ी संघीय सेना का संगठन किया गया। यह कहा जाता है कि उत्तर भारत के दिल्ली, कालिंजर व कन्नौज आदि के सब राजाओं ने इस अवसर पर अपनी अपनी सेनाएं भेजी थीं। यह भी कहते हैं कि गज़नी पर आक्रमण करने वाली इस सेना में एक लाख घुड़सवार और पैदल सैनिक सम्मिलित थे।[4] सुबुक्तगीन ने इस विशाल सेना को बुरी तरह पराजित किया तथा लमग़ान और पेशावर के जिले अपने राज्य में मिला कर वहां इस्लाम का प्रचार किया।[5] उसने सेना को सशक्त बनाने के लिये उस क्षेत्र में रहने वाले स्थानीय खल्जियों और अफ़ग़ानों को अपनी सेना में भर्ती किया।[6] और १० हजार सेना सहित अपना एक अधिकारी वहां छोड़ वह गज़नी लौट आया।[7]

इस संघर्ष के परिणाम स्वरूप भारत की सीमा से लगे हुए उन्नतिशील एवं सशक्त गज़नी साम्राज्य का विस्तार हुआ, जिसने ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भिक काल में भारतीय जन जीवन को संकटपूर्ण बना दिया। इतना ही नहीं, कालान्तर में यहां एक के बाद एक इस्लाम के अनुयाइयों का ही शासन चलता रहा, जिससे सदियों भारतीय जनता आतंकित पीड़ित एवं प्रभावित रही।

---

१. नाज़िम, पृ० २९; ओझा, भाग १, पृ० २९२।

२. उत्बी, पृ० २१–२४; नाज़िम, पृ० २९; ओझा, भाग १, पृ० २९२।

३. नाज़िम, पृ० ३०; ओझा, भाग १, पृ० २९३।

४. फ़रिस्ता, पृ० २०; नाज़िम, पृ० ३०; ओझा, भाग १, पृ० २९३। फ़रिश्ता ने इस संघ में अजमेर के शासक का भी उल्लेख किया है, परन्तु अजमेर राज्य की स्थापना लगभग ११०० ई० में हुई जो सुल्तान महमूद के सोमनाथ आक्रमण के समय से लगभग ७५ वर्ष बाद में पड़ता है। इन्डि० एन्टि०, भाग २६, पृ० २७; सर डब्लू हेग, पृ० २३।

५. नाज़िम, पृ० ३०।

६. उत्बी, पृ० २१–२६; नाज़िम, पृ० ३०।

७. ब्रिग्स, फ़रिश्ता, खण्ड १, पृ० १६–१९; ओझा, भाग १, पृ० २९३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्चिमोत्तर भारत पर सुबुक्तगीन के आक्रमण का प्रभाव :

जयपाल की पराजय ने भारतीय इतिहास के चिर अनुभव को पुनः पुष्ट किया। सैन्य संगठन तथा सुसंचालन विशाल वाहिनी की अपेक्षा कहीं अधिक महत्व पूर्ण होता है। संख्या-मात्र से विजय पाना सर्वदा कठिन है। युद्ध में सफलता के लिए सतर्क नेतृत्व की आवश्यकता सर्वाधिक वांछित है। इसके अतिरिक्त सेना में ऐक्य एवं अनुशासन भी इतने ही महत्व पूर्ण हैं। न जाने कितनी बार इन्हीं गुणों के कारण छोटी सेनाओं ने कुशल नायकों के नेतृत्व में बड़ी-बड़ी फौजों के मुंह मोड़ दिये हैं।

जयपाल की पराजय का सबसे बड़ा प्रभाव यह हुआ कि अफ़ग़ानिस्तान में हिन्दू साम्राज्य का स्थान गज़नी के तुर्क साम्राज्य ने ले लिया। जयपाल का राज्य सिन्धु नदी के पूर्वी तट तक सीमित रह गया। सुबुक्तगीन ने तुर्क विजेताओं के लिए भारत पर आक्रमण का द्वार खोल ही दिया, साथ ही सुल्तान महमूद को पिता द्वारा व्यवस्थित भारत पर आक्रमण का एक सुनियोजित एवं प्रेरणाप्रद मार्ग मिला जिससे उसने अपनी महत्वाकांक्षा की परम पूर्ति की। तुर्कों ने पिछले दोनों संघर्षों में भारतीयों की रणकला की कमजोरियों को समझ लिया था और वे अब भारतीयों को सफलतापूर्वक पराजित कर सकते थे।

भारतीय प्रतिक्रिया :

सुबुक्तगीन द्वारा भारत पर हुए आक्रमण तथा जयपाल द्वारा गज़नी पर किए आक्रमणों की प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में इतिहासविदों में प्रबल मतभेद है। पुराने मुस्लिम लेखकों ने इस घटना को अतिरंजित और अत्युक्तिपूर्ण रूप में प्रस्तुत किया है। इस घटना के कुछ समय बाद हुए लेखक अल उत्बी ने जयपाल का साथ देने वाले अन्य भारतीय राजाओं के देशों के नामों का कोई विस्तृत उल्लेख नहीं किया है।[१] किन्तु फ़रिश्ता एवं अन्य पिछले इतिहास-कारों ने यह लिखा है कि जयपाल की पहली हार के बाद विदेशी आक्रामकों से संघर्ष करने में जयपाल को दिल्ली, अजमेर, कन्नौज और कालिंजर के राजाओं ने सहयोग दिया[२] तथा इस युद्ध में महत्वपूर्ण भाग लिया। यह वर्णन सर्वथा अत्युक्तिपूर्ण और इति-हास विरुद्ध जान पड़ता है, क्योंकि ९८० ई० तक दिल्ली के राज का कोई राजनीतिक महत्व नहीं था। अलबेरूनी ने भारत के भूगोल का वर्णन करते हुए दिल्ली का कोई उल्लेख नहीं किया है।[३] अजमेर नगर की इस समय तक स्थापना ही नहीं हुई थी।[४] सांभर के चौहान राजा इस समय तक इतने प्रबल नहीं हुए थे कि इस लड़ाई में भाग लेने के लिए अपनी कोई सैनिक टुकड़ी भेजते। फ़रिश्ता द्वारा वर्णित चार राज्यों में से सम्भवतः कन्नौज और कालिंजर के ही शासक ऐसे थे जिन्होंने जयपाल की सहायता की होगी।[५] फ़रिश्ता

१. उत्बी, पृ० २१–२६।
२. फ़रिश्ता, पृ० २०।
३. अलबेरूनीकालीन भारत, श्री रजनी कान्त शर्मा द्वारा अनूदित, पृ० १५२, १५३, १५४, १५५। इलाहाबाद, १९६७।
४. सी० वी० वैद्य, पृ० २७।
५. केशव चन्द्र मिश्र; पृ० ८०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के कथन में दूसरा दोष यह है कि उसने सुबुक्तगीन के विरुद्ध संघर्ष करने वाली भारतीय सेना की संख्या एक लाख लिखी है, जिसमें कई सौ हाथी भी थे। सुबुक्तगीन ने ५०० घुड़-सवारों से उसे जीत लिया।[१] यह बात भी सर्वथा असम्भव प्रतीत होती है। इसी प्रकार सुबुक्तगीन द्वारा जयपाल के विरुद्ध दूसरी बार लड़ाई छेड़ने का कारण जयपाल द्वारा सन्धि की शर्तों का भंग करना बताया जाता है। किन्तु इस कथन में भी अतिशयोक्ति का ही पुट प्रतीत होता है, क्योंकि क्षत्रिय राजाओं की सबसे बड़ी विशेषता प्राण संकट में रहने पर भी, अपने वचन पालन करने की थी।[२] उनकी इस विशेषता का उल्लेख तत्कालीन मुस्लिम इतिहासकारों ने भी किया है। आक्रामक तो मात्र अपनी सत्ता के विस्तार के लिए बहाने ढूंढ़ता है और आक्रांत पर अनावश्यक लांछन लगाता है। अलबेरूनी यद्यपि मुसलमान था, फिर भी उसने काबुल के राजाओं की स्वाधीनता का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'अपने समस्त वैभव का उपभोग करते हुए भी उन्होंने सदैव इस बात की प्रबल इच्छा रखी और प्रयास किया कि वे जो भी उत्तम और ठीक बात हो, उसे करें।[३] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जयपाल के साथ सुबुक्तगीन का संग्राम एक सीमावर्ती राज्यों का स्वाभाविक संघर्ष था। संकीर्ण धार्मिक भावना रखने वाले फ़रिश्ता आदि परवर्ती मुस्लिम इतिहास लेखकों ने इस सीमा संघर्ष को एक धार्मिक संघर्ष के रूप में ही चित्रित किया है और पश्चिमोत्तर भारत में पहली मुस्लिम विजय होने के कारण इसे आवश्यकता से अधिक महत्व दिया है। साथ ही इसकी भारतीय प्रतिक्रिया का वर्णन भी बढ़ा चढ़ा कर किया है।

यह बात पूर्णरूपेण स्पष्ट है कि शाहीय वंश ने भारत की सीमान्त रक्षा के हेतु अपने प्रयास में कोई कोरकसर न उठा रखी। उन्होंने न केवल आत्म-रक्षा ही की, अपितु शत्रु पर उसके घर में भी आक्रमण कर संकट स्रोत का नाश करने का विफल प्रयत्न किया। भारतीय इतिहास की यह पुरानी कहानी है, आक्रामकों का सदैव प्रतिरोध किया गया है। यदि हो सका तो उन्हें खदेड़ दिया गया, अन्यथा समय ने उनका भारतीयकरण किया। यह भारत का दुर्भाग्य रहा कि उसने परम्पराओं की शृंखलाओं में अपने को बांध लिया, समय के साथ प्रगति नहीं की, परिवर्तन नहीं किया, संकट से कुछ सीखा नहीं। युद्ध की प्राचीन परिपाटियां अविच्छिन्न रहीं, ऐक्य का अभाव रहा, सामयिक एवं स्थानीय संकीर्णता ने व्यापक विचारों एवं दूरदर्शी भावनाओं की अवहेलना की, भारत के स्थूल शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों ने केन्द्रीय आत्मा की पुकार का न तो भास किया, न आज्ञा पालन ही।

●

---

१. फ़रिश्ता, पृ० २०।
२. सी० वी० वैद्य, पृ० २७।
३. अलबेरूनी, खण्ड २, पृ० १०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ५

महमूद और भारत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महमूद का उत्तराधिकार सम्बन्धी संघर्ष एवं सफलता :

सुबुक्तगीन का बीस वर्ष तक गज़नी पर शासन करने के बाद बुखारा से गज़नी लौटते हुए रास्ते में बल्ख में अगस्त ९९७ ई० में देहान्त हो गया।[१] उसकी मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र महमूद राज्य का उत्तराधिकारी न हो सका, क्योंकि अपनी मृत्यु से कुछ ही समय पूर्व उसने अलप्तगीन की लड़की[२] से उत्पन्न अपने दूसरे पुत्र इस्माइल को जो महमूद से आयु में छोटा था, उत्तराधिकारी बनाया था, और बल्ख तथा गज़नी का राज्य सौंपा था। अतः उसे मृत्यु के बाद अमीरों द्वारा गद्दी सौंप दी गई।[३] सुबुक्तगीन ने इस्माइल को उत्तराधिकारी घोषित करते हुए अपने अमीरों को यह शपथ दिलाई थी कि वे इस्माइल के प्रति राजभक्त रहेंगे और वफादारी के साथ उसे अपना अमीर मानेंगे।[४] किन्तु महमूद किसी भी दशा में अपने स्वाभाविक अधिकार को छोड़ने के लिए तैयार नहीं था।[५] यह कहना कठिन है कि सुबुक्तगीन ने किन कारणों से महमूद को अपना उत्तराधिकारी नहीं बनाया। किन्तु सुबुक्तगीन का यह राजनीतिक निर्णय निःसन्देह उसकी कूटनीति एवं सूझबूझ का परिचायक नहीं था।

महमूद उसका न केवल सबसे बड़ा, अपितु सबसे योग्य पुत्र था। पिता की मृत्यु का समाचार पाते ही महमूद ने इस्माइल को एक पत्र द्वारा अपने भ्रातृ प्रेम का पूर्ण विश्वास दिलाते हुए कहा कि यदि वह महमूद के गद्दी पर अधिकार को स्वीकार करते हुए उसे गज़नी का प्रान्त दे दे, तो इसके बदले में वह उसे बल्ख या खुरासान का प्रान्त देने को उद्यत है। किन्तु इस्माइल ने बड़े भाई के इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया।[६] इसके परिणामस्वरूप उत्तराधिकार के लिए दोनों भाइयों में गृह युद्ध छिड़ गया। मदमूद नीशापुर से गज़नी की ओर चल पड़ा, और इस्माइल बल्ख से राजधानी की रक्षा के लिये आगे बढ़ा।[७] दोनों सेनाओं की मुठभेड़ मार्च, ९९८ ई० में ग़ज़नी के मैदान के निकट हुई।[८]

---

१. उत्बी, पृ० १०२–३; गर्दीज़ी, पृ० ५८; तबक़ाते नासिरी, पृ० ७५।
२. तारीखे गुज़ोदा, पृ० ३९३; नाज़िम, पृ० ३८।
३. हबीब, पृ० १६।
४. उत्बी, पृ० ११०।
५. हबीब, पृ० १६।
६. वही; नाज़िम, पृ० ३९।
७. नाज़िम, पृ० ३९।
८. वही, पृ० ४०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महमूद ने युद्ध से पूर्व समझौते का प्रयास किया, परन्तु इस्माइल ने उसकी बात नहीं सुनी।[१] महमूद विजयी हुआ, और गज़नी के राज्य सिंहासन पर बैठा।

महमूद की विस्तारवादी नीति :

महमूद ने गद्दी पर बैठते ही विस्तारवादी नीति अपनाई और साम्राज्य-प्रसार के लिए दो दिशाओं में प्रबल प्रयास किये। एक ओर मध्य एशिया में वह अपनी शक्ति का विस्तार करता रहा; तथा दूसरी ओर उसने भारत पर आक्रमण किये। मध्य एशिया में उसने सामानी राजवंश की प्रभुता को समाप्त कर दिया, तथा खुरासान में अपने शत्रुओं का दमन किया।[२]

अक्टूबर ९९९ ई० में जब काशग़र के शासक ईलक खां ने जक्सर्टी नदी पार करके सामानी वंश की समाप्ति की, तो महमूद और ईलक खां ने इस साम्राज्य को आपस में बांट लिया, और आमू नदी इनकी सीमा निश्चित की गई।[३] अब मध्य एशिया, पूर्वी ईरान और अफ़गानिस्तान का बड़ा भाग महमूद के शासन में आ गया। वह पहला मुस्लिम शासक था, जिसने सुल्तान की उपाधि धारण की। मुस्लिम जगत के नेता ख़लीफा अल-कादिर-बिल्लाह् ने उसे नवम्बर ९९९ ई० में अमीनुल-मिल्लत और यमीनुदौला की उपाधियाँ प्रदान कीं।[४] अब मुस्लिम जगत में उसकी स्थिति सामानी अमीरों जैसी हो गई। ख़लीफ़ा से उपाधियां और सम्मान प्राप्त करने के बाद अपने नवीन पद के कर्त्तव्यों के निर्वाह हेतु उसने यह प्रतिज्ञा की कि वह प्रति वर्ष हिन्दुओं के विरुद्ध जेहाद अर्थात् धर्मयुद्ध करता रहेगा।[५] भारत पर सत्रह बार आक्रमण कर उसने अपनी उपर्युक्त प्रतिज्ञा के पालन का प्रयास किया।[६] इन आक्रमणों के सम्बन्ध में मुस्लिम इतिहासकारों में उत्बी, फ़रिश्ता, गर्दीज़ी एवं इब्ने-उल्-असीर ने ही विशेष रूप से चर्चा की है। अलबेरूनी जो महमूद के साथ आया था, इन आक्रमणों की चर्चा से उदासीन रहा, क्योंकि वह भारतीय दर्शन, धर्म, आध्यात्म एवं सामाजिक जीवन के प्रति विशेष रूप से आकर्षित हो गया था। अतः उसने उन्हीं विषयों का विशेष उल्लेख किया है।

लमग़ान के समीप आक्रमण (सितम्बर १००० ई०) :

महमूद ने सितम्बर १००० ई०[७] में भारतीय सीमा पार कर सीमान्त के दुर्गों पर आक्रमण किया। वह केवल सीमावर्ती कुछ दुर्गों को जीतने के बाद लौट गया।[८]

---

१. उत्बी, पृ० ११४-१६; नाज़िम, पृ० ३९।
२. उत्बी, पृ० १३१; नाज़िम, पृ० ४४-४५।
३. गर्दीज़ी, पृ० ६१; हबीब, पृ० २०-२१।
४. उत्बी, पृ० १३३-३४; गर्दीज़ी, पृ० ६२-६३; नदवी, पृ० २५४-५५।
५. इलि० डाउ०, भाग २, पृ० २४; हबीब, पृ० २१।
६. पी० के० हिट्टी, पृ० ४६४।
७. गर्दीज़ी, पृ० ६६।
८. वही; नाज़िम, पृ० ८६; सर डब्ल्यू० हेगने इस आक्रमण पर सन्देह प्रकट किया है, देखिये, कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग ३, पृ० १३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पेशावर और वैहिन्द पर आक्रमण (सितम्बर १००१ ई०) :

अगले वर्ष १००१ ई०[१] में वह पुनः अपनी राजधानी से निकला। उसके साथ पन्द्रह हजार घुड़सवार एवं एक बड़ी संख्या में स्वयं सेवक थे। इस बार जब वह पेशावर पहुँचा, तो राजा जयपाल बारह हजार घुड़सवारों, तीस हजार पैदल सैनिकों और तीन सौ हाथियों की सेना के साथ उसका सामना करने के लिये आगे बढ़ा। २७ नवम्बर, १००१ ई० के दिन दोनों सेनाओं में घनघोर युद्ध हुआ, जिस में जयपाल पराजित हुआ,[२] और पन्द्रह राजकुमारों के साथ बन्दी बना लिया गया।[३] इस युद्ध में पांच हजार हिन्दू खेत रहे।[४] विजयी महमूद आगे बढ़ा और अटक से पन्द्रह मील ऊपर की ओर सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर ऊन नामक स्थान जीत लिया।[५] उसने जयपाल तथा अन्य युद्ध-बन्दियों से कर के रूप में प्रचुर धनराशि एवं बहुत से हाथी प्राप्त करके उन्हें मुक्त कर दिया।[६] किन्तु जयपाल के लिये इस पराजय का अपमान असह्य हो गया। उसने अपनी राजगद्दी अपने पुत्र आनन्दपाल को सौंप दी[७], और स्वयं १००२–३ ई० में आत्माहुति कर ली।[८] इसके बाद दो वर्ष तक सीस्तान की विजय में लगे रहने के कारण महमूद ने भारत पर कोई आक्रमण नहीं किया।

भटिंडा (भाटिय) पर आक्रमण (अक्टूबर १००४ ई०) :

महमूद ने भारत पर तीसरा आक्रमण अक्टूबर १००४ ई०[९] में करने के लिए बालिस्तान (बलूचिस्तान) के मार्ग से भारत में सिन्धु नदी को मुल्तान के पास पार किया।[१०] यह आक्रमण भटिंडा (भाटिय) के प्रसिद्ध दुर्ग को प्राप्त करने के लिए किया गया था।[११] यहाँ के शासक बाजीराय के पास बड़े शक्तिशाली हाथी थे। उसने सुबुक्तगीन अथवा जयपाल की आधीनता कभी स्वीकार नहीं की थी[१२]। अपने दुर्ग से निकल कर उसने महमूद का डट

---

१. फ़रिश्ता, पृ० २४।
२. उत्बी, पृ० १५८; गर्दीज़ी, पृ० ६६; ओझा, भाग १, पृ० २९४; नाज़िम, पृ० ८७।
३. गर्दीज़ी, पृ० ६६; हबीब, पृ० २२; ओझा, भाग १, पृ० २९४।
४. गर्दीज़ी, पृ० ६६; उत्बी, पृ० १५७; नाज़िम, पृ० ८७।
५. इलि० डाउ०, भाग० २, पृ० ४३८; हबीब, पृ० २२।
६. उत्बी, पृ० १५८; नाज़िम, पृ० ८७; ओझा, भाग १, पृ० २९४।
७. जे० आर० ए० एस०, (१९२७) पृ० ४९३–९५; नाज़िम, पृ० ८८।
८. उत्बी, पृ० १५९; ब्रिग्स, फ़रिश्ता, भाग १, पृ० ३६–३८; ओझा, भाग १,पृ० २९४; नाज़िम, पृ० ८८; हबीब, पृ० २२।
९. इब्ने-उल-असीर, भाग ९, पृ० १३०।
१०. गर्दीज़ी, पृ० ६६; नाज़िम, पृ० १००।
११. मुस्लिम इतिहासकारों ने भटिंडा को भाटिय लिखा है; नदवी, पृ० २५९।
१२. नाज़िम, पृ० १००; हबीब, पृ० २२; सर डब्ल्यू० हेग, भाग ३, पृ० १०। (डा० हबीब ने इस राजा का नाम बीजीराय तथा सर हेग ने बाजरा लिखा है)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर सामना किया। युद्ध तीन दिनों तक भीषण रूप से चलता रहा, और मुस्लिम सेना की स्थिति बड़ी संकटपूर्ण हो गई।[१] चौथे दिन भी दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध चलता रहा।[२] महमूद ने स्वयंमेव भारतीय सेना पर प्रबल आक्रमण किया जिससे हिन्दू सैनिक तितर-बितर हो गये[३]। अन्ततः बाजीराय को भाग कर दुर्ग में शरण लेनी पड़ी। महमूद ने किले पर घेरा डाल दिया। बाजीराय घबड़ा कर अपनी रक्षा के लिये एक दिन, रात को दुर्ग से जंगल की ओर भाग निकला।[४] दुर्भाग्य से वह महमूद के सैनिकों द्वारा घेर लिया गया, और बन्दी होने के अपमान से बचने के लिए अपनी छाती में छुरा भोंक कर उसने आत्महत्या कर ली[५]। भटिंडा के राज्य को गज़नी साम्राज्य में मिला लिया गया। महमूद यहाँ से २८० हाथी तथा लूट का बहुत सा धन लेकर गज़नी वापस लौट गया[६]।

सिन्ध तथा मुल्तान पर आक्रमण (मार्च-अप्रैल १००६ ई०) :

सिन्ध का प्रान्त सर्वप्रथम आठवीं शताब्दी के आरम्भ में मुहम्मद बिन कासिम द्वारा जीता गया था। इसके पश्चात् यहाँ करामती सम्प्रदाय प्रबल हुआ। इन लोगों ने बग़दाद के खलीफ़ा से कोई सम्बन्ध नहीं रखा[७]। दसवीं शताब्दी में पहले सिन्ध में अबू-उल-फतह दाऊद-बिन-नसर का शासन था। वह समय-समय पर विभिन्न प्रकार की भेंटे शक्तिशाली सुबुक्तगीन को भेज कर उसे प्रसन्न रखता रहा। इस दूरदर्शितापूर्ण सम्बन्ध एवं नीति का पालन महमूद के समय में भी होता रहा[८]। परन्तु अधिक दिनों तक न चल पाया। जब महमूद ने भटिंडा पर आक्रमण किया, तो दाऊद को यह आशंका हुई कि उसके लिए मुल्तान का मार्ग खुल जायगा[९]। अतः उसने भटिंडा के बाजीराय की सहायता की, ताकि महमूद असफल रहे[१०]। उस समय तो महमूद चुप रहा, किन्तु अगले ही वर्ष मार्च-अप्रैल १००६ ई० में उसने करामती सम्प्रदाय के अनुयायी दाऊद पर चढ़ाई कर दी[११]। दाऊद ने रक्षा के लिए जयपाल के पुत्र आनन्दपाल से सहायता मांगी। आनन्दपाल ने महमूद की प्रगति को रोकने का प्रयत्न किया[१२], किन्तु महमूद ने दोनों का सफलतापूर्वक सामना किया। पहले उसने आनन्दपाल की

---

१. उत्बी, २०९; हबीब, पृ० २२।
२ उत्बी, २०९; फ़रिश्ता, पृ० २४: नाज़िम, पृ० १००।
३. उत्बी, पृ० २०९।
४. वही, पृ० २१०; गर्दीज़ी, पृ० ६७।
५. उत्बी, पृ० २१०; गर्दीज़ी, पृ० ६७।
६. उत्बी, पृ० २१०; गर्दीज़ी, पृ० ६७; हबीब, पृ० २३; नाज़िम, पृ० १०१।
७. अलबेरूनी, भाग १, पृ० ११६; मसूदी, पृ० २३४-३८५; नाज़िम, पृ० ९६।
८. फ़रिश्ता, पृ० १८-२४।
९. उत्बी, पृ० २११; नदवी, पृ० २५९।
१०. उत्बी, पृ० २११; फ़रिश्ता, भाग १, पृ० १७-१८; हबीब, पृ० २३।
११. उत्बी, पृ० २११; नाज़िम, पृ० ९७; नदवी, पृ० २५९।
१२. नाज़िम, पृ० ८८; नदवी, २५९-६०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सेना को पृथक रूप से हरा कर मुल्तान तक के मार्ग को साफ किया। आनन्दपाल कश्मीर की पहाड़ियों की ओर भाग गया[१]। अब महमूद ने दाऊद पर चढ़ाई की, जो डरकर दुर्ग में छिप गया। महमूद ने किले पर घेरा डाल दिया, तथा सात दिन बाद दाऊद ने आत्म समर्पण कर दिया[२]। साथ ही यह वचन दिया कि वह अपना कुफ्र छोड़कर इस्लाम के सच्चे धार्मिक नियमों का पालन करेगा, और बीस हजार दीनारें कर रूप में प्रतिवर्ष दिया करेगा[३]। इस सन्धि के सम्पन्न होते ही महमूद को सूचना मिली कि उसके शत्रु उसकी राजधानी पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहे थे। अतः वह चीनी तुर्कों से अपने साम्राज्य की रक्षा के लिये वापस लौट गया,[४] और बड़ी तेजी से कूच करता हुआ प्रत्याशित समय से पूर्व ही गज़नी पहुँच गया, और सेना को पुनर्गठित कर शत्रु को पराजित कर दिया। इस प्रकार उसका उत्तरी सीमान्त सुरक्षित हो गया[५]।

भेरा के राज्यपाल सुखपाल पर आक्रमण (जनवरी १००८ ई०) :

अभी तक सिन्धु नदी के पूर्व में महमूद के पास स्थायी रूप से भेरा का ही प्रदेश था[६]। मुल्तान से लौटते हुए उसने भेरा का शासन आनन्दपाल के लड़के सुखपाल (नेवासाशाह) को सौंप दिया था[७]। उसने पहले तो इस्लाम स्वीकार कर लिया था, किन्तु जब उसे यह पता लगा कि महमूद मध्य एशिया के तुर्कों के साथ एक भीषण प्राणान्तक संघर्ष में रत है, तो सुखपाल ने पुनः हिन्दू धर्म अंगीकार कर महमूद के अधिकारियों को अपने राज्य से निकाल दिया[८]। बल्ख के युद्ध के बाद सुल्तान सीधा भेरा की ओर बढ़ा[९] और मुल्तान आ पहुँचा। परन्तु उसके यहाँ पहुँचने से पहले ही उसके सीमावर्ती अमीरों ने सुखपाल को पकड़ लिया था, और वे उसे बन्दी बनाकर महमूद के पास लाये[१०]। उससे आर्थिक दंड के रूप में चार लाख दीनारें लेकर उसे आजीवन बन्दी बना लिया गया।[११]

वैहिन्द पर आक्रमण तथा नगरकोट पर अधिकार (दिसम्बर १००८ ई०) :

महमूद द्वारा बार-बार वैहिन्द पर आक्रमण करने का प्रधान कारण भौगोलिक दृष्टि से इस स्थान की सामरिक महत्ता थी। भारत में गंगा-जमुना के मैदान में आगे बढ़ने के मार्ग

---

१. उत्बी, पृ० २१२; गर्दीज़ी, पृ० ६७-६८; नाज़िम, पृ० ८९; नदवी, पृ० २६०-६१।
२. गर्दीज़ी, पृ० ६७; हबीब, पृ० २४; नाज़िम, पृ० ९७।
३. हबीब, पृ० २४; नदवी, पृ० २६०।
४. नाज़िम, पृ० ९८; हबीब, पृ० २४।
५. गर्दीज़ी, पृ० ६९; फ़रिश्ता, पृ० २६; हबीब, पृ० २४।
६. हबीब, पृ० २५।
७. तारीख़े गुज़ीदा, पृ० ३९७; उत्बी, पृ० २२३; सर डब्ल्यू० हेग, भाग ३, पृ० १५; हबीब, २५; नाज़िम, पृ० ९८।
८. नाज़िम, पृ० ९८।
९. उत्बी, पृ० २२३; गर्दीज़ी, पृ० ६९।
१०. नाज़िम, पृ० ९९।
११. गर्दीज़ी, पृ० ६९; हबीब, पृ० २५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में आनन्दपाल एक ऐसा रोड़ा था, जिसे दूर करके ही वह अपना मार्ग प्रशस्त कर सकता था[१]। महमूद के सम्बन्ध उसके साथ अच्छे नहीं थे। वह पेशावर में अपने पुत्र सुखपाल (१००१–१००२ ई०) के मुसलमानों द्वारा पकड़े जाने के बाद उनके प्रति घोर घृणा का भाव रखता था[२]। मुल्तान पर आक्रमण के समय आनन्दपाल ने महमूद के मार्ग में बाधा डाली थी[३]। अतः महमूद के पास आनन्दपाल के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने का पर्याप्त कारण प्रस्तुत था। फिर भी तीन वर्ष तक महमूद शान्त रहा। सम्भवतः इसका कारण यह था कि महमूद मध्य-एशिया में तुर्कों के साथ भीषण संघर्ष में फंसा था[४]। उस समय उसको आनन्दपाल का एक पत्र मिला था, जिसमें यह लिखा था कि "यदि आप की इच्छा हो तो इस आड़े वक्त में मैं पांच हजार घुड़सवारों, दस हजार पैदल सैनिकों और एक सौ हाथियों के साथ आपकी सहायता करने आ सकता हूँ। यदि आवश्यकता हुई तो इससे भी दुगुनी सहायता कर सकता हूँ। आपने मुझे जीता है, अतः मैं नहीं चाहता कि आपको कोई अन्य व्यक्ति जीते[५]।" किन्तु महमूद यह अच्छी तरह से जानता था कि जब तक आनन्दपाल शक्तिशाली एवं स्वतंत्र है, तथा उसके साथ मैत्रीभाव रहेगा, तबतक वह सतलज नदी के पार उन मंदिरों के प्रदेश तक नहीं पहुँच सकेगा, जहाँ सारे देश का अपार वैभव केन्द्रित था[६]। अतः उसके लिये आनन्दपाल का दमन करना अनिवार्य था[७]। दूसरी ओर गंगा-जमुना के दोआब के हिन्दू राजा यह भली-भाँति जानते थे कि आनन्दपाल तथा उसका राज्य गज़नी के आक्रामक सुल्तान महमूद एवं उनके बीच में एक दीवार की भाँति अन्तरवर्ती सुरक्षा पंक्ति था[८]। इस दीवार के गिरते ही महमूद गंगा-जमुना के मैदान के समृद्ध राज्यों पर स्वेच्छापूर्वक आक्रमण कर सकता था। जब तक यह संघर्ष सिन्धु नदी के उस पार तक ही केन्द्रित था, उन्होंने इसमें कोई रुचि नहीं ली थी[९]। भटिंडा के बाजीराय की अहंमन्यता के कारण अन्य राजाओं ने उसकी कोई सहायता नही की। सम्भवतः आनन्दपाल के अतिरिक्त किसी भारतीय राजा ने मुल्तान के 'काफ़िरों' की भी सहायता नहीं की थी[१०]। वस्तुतः हिन्दू राजाओं ने तब तक महमूद के ख़तरे को समझा ही न था।

महमूद ने अन्त में जब भटिंडा आदि राज्यों पर अधिकार कर लिया, तो भारत के सब राजाओं को इस नये ख़तरे की अनुभूति भली-भांति हो गई। और वे मिल कर इस बाह्य

---

१. हबीब, पृ० २५।
२. हबीब, पृ० २५।
३. वही, नाज़िम, पृ० ९७; ओझा, भाग १, पृ० २९४।
४. हबीब, पृ० २५।
५. अलबेरूनी, भाग २, पृ० १३-१४; हबीब, पृ० २६।
६. हबीब, पृ० २६।
७. वही।
८. वही।
९. वही।
१०. हबीब, पृ० २६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शत्रु के प्रबल प्रतिरोध की आवश्यकता समझने लगे। दिसम्बर १००८ ई०[1] में वर्षा ऋतु की समाप्ति पर महमूद जब आनन्दपाल पर चढ़ाई करने के उद्देश्य से चला, तो आनन्दपाल ने भारत के अन्य राजाओं से सहायता की प्रार्थना की।[2] इन राजाओं ने जिस उत्साह से आनन्दपाल को सहयोग दिया, उससे यह विदित होता है कि इस सामान्य संकट ने स्वदेश रक्षा की भावना जागृत कर दी थी। मुस्लिम इतिहासकारों के वर्णनानुसार इस समय उज्जैन, ग्वालियर, कालिंजर, दिल्ली और कन्नौज के राजाओं ने अपनी-अपनी सेना के साथ पंजाब की ओर प्रस्थान किया।[3] और अन्त में यह सेनायें आनन्दपाल के पुत्र ब्रह्मपाल के नेतृत्व में पेशावर की ओर आगे बढ़ी।[4] आनन्दपाल को हर दिशा से सहायता मिली। भारतवर्ष देशभक्ति की एक नवीन भावना से आन्दोलित हो उठा। हिन्दू स्त्रियों ने मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध में सहायता देने के लिये अपने बहुमूल्य आभूषणों के रत्नों को बेचकर इस युद्ध के लिये धन भेजा। जिन निर्धन स्त्रियों के पास मूल्यवान रत्न नहीं थे, उन्होंने चर्खों पर कताई करके या मजदूरी करके इस संघर्ष के लिये धन भेजा।[5]

जनता में देशभक्ति होते हुए भी इस समय के राजाओं में डाह और ईर्ष्या की तीव्र भावनायें थी। उन्हें एक दूसरे का विश्वास नहीं था।[6] आनन्दपाल के पुत्र ब्रह्मपाल को संघ का नेतृत्व सौंपा गया।[7] किन्तु उसमें सब को अनुशासित तथा नियन्त्रित करने की क्षमता नहीं थी। साथ ही भारतीय सेना किसी एक सेनापति द्वारा संचालित नहीं थी, तथा अनुशासन का अभाव था। युद्ध क्षेत्र में विभिन्न राजाओं की सेनायें अलग-अलग सेनापतियों के नियन्त्रण में थी,[8] जब कि दूसरी ओर महमूद की सेना सर्वथा सुसंगठित और एक व्यक्ति के नियन्त्रण में थी। ब्रह्मपाल ने विशाल भारतीय सेना के साथ सिन्धु नदी के तट पर उन्द नामक स्थान की ओर प्रस्थान किया।[9] महमूद ने अपनी विलक्षण अन्तर्दृष्टि से यह समझ लिया था कि इस बार भारतीय बड़ी तत्परता से लड़ेंगे। इसलिये पहले की अपेक्षा वह और अधिक

---

१. उत्बी, पृ० २२४; गर्दीज़ी, पृ० ६९; नाज़िम, पृ० ८९; हबीब, पृ० २७।

२. नाज़िम, पृ० ८९; हबीब, पृ० २७।

३. नाज़िम, पृ० ८९; हबीब, पृ० २७; ओझा, भाग १, पृ० २९४।

४. उत्बी, पृ० २२४; नाज़िम, पृ० ८९। 'उत्बी ने इन संघ की सेनाओं के नेतृत्व का उल्लेख करते हुए ब्रह्मपाल नाम लिखा है। नाज़िम ने भी इसी नाम का समर्थन किया है। परन्तु प्रो० हबीब ने इन सेनाओं के नेतृत्व के लिए आनन्दपाल के नाम का उल्लेख किया है। ऐसा जान पड़ता है कि युवा एवं साहसी होने के कारण ब्रह्मपाल ने ही नेतृत्व किया होगा और साथ में आनन्दपाल भी युद्ध क्षेत्र में सहयोग के लिए उपस्थित रहा होगा, क्योंकि वह कुशल एवं अनुभवी था'।

५. हबीब, पृ० २७; ओझा, भाग १, पृ० २९४।

६. हबीब, पृ० २७।

७. उत्बी, पृ० २२४; नाज़िम, पृ० ८९।

८. हबीब, पृ० २७।

९. वही, पृ० २८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सावधान था। उसने अपने शिविर के दोनों ओर खोई खोद ली वह स्वयमेव युद्ध छेड़ने के पक्ष में नहीं था। अतः दोनों सेनायें एक दूसरे के आमने-सामने चालीस दिनों तक पड़ी रही।[१] भारतीय सेना की कुमक निरन्तर आ रही थी। महमूद को यह आशंका हुई कि कहीं अधिक देर तक विलम्ब करने का परिणाम यह न हो कि ब्रह्मपाल अपनी सेना की संख्या के बल से ही मुस्लिम आक्रामकों को परास्त कर दे। अतः उसने अपने एक हजार धनुर्धारियों को तीर चला कर युद्ध करने का आदेश दिया।[२] किन्तु इसी समय तीस हजार गक्खरों ने महमूद द्वारा खोदी खाइयों को पहले ही हमले में पार कर लिया, और वे मुस्लिम शिविर में दोनों ओर से घुस गये, तथा घुड़सवार सेना का इतनी तेजी से संहार करने लगे कि पलक झपकते ही तीन चार हजार मुसलमान सैनिक शहीद हो गये।[३] इसी समय दुर्भाग्यवश आनन्दपाल का हाथी भड़क कर रणक्षेत्र से भाग खड़ा हुआ।[४] विजयी सेना ने समझ लिया कि उसके सेनापति ने उसे धोखा दिया, अतः वह भाग खड़ी हुई, और महमूद के सैनिक दो दिन दो रात तक उसका पीछा करते रहे।[५] महमूद को अन्य बहुमूल्य सामग्रियों के साथ तीस हाथी भी हाथ लगे,[६] तथा भारतीय सेना के कुल आठ हजार सैनिक मारे गये।[७] किन्तु जिस आन्तरिक एकता, कुशल नेतृत्व और अनुशासन के अभाव के कारण भारतीय सेना भाग खड़ी हुई थी, वह वस्तुतः शोचनीय था। यह बड़ा निर्णायक युद्ध था, क्योंकि इसके बाद भारतीय राजा कभी इस प्रकार संगठित नहीं हुए। महमूद ने हतोत्साह एवं निराशामग्न भारतीय शासकों को क्रमशः परास्त करने का निश्चय किया, और धनधान्य से पूर्ण नगरकोट[८] (कांगड़ा) के मन्दिर पर आक्रमण कर दिया। मन्दिर की संरक्षक सेना उन्द के मैदान में उसका सामना करने के लिये पहले ही जा चुकी थी, और अभी तक लौटी नहीं थी।

नगरकोट कांगड़ा के निकट एक पहाड़ी पर बानगंगा नदी से घिरा हुआ था।[९] यह भीम के दुर्ग के नाम से प्रसिद्ध था। तीन दिन के घेरे के बाद महमूद ने इस दुर्ग को जीत

---

१. उत्बी, पृ० २२४; फ़रिश्ता, पृ० २६; हबीब, पृ० २८; ओझा, भाग १, पृ० २९४।

२. हबीब, पृ० २८; ओझा, भाग १, पृ० २९५। (ओझा ने धनुर्धारियों की संख्या ६ हजार लिखी है।)

३. हबीब, पृ० २८; ओझा ने शहीद हुए मुस्लिम सैनिकों की संख्या पांच हजार लिखी है। देखिये, राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृ० २९५।

४. उत्बी, पृ० २२४–२६; दि स्ट्रगिल फॉर एम्पायर, पृ० ९; हबीब, पृ० २८–२९; नाज़िम, पृ० ९०; ओझा, भाग १, पृ० २९५।

५. हबीब, पृ० २८।

६. उत्बी, पृ० २२४; गर्दीज़ी, पृ० ६९; नाज़िम, पृ० ९०; ओझा, भाग १, पृ० २९५।

७. हबीब, पृ० २८।

८. उत्बी, पृ० २२४; फरिश्ता, पृ० ७०; इलि०, भाग २, पृ० ४४५; हबीब, पृ० २९; नाज़िम, पृ० ९०।

९. उत्बी, पृ० २२४; उनसूरी, पृ० ८४; नाज़िम, पृ० ८४; नाज़िम, पृ० ९०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिया[1]। इस दुर्ग में जितनी सम्पत्ति थी उतनी किसी अन्य राजा के कोष में नहीं थी। महमूद ने यहाँ के पुजारियों से निम्नलिखित सम्पत्ति प्राप्त की :—

सात करोड़ दीनारें, सत्तर हजार सोने चांदी के वर्तन, दो सौ मन शुद्ध सोना, दो हजार मन चांदी, बीस मन विभिन्न प्रकार के रत्न एवं मणियाँ।[2] तथा वह अपने साथ भीम का सुसज्जित राजसिंहासन भी ले गया।[3] महमूद को इस विजय में इतनी प्रचुर मात्रा में सम्पत्ति प्राप्त हुई कि इसने उसकी धन लालसा की तृष्णा और बलवती कर दी। महमूद जून १००९ ई० में इस किले का अधिकार अपने एक अधिकारी को सौंप कर गज़नी लौट गया।[4]

आनन्दपाल का आत्म-समर्पण तथा नारायणपुर (अलवर राज्य) पर आक्रमण (अक्टूबर, १००९ ई०) :

महमूद नगरकोट की सम्पत्ति से गंगा यमुना के दोआब की सम्पत्ति का अनुमान लगा कर अब आगे बढ़ना चाहता था। परन्तु अभी भी रास्ते में आनन्दपाल का अवरोध वर्तमान था। पराजित होने के बाद भी आनन्दपाल का इतना अस्तित्व तो था ही कि महमूद शान्ति-पूर्वक आगे नहीं बढ़ सकता था।[5] महमूद अक्टूबर १००९ ई० में फिर आगे बढ़ा।[6] पिछले युद्ध की असफलता से आनन्दपाल भी निरुत्साह एवं सशंकित हो गया था। उसने तत्काल अपने दूत भेज कर शान्ति की कामना तथा महमूद की समृद्धि की अभिलाषा व्यक्त की।[7] महमूद भी इस समय संघर्ष के स्थान पर आनन्दपाल से मैत्रीभाव ही चाहता था, जिससे उसे आगे बढ़ने में सुविधा रहे। अतः युद्ध के स्थान पर सन्धि की चर्चा चली, और वह सफल भी हुई। आनन्दपाल ने प्रतिवर्ष तीस हाथी देने का वचन दिया, तथा सुल्तान की सेवा के लिए दो हजार व्यक्ति प्रस्तुत किए।[8] परिणामतः भारत में गंगा-यमुना का मध्यवर्ती प्रदेश विदेशी आक्रामकों के लिए खुल गया।[9] अब आनन्दपाल उसका मित्र था, और महमूद उसके राज्य से होकर भारत के विभिन्न राजाओं पर आक्रमण कर सकता था।[10]

महमूद ने तत्काल इस मैत्री का लाभ उठाकर आगे प्रस्थान किया, और नारायणपुर के राजा पर आक्रमण कर दिया।[11] इससे उसको धन की प्राप्ति तो हुई ही, साथ ही गंगा-

---

१. गर्दीजी, पृ० ७०; हबीब, पृ० ३०; नाज़िम, पृ० ९०। (हबीब ने नगरकोट के इस घेरे की अवधि ७ दिन लिखा है किन्तु नाज़िम ने ३ दिन लिखी है।)
२. उत्बी, २२६; हबीब, पृ० ३०; नाज़िम, पृ० ९०।
३. उनसूरी, ८५; नाज़िम, पृ० ९०।
४. उत्बी, पृ० २२६; गर्दीज़ी, पृ० ७०।
५. हबीब, पृ० ३०।
६. उत्बी, पृ० २१०; गर्दीज़ी, पृ० ६७।
७. हबीब, पृ० ३०।
८. हबीब, पृ० ३१।
९. वही।
१०. वही।
११. कनिंघम, एन्शेन्ट ज्योग्रफ़ी ऑफ इंडिया, पृ० ३३८–४४; ए० एस० आई०, २, पृ०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यमुना के दोआब का मार्ग प्रशस्त हो गया। राजा ने युद्ध किया और पराजित हुआ। महमूद ने राजधानी को जी भर कर लूटा और गज़नी लौट गया।[1] राजा ने कुछ समय बाद एक दूत महमूद की सेवा में भेजा तथा उसको वार्षिक कर, पचास हाथी तथा अन्य सुविधायें देने का वचन दिया।[2]

मुल्तान पर पुनः आक्रमण (अक्टूबर १०१० ई०) :

महमूद ने अक्टूबर, १०१० ई० में पुनः मुल्तान के राज्य पर आक्रमण किया। वहाँ के शासक दाऊद को बन्दी बना कर ग़ोर के दुर्ग में क़ैद कर दिया गया,[3] जहाँ उसकी मृत्यु हुई। अन्य सहस्रों करामतियों को, जिन्होंने उसके साथ उपद्रव में भाग लिया था, कत्ल करा दिया गया, तथा शेष को विभिन्न दुर्गों में बन्दी बना दिया गया।[4] मुल्तान की स्वतन्त्र सत्ता समाप्त कर दी गई तथा उसे गज़नी के राज्य में मिला दिया गया। विजयी महमूद गज़नी लौट गया।

थानेश्वर पर आक्रमण (अक्टूबर १०१४ ई०) :

महमूद ने अक्टूबर, १०१४ ई०[5] में थानेश्वर पर आक्रमण किया।[6] उसने सुन रखा था कि यहाँ चक्रस्वामी[7] की मूर्ति है, जिसे हिन्दू ऐसा ही पवित्र मानते हैं, जैसा मुसलमान मक्का को। ऐसे स्थान पर प्रचुर धनराशि होने की सम्भावना थी, जिसे पाने के लिए महमूद ने अपना यह आक्रमण किया। आनन्दपाल ने अपनी संधि के अनुसार महमूद को पूरी सहायता दी। अपने व्यापारियों और दूकानदारों को आदेश दिया कि वे मुस्लिम सेनाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहें।[8] उसका भाई दो हजार सैनिकों सहित सुल्तान महमूद की सेना के साथ थानेश्वर की ओर आगे बढ़ा।[9] महमूद ने यद्यपि आनन्दपाल के प्रदेश को कोई क्षति नहीं पहुँचायी, किन्तु उसका यह सुझाव नहीं माना कि थानेश्वर की जनता की जन-भावना को ध्यान में रखकर मूर्ति एवं मन्दिर न नष्ट किये जाएँ, तथा उसके बदले में एक वार्षिक कर

२४२–४७; ६, ९१–१०३। उत्बी ने केवल नारायण लिखा है, परन्तु कनिंघम ने उपर्युक्त पुस्तकों में उसका पूरा नाम नारायणपुर दिया है, जो अलवर राज्य में है।

१. उत्बी, पृ० २४१–४२; नाज़िम, पृ० १०२।
२. उत्बी, २४२; नाज़िम, पृ० १०२।
३. गर्दीज़ी, पृ० ७०; फ़रिश्ता, खं० १, पृ० १२५–२७; नदवी, पृ० २५५, हबीब, पृ० ३२; नाज़िम, पृ० ९९। नाज़िम ने इस किले का नाम 'घूरक' लिखा है। दाऊद-अबुल-फ़तह दाऊद मुल्तान का राजा था। उसने महमूद को कर देना बन्द कर दिया था। इस कारण महमूद ने उस पर आक्रमण किया।
४. गर्दीज़ी, पृ० ७०; अलबेरूनी, भाग १, पृ० ११६–१७।
५. इब्ने-उल-असीर, भाग ९, पृ० १७२; नाज़िम, पृ० १०३।
६. उत्बी, पृ० २६४।
७. अलबेरूनी, भाग १, पृ० ११७; गर्दीज़ी, पृ० ७०; हबीब, पृ० ३२।
८. हबीब, पृ० ३२।
९. वही।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और क्षतिपूर्ति की राशि ले ली जाय।[1] वह स्वयं पचास हाथी देने को तैयार था।[2] परन्तु महमूद ने उसका यह आग्रह स्वीकार नहीं किया, क्योंकि वह भारत में इस प्रकार की मूर्ति-पूजा की पद्धति को समाप्त करना चाहता था। थानेश्वर के राजा ने इस संकटकालीन स्थिति में पुनः भारतीय राजाओं के संघ निर्माण का निष्फल प्रयास किया। उसने अन्य भारतीय राजाओं को यह लिखा था कि 'यदि हम इस बाढ़ को रोकने के लिए एक बांध का निर्माण नहीं करते हैं, तो यह समूचे मैदान में फैल जायेगी, और सभी छोटे बड़े राज्य इस बाढ़ में डूब जायेंगे।''[3] किन्तु भारतीय राजाओं ने उसके इस सुझाव एवं अनुरोध की उपेक्षा की, और उसकी कोई सहायता नहीं की। परिणामतः थानेश्वर नरेश भयभीत एवं निराश होकर वहाँ से भाग निकला। महमूद को उस राज्य को लूटने और अरक्षित नगर की मूर्तियों को तोड़ने का स्वर्णावसर मिला।[4] उसने 'चक्रस्वामी' की मूर्ति तोड़ दी, और उसे गज़नी उठा ले गया।[5] इस मूर्ति को अलबेरूनी ने गज़नी के घुड़दौड़ के मैदान में पड़ा देखा था।[6] महमूद यहाँ से आगे पूर्व की ओर बढ़ना चाहता था, किन्तु उसे इसमें बहुत बड़ा खतरा नज़र आया। यदि आनन्दपाल 'चक्रस्वामी' की मूर्ति के प्रति हिन्दुओं की धार्मिक आस्था एवं भावना को लेकर अपने तिरस्कृत अनुरोध के फलस्वरूप विरोधी हो जाता, तो महमूद आकस्मिक संकट में पड़ जाता। उसका इस स्थिति में गज़नी से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता। अतः उसने गज़नी लौट जाना ही श्रेयस्कर समझा।

त्रिलोचनपाल पर आक्रमण तथा नन्दन (नारदीन) पर अधिकार (नवम्बर, १०१३ मार्च, १०१४ ई०) :

आनन्दपाल की मृत्यु के उपरांत उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र त्रिलोचनपाल हुआ। वह वैयक्तिक रूप से मुसलमानों के प्रति अच्छे भाव रखता था। किन्तु वह बड़ी निर्बल प्रकृति का व्यक्ति था उसके समय में शासन का संचालन प्रधान रूप से उसका पुत्र भीमपाल करने लगा।[7] उसे अत्यन्त साहसी एवं वीर होने के कारण 'निडर भीम' भी कहा जाता था।[8] उसने अपने दादा (आनन्दपाल) द्वारा प्रवर्तित गज़नी से सहयोग एवं सन्धि की नीति का घोर विरोध किया, और महमूद से की गई सन्धि को समाप्त कर दिया। इस स्थिति में अब पुनः महमूद को भारत के भीतरी भाग तक पहुँचने के लिये, साथ ही अपना मार्ग निष्कंटक रखने के लिये, लाहौर का राज्य जीतना आवश्यक हो गया। नवम्बर १०१३ ई०[9] के अन्त में वह

---

१. वही।
२. उत्बी, पृ० २६४।
३. हबीब, पृ० ३२।
४. वही, पृ० ३३।
५. गर्दीज़ी, पृ० ७२।
६. अलबेरूनी, भाग १, पृ० ११७।
७. हबीब, पृ० ३४।
८ नाज़िम, पृ० ९१।
९. बैहकी, पृ० ८४१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गज़नी से चलकर जब भारत की सीमा पर पहुंचा तो बर्फ पड़नी शुरू हो गई; अतः वह रुक गया। मार्च १०१४ ई०[१] में वह पुनः ऋतु अनुकूल होने पर नन्दन[२] की ओर आगे बढ़ा।

नन्दन को उत्बी ने 'नारदीन' लिखा है, तथा गर्दीज़ी व बैहकी ने 'नन्दूनाह' लिखा है। यह नमक की पर्वतमाला में दो पहाड़ियों के संगमस्थल पर अवस्थित था। यह एक ऐसा महत्वपूर्ण सामरिक नाका था, जो गंगा के दोआब को जाने वाले प्रधान मार्ग को नियंत्रित करता था। महमूद अब इस बात का निश्चय कर चुका था कि नमक की पहाड़ियों से त्रिलोचन पाल का पूर्ण उन्मूलन करके इस सैनिक महत्व के स्थान को स्थायी रूप से अपने अधिकार में कर लेना चाहिये। त्रिलोचन पाल को जब महमूद के आगे बढ़ने का समाचार प्राप्त हुआ, तो वह इस दुर्ग की रक्षा का भार अपने पुत्र भीमपाल को सौंप कर कश्मीर नरेश संग्रामराज[३] की सहायता प्राप्त करने के लिए 'कश्मीर के दर्रे'[४] के पास चला गया। भीमपाल ने रक्षा की पूरी तैयारी की। दोनों पहाड़ियों के संगम पर बने हुए दुर्ग को सुदृढ़ बनाते हुए; इस तक पहुँचने वाले मार्ग की रक्षा के लिए उसने हाथियों की एक सुदृढ़ पंक्ति स्थापित की। सुल्तान कई दिन तक उस दुर्ग को जीतने के लिए विफल प्रयास करता रहा। अन्त में भीमपाल अपनी सेना मैदान में ले आया।[५] यहाँ खुले संघर्ष में भीमपाल को महमूद ने पराजित कर दिया। किन्तु इसी समय भीमपाल को नई सैनिक सहायता मिल गई। उसने दूसरी बार सुल्तान पर पुनः आक्रमण किया, किन्तु इस में भी उसको सफलता नहीं मिली, और हिन्दुओं को नन्दन के दुर्ग में शरण लेनी पड़ी। अब सुल्तान ने दूसरा घेरा डाल दिया। दुर्ग की दीवारों में सुरंगे लगा दी गई। तुर्क धनुर्धारियों ने अपनी प्रबल बाण वर्षा से दुर्ग-रक्षकों तथा हाथियों का भीषण संहार किया।[६] अन्त में महमूद ने दुर्ग जीत ही लिया, तथा उसे बड़ी संख्या में हाथियों, व अपार लूट का माल प्राप्त करने में सफलता मिली।[७]

ऊपर जैसा उल्लेख किया गया है, त्रिलोचनपाल इसी बीच वहां से चला गया था, और झेलम के उत्तर में एक घाटी में कश्मीरी सेना की सहायता की प्रतीक्षा में उसने अपना शिविर डाल रखा था।[८] इस समय कश्मीरी सेनाओं का सेनापति 'तुंग' था। उसने त्रिलोचनपाल की सहायता की तथा सुल्तान की सेना के साथ पहली मुठभेड़ में उसे सफलता भी मिली। इसका फल यह हुआ कि उसे अत्यधिक अभिमान हो गया और वह शत्रु की

---

१. उत्बी, पृ० २६०।
२. पंजाब डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, भाग २७, (१९०४) पृ० ४६–४७; इम्पोरियल गज़ेटियर आफ इंडिया, भाग १८, पृ० ३४९; तबक़ाते नासिरी, पृ० ३३४–३३९।
३. कल्हण, राजतंरगिणी, ७, ४७–५३।
४. गर्दीज़ी, पृ० ७२।
५. उत्बी, पृ २६२।
६. वही, पृ० ९२।
७. गर्दीज़ी, पृ० ७२; उत्बी, पृ० २६३।
८. कल्हण, ७, १, ५३; नाज़िम पृ० ९२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शक्ति को तुच्छ समझने लगा।[१] अगले ही दिन तुर्कों के सेनापति ने बड़ी कुशलता पूर्वक आक्रमण किया तथा इस दूसरे आक्रमण में उसने कश्मीरी सेनाओं को बुरी तरह पराजित किया। 'तुंग' को प्राण रक्षा के लिए भागना पड़ा।[२] त्रिलोचलपाल ने साहसपूर्वक संघर्ष किया, किन्तु उसे भी पराजय का मुंह देखना पड़ा। महमूद की इस सफलता का समाचार चारों ओर फैल गया। आस-पास के छोटे-छोटे राजाओं ने सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली, और अनेक व्यक्तियों ने इस्लाम भी स्वीकार कर लिया। सुल्तान ने धार्मिक शिक्षा के लिए मुल्लाओं को नियुक्त किया तथा मस्जिदें भी बनवाई।[३] महमूद नन्दन के दुर्ग का अधिकार अपने एक विश्वस्त अधिकारी 'सारूग़'[४] को सौंपकर गज़नी लौट गया। इसके उपरान्त पश्चिमी पंजाब में त्रिलोचनपाल की शक्ति बिल्कुल समाप्त हो गई, और वह पंजाब के पूर्वी भाग में चला गया।

कश्मीर पर आक्रमण (१०१५ ई०) :

कश्मीर की सेनाओं से महमूद का संघर्ष हो चुका था। अतः अगले वर्ष १०१५ ई०[५] में सुल्तान ने कश्मीर नरेश संग्रामराज को दण्ड देने के लिए पुनः कश्मीर के दर्रे में प्रवेश करने का प्रयास किया, और लौहकोट के दुर्ग पर आक्रमण किया। किन्तु वह लौहकोट[६] के दुर्ग को नहीं जीत सका, क्योंकि यह अभियान चल ही रहा था कि हिमपात आरम्भ हो गया, फलतः सुल्तान को निराशभाव से गज़नी लौटना पड़ा।[७] यह पहला अवसर था, जब कि सुल्तान महमूद को दैवी विपदा के कारण किसी भारतीय दुर्ग को बिना विजय किये वापस लौटना पड़ा था। उसकी सेना का बड़ा भाग लौटते समय झेलम नदी की बाढ़ में डूब गया और सुल्तान की प्राण रक्षा भी बड़ी कठिनाई से हो सकी।[८] किन्तु इस साल महमूद ने अपनी कश्मीर की इस असफलता की पूर्ति मध्य एशिया में ख़्वारिज्म के प्रदेश को जीत कर ली।[९]

दोआब पर आक्रमण तथा मथुरा और कन्नौज पर अधिकार (सितम्बर १०१८) :

महमूद ने अपनी चिर-संचित अभिलाषा की पूर्ति के लिए गंगा की शस्य-श्यामला वादी पर सितम्बर १०१८ ई०[१०] में वर्षाऋतु की समाप्ति पर आक्रमण करने के लिए प्रयाण

---

१. नाज़िम, पृ०९२।
२. कल्हण, ७,१,५७; नाज़िम, पृ० ९३।
३. गर्दीज़ी, पृ० ७३; नाज़िम, पृ० ९३।
४. गर्दीज़ी, पृ० ७२; नाज़िम पृ० ९३।
५. गर्दीज़ी, पृ० ७२; नाज़िम, पृ० १०४।
६. कल्हण, २,२९३,२९५,३९९; नाज़िम, पृ० १०५।
७. गर्दीज़ी; पृ० ७३; उत्बी, पृ० ३०४; नाज़िम, पृ० १०५।
८. इब्ने-उल-असीर, भाग ९, पृ० १८१।
९. हबीब, पृ० ३५।
१०. गर्दीज़ी, पृ० ७७; नाज़िम, पृ० १०६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया। इस महाभियान में उसकी सेना की संख्या ग्यारह हजार थी[१], और इसके अतिरिक्त इसमें खुरासान और तुर्किस्तान के स्वयं सेवकों के रूप में बीस हजार[२] सैनिक भी सम्मिलित थे। इस समय तक महमूद के लिए सब परिस्थितियाँ अनुकूल हो चुकी थी। हिन्दू राज्यों के संघों का विघटन हो चुका था और कोई भी ऐसा भारतीय राजा नहीं था, जो एकाकी रूप से महमूद का सामना कर सकता था।[३] उस समय तक महमूद के कुशल सैन्य संचालन की कीर्ति भारत में चारों ओर फैल चुकी थी। सभी राजाओं पर उसकी धाक जम चुकी थी। यद्यपि वह त्रिलोचनपाल तथा भीमपाल (निडर भीम) को न तो पकड़ सका था न पूर्णत हरा ही सका था, फिर भी शक्तिहीन होने के कारण वे पंजाब से जाने के लिए विवश हो गए थे। पंजाब की पांचों नदियों को पार करने के पश्चात् महमूद ने दिसम्बर १०१८ ई० में जमुना पार की और सिरसावा पर आक्रमण किया।[४] स्थानीय राजा भाग गया। महमूद को इस लूट में दस लाख दीनारें मिलीं। इसके बाद उसने बरन (बुलन्द शहर)[५] पर आक्रमण किया। उस समय उसकी सेना की तुलना एक इतिहासकार ने समुद्र के लहरों से की है। यहाँ के राजा हरदत्त ने यही श्रेयस्कर समझा कि वह इस सेना का सामना करने की अपेक्षा आत्मसमर्पण कर दे। उसने नगर से बाहर निकलकर यह घोषणा की कि वह अपने दस हजार अनुयायियों सहित इस्लाम स्वीकार करने के लिए उत्सुक है।[६] राजा के धर्म परिवर्तन से इस नगर के निवासियों की प्राण रक्षा हो गई।

इसके उपरान्त महमूद की सेना यमुना नदी के साथ-साथ नीचे की ओर महावन[७] की दिशा में बढ़ी। यहां का राजा राय कुलचन्द था। उसे अजेय योद्धा माना जाता था। वह अपनी सेना को एक घने जंगल में ले गया। महमूद ने इस दुष्प्रवेश्य बन में घुस कर उसकी सेना को बुरी तरह पराजित किया। इस राजा के बहुत से सैनिक यमुना नदी पार करते हुए डूब कर मर गये। कुलचन्द ने बन्दी जीवन के कलंक से बचने के लिए पहले अपनी पत्नी को मार डाला, तथा तत्पश्चात् स्वयं भी आत्म हत्या कर ली। इस युद्ध में महमूद को १८५ हाथियों के साथ-साथ पर्याप्त धन प्राप्त हुआ।[८]

इस युद्ध के उपरान्त महमूद ने श्रीकृष्ण की मातृभूमि मथुरा पर चढ़ाई की। उस समय जनसंख्या, भव्य भवनों आदि के कारण मथुरा वैभवशाली एवं अद्वितीय नगर था।

---

१. सिब्त-इब्ने-उल-ज़ावज़ी, फो० २०५ ए; नाज़िम, पृ० १०७।
(हबीब ने सेना की संख्या एक लाख लिखी है। देखिये, हबीब, पृ० २६)।
२. उत्बी, पृ० ३०५; उन्सूरी, पृ० १४१; फ़रिश्ता, पृ० २९; हबीब, पृ० २६।
३. हबीब, पृ० ३७।
४. उत्बी, पृ० ३०५; नाज़िम, पृ० १०६।
५. उत्बी, पृ० ३०५; नाज़िम, पृ० १०७; हबीब; पृ० २६।
६. उत्बी, पृ० ३०५; उन्सूरी, पृ० १४१; गर्दीज़ी, पृ० ७५; नाज़िम, पृ० १०७।
७. गर्दीजी, पृ० ७५; उन्सूरी, पृ० १४१; नाज़िम, पृ० १०७; हबीब, पृ० २६।
८. उत्बी, पृ० २०६–७; गर्दीजी, पृ० ७५; उन्सूरी, पृ० १४२, नाज़िम, पृ० १०७। हबीब ने राजा द्वारा पत्नी के साथ-साथ पुत्र की हत्या भी लिखी है, देखिये, हबीब, पृ० ३७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह चारों ओर से पत्थर की दीवारों से घिरा हुआ था, और यमुना की ओर दो फाटक थे।[1] यहां के मंदिर विशाल और प्रचुर सम्पत्तिशाली थे। परन्तु महमूद ने इस पर चढ़ाई के लिए जब यमुना नदी पार की, तो यहां के नगर एवं मंदिरों की रक्षा के लिए कोई प्रतिरोध नहीं किया गया।[2] सम्भवतः महमूद की विजयों के आतंक ने राजाओं के साथ-साथ जनता को भी निष्क्रिय एवं कायर बना दिया था, जिसने आत्म-समर्पण करने में तनिक भी संकोच नहीं दिखलाया और देखते ही देखते मथुरा को महमूद के हाथों में सौंप दिया।

सुल्तान महमूद ने मथुरा में प्रवेश करते ही यह आदेश दिया कि सभी मंदिरों को राल और अग्नि से जलाकर भूमिसात कर दिया जाय।[3] उसने स्वयंमेव इस विषय में गजनी के अमीरों को लिखा था कि "यहां उच्च शिखरों वाले एक हजार महल हैं, और इनमें अधिकांश बड़ी-बड़ी शिलाओं से बनाये गये हैं। यहां के मंदिरों की गणना नहीं की जा सकती है। यदि कोई व्यक्ति ऐसी नगरी का निर्माण कराना चाहे, तो उसे दो सौ वर्षों तक अपने कारीगर लगाने होंगे, और दस करोड़ दीनारें व्यय करनी होंगी।[4]" महमूद को इस नगरी से आशातीत लूट का धन प्राप्त हुआ। सोने की मूर्तियों से प्राप्त ९८ हजार ३ सौ मिसकल सोना[5], दो सौ चांदी की मूर्तियां, पांच हजार दीनारों के मूल्य की दो लाल मणियां, ४५० दीनारों के मूल्य का एक पन्ना आदि महमूद के हाथ लगे।[6]

मथुरा से कुछ ही दूरी पर वृन्दावन का ऐतिहासिक उप-नगर है। यहां सात बड़े दुर्ग थे। महमूद के आक्रमण का समाचार सुनते ही यहां का राजा पलायन कर गया।[7] अतः वृन्दावन पर अनायास ही महमूद का अधिकार हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि महमूद के भय ने भारतीय शासकों की कायरता को निःसंकोच बना दिया था।

यहां से महमूद अपनी सेना का पर्याप्त भाग पीछे छोड़ कर अपने सर्वोत्तम सैनिकों के साथ दिसम्बर, १०१८ ई०[8] में प्रतिहार राजाओं की राजधानी कन्नौज की ओर बढ़ा। यह नगर गंगा नदी के तट पर बसा था। यहां के सात दुर्गों में दस हजार मंदिर थे।[9] कन्नौज के राजा ने तुर्क आक्रामक का सामना करने के लिए यथासमय सीमान्त नरेश जयपाल

ब्रिग्स, फ़रिश्ता, ने हाथियों की संख्या ८० लिखी है, देखिये, भाग १, पृ० ५८। देखिये, ओझा, भाग १, पृ० २९५।

१. उत्बी, पृ० ३०७; हबीब, पृ० ३७।
२. गर्दीज़ी, पृ० ७५; हबीब, पृ० ३७।
३. उत्बी, पृ० ३०८; गर्दीज़ी, पृ० ७५; हबीब, पृ० ३७; नाज़िम, पृ० १०८।
४. ब्रिग्स, फ़रिश्ता, भाग १, पृ० ५८–५९; ओझा, भाग १, पृ० २६; हबीब, पृ० ३७–३८।
५. उत्बी, पृ० ३०८; हबीब, पृ० ३८; ओझा, भाग १, पृ० २९६।
६. उत्बी, पृ० ३०८; गर्दीज़ी, पृ० ७६; ओझा, भाग १, पृ० २९६।
७. ब्रिग्स, फ़रिस्ता, भाग १, पृ० ५८–५९; हबीब, पृ० ३८।
८. उत्बी, पृ० ३०९; गर्दीज़ी, पृ० ७६।
९. हबीब, पृ० ३८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा आनन्दपाल की सहायता भी की थी। किन्तु अब यहां का शासक राज्यपाल[१] महमूद के आगमन का समाचार सुनते ही गंगापार कर राजधानी से भाग खड़ा हुआ[२], और बारी चला गया।[३] इस कायरतापूर्ण परिस्थिति में अधिकांश हिन्दुओं ने आत्म-समर्पण कर दिया, तथा कुछ तलवार के घाट उतार दिये गये। महमूद ने एक ही दिन में सात दुर्गों पर अधिकार कर लिया, और नगर को मन भर कर लूटा।[४] इसके उपरान्त महमूद दक्षिण की ओर बढ़ता हुआ मुंज (इटावा) की ओर आया[५], जहां ब्राह्मणों का दुर्ग था। यहां के निवासी एवं सैनिक बड़ी वीरता पूर्वक लड़े, किन्तु उन की वीरता उनकी रक्षा न कर सकी।[६] महमूद ने इस बीच असई पर आक्रमण कर दिया। वहां का राजा चन्द्रपाल[७] भाग गया, और उसके पांच दुर्गों पर भी महमूद ने अधिकार कर लिया। असई के राजा के भाग जाने के उपरान्त वहां के लोगों को बंदी बना लिया गया, और बहुत से तो कत्ल कर दिये गये[८], क्योंकि उनके प्रतिरोध ने महमूद को क्रुद्ध कर दिया था।

इसके पश्चात महमूद ने शरबा[९] के चन्दर राय पर आक्रमण किया। यह राजा भी भयभीत होकर अपने खजाने और हाथियों के साथ दुर्गम पर्वतों में भाग गया। किन्तु महमूद ने उसका पीछा करके ६ जनवरी, १०१९ ई० को उसे बुरी तरह पराजित किया।[१०] महमूद को इस आक्रमण में तीस लाख दीनारों की लूट का माल एवं असंख्य हाथी मिले।[११] बन्दी इतनी अधिक संख्या में मिले कि प्रत्येक बन्दी को दो से तीन दीनारों में दास बना कर बेचा गया। उन दिनों गज़नी में बन्दियों की संख्या इतनी थी कि दूर-दूर के व्यापारी वहां दासों को खरीदने के लिए आते थे।[१२] महमूद को इन विजयों से भले ही लूट का माल मिला हो, परन्तु इस्लाम के प्रचार में उसे बड़ी बदनामी मिली। इस्लाम को लुटेरों का धर्म समझा गया, और हिन्दुओं में उसके प्रति घृणा के भाव उत्पन्न हुए। किन्तु एक विजेता के प्रति जिसने भारतीय जनता के गर्व एवं गौरव को धराशायी कर दिया हो, ऐसी भावना होनी स्वाभाविक थी। जिस देश में ऐसे राजा हों, जो शत्रु का सामना करने में विफल हों, और कायरतापूर्ण ढंग से भगौड़े साबित हों, वहां की सामान्य जनता में जो तत्कालीन

---

१. उत्बी, पृ० ३०९; गर्दीज़ी, पृ० ७६; नाज़िम, पृ० १०८।
२. उत्बी, पृ० ३०९; जे० आर० ए० एस०; (१९०८) पृ० ७९१; ओझा, भाग १, पृ० १८५।
३. अलबेरूनी, भाग १, पृ० २००–२०१, नाज़िम, पृ० १०८।
४. इलि० डाउ०, भाग २, पृ० ४५; ओझा, भाग १, पृ० १८५।
५. यू० पी० डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, भाग ११, पृ० २१९।
६. उत्बी, पृ० ३१०; नाज़िम, पृ० १०९।
७. उत्बी, पृ० ३१०; इब्ने-उल-असीर, भाग ९, पृ० १८६।
८. उत्बी, पृ० ३१०; नाज़िम, पृ० १०९।
९. गर्दीज़ी, पृ० ७६; नाज़िम, पृ० १०९।
१०. उत्बी, पृ० ३१३; नाज़िम, पृ० ११०।
११. उत्बी, पृ० ३१३; गर्दीज़ी, पृ० ७६; हबीब, पृ० ४१; नाज़िम, पृ० ११०।
१२. हबीब, पृ० ४१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजाओं के शोषण की शिकार थी, पश्चात्ताप स्वरूप इस प्रकार की घृणात्मक भावना का संचार होना स्वाभाविक था।

बारी और कालिंजर पर आक्रमण तथा रामगंगा का युद्ध (अक्टूबर, १०१९ ई०) :

महमूद अपने दो बड़े भारतीय शत्रुओं, त्रिलोचनपाल तथा उसके पुत्र 'निडर भीम' को यद्यपि पराजित कर चुका था, किन्तु अभी तक वह उनका पूर्णरूपेण दमन न कर सका था। ये दोनों गंगा-जमुना के दोआब में घूम रहे थे। इन परिस्थियों में कालिंजर के राजा गंड ने भी विरोधी दृष्टिकोण अपनाया। महमूद के भारत से लौटने के उपरान्त ग्वालियर का राजा अर्जुन भी गंड से मिल गया।[१] महमूद के विरोधियों के रूप में गंड और त्रिलोचपाल की मैत्री होनी स्वाभाविक थी। अतः गंड ने प्रतिहार राजा राज्यपाल को महमूद के विरुद्ध उसकी कायरता पर दंड देने के लिए एक संघ बनाया, और चन्देल राजकुमार विद्याधर को इसका नेतृत्व सौंपा।[२] इस संघीय युद्ध में राज्यपाल को मार डाला गया[३], और उसके लड़के त्रिलोचनपाल को गद्दी पर बैठाया गया।[४] इस सफलता के परिणामस्वरूप गंड ने भूतपूर्व सीमान्त शासक आनन्दपाल के लड़के त्रिलोचनपाल को महमूद से राज्य प्राप्त करने में सहायता देने का आश्वासन दिया।[५] महमूद को ज्योंही यह समाचार प्राप्त हुआ, वह हिन्दू राज्यों के इस नये संघ को भंग करने के लिए पुनः पंजाब की पांचों नदियों और गंगा को हरद्वार[६] के पास पार करता हुआ, भारत पर अक्टूबर १०१९ ई० में चढ़ आया।[७]

सुल्तान के आगमन का समाचार पा आनन्दपाल का पुत्र त्रिलोचनपाल अपने नाम-राशि कन्नौज तथा बारी के शासक (त्रिलोचनपाल) के साथ सैन्य संयोग करने के लिये दक्षिण की ओर बढ़ा। महमूद ने उसका पीछा किया और रामगंगा के किनारे उसके समक्ष जा पहुँचा। किन्तु त्रिलोचनपाल नदी पार कर गया, और सुल्तान को पार न करने देने का प्रयास किया।

---

१. उत्बी तथा अन्य मुस्लिम इतिहासकारों ने इस चन्देल राजा का नाम 'नन्द' लिखा है। सर डब्ल्यू० हेग ने भी इसे नन्द ही माना है, देखिये, केम्ब्रिज हिस्ट्री, भाग ३, पृ० २१। प्रो० हबीब ने भी इसका नाम नन्द अंकित किया है, देखिये, हबीब, पृ० ४२। किन्तु मऊ के चन्देल अभिलेख से स्पष्ट है कि इस राजा का नाम गंड था। देखिये, ऐपि० इंडि०, १, पृ० १९५, २०७; जे० आर० ए० एस०, १९०९, पृ० २७८। स्मिथ तथा नाज़िम ने भी इस राजा का नाम गंड लिखा है, देखिये, नाज़िम, पृ० ९४।

२. स्मिथ, जे० आर० ए० एस० (१९०९) पृ० २७८; नाज़िम, पृ० १११।

३. गर्दीज़ी, पृ० ७६; इब्ने-उल-असीर, भाग ९, पृ० २१८; फ़रिश्ता, १, पृ० ५७–६३; हबीब, पृ० ४२; ओझा, भाग १, पृ० १८५।

४. स्मिथ, पृ० ३८३; नाज़िम, पृ० १११।

५. गर्दीज़ी, पृ० ७६; इब्ने-उल-असीर, ९, पृ० २१८; नाज़िम, पृ० १११।

६. नाज़िम, पृ० १११; हबीब, पृ० ४२।

७. गर्दीज़ी, पृ० ७६; उत्बी, पृ० ३१८; नाज़िम, पृ० १११।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर सुल्तान ने नदी पार कर उसे बुरी तरह परास्त किया[१], और बारी की ओर बढ़ा। बारी को राज्यपाल ने कन्नौज से पलायन के बाद राजधानी बनाया था। महमूद के आने का समाचार सुनते ही बारी का शासक त्रिलोचनपाल, तथा वहां के सारे निवासी भाग खड़े हुए।[२] महमूद ने उजाड़ नगरी को धराशायी करने की आज्ञा दी।[३] अब सुल्तान गंड की ओर आकृष्ट हुआ जो १४५००० पैदल, ३६००० अश्वारोही तथा ६४० हाथी लेकर सुल्तान का प्रतिरोध करने के लिए आगे बढ़ा था।[४] सामना हुआ तो गंड की इस विशाल सेना को देख कर महमूद भयभीत हो उठा और सोचने लगा कि इतनी दूर आना कदाचित उसकी भूल थी। उसने ईश्वर से सहायता के लिए प्रार्थना की। सायंकाल उसकी एक अग्रिम टुकड़ी की मुठभेड़ गंड के एक सैनिक दल से हुई, जिसमें अबू अब्दुल्ला मुहम्मद अत-ताई के नेतृत्व में महमूद के सैनिक विजयी हुए।[५] प्रातःकाल महमूद ने गंड के पास एक दूत भेजा, जिसने लौटकर सूचना दी कि गंड तो सहसा भयभीत हो भाग खड़ा हुआ था। राज्यपाल के बधिक ने भी उसी कायरता का परिचय दिया, जिसके लिये उसने राज्यपाल को दंडित किया था।[६] सुल्तान ने इस दैवी विजय पर ईश्वर को धन्यवाद दिया तथा गंड द्वारा छोड़ी अपार सम्पत्ति को लूटने की आज्ञा दी। अन्य सम्पत्ति के साथ गंड के ५८० हाथी भी महमूद के हाथ लगे।[७]

त्रिलोचनपाल उपर्युक्त रामगंगा के तट के युद्ध में बुरी तरह घायल हो गया। वह उसी दशा में गंड से सहायता लेने के लिए दक्षिण की ओर बढ़ा, किन्तु उसी के किसी साथी ने १०२१–२२ ई० में उसकी हत्या कर दी।[८] उसका पुत्र भीमपाल (निर्भय भीम) उसके नाम मात्र के राज्य का उत्तराधिकारी बना।[९] कालान्तर में (१०२६ ई० में) 'निर्भय भीम' भी टक्करें खाता हुआ स्वर्ग सिधार गया।[१०] परिणामतः सदियों तक भारत के द्वार रक्षक, भारत के गौरव को बढ़ाने वाले हिन्दू शाहीय राजवंश का अवसान हो गया। हिन्दू शाहीय वंश के राजा अपनी विद्वत्ता, दयालुता और सज्जनता के लिए इतिहास में

---

१. नाज़िम, पृ० १११; हबीब, पृ० ४२।
२. नाज़िम, पृ० १११; हबीब, पृ० ४२।
३. गर्दीज़ी, पृ० ७७; नाज़िम, पृ० १११।
४. गर्दीज़ी पृ० ७७; नाज़िम, पृ० १११–१२ तथा टि० १।
५. इब्ने-उल-असीर, भाग ९, पृ० २१८।
६. गर्दीज़ी, पृ० ७७; हबीब, पृ० ४३; नाज़िम, पृ० ११२।
७. गर्दीज़ी, पृ० ७७।
८. इब्ने-उल-असीर, भाग ९, पृ० २१०; अलबेरूनी, भाग २, पृ० १३।
९. नाज़िम, पृ० ९५।
१०. अलबेरूनी, भाग २, पृ० १३; नाज़िम, पृ० ९६; (सर हेग ने के० हि० ऑफ इं० के पृष्ठ २२ पर लिखा है कि 'निडर भीम' ने अजमेर के राजा के यहां शरण ली थी। यह सही नहीं है। यही उल्लेख डा० हबीब ने भी किया है कि भीम ने अजमेर में शरण ली थी, पृ० ४४)।

State Museum Library Lucknow 6325

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अमर रहेंगे।[१] यह वही शाहीय वंश[२] था जिसकी चर्चा नागों और गुप्तों के राज्य से चली आ रही थी। काबुल तथा हिन्दूकुश की ऊंचाइयों पर देश के पाहरूबन उन्होंने उसके मुख्य द्वार की विदेशियों से सदियों रक्षा की। कम से कम ५०० ई० से १००० ई० तक तो निश्चय ही काबुल की राजनीति में उनका वर्चस्व फलता रहा, और जब जयपाल तथा उसके पुत्र आनन्दपाल ने समसामयिक क्षत्रिय राजाओं को समान शत्रु महमूद गजनवी का सामना करने के लिये दलबद्ध किया, तो अधिकतर उत्तर-भारतीय राजा जिनमें धारा का परमार राजा भोज भी शामिल था, उस संघ में आ मिले। तब की राष्ट्रीयता इन्हीं शाहियों के हाथ में थी। जब शाहीय वंशज राष्ट्र रक्षा के लिए विदेशियों से सीमा पर जूझ रहे थे, तथा उनके ही वंशज अन्हिलवाड़ के नृपति के 'यवन तुर्कों' से लड़ने जाने पर उसकी अनुपस्थिति में राजा भोज ने अपना सेनापति भेज अन्हिलवाड़ को लूट लिया। बाह्य संकट भी आन्तरिक द्वेश, पारस्परिक कलह, तथा संकीर्ण स्वार्थपरता का अन्त न कर सका। ऐसे देशवासियों को कैसे विजयश्री हाथ लगती ?

कश्मीर पर पुनः अभियान (१०२१ ई०) :

मथुरा और कन्नौज पर आक्रमण करने के बाद महमूद ग़ज़नवी को यह अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि यदि उसे भारत में बुन्देलखण्ड ऐसे दूरवर्ती प्रदेशों पर भविष्य में आक्रमण करने हों तो अपने पृष्ठ भाग को सुरक्षित रखने की दृष्टि से पंजाब पर उसका पूर्ण नियन्त्रण और प्रभुत्व होना चाहिए।[३] अतः अक्टूबर, १००१ ई०[४] में वह गजनी से अपने साथ न केवल बड़ी सेना, अपितु बढ़इयों, लोहारों, संगतराशों की भी एक बड़ी संख्या लेकर चला। उसका यह उद्देश्य था कि पंजाब में सुदृढ़ शासन की स्थापना करे और वहाँ एक राजधानी का निर्माण करे।[५] अपनी इस विजय-यात्रा में उसने पहले स्वात्त, बाजौर, काफिरिस्तान के उन सीमावर्ती कबीलों को जीतने का प्रयत्न किया, जो अब तक मुसलमान नहीं बने थे, और सिंह के रूप में शाक्यमुनि बुद्ध की पूजा करते थे।[६] इन जातियों को जीत कर तथा मुसलमान बनाकर उसने अपनी शक्ति सुदृढ़ करने के लिए इस प्रदेश में अपना एक दुर्ग स्थापित किया।[७] इसके बाद उसने पुनः कश्मीर दर्रे के अजेय दुर्ग लोहकोट को जीतने का निष्फल प्रयत्न किया।[८] इस बार भी अनेक कठिनाइयों के कारण उसका कश्मीर विजय का स्वप्न

---

१. अलबेरूनी, भाग २, पृ० १३; कल्हण, ७।६६–६९; हबीब, पृ० ४५।
२. भगवत शरण उपाध्याय, गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृ० २०२।
३. हबीब, पृ० ४३।
४. गर्दीज़ी, पृ० ७९; इलि० डाउ०, भाग २, पृ० ४६४; नाज़िम, पृ० १०५। (इलि० डाउ० में तिथि १०२२-२३ दी है, जो सही नहीं है।)
५. हबीब, पृ० ४४।
६. इलि० डाउ०, भाग २, पृ० ४४४; हबीब, पृ० ४४।
७. हबीब, पृ० ४४।
८. हबीब, पृ० ४४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सार्थक न हो सका। अन्ततः कश्मीर विजय की लालसा उसे छोड़नी पड़ी।[1] महमूद ने शरद ऋतु के कुछ महीने पंजाब[2] में बिताये, और बसन्त के आरम्भ में गज़नी लौट गया।[3] पंजाब पर प्रभुत्व स्थापित करने में उसे सफलता मिली तथा नियमित प्रशासन चलाने के लिए उसने एक विश्वस्त अमीर को लाहौर का शासक बनाया और समूचे प्रान्त में अपने विभिन्न अधिकारी नियुक्त किये। साथ ही महत्वपूर्ण स्थानों पर अपनी छावनियां बनाई।[4]

ग्वालियर एवं कालिंजर पर आक्रमण (१०२२ ई०) :

महमूद १०२२ ई०[5] में लाहौर के रास्ते से गंड पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा। पहले उसने ग्वालियर के दुर्ग पर आक्रमण किया, किन्तु असफल हुआ। चार दिन तक सफलतापूर्वक महमूद का सामना करने पर भी ग्वालियर का शासक अर्जुन सहसा भयभीत हो उठा तथा महमूद को ३५ हाथियों की भेंट देकर उसके साथ शान्ति सन्धि कर ली।[6] इसके पश्चात महमूद ने कालिंजर के दुर्ग पर घेरा डाला। यह दुर्गम दुर्ग अजेय माना जाता था तथा उसमें ५ लाख मनुष्यों, २० हजार पशुओं तथा ५ सौ हाथियों के खाने, पीने, रहने के लिए पर्याप्त प्रबन्ध था।[7] परन्तु फिर भी गंड ने महमूद के सम्मुख आत्मसमर्पण करके संधि कर ली, तथा वार्षिक कर देने के लिए सहमत हो गया। इसके अतिरिक्त उसने ३०० हाथियों की भेंट भी दी।[8] गंड ने महमूद की प्रशंसा में कुछ हिन्दी पद भी लिखे जो महमूद के शिविर में भारत, ईरान, और अरब के विद्वानों के सम्मुख पढ़े गए। इन पदों की बड़ी सराहना हुई,[9] और महमूद ने प्रसन्न होकर एक फ़रमान द्वारा गंड को १५ दुर्गों का स्वामित्व प्रदान किया।[10] गंड ने हाथियों के अतिरिक्त बहुमूल्य मणियों की प्रभूत राशि महमूद को उपहारस्वरूप दी। महमूद भारत में अधिकतम दूरी तक कालिंजर ही आया था। इस दृष्टि से यह आक्रमण बड़ा साहसपूर्ण एवं उल्लेखनीय है। इसके पश्चात वह गज़नी लौट गया,[11] जहाँ उसने अपनी सेनाओं का भव्य प्रदर्शन किया।[12] उसने अपनी विशाल सेना का मध्य एशिया में भी प्रदर्शन किया था।

---

१. गर्दीज़ी, पृ० ७९; नाज़िम, पृ० १०५।
२. गर्दीज़ी, पृ० ७९; नाज़िम, पृ० १०५।
३. गर्दीज़ी, पृ० ७९; इलि० डाउ०, भाग २, पृ० ४६६।
४. हबीब, पृ० ४४।
५. गर्दीज़ी, पृ० ७९; नाज़िम, पृ० ११३।
६. गर्दीज़ी, पृ० ७९; नाज़िम, पृ० ११३; हबीब, पृ० ४५।
७. इब्ने ज़ाफर, फो० १४९ बी०; नाज़िम, पृ० ११३-११४।
८. गर्दीज़ी, पृ० ८०; नाज़िम, पृ० ११४।
९. हबीब, पृ० ४५।
१०. गर्दीज़ी, पृ० ८०; हबीब; पृ० ४५।
११. नाज़िम, पृ० ११४।
१२. हबीब, पृ० ४५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोमनाथ पर आक्रमण (जनवरी, १०२६ ई०) :

उत्तरी भारत के मंदिरों में संरक्षित अपार संपदा को सफलता पूर्वक लूटने के बाद महमूद की दृष्टि गुजरात के उर्वर एवं समृद्ध प्रदेश की ओर गई। इसे जीतने के लिए उसने १८ अक्टूबर, १०२५ ई० को अपनी शाही सेना के साथ गजनी से प्रस्थान किया।[१] सोमनाथ उन दिनों पश्चिमी भारत में हिन्दुओं का सबसे बड़ा तीर्थ था। सूर्य एवं चन्द्रग्रहण के अवसरों पर इस मंदिर में लगभग एक लाख धर्मयात्री एकत्र हुआ करते थे।[२] इस मंदिर के व्यय को चलाने के लिए दस हजार गांव दान रूप में मंदिर को प्राप्त थे।[३] यहाँ प्रतिष्ठापित मूर्ति की पूजा के लिए एक हजार ब्राह्मण पुजारी थे। यद्यपि गंगा यहाँ से ६०० मील दूर थी, फिर भी इस मूर्ति का जलाभिषेक नित्य रात्रि में गंगा जल से ही होता था।[४] दो मन की एक सोने की जंजीर के साथ घंटियां लगी हुई थी, जो पूजा के समय बजाई जाती थी।[५] मंदिर में संगीत एवं नृत्यके लिए ५०० नर्तकियां और २०० संगीतज्ञ थे।[६] इनकी सब आवश्यकताओं की पूर्ति मंदिर के साथ लगी भूमि और मंदिर में चढ़ाये गये उपहारों से की जाती थी। तीर्थ यात्रियों की हजामत आदि के लिए ३ सौ नाई यहाँ रहते थे।[७] सोमनाथ मंदिर बहुत विशाल था। इसकी छत ५६ कारीगरी वाले अलंकृत खम्भों पर टिकी हुई थी। गर्भगृह में पत्थर का बना हुआ पांच गज लम्बा शिवलिंग था।[८] इसे भारतवर्ष के सबसे बड़े मंदिरों और तीर्थों में गिना जाता था।

सोमनाथ का आक्रमण महमूद की सैनिक प्रतिभा और कुशलता का सर्वोत्तम प्रमाण है। अबतक उसने भारत तथा गंगा-यमुना के दोआब के जिन प्रदेशों पर आक्रमण किये थे, वे अतीव उर्वर थे। यहाँ सेना के लिए कभी खाद्य सामग्री का अभाव नहीं पड़ा। यह सारा प्रदेश महमूद से सुपरिचित हो गया था। इसमें वह धीरे-धीरे आगे बढ़ा था। किन्तु गुजरात पर उसकी चढ़ाई एक सर्वथा अज्ञात और रेगिस्तानी प्रदेश से होकर थी। यहाँ की एक छोटी सी भूल उसकी विजयों पर पानी फेर सकती थी। अत: नवम्बर में मुल्तान पहुंचने पर महमूद ने राजपूताने के विशाल मरुस्थल को पार करने के लिए बड़ी सावधानी से अपनी तैयारियां की। प्रत्येक सैनिक को आदेश दिया गया कि वह अपने लिए कई दिनों की खाद्य सामग्री और

---

१. इब्ने-ज़ाफर, फो० १५० ए; नाज़िम, पृ० ११५।

२. हबीब, पृ० ४९।

३. वही।

४. वही।

५. वही।

६. वही।

७. वही।

८. वही, पृ० ५०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानी लेकर प्रस्थान करे।[१] इसके अतिरिक्त बीस हजार ऊँटों[२] पर खाद्य, जल एवं सैनिक सामग्री लादी गई।

महमूद के आक्रमण का समाचार सुनते ही अजमेर का राजा नगर से भाग गया। महमूद ने नगर को पूर्णरूपेण लूटा।[३] इस समय तक महमूद के शौर्य की इतनी धाक जम चुकी थी, कि रास्ते में किसी भी भारतीय राजा ने उसका प्रतिरोध नहीं किया। उन दिनों गुजरात की राजधानी अन्हिलवाड़ा थी। वहाँ का राजा भीमदेव राजधानी को अरक्षित छोड़ कर कंठकोट[४] के दुर्ग में जा छिपा। परिणामतः राजधानी महमूद के हाथों में अनायास ही आ गई।[५] महमूद यहाँ से आवश्यक खाद्य सामग्री लेने के बाद सरस्वती नदी के किनारे-किनारे जनवरी के दूसरे सप्ताह में सोमनाथ पहुँचा।[६] मुस्लिम इतिहासकारों के कथनानुसार ज्योंही पुजारियों ने मुस्लिम सेनाओं को आते देखा, तो वे चिल्लाये, "भगवान सोमनाथ तुम्हें इसलिये लाये हैं कि भारत में तुमने अब तक जितनी मूर्तियां तोड़ी हैं, उनके लिए तुम्हें दंड दिया जाय।"[७] महमूद ने नगरकोट पर घेरा डाल दिया, तथा शुक्रवार के दिन मंदिर पर आक्रमण आरम्भ किया।[८] मुस्लिम सैनिक मंदिर के दुर्ग की दीवार पर चढ़ने की कोशिश करने लगे और हिन्दुओं ने उन्हें रोकने का प्रयत्न किया। पहले दिन महमूद के सैनिकों को कठिन प्रयास के बाद भी सफलता नहीं मिली। किन्तु शनिवार को वह मंदिर के क्षेत्र में प्रविष्ट हो गया।[९] हिन्दू भी मंदिर की रक्षा के लिए एकत्र हो गये और विकट मोर्चा लिया, परन्तु महमूद के कुशल एवं सुरक्षित सैनिकों के घातक एवं विध्वंसकारी आक्रमण के सामने असफल रहे।[१०] रात्रि के आगमन ने महमूद को मंदिर में प्रविष्ट होने से रोक दिया, तथा एक नया संकट उसके सम्मुख आ खड़ा हुआ। महमूद इतनी तेजी से सोमनाथ आ गया था कि गुजरात के राजाओं को अपनी सेनाओं को एकत्र करने का पूरा अवसर ही नहीं मिला। अगले दिन सबेरे महमूद को यह सूचना मिली कि कुछ नई भारतीय सेना उससे लड़ने के लिए आ रही हैं।[११] वह अपनी सेना के कुछ भाग को सोमनाथ मंदिर का घेरा डाले रखने के लिए छोड़, स्वयमेव इन सेनाओं का मुकाबला करने के लिए आगे बढ़ा। दोनों पक्ष खूब जम कर लड़े। कुछ समय

---

१. हबीब, पृ० ५०।
२. इब्नै-उल-असीर, भाग ९, पृ० २४१; नाज़िम, पृ० ११५। हबीब, पृ० ५१, (डा० हबीब ने ऊँटों की संख्या तीस हजार दी है।)
३. हबीब, पृ० ५१; ओझा, भाग १, पृ० २९७।
४. सर हेग, पृ० २५; इलि० डाउ०, भाग १, पृ० ४४५; जे० बर्जेस, आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ वेस्टर्न इंडिया, भाग ९, पृ० १३; नाज़िम, पृ० ११६।
५. गर्दीज़ी, पृ० ८६; नाज़िम, पृ० ११६; हबीब, पृ० ५१।
६. हबीब, पृ० ५१; ओझा, भाग १, पृ० २९८।
७. हबीब, पृ० ५१।
८. हबीब, पृ० ५१; नाज़िम, पृ० ११७; ओझा, भाग १, पृ० २९८।
९. हबीब, पृ० ५१-५२; इब्ने-उल-असीर, भाग ९, पृ० २४२; ओझा, भाग १, पृ० २९८।
१०. गर्दीज़ी, पृ० ८६; इब्ने-उल-असीर, भाग ९, पृ० २४२; हबीब, पृ० ५२।
११. हबीब, पृ० ५२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक तो ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मुस्लिम सेना पराजित हो जायगी, किन्तु महमूद की वीरता एवं भाग्य ने उसका साथ दिया। उसने सोमनाथ की रक्षा के लिये आने वाली सेनाओं को बुरी तरह से परास्त किया।[१] महमूद की इस विजय से मंदिर के रक्षकों की हिम्मत टूट गई, और अब बिना विरोध वह मंदिर में प्रविष्ट हुआ, जहाँ उसे मनोवांछित अपार संपत्ति मिली। यह कहा जाता है कि सोमनाथ में उसे सोने और बहुमूल्य मणियों का जो भंडार मिला, उसका सौवां हिस्सा भी किसी भारतीय राजा के राजकोष में नहीं था।[२] तारीखे-अल्फी में यह बताया गया है कि मंदिर के पुजारियों ने महमूद से यह प्रार्थना की कि वह शिवलिंग को भंग न करे, और उसके बदले में मनोवांछित प्रचुर मात्रा में धनराशि ले ले।[३] किन्तु महमूद ने कहा कि "मैं मूर्ति विक्रेता (बुतफ़रोश) नहीं, अपितु मूर्ति भंजक (बुतशिकन) हूँ।"[४] यह कहते ही उसने अपनी गदा से शिवलिंग पर प्रहार किया। शिवलिंग के भंग होते ही उसके अन्दर से बहुमूल्य मणियां बाहर निकल पड़ीं। आधुनिक इतिहासकार तारीखे-अल्फी के इस वर्णन को कपोल-कल्पित और निराधार मानते हैं; क्योंकि वह महमूद के हमले के ६०० वर्ष बाद लिखा गया है।[५] साथ ही इस आक्रमण के सम्बन्ध में सबसे पुरानी और प्रामाणिक पुस्तक कामलुक तवारीख में इसका कोई उल्लेख नहीं है। सभी समकालीन वर्णनों में यह बतलाया गया है कि सोमनाथ मंदिर की मूर्ति एक ठोस पत्थर की थी न कि ऐसी प्रतिमा, जिसके पेट में बहुमूल्य मणियों की राशि भरी हुई थी।[६] इसे बचाने के लिए ब्राह्मणों की विनती, और महमूद द्वारा इसका प्रत्याख्यान तथा शिवलिंग के पेट से मणियां निकलने की बात कोरी कल्पना है।[७] वास्तव में जब सुल्तान ने सोमनाथ के मुख्य मंदिर में प्रवेश किया[८] तो उसने शिवलिंग (मूर्ति) को देखते ही आदेश दिया कि उसके ऊपरी भाग को कुल्हाड़ियों से तोड़ दिया जाय। इसके बाद मूर्ति के चारों ओर आग रख दी जाय, ताकि उसके छोटे-छोटे टुकड़े हो जावे।[९] सारा मंदिर और दुर्ग जला दिया गया।[१०] इस मंदिर में दो करोड़ दीनारों की सम्पत्ति सुल्तान के हाथ लगी।[११]

---

१. गर्दीज़ी, पृ० ८६; हबीब, पृ० ५२।
२. हबीब, पृ० ५३; ओझा, भाग १, पृ० २९९।
३. हबीब, पृ० ५३।
४. हबीब, पृ० ५३।
५. वही।
६. वही ; ओझा, राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृ० ३००, ३०१, ३०२ (ओझा जी ने एक विस्तृत विवेचन प्रस्तुत कर तथा विभिन्न लेखकों के वर्णनों की तुलनात्मक व्याख्या कर बतलाया है कि मूर्ति ठोस थी)।
७. हबीब, पृ० ५३।
८. नाज़िम, पृ० ११८।
९. गर्दीजी, पृ० ८६; अलबेरूनी, भाग २, पृ० १०३। (इस मूर्ति के कुछ टुकड़े मक्का और बगदाद भेजे गये और कुछ हिस्से गज़नी के जामा मस्जिद तथा सुल्तान के महल के सामने फेंक दिये गये, जिससे लोग इस पर पैर रगड़ें)।
१०. इब्ने-जावजी, फो० १७५ बी; फ़ारूकी, फो० २० ए; नाज़िम, पृ० ११८।
११. इब्ने उल-असीर, भाग ९, पृ० २४२; नाज़िम, पृ० ११८; हबीब पृ० ५४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोमनाथ की मूर्ति के विध्वंस ने हिन्दू जगत में क्षोभ एवं क्रोध की लहर दौड़ा दी और साभर के शासक परमदेव अथवा वीरमदेव के नेतृत्व में एक हिन्दू सेना अरावली पर्वत तथा कच्छ के रन के मध्यवर्ती सकरे मार्ग में महमूद का प्रतिरोध करने आगे बढ़ी। परन्तु सुल्तान ने इस विपत्ति से बचने के लिए कच्छ और सिन्ध से अधिक पश्चिमी मार्ग पकड़ा और उस स्थान पर पहुँचा जहाँ सकरा समुद्र काठियावाड़ को कच्छ से अलग करता है। भाटे के समय सुल्तान ने अपनी सेना सहित यह जलावरोध पार कर लिया।[1] सुल्तान के आने का समाचार पाकर अन्हिलवाड़ का शासक भीमदेव कंठकोट के दुर्ग से जहाँ वह जाकर पहले ही छिप गया था, भाग निकला।[2] इस दुर्ग में भी महमूद को प्रचुर धन-सम्पत्ति मिली। अन्हिलवाड़ आकर महमूद ने सम्भवतः पहली बार और अन्तिम बार यह इच्छा व्यक्त की कि वह भारत में बस जाय। कुछ समय के लिए उसने चाहा कि वह अन्हिलवाड़ को राजधानी बना ले और गज़नी का राज्य मसूद को सौंप दे। उसे गुजरातियों का सौंदर्य, यहाँ के हरे-भरे बगीचे, सरितायें और लहलहाती उर्वर भूमि बहुत पसन्द आई।[3] यहाँ रहने का उसको एक अन्य आकर्षण यह था कि वह यहाँ से दक्षिण भारत पर आक्रमण करके वहाँ के मंदिरों में सुरक्षित अपार धन प्राप्त कर सकता था।[4] किन्तु महमूद के साथी अपनी जन्मभूमि छोड़ने को तैयार नहीं थे। वे स्वदेश लौटने के लिए अधीर हो रहे थे। अतः सुल्तान को उनकी बात माननी पड़ी। गुजरात का शासन सोमनाथ के एक साधु देवशिलिम् (देव स्वामिन्) को सौंप कर वह गज़नी वापस लौट गया।[5] सोमनाथ मंदिर के एक साधु के गलत मार्ग दर्शन से मरुस्थल में भटकने और अनेक कठिनाइयां[6] उठाने के बाद महमूद २ अप्रैल, १०२६ ई० को गज़नी पहुंचने में सफल हुआ।[7] इस बार रास्ते में जाटों ने उसे बहुत त्रसित किया तथा उसकी सेना को क्षति पहुंचाई।[8]

---

१. फ़ारूक़ी, फो० २० बी०।

२. हबीब ने पृ० ५३ पर अन्हिलवाड़ा के राजा के रूप में परमदेव का नाम दिया है। साथ ही साथ उसका खंडा के किले में शरण लेने की बात कही है। परन्तु नाजिम ने पृ० ११६ पर अन्हिलवाड़ के राजा का नाम भीमदेव दिया है; जो सही प्रतीत होता है। परमदेव वास्तव में वीरमदेव अथवा वीर्यराम देव था जो सांभर के चौहान शासक विग्रहराज द्वितीय का वंशज था तथा जिसने महमूद के मार्ग को सोमनाथ विजय के बाद लौटते समय रोकने का प्रयास किया था। होडीवाला, पृ० २३७; गर्दिज़ी, पृ० ८७; बाम्बे० गज़े०, खंड १, भाग १, पृ० १६८; डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने भी उपर्युक्त राजा को भीमदेव ही माना है, भाग १, पृ० २९९।

३. हबीब, पृ० ५४।

४. हबीब, पृ० ५४।

५. वही, पृ० ५४।

६. फ़रिश्ता, पृ० ३३; नाज़िम, पृ० ११९।

७. इब्ने-उल-असीर, भाग ९, पृ० २४३; नाज़िम, पृ० १२०; हबीब, पृ० ५५।

८. गर्दीजी, पृ० ८७; नाज़िम, पृ० १२०; हबीब, पृ० ५५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाटों के विरुद्ध आक्रमण (मार्च, १०२७ ई०) :

भारत पर महमूद का अन्तिम आक्रमण १०२७ ई० में उन जाटों को दंड देने की दृष्टि से किया गया, जिन्होंने सोमनाथ से लौटते समय मार्ग में सेना को परेशान किया था।[१] मुल्तान पहुँच कर उसने १४०० नावों का एक बेड़ा बनाया। प्रत्येक नाव में धनुष-बाण आदि के साथ बीस-बीस सैनिकों को बैठाया।[२] जाटों ने इसका प्रतिरोध करने के लिए चार हजार नावें एकत्र कीं और महमूद की सेना का प्रबल विरोध किया।[३] किन्तु सुल्तान की नावें उत्कृष्ट कोटि की थीं और उनमें आगे और पीछे लोहे की कीलें गड़ी हुई थी, जिससे इनको क्षति नहीं पहुंची। साथ ही मुसलमानों के अग्नि-वर्षक बाणों ने जाटों का भीषण संहार किया, और इनकी नावों को सिन्धु नदी में डुबा दिया।[४] इस युद्ध में जाटों का दमन करने में महमूद को सफलता मिली। अनेक सैनिक (जाट सैनिक) अपने परिवार के साथ नदी में डूब कर मर गये।[५] इसके बाद महमूद (जून-जुलाई, १०२७ ई०) गज़नी लौट गया।[६] वहाँ उसने अपनी सारी शक्ति अपने साम्राज्य के पश्चिमी और उत्तरी भाग की व्यवस्था में लगाई। ३० अप्रैल, १०३० ई०[७] को गज़नी में ६३ वर्ष[८] की आयु में उसका स्वर्गवास हो गया।

महमूद गज़नवी के आक्रमणों का स्वरूप तथा उद्देश्य :

महमूद गज़नवी के आक्रमणों का प्रभाव एवं परिणाम समझने के पूर्व हमें उसके आक्रमणों के स्वरूप तथा उद्देश्य को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। प्रायः मुस्लिम इतिहास लेखकों द्वारा उसे इस्लाम का प्रचार और प्रसार करने वाला तथा भारत में उस समय प्रचलित मूर्तिपूजा का विध्वंस करने वाला बताया जाता है। उसने भारत के बड़े-बड़े प्रसिद्ध मंदिरों, नगरकोट, मथुरा, सोमनाथ आदि को बुरी तहर से लूटा एवं तहस-नहस किया। इससे यह धारणा बन गई कि भारत पर उसके सभी आक्रमणों का उद्देश्य इस्लाम का प्रसार करना था। मध्यकालीन इतिहास लेखकों ने महमूद की विजयों का चित्रण बुतशिकन एवं कुफ्र को नेस्तनाबूद करने वाले विजयी सेनानी के रूप में किया है। किन्तु इन विजयों के सम्बन्ध में आधुनिक

---

१. अलबेरूनी, भाग २, पृ० १०४; इलि० डाउ०, भाग २, पृ० ४७७; हबीब, पृ० ५५; नाज़िम, पृ० १२१।
२. गर्दीज़ी, पृ० ८८; हबीब, पृ० ५५; नाज़िम, पृ० १२१।
३. हबीब, पृ० ५५; नाज़िम, पृ० १२२।
४. गर्दीज़ी, पृ० ८९; नाज़िम, पृ० १२२; हबीब, पृ० ५५।
५. हबीब, पृ० ५५।
६. नाज़िम, पृ० १२२।
७. बैहाकी, पृ० १२; गर्दीज़ी, पृ० ९२; जे० ए० एस० बी०, भाग १२, पृ० ७६-७७।
८. हबीब, पृ० ५६; नाज़िम, पृ० १२४। (हबीब ने महमूद की आयु ६३ वर्ष लिखी है और नाज़िम ने ५९ वर्ष लिखी है। महमूद का जन्म १ या २ नवम्बर ९७१ ई० को हुआ था और मृत्यु ३० अप्रैल, १०३० ई० को हुई। इस प्रकार उसकी आयु ५८ वर्ष ६ माह लगभग ५९ वर्ष होती है। नाज़िम का कथन ठीक जान पड़ता है)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुस्लिम इतिहास लेखक सर्वथा भिन्न परिणामों पर पहुंचते हैं। डा० मुहम्मद हबीब [१] ने यह भली भांति सिद्ध किया है कि इन आक्रमणों में महमूद का प्रधान उद्देश्य इस्लाम का प्रसार करना नहीं था, अपितु अपने नवीन साम्राज्य के लिए लूट-मार द्वारा अधिक से अधिक धन एकत्र करना था। क्योंकि राज्य व्यवस्था तथा विशाल सैन्य संचालन के लिए ग़ज़नी राज्य के आय के स्रोत सीमित थे। भारतीय मंदिर उसके आक्रमण के लक्ष्य इसलिए बने कि इनमें पूरे भारत की सम्पत्ति कई शताब्दियों से एकत्र हो रही थी। भारत के अद्भुत सम्पत्तिशाली होने का यह कारण था कि कई शताब्दियों से भारत का व्यापारिक सन्तुलन अनुकूल था।

भारत से निर्यात किये जाने वाले माल का मूल्य आयात किये जाने वाले माल की तुलना में बहुत अधिक था, अतः दूसरे देश भारत को उसके माल का दाम सोने चाँदी के रूप में चुकाया करते थे। इस प्रकार सब देशों का सोना-चाँदी भारत की ओर बहा चला आ रहा था[२]। महमूद के समय तक भारत में अपार वैभव एकत्र होने की ख्याति दूर-दूर तक फैल चुकी थी। इसके साथ ही भारत में उन दिनों बड़े राजा और विदेशी व्यापार से समृद्ध होने वाले व्यापारी अपनी सम्पत्ति को सोमनाथ जैसे भव्य मंदिरों के निर्माण में लगाने एवं दान देने में बड़े गर्व और गौरव का अनुभव करते थे[३]। अतएव उन दिनों समूची भारतीय सम्पत्ति मंदिरों में संग्रहीत हो रही थी, जिस प्रकार मध्यकालीन यूरोप में वहां की सम्पत्ति कैथोलिक चर्च के गिरजाघरों में एकत्र हो गई थी[४]। भारत में जन-साधारण के अन्ध-विश्वासों और धार्मिक श्रद्धा का लाभ उठाते हुई कई बार राजा लोग धन प्राप्त करने के लिए नये मंदिरों का निर्माण करते थे। मंदिरों की मूर्तियों के विषय में अनेक प्रकार की किंवदंतियाँ प्रचलित करवा देते थे। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में राज्य की कर-वृद्धि के लिए ऐसे उपायों का विस्तार से उल्लेख किया है[५]।

दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व में सुप्रसिद्ध वैयाकरण पतंजलि ने यह लिखा था[६] कि सोना चाहने वाले मौर्य राजाओं ने धन प्राप्ति के उद्देश्य से मूर्तियों का निर्माण कराया था। भारतीयों में व्याप्त अगाध श्रद्धा के कारण कई शताब्दियों से संचित समूची भारतीय सम्पत्ति श्रद्धालु दाताओं के दान से मंदिरों में एकत्र हो गई थी। महमूद के अतिरिक्त भी वह सम्पत्ति किसी भी आक्रामक की लोलुप दृष्टि की शिकार हो सकती थी[७]। महमूद के आक्रमणों का प्रधान लक्ष्य इस अपार सम्पत्ति को प्राप्त करना था। सोमनाथ मंदिर का विध्वंस करते समय महमूद के बुतशिकन होने की जो उक्ति उसके मुँह से कहलवाई गई है, वह सर्वथा कपोल-कल्पित है। अतः यह स्पष्ट है कि महमूद के भारतीय आक्रमणों का उद्देश्य धार्मिक नहीं,

१. हबीब, पृ० ७६।
२. हबीब, पृ० ७७–७८।
३. वही, पृ० ७८।
४. वही।
५. अर्थशास्त्र, संपादक, देवदत्त शास्त्री, इलाहाबाद, १९५७, पृ० ४१६–२०।
६. पतंजलि महाभाष्य-मौर्येर्हिरण्यार्थिभिरर्चाः प्रकल्पिताः।
७. नाज़िम, पृ० १६३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आर्थिक था[१]। डा० हबीब ने लिखा है कि महमूद जैसे व्यक्ति को इस्लाम का धार्मिक सहिष्णुता का उपदेश अन्य जनों की सम्पत्ति लूटने से कदापि नहीं रोक सकता था। जिस प्रकार लोहा चुम्बक के प्रभाव में उस की ओर खिचता चला जाता है, उसी प्रकार महमूद का हृदय भी धन के लोभ में खिचा चला जाता था[२]। भारतीयों ने अपने देश की सम्पत्ति को कुछ चुने हुए स्थानों पर एकत्र करके उसके कार्य को सुगम कर दिया था[३]। साथ ही उन दिनों शत्रु के धार्मिक स्थानों को लूटना युद्ध का एक वैध कार्य समझा जाता था। यह पराजय का एक निश्चित परिणाम होता था। महमूद के हिन्दू विरोधी कार्यो और उसकी लूटपाट से हिन्दू-जन क्षुब्ध अवश्य थे, किन्तु उन्हें इस पर कभी आश्चर्य नहीं हुआ। वे यह बात अच्छी तरह से जानते थे कि उसका उद्देश्य धार्मिक नहीं अपितु आर्थिक था[४]। क्योंकि उसने कभी हिन्दुओं को इस्लाम धर्म को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं किया[५]। उसकी सेना में भारतीय सैनिकों को इस बात की स्वतंत्रता थी कि वे शंख बजायें और मूर्तियों की पूजा करते रहें[६]।

यह दुर्भाग्य की बात है कि विशुद्ध आर्थिक उद्देश्य से प्रेरित होकर किये जाने वाले महमूद के आक्रमणों पर समकालीन और मध्यकालीन इतिहास लेखकों ने धार्मिक मुलम्मा चढ़ाकर इसे इस्लाम की दृष्टि से बड़ा आकर्षक बनाने का प्रयत्न किया[७]। यह इस बात का सुन्दर उदाहरण है कि प्रायः सांसारिक एवं स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों से किये जाने वाले कार्यो को धार्मिक आवरण चढ़ाकर उदात्त बनाया जाता है[८]। इस विषय में भी डा० हबीब का यह कथन सर्वथा युक्तियुक्त प्रतीत होता है कि इस्लाम ने इस प्रकार के विध्वंस अथवा लूटपाट की कोई अनुमति नहीं दी है। शरियत के किसी भी सिद्धान्त के आधार पर उन हिन्दू राजाओं पर महमूद द्वारा किये गये अकारण आक्रमणों का समर्थन नहीं किया जा सकता, जिन्होंने महमूद और उसके प्रजा-जनों को कोई हानि नहीं पहुँचायी थी[९]। प्रत्येक धर्म के नियमों द्वारा धार्मिक स्थानों का इस प्रकार निर्लज्जतापूर्ण रीति से किया गया विध्वंस निन्दनीय ठहराया गया है[१०]। यद्यपि इस्लाम का प्रसार ऐसे विध्वंस का उद्देश्य नहीं था, फिर भी बाद में अपने लूटपाट के कार्यो को न्यायोचित सिद्ध करने के लिए इस्लाम की आड़ ली गयी[११]।

---

१. हबीब, पृ० ७८।
२. वही।
३. हबीब, पृ० ७८।
४. वही।
५. वही, पृ० ७८; नाज़िम, पृ० १६१–६२।
६. इब्ने-उल-असीर, खं० ९, पृ० १३५; अरब-भारत के सम्बन्ध, पृ० १५४; हबीब पृ० ७८; नाज़िम, पृ० १६३।
७. हबीब, पृ० ७९।
८. वही, पृ० ७९।
९. हबीब, पृ० ७९।
१०. वही।
११. वही।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार कुरान के उपदेशों की ग़लत व्याख्या की गई, और दूसरे ख़लीफा की सहिष्णुता-पूर्ण नीति की इसलिये उपेक्षा की गई ताकि महमूद और उसके सैनिक हिन्दू मंदिरों को निर्द्वन्द भाव से लूट सकें[1]। इस प्रसंग में यह भी याद रखना चाहिये कि महमूद की इस प्रकार की लूटपाट से शान्तिप्रिय भारत में इस्लाम कलंकित हुआ, और हिन्दुओं पर इसका प्रभाव विपरीत पड़ा। क्षत-विक्षत, ध्वस्त एवं पददलित हिन्दू समाज पराजय की पीड़ा में इस्लाम के प्रति उदासीन ही नहीं, अपितु इस्लाम से भयभीत भी हो गया। जो धर्म अकारण नरसंहार, रक्तपात तथा लूटमार की अनुमति दे, वह कैसे भारतीय जनता को आकृष्ट करता? अतः महमूद ने इस्लाम का यह मिथ्या रूप भारत के सम्मुख प्रस्तुत कर यहाँ अपने धर्म प्रचार की सम्भावना को अपार क्षति पहुँचाई। भारत में तो महमूद इस्लाम का शत्रु ही सिद्ध हुआ।

महमूद के आक्रमणों का परिणाम :

महमूद गज़नवी के दरबारी विद्वान एवं भारत में रह कर भारतीयों की प्रतिक्रिया को भलीभाँति अपनी आँखों से देखने वाले, समकालीन इतिहासकार अलबेरूनी ने महमूद के आक्रमणों का बड़ा ही मार्मिक चित्रण करते हुए लिखा है, "महमूद ने इस देश की समृद्धि का पूर्ण रूप से विध्वंस किया। ऐसे आश्चर्यजनक शोषण कार्य किये जिनसे हिन्दू धूल-कणों की भाँति सब दिशाओं में बिखर गये, और जनश्रुति में केवल कथा मात्र रह गई। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हिन्दुओं के इस बिखरे हुए अवशेषों में सब मुसलमानों के प्रति अधिकतम घोर घृणा है। यही कारण है कि हमारे द्वारा जीते गये भारतीय प्रदेशों से हिन्दुओं के विभिन्न विज्ञानों का लोप हो गया है और हिन्दू कश्मीर, बनारस ऐसे स्थानों में भागकर चले गये हैं, जहाँ हम नहीं पहुँच सकते हैं। यहाँ भारतीयों और विदेशियों का वैमनस्य राजनीतिक, धार्मिक तथा अन्य कारणों से सुदृढ़ एवं पुष्ट हो रहा है[2]।"

महमूद के आक्रमणों ने इस्लाम के प्रति घृणा का संचार किया, देश की संचित धन-राशि का अपहरण किया तथा राजपूतों की राजनीतिक शक्ति का पराभव एवं विघटन किया। महमूद ने विभिन्न हिन्दू राज्यों को अपने लगातार आक्रमणों से ऐसी गहरी हानि पहुँचाई कि राजपूत राजाओं में प्रतिरोध करने की अब शक्ति ही शेष न रह गई। मंदिरों के विध्वंस तथा मूर्तियों के विनाश ने भारतीय कला कौशल को अपार क्षति पहुँचाई। इस विध्वंसक नीति का अनुसरण करने वाले आगामी मुस्लिम आक्रामकों ने भी न जाने कितने भारतीय कला के अद्वितीय स्मारक धूलि-धूसरित कर दिये। महमूद ने कश्मीर जीतने के कई प्रयास किये, जो निष्फल रहे। बनारस उसके मार्ग से दूर था। अतः महमूद का प्रतिरोध करने में असमर्थ हिन्दुओं ने इन प्रदेशों में जाना पसन्द किया, ताकि वे उसके आक्रमणों से सुरक्षित रह सकें। महमूद ने पंजाब में तुर्की राज्य स्थापित करके भारत का द्वार तुर्की आक्रमण-कारियों के लिए सदैव के लिए खोल दिया।

---

१. वही।

२. सचाऊ, अलबेरूनीज इंडिया, भाग १, पृ० २२, लन्दन, १९२१; हबीब, पृ० ८०–८१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महमूद की जीत के कारण :

इस प्रसंग में यह भी विचारणीय है कि इस समय हिन्दू राजा महमूद का प्रतिरोध करने में क्यों नहीं समर्थ हुए और महमूद को अपने आक्रमणों में इतनी विलक्षण सफलता क्यों प्राप्त हुई। सुल्तान की सफलता और भारतीयों की पराजय के कई बड़े कारण थे।

पहला कारण महमूद की सैनिक प्रतिभा और सैन्य संचालन था। महमूद एक सर्वथा अज्ञात प्रदेश पर आक्रमण कर रहा था। इस प्रदेश में विशाल सरितायें, गहन वन, दुर्गम पर्वत, विरोधी जनता आदि विद्यमान थे। वह यहाँ की भाषा, रीति-रिवाजों से सर्वथा अपरिचित था। उसके लिये वस्तुतः यहाँ अन्धेरे में छलांग लगाना था। अतः वह बड़ी सावधानी से आगे बढ़ा। पहले उसने सिन्धु नदी तक के, तत्पश्चात् पंजाब और मुल्तान के प्रदेश जीते। इस प्रकार भारतीय सीमावर्ती प्रदेशों में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के उपरांत उसने गंगा-यमुना के दोआब पर, और सोमनाथ ऐसे दूरवर्ती प्रदेशों पर आक्रमण किये। आरम्भ में वह कभी भी अपने अधिकृत एवं वशवर्ती राज्य से दस बारह मंजिल से आगे नहीं बढ़ा। किंतु भटिंडा जीत लेने के बाद जब नमक की पहाड़ियों तक का भाग उसके हाथ में आ गया, तभी उसने भारत के भीतरी भागों पर आक्रमण आरम्भ किया। आरम्भ में यदि वह एक भी भूल करता, या एक भी युद्ध में पराजित हो जाता तो उसकी सारी विजय योजनायें धूल में मिल जातीं, और उसकी सेना शत्रु देश में विनष्ट हो जाती। अतः अत्यन्त सावधानी से अग्रसरित होने के कारण उसे सफलता मिली। इस अप्रत्याशित सफलता से चारों ओर उसके अजेय होने की धाक जम गई। उसका नाम सुनते ही शत्रुओं के दिल कांपने लगे। जब महमूद को यह विश्वास हो गया कि उसके शत्रुओं पर उसका आतंक अच्छी तरह जम गया है, तभी उसने तीन बार गंगा के मैदान पर आक्रमण किये और चौथी बार गुजरात पर चढ़ाई का भी साहस किया। हमें उसके आक्रमण विजय यात्राओं की भाँति प्रतीत होते हैं। वे वस्तुतः बड़े संकटों से परिपूर्ण थे। क्योंकि किसी एक युद्ध में उसकी छोटी सी विफलता उसके सैनिक जीवन को समाप्त कर सकती थी। १०१९-२० ई० में जब अपनी राजधानी से तीन महीने की यात्रा के बाद वह कालिंजर के राजा से लड़ने पहुंचा, तो उस समय महमूद बहुत घबड़ाया हुआ था। यदि कालिंजर का राजा गंड थोड़ा सा साहस कर उसका डटकर सामना करता, तो महमूद की सेना बड़े ही संकट में पड़ जाती।[1] किन्तु उसके सौभाग्य से राजा महमूद का नाम सुनते ही भाग खड़ा हुआ जिसका उल्लेख पीछे हो चुका है। न जाने कितने संकट उसने अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा, साहस एवं सफल नेतृत्व से जीते।

सुल्तान महमूद की सेना में सुदृढ़ अनुशासन और संगठन था।[2] यद्यपि उसकी सेना में लड़ने वाले सैनिकों में ईरानी, अफगान, तुर्क, हिन्दू आदि विभिन्न जातियों के व्यक्ति थे, किंतु सारी सेना महमूद के प्रति गहरी निष्ठा रखती थी और वह इन सब को एकता एवं अनुशासन के दृढ़ सूत्र में पिरोये हुए था। इसके विपरीत उसका प्रतिरोध करने वाली भारतीय शक्ति सर्वथा विघटित और विशृंखलित थी। उस समय भारत के अनेक छोटे-बड़े राजा एवं स्थानीय सामन्त प्रायः एक दूसरे से ही लड़ते रहते थे। इनमें किसी प्रकार का सहयोग एवं संगठन

---

१. नाजिम, पृ० ११२।

२. हबीब, पृ० ७४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं था। ये किसी की सर्वोच्च सत्ता मानने को या किसी के अनुशासन में रहने को तैयार नहीं थे।[1] इनमें स्थानीय एवं जातीय भावनाएँ बड़ी उग्र मात्रा में थीं। मुस्लिम सेना अपने स्वामी के आदेशों का पूरा पालन करती थी, किन्तु राजपूतों में ऐसा कोई सर्वोच्च अधीश्वर या स्वामी नहीं था जिसकी सब सैनिक आँख मूँद कर आज्ञा पालन करते रहें। तत्कालीन भारतीय सामन्त पद्धति के कारण लाहौर जैसे बड़े स्थानों के राजाओं के विरुद्ध उनके स्थानीय सामन्त विद्रोह करते रहते थे। भारतीय राजाओं ने एक दो बार संयुक्त रूप से विदेशी आक्रामकों का प्रतिरोध करने का प्रयत्न किया भी, किन्तु आन्तरिक वैमनस्य, द्वेष, पारस्परिक अविश्वास, संगठन अथवा अनुशासनहीनता तथा योग्य नेतृत्व के अभाव के कारण वे असफल रहे। उस समय के राजपूतों में वीरता की कोई कमी नहीं थी। सोमनाथ के मन्दिर की रक्षा के समय जो शौर्य प्रदर्शित किया गया वह अतीव उच्चकोटि का था। किंतु जिस प्रकार का संगठन, कौशल एवं सैन्य संचालन मुसलमानों के पास था, वैसा राजपूतों के पास नहीं था। परिणामतः मुसलमान विजय प्राप्त करते रहे।

एच० सी० रे[2] ने राष्ट्रकूटों के द्वारा उत्तरी भारत पर हुए निरन्तर आक्रमणों को ही महमूद की विजयों के लिए परोक्ष रूप से उत्तरदायी कहा है युद्धों के कारण प्रतिहार अशक्त हो गये और इसलिये पहले की भाँति मुस्लिम आक्रमण को रोक नहीं सके; राष्ट्रकूट आक्रमणों ने प्रतिहारों का ध्यान पश्चिमोत्तर सीमा से होने वाले आक्रमणों से हटा कर दक्षिण की ओर केन्द्रित कर दिया था। किंतु इस कारण को मौलिक महत्व का नहीं माना जा सकता।

एक अन्य कारण जिससे भारतीय राजाओं की पराजय हुई, दूरदर्शितापूर्ण सीमांत नीति का अभाव था। उत्तर-पश्चिमी सीमांत से बराबर आक्रमण हो रहे थे, किंतु उस समय किसी भी भारतीय राजा को यह बात नहीं सूझी कि बार-बार होने वाले इन आक्रमणों के निराकरण के लिए कुछ प्रभावशाली उपाय सोचे जाते। ऐसी छावनियाँ तथा दुर्ग-पंक्तियों का निर्माण किया जाता, कि महमूद देश में अधिक दूर तक प्रवेश ही न कर पाता। उसकी सेना को महत्वपूर्ण नदियों को पार करने से रोका जाता। महमूद को ग़ज़नी से गंगा-यमुना के दोआब तक कई सौ मील आगे बढ़ कर आना पड़ता था। यदि भारतीयों में सैनिक प्रतिभा होती तो वे महमूद का ग़ज़नी से सम्बन्ध विच्छेद करके उसको लौटने के लिए विवश कर सकते थे। किंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया। महमूद बिजली की भांति आक्रमण करता था और उसके शत्रुओं में उसका संगठित प्रतिरोध करने की न योग्यता थी न सामर्थ्य। महमूद भारत आया, उसने इसे देखा, और जीत लिया।[3]

तत्कालीन भारतीय समाज :

तत्कालीन समाज पर दृष्टिपात करने से एक अद्भुत चित्र उपस्थित होता है। इसमें संशय नहीं कि जनता में देशप्रेम था। स्त्रियों ने मुस्लिम आक्रामकों को रोकने के लिए अपने आभूषण तक बेच डाले तथा निर्धन नारियों ने चर्खा कातकर तथा मजदूरी करके सैनिकों की

---

१. वही।
२. देखिये; डाइनेस्टिक हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया।
३. देखिये, हबीब, पृ० ७६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यथाशक्ति सहायता की।[1] साथ ही शौर्य की भी कमी न थी। हिन्दू कन्यायें गर्व सहित युद्ध में हत अपने प्रियतमों के मृत शरीरों का दर्शन करती थीं, तथा विदेशी आक्रमणकारियों को परास्त करने में अपनी सन्तान की असफलता पर मातायें लज्जा से नतमस्तक हो जाती थीं।[2] किन्तु राष्ट्रीय एकता का अभाव भारतीय दौर्बल्य का सबसे बड़ा कारण था। एक ओर तो प्रतिहार मुसलमानों के घोर शत्रु थे; दूसरी ओर राष्ट्रकूट मुसलमानों के मित्र थे। पारस्परिक द्वेष सम्भवतः इस प्रकार की विरोधी नीतियों के लिए उत्तरदायी था।[3] जयपाल देशभक्त तथा दूरदर्शी था, परन्तु आनन्दपाल स्वार्थी एवं देशद्रोही था। थानेश्वर के शासक ने महमूद का प्रतिरोध करने के लिए अन्य भारतीय शासकों का आवाहन किया, किंतु उसका यह प्रयास निष्परिणाम रहा।

समाज के यही विरोधाभास भारतीय पराभव के कारण बने। अलबेरूनी ने जो तत्कालीन सामाजिक चित्र प्रस्तुत किया है, वह ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। चार वर्णों का उल्लेख उसने भी किया है।[4] शूद्रों के अतिरिक्त उसने अन्य निम्न श्रेणी के लोगों का भी उल्लेख किया है, जिन्हें अन्त्यज कहा है, जैसे बनिया, मोची, जुलाहे, धुनिया, मदारी, टोकरी और ढाल बनाने वाले, मांझी, मछली पकड़ने वाले, वन पशुओं और पक्षियों का आखेट करने वाले, आदि। वे लोग चार वर्णों के गावों और नगरों के पास, परन्तु उनके बाहर रहते थे।[5] इसके अतिरिक्त हाड़ी, चाण्डाल तथा वधिक आदि वर्ग के लोग भी थे, जिनका काम गांवों की सफाई तथा अन्य गन्दे कार्य करना था। लोकमत के अनुसार उनका जन्म शूद्रपिता और ब्राह्मणी माता के व्यभिचार से हुआ था।[6]

ब्राह्मणों को अनेक विशेषाधिकार प्राप्त थे, जिनसे अन्य वर्ण वंचित थे। अलबेरूनी लिखता है कि यदि ब्राह्मण किसी अन्य वर्ण के मनुष्य की हत्या कर दे, तो उसे केवल उपवास, प्रार्थना तथा दान ही प्रायश्चित्त के हेतु करना पड़ता है। यदि ब्राह्मण ही ब्राह्मण का वध कर दे तो हत्यारे को प्रायश्चित्त का अधिकार नहीं क्योंकि प्रायश्चित्त से पाप मुक्ति हो जाती है।[7] इस प्रकार ब्राह्मण मृत्यु दण्ड से मुक्त थे, जब कि अन्य वर्णों एवं जातियों के सदस्य बहुत से अपराधों के लिए मृत्यु के भागी होते थे। राजतरंगिणी में भी ब्राह्मण को मृत्यु दण्ड से मुक्त करने का अनुरोध है।[8]

ईश्वर प्रार्थना, वेदपाठ और होम ब्राह्मण के विशेषाधिकार थे। यदि यह सिद्ध हो

---

१. हबीब, सुल्तान महमूद, पृ० २७।

२. हेमचन्द्र, प्राकृत व्याकरण, नियम ४, ३९१ तथा ४, ३९५। देखिये, पी० एल० वैद्य, कुमारपाल चरित, बम्बई, संस्कृत एण्ड प्राकृत सीरीज़, पृ० ६०० तथा ६१२।

३. आर० सी० मजुमदार, हिन्दू रिऐक्शन टु मुस्लिम इन्वेजन्स, डी० वी० पोद्दार, कमेमोरेशन वौल्यूम, पृ० ३४५।

४. अलबेरूनी का भारत, पृ० ८६।

५. अलबेरूनी का भारत पृ० ८७।

६. वही।

७. सचाउ, अलबेरूनीज़ इंडिया, भाग २, पृ० १६२।

८. देखिये, राजतंरगिणी ४, ६९–१०६; ७, १२२९; ८, १०१३, २०६०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाय कि शूद्र अथवा वैश्य ने वेद का उच्चारण किया है, तो ब्राह्मण लोग राजा के सम्मुख उस पर दोष लगाते थे, तथा शासक उसकी जिह्वा काट लेने की आज्ञा देता था।[1] इस प्रकार का अक्षम्य सामाजिक अन्याय ही भारतीय अधःपतन एवं अन्तर्जातीय कलह का कारण बना। अलबेरूनी राजाराम, एक चाण्डाल तथा एक ब्राह्मण की कथा उद्धृत करता है, जिससे उपर्युक्त वैषम्य पर और अधिक प्रकाश पड़ता है। इस कथा के अनुसार राजा रामचन्द्र जी के समय में मनुष्य की आयु बहुत लम्बी होती थी, तथा कोई बच्चा अपने पिता के सामने नहीं मरता था। किन्तु एक बार एक ब्राह्मण का पुत्र पिता के जीवन काल में ही मर गया। ब्राह्मण बच्चे को राजा के द्वार पर ले जाकर बोला—"यह नई बात तेरे समय में केवल इसी कारण हुई है कि देश की व्यवस्था में कोई वस्तु विगलित है, तथा एक वज़ीर तेरे राज्य में कोई उपद्रव की बात करता है।" तब राम ने इसका कारण पता लगाया तथा अन्त में लोगों ने एक चाण्डाल दिखाया जो भगवत पूजा और आत्मपीड़ा में घोर परिश्रम कर रहा था। राजा घोड़े पर सवार हो कर उस स्थान पर गया तो उसने देखा कि वह चाण्डाल गंगा के किनारे नीचे को सिर किये किसी चीज पर लटक रहा था। राजा ने अपना धनुष उठाया और बाण मार कर उसकी अंतड़ियां चीर डालीं। इसके पश्चात् वह बोला—"यह ले। मैं तुझे एक ऐसे कर्म के लिए मार रहा हूँ, जिसे करने का तुझे कोई अधिकार नहीं।" जब राजा वापस गया तो उसने ब्राह्मण के पुत्र को जीता पाया।[2] इसमें ब्राह्मणों के अत्याचार की तथा समाज के निम्न एवं बहुसंख्यक वर्गों के साथ उनके दुर्व्यवहार की मनोवृत्ति सन्निहित है।

अलबेरूनी भोजन सम्बन्धी प्रतिबन्धों का भी उल्लेख करता है, जो वर्ण तथा जाति भेद पर आधारित थे। प्रत्येक वर्ण के लोगों के लिए आवश्यक था कि वे सहभोज के समय अपनी-अपनी मंडली बनाकर अलग बैठें, तथा एक मंडली में दो भिन्न-भिन्न वर्णों के मनुष्य न हों। इसके अतिरिक्त यदि ब्राह्मण मंडली में दो ऐसे मनुष्य हों जिनका आपस में बैर हो, और उन दोनों के मंडली में बैठने के स्थान एक दूसरे के पास हों, तो वे उन दोनों स्थानों के बीच एक तख्ता रख कर या कपड़ा बिछा कर या किसी अन्य प्रकार से आड़ बना लेते थे। यदि उनके बीच में एक लकीर भी खींच दी जाती थी, तब भी वे अपने आप को एक दूसरे से अलग समझते थे।[3] छुआछूत के ये भाव तथा पारस्परिक कलह की ये दीवारें भारत को दिन प्रति दिन भिन्न-भिन्न वर्गों में विभक्त कर क्षीण बना रही थीं।

अलबेरूनी के अनुसार धार्मिक यज्ञ कराने का अधिकार, दान देने का अधिकार तथा वेद पढ़ाने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही था।[4] ब्राह्मण पुरोहितों का उल्लेख अलबेरूनी ही करता है, मध्यकालीन अभिलेखों में भी उनकी चर्चा है।[5] देव मन्दिरों में ब्राह्मण ही मुख्य कर्ता-धर्ता होते थे। मन्दिरों को दिया गया दान भी उन्हीं के हाथ लगता था। सोमनाथ

१. अलबेरूनी का भारत, (रजनीकान्त शर्मा) पृ० ३८४।
२. अलबेरूनी का भारत, पृ० ३८४-८५।
३. अलबेरूनी का भारत, पृ० ८७।
४. अलबेरूनीज़ इंडिया, भाग १, पृ० १००; भाग २, पृ० १३३।
५. वही, भाग २, पृ० १३२; देखिये, कृत्य कल्पतरु, राजधर्म काण्ड, पृ० १७६; डी० एच० एन० आई०, भाग १, पृ० ५१६-१८, ५२१, ५२४, ५२५, ५३६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैसे भव्य मन्दिरों में सहस्रों की संख्या में ब्राह्मणों की नियुक्ति होती थी। यह परजीवी पुरोहित समुदाय, सामाजिक विभाजन, अन्याय एवं शोषण का स्रोत था।

दान लेने का अधिकार तो केवल ब्राह्मणों को था ही, इसके अतिरिक्त उन्हें राज कर में भी छूट मिलती थी। अलबेरूनी के अनुसार कर देना ब्राह्मणों के लिए अपेक्षित नहीं है। सभी प्रकार के करों से केवल ब्राह्मण ही मुक्त थे।[1] मध्यकालीन ग्रन्थों में भी ब्राह्मणों को करों से मुक्त करने का निर्देश किया गया है।[2] यद्यपि ब्राह्मणों ने करों से मुक्ति पाने का प्रयास किया तथापि उनके सभी वर्ग कभी करों से मुक्त न हो सके।[3] ब्राह्मणों को भूमि भी दान में दी जाती थी। इस प्रकार की दी गई कुछ भूमि ब्रह्मदेय कहलाती थी, जो करों से मुक्त होती थी।[4]

प्राचीन काल से ही ब्राह्मणों को प्रत्येक वर्ग से एक-एक पत्नी प्राप्त करने का विशेषाधिकार था।[5] अलबेरूनी भी ब्राह्मणों के इस सामाजिक अधिकार का उल्लेख करता है।[6] देवल ने भी ब्राह्मणों के इस विवाह सम्बन्धी विशेषाधिकार की चर्चा की है।[7]

क्षत्रिय समाज के रक्षण एवं पोषण के लिए उत्तरदायी थे। इब्ने-खुर्दादब ने लिखा है कि क्षत्रियों के सम्मुख सभी लोग सिर झुकाते हैं, किन्तु वे किसी को सिर नहीं झुकाते।[8] अलबेरूनी के अनुसार उनका पद भी ब्राह्मणों से किसी प्रकार कम नहीं था[9]। क्षत्रियों के कर्म और लक्षणों का स्पष्टीकरण करते हुए राजा भोज कहता है—"जो वीर, उत्साही, शरण देने तथा रक्षा करने में समर्थ, दृढ़ एवं लम्बे शरीर वाले थे, वे इस संसार में क्षत्रिय हुए। उनका काम ब्राह्मणों के लिए निर्दिष्ट कार्यों के अतिरिक्त विक्रम, प्रजा की रक्षा, उनके नियमों (हिस्सों) आदि का प्रबन्ध और व्यवसाय करना था[10]।" देवल के अनुसार क्षत्रिय को ईश्वर पूजा के साथ-साथ ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिये[11]। इस प्रकार ब्राह्मण सर्वदा समाज पर अपना बौद्धिक आधिपत्य जमाने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। अलबेरूनी के अनुसार

---

१. अलबेरूनीज़ इंडिया, भाग २, पृ० १४९।
२. कृत्यकल्पतरु, राजधर्म काण्ड, पृ० ९१–९२; मानसोल्लास, भाग १, पृ० ४४ श्लोक १६६।
३. देखिये, अल्तेकर, स्टेट ऐण्ड गवर्नमेंट इन ऐन्शेन्ट इंडिया, पृ० १९५; घोषाल, हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम, पृ० १३८।
४. उदाहरणार्थ देखिये, इन्सक्रिप्शन्स ऑफ धारावर्ष, वि० सं० १२२०। ११६३ ई०, इंडि० एण्टि०, ५६, १९२७, पृ० ५१।
५. अथर्ववेद, ५।१७।८, ९।
६. ए० आर०, भाग २, पृ० ११५।
७. देवल, गृहरत्नाकर, पृ० ८५ पर उद्धृत।
८. किताबुल मसालिकवल मुमालिक, लीडेन, १८८९, पृ० ७१; देखिये, नदवी, अरब और भारत के सम्बन्ध, इलाहाबाद १९३०, पृ० २२; इलि० डाउ०, भाग १, पृ० १६-१७।
९. अलबेरूनीज इंडिया, भाग १, पृ० १०।
१०. समरांगण सूत्रधार, अध्याय ७, ११, १२।
११. कृत्यकल्पतरु गृहस्थ०, पृ० २५३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षत्रिय वेद को पढ़ता है, पढ़ाता नहीं। वह यज्ञ करता है, पुराणों के नियमानुसार आचरण करता है, प्रजा पर शासन करता है तथा उनकी रक्षा करता है, क्योंकि वह इस कार्य के लिए उत्पन्न किया गया है[१]। आपत्तिकाल में क्षत्रिय कृषि तथा व्यापार आदि भी कर सकते थे।

क्षत्रिय यद्यपि किसी से कुछ मांगते नहीं थे, फिर भी वे उपहार ग्रहण करते थे। प्राचीन सम्राट भी तो अपने आधीन शासकों से उपहार ग्रहण करते थे। लक्ष्मीधर ने देवल को उद्धृत करते हुए, क्षत्रियों को उपहार लेने की छूट दी है।[२] क्षत्रियों के स्वभाव और चरित्र के विषय में अलबेरूनी गीता का यह उद्धरण देता है, "क्षत्रिय ऐसा हो जिससे लोगों के हृदय भयभीत हों, महान शूर-वीर हो, उदार चरित्र हो, प्रत्युत्त वक्ता हो, दानी हो तथा निर्भय होकर सदैव अपना कर्तव्य निभाता हो[३]।" किन्तु यह तो केवल आदर्श मात्र है। महमूद के विजयाभियान क्षत्रियों के दौर्बल्य तथा नाना स्थानों पर उनकी कायरता के साक्षी हैं।

वैश्यों के विषय में अलबेरूनी लिखता है कि उनका कर्तव्य खेती करना, भूमि जोतना, पशु पालना और ब्राह्मणों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना है[४]। अल इदरीसी ग्यारहवीं सदी के अन्त में वैश्यों को कला-कौशल में निपुण कारीगर तथा मिस्त्री बतलाता है[५]। इस प्रकार वैश्यों के कर्म व्यावसायिक रूप से काफी बदल गये थे। जैन तथा बौद्धधर्म ने उन्हें अहिंसा की ओर आकृष्ट किया, तथा धीरे-धीरे उनसे कृषि भी छूट गई और केवल व्यवसाय ही उनका जीविकोपार्जन का साधन रह गया। सामाजिक कुरीतियों तथा मुस्लिम आक्रमणों के फलस्वरूप विषमता बढ़ी, और वैश्य शनैः-शनैःशूद्रों के निकट पहुँच गये। स्वयं अलबेरूनी वैश्य एवं शूद्र में कोई अन्तर नहीं पाता।[६] जैसा ऊपर कहा जा चुका है, ब्राह्मण के अनुरोध पर राजा वैश्य अथवा शूद्र की जिह्वा काट डालने का आदेश देता था, यदि उसने वेद उच्चरित किया हो।[७]

पूर्व मध्ययुग में शूद्रों का प्रधान कर्म अपने से उच्च वर्णों की सेवा करना ही था। अलबेरूनी के अनुसार 'शूद्र' ब्राह्मणों के सेवक की तरह है, जो उनके कार्य व्यापार की देखभाल और उनकी सेवा करता है। प्रत्येक ऐसा कार्य जो ब्राह्मण का विशेषाधिकार समझा जाता है, ईश्वर की प्रार्थना करना, वेद पढ़ना और होम करना उसके लिए वर्जित है। अगर वह ऐसा करता है तो ब्राह्मण राजा के समक्ष उस पर आरोप लगाता है और राजा उसकी जिह्वा काट डालने का आदेश देता है।[८]

अलबेरूनी के अनुसार शूद्रों के लिए खेती करना भी मना है, क्योंकि उनके लिए यह

---

१. अलबेरूनीज़ इंडिया, भाग २, पृ० १३६।
२. कृत्यकल्पतरु, दानकाण्ड, पृ० ३७।
३. अलबेरूनीज़ इंडिया, भाग १, पृ० १०३।
४. वही, भाग, २, पृ० १३६।
५. इलि० डाउ०, भाग २, पृ० ७६।
६. अलबेरूनीज़ इण्डिया, भाग १, पृ० १०१।
७. वही, भाग २, पृ० १३६।
८. वही, भाग २, पृ० १३६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कार्य पाप है, जो चोरी के अपराध से कम नहीं है[१]। किन्तु अलबेरूनी के पूर्ववर्ती अरबी लेखक इब्ने-खुर्दाद्ब के अनुसार शूद्र खेती करते थे[२]। अलबेरूनी के परवर्ती लेखक अल-इदरीसी का भी यही कथन है[३]। अतः हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यद्यपि शूद्र खेती भी करते होंगे, अलबेरूनी कालीन सामाजिक स्थिति में यह अच्छा नहीं समझा जाता था। शूद्रों की दशा सन्तोष-जनक नहीं थी। अलबेरूनी द्वारा वर्णित अन्त्यजों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है[४]।

अलबेरूनी आश्रम व्यवस्था का भी उल्लेख करता है[५]। सन्यासियों की संख्या कम न रही होगी। उनके विषय में अलबेरूनी के पूर्ववर्ती अरब यात्री सुलेमान ने लिखा है, "भारत में ऐसे लोग भी हैं जो सदा पहाड़ों और जंगलों में घूमा करते हैं, और लोगों से बहुत कम मिलते-जुलते हैं। जब भूख लगती है, तब वे लोग जंगल के फल या घास-पात खा लेते हैं। उन में से कुछ लोग बिल्कुल नंगे रहते हैं.....मैंने इसी प्रकार के एक आदमी को धूप में बैठे हुए देखा था। सोलह वर्ष बाद जब मैं फिर उस ओर से गया, तब भी मैंने उसको उसी प्रकार और उसी दशा में देखा। मुझे आश्चर्य है कि धूप की गर्मी से उसकी आँखें क्यों न बह गईं[६]।"

समाज को इस प्रकार के निष्क्रिय एवं परजीवी समुदाय का पोषण करना पड़ता था। न जाने कितने लोग जीवन के दायित्वों से मुक्ति पाने के लिए सन्यास का सहारा लेते थे, जिससे विभिन्न दृष्टिकोणों से सामाजिक क्षति होती थी।

अलबेरूनी लिखता है कि हिन्दू लोग बहुत छोटी अवस्था में विवाह कर लेते थे[७]। बारह वर्ष से अधिक आयु की स्त्री से विवाह करने का विधान नहीं था[८]। बाल-विवाह के ऐतिहासिक उदाहरण भी मिलते हैं। यह पद्धति किसी प्रकार भी देश व समाज के लिए शक्तिदायिनी सिद्ध न हुई। चिन्तामणि विनायक वैद्य के अनुसार अल्पवय विवाह का कारण स्त्रियों का बौद्ध भिक्षुणी हो जाना था। इसका प्रतिरोध करने के लिए ही बाल-विवाह का प्रचलन हुआ[९]। राजबली पाण्डेय के कथनानुसार बाल-विवाह का कारण बौद्ध-धर्म न होकर विदेशियों के आक्रमण थे। विदेशी आक्रामकों द्वारा किये गये नारी अपहरण से त्रस्त होकर बाल-विवाह की व्यवस्था की गई[१०]। किन्तु प्राचीन स्मृतियों में भी अल्पायु कन्याओं के साथ विवाह का समर्थन किया गया है। मनु के अनुसार ३० वर्ष की अवस्था वाले पुरुष को बारह

१. अलबेरूनीज़ इण्डिया, भाग २, पृ० १३७।
२. इलि० डाउ०, भाग १, पृ० १६।
३. वही, पृ० ७६।
४. देखिये, पीछे, पृ० ११३।
५. अलबेरूनीज़ इंडिया, भाग २, पृ० १३०।
६. सफरनामा, पृ० ५०-५१; देखिये, नदवी, अरब और भारत के सम्बन्ध, पृ० १८६।
७. अलबेरूनीज़ इंडिया, भाग २, पृ० १५५।
८. वही, पृ० १३१।
९. सी० वी० वैद्य, हिन्दू मैडीवल इंडिया, खं० ३, बुक ८, सेक्शन २।
१०. राजबली पाण्डेय, हिन्दी साहित्य की पीठिका, भाग १, पृ० १९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्ष की अवस्था वाली सुन्दरी कन्या के साथ विवाह करना चाहिए, अथवा चौबीस वर्ष की अवस्था में आठ वर्ष की कन्या के साथ वि ाह करना चाहिये[१]। पराशर-स्मृति में भी बारह वर्ष की अवस्था में रजोदर्शन होते ही तुरन्त कन्यादान का प्रतिपादन किया गया है। ऐसा न करने वाला नरकगामी कहा गया है[२]। इन प्रमाणों से यह सिद्ध हो गया कि केवल राजनीतिक कारण ही बाल-विवाह के लिए उत्तरदायी नहीं थे। आक्रामक जातियाँ विवाहित स्त्रियों का अपहरण करने अथवा उनके साथ बलात्कार करने से कब चूकती थीं। इस कुप्रथा के लिए तो हमें अपने समाज, धर्म एवं चिन्तकों को ही दोषी ठहराना होगा। इसमें सन्देह नहीं कि इसके परिणाम देश के लिए अहितकर हुए। भोग-विलास बढ़ा, व्यभिचार बढ़ा, स्वास्थ्य की क्षति हुई, अनावश्यक जन-संख्या में अभिवृद्धि हुई, जिसके परिणाम-स्वरूप निर्धनता एवं नैराश्य का प्रसार हुआ। भोगरत प्रमादी भारतवासी स्वयंसेवी न होकर उत्तरोत्तर भाग्यवादी हो गये।

अलबेरूनी लिखता है पुरुष अपने से निम्न वर्ण की स्त्री से विवाह कर सकता है।[३] किन्तु वह यह भी लिखता है कि ब्राह्मण प्रायः अपने से निम्न वर्ण की स्त्री से विवाह नहीं करते।[४] अलबेरूनी के अनुसार मनुष्य को अपने से ऊँचे वर्ग की स्त्री के साथ विवाह करने की आज्ञा नहीं थी।[५] इसके विपरीत अल-इदरीसी लिखता है कि क्षत्रिय ब्राह्मणों की कन्या से विवाह कर सकते हैं, किन्तु ब्राह्मण क्षत्रियों की कन्याओं को पत्नी बनाना नहीं चाहते थे।[६]

बहुपत्नीवाद का प्रचलन था। अलबेरूनी के अनुसार पुरुष एक से चार स्त्रियाँ तक व्याह सकता है। वह यह भी कहता है कि कुछ हिन्दुओं के अनुसार ब्राह्मण चार, क्षत्रिय तीन, वैश्य दो तथा शूद्र एक पत्नी के अधिकारी हैं।[७] किन्तु सुलेमान स्त्रियों की संख्या की अनिश्चितता पर बल देता है। उसके अनुसार जो जितनी चाहे स्त्रियां रख सकता है।[८] प्रायः शासक तथा समृद्ध परिवारों के स्वामी बहुत सी स्त्रियां रखते थे। यह भी सामाजिक दौर्बल्य का एक कारण था। ब्राह्मणों को यहां भी सबसे अधिक स्त्रियां रखने की शास्त्रीय अनुमति थी। राजकुलों में बहुपत्नीवाद के प्रचुर प्रमाण नवसाहसांक चरित, विक्रमांकदेव चरित, बृहत-कथा-मंजरी, कथा-सरित्-सागर आदि में मिलते हैं। काम लिप्सा, सन्तति-लिप्सा एवं शौर्य-लिप्सा बहुपत्नीवाद तथा कन्याओं के अपहरण के लिए उत्तरदायी

---

१. मनु, ९।९४।
२. पराशर, ७।७–८। देखिये, काणे, दि मैरिजेबिल एज ऑफ गर्ल्स इन एन्शेन्ट इंडिया, जे० सी० बी०, पृ० १९१–९७।
३. अलबेरूनीज़ इंडिया, भाग २, पृ० १५६।
४. वही।
५. वही।
६. इलि० डाउ०, भाग २, पृ० ७६।
७. अलबेरूनीज़ इंडिया, भाग २, पृ० १५५।
८. सिलसिलातुत् तवारीख़, पृ० ५४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे। उदाहरणार्थ यशःकर्णदेव के लेख से विदित होता है कि चेदिवंशीय गांगेयदेव ने अपनी सौ पत्नियों के साथ प्रयाग में मुक्ति पाई थी।[1] पूर्व मध्यकालीन राजवंशीय विलासिता का यह संदर्भ प्रतीक मात्र है। अलबेरूनी बहुपतित्व का भी उल्लेख करता है।[2] यह प्रथा भारतीय समाज में इतस्ततः आज भी विद्यमान है।

अलबेरूनी के अनुसार कन्या की अपेक्षा पुत्र का जन्म अधिक सुखदायक होता था।[3] इससे स्पष्ट है कि स्त्रियों की स्थिति पुरुषों से हीन थी। देव दासियां, वेश्यायें, स्त्रियों का सबल सती किया जाना, स्त्रियों की ह्रासोन्मुखी अवस्था की परिचायक है। नर्तकी गणिका, सामान्या, रूपजीवा, वेश्या, देवदासी आदि पूर्व मध्ययुगीन समाज की अभिन्न अंग थीं। कुटुनीमतम्, समयमातृका, प्रबन्ध चिन्तामणि, मानसोल्लास, राजतरंगिणी आदि ग्रन्थों में वेश्याओं के विभिन्न स्वरूपों का दिग्दर्शन होता है।

अरब लेखक अबूज़ैद-अलहसन (८६७ ई०) के अनुसार देवदासियों अथवा मूर्ति की स्त्रियों का आविर्भाव जब हुआ, जब एक स्त्री ने मंदिर में बच्चों के लिए प्रार्थना की तथा संकल्प किया कि यदि उसके कन्या हो तो वह उसे मूर्ति के निकट लाकर पूजा करके देव प्रतिमा की सेवा के लिए वहीं छोड़ देगी। इस प्रकार यह प्रथा प्रारम्भ हुई। जब लड़की यथोचित अवस्था प्राप्त कर लेती, तब वह इस सामाजिक स्थान में निवास करती है। अपने द्वार के सामने एक पर्दा डाल कर वह भारतीयों के अतिरिक्त अन्य जातियों के नवागन्तुकों की भी प्रतीक्षा करती है। उसके लिए यह आचरण निषिद्ध नहीं है। वह अपने को निश्चित दर पर वेश्यित करती है, और मंदिर के खर्च के लिये वह मूर्ति-पुजारी को धन देती है।[4] मुकद्दसी नामक यात्री ने भी ९८५ ई० के लगभग सिन्ध के मंदिरों में देव-दासियों का उल्लेख किया है।[5] धर्म के नाम पर जिस समाज में इस प्रकार का भ्रष्टाचार व्याप्त हो, वह स्वयं ही अपने अधः पतन के लिए उत्तरदायी होगा। देवदासियों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी। हुद्-उल-आलम (९२८–९८३ ई०) के लेखक के अनुसार रामियान के मंदिरों में तीस नर्तकियां थीं।[6] चो–जु–कुअ के अनुसार केवल गुजरात के चार हजार मंदिरों में बीस हजार से अधिक नर्तकियां थीं।[7] कल्हण[8] कश्मीर के मंदिरों में, और

---

१. प्राप्तेप्रयागवटमूलनिवेशबन्धोऽ
सार्धैशतेन गृहिणीभिरपुत्र मुक्तिम्।
जबलपुर अभिलेख।

२. अलबेरूनीज़ इंडिया, भाग १, पृ० १०८।

३. वही, पृ० १८१।

४. ऐन्शेन्ट ऐकाउण्ट्स ऑफ इंडिया एण्ड चाइना (बाई टू मुहम्मडन ट्रेवलर्स) ट्रान्सलेटेड बाई (इन टु इंगलिश) ई० रैनडाट, पृ० ८८।

५. अहसुनत तक़सीम, पृ० ४८३।

६. दि स्ट्रगिल फॉर एम्पायर, पृ० ४९५–९६।

७. एपि० इंडि०, भाग १, पृ० ३१०, श्लोक ३०।

८. राजतरंगिणी, ७।८५८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मेरुतुंग[१] सोमनाथपट्टन के कुमार विहार में देवदासियों का उल्लेख करते हैं। अत: यह निर्विवाद है कि देव-दासियों की बढ़ती हुई संख्या में राजाओं ने तथा उच्च वर्गीय अधिकारियों ने और भी अधिक वृद्धि की। इस प्रथा से मंदिरों एवं राजाओं को अर्थ एवं विलासिता का लाभ हुआ, किन्तु देश और समाज को विशेष क्षति पहुंची। देवदासियों के रग में रंगे भारतवासी पश्चिमी आक्रामकों से सतर्क न रह कर उदासीन हो गये। राजाओं और धनवान श्रेष्ठियों के कामुक आयासों से देव मंदिर काम मंदिरों में परिणत हो गये। संगीत, नृत्य, वाद्यवादनों तथा पायलों की झनकार ने, देवदासियों के मोहक लावण्य ने, ईश्वरोपासना की अपेक्षा कामोद्दीपन के सुलभ साधन प्रस्तुत किये, जिसके परिणाम स्वरूप शक्ति, आत्मा एवं राष्ट्रीय-चेतना क्षीण हो गई, और पश्चिमी आक्रमणों की झंझा से भारत धराशायी हो गया।

अलबेरूनी के कथन से ऐसा लगता है कि राजाओं की पत्नियों को न चाहते हुए भी सती होने के लिए बाध्य किया जाता था। किन्तु उससे डेढ़ सौ वर्ष पहले आनेवाले लेखक सुलेमान के अनुसार सती होना या न होना स्त्री की इच्छा पर निर्भर था।[२] इससे यही अनुमान लगाया जा सकता है कि इन डेढ़ सौ वर्षों में स्त्रियों की दशा में और अधोगति हुई, जिससे सामाजिक दुर्बलता भी बढ़ी। अलबेरूनी के अनुसार राज परिवारों में सती प्रथा का प्रचलन अधिक था। राजतरंगिणी में सती होने के कई उल्लेख मिलते हैं।[३] राजा शंकर वर्मन की मृत्यु होने पर उसकी प्रधान रानी, अन्य विधवायें, तथा चार विश्वासी सेवक अग्निरोहण में सम्मिलित हुए।[४]

शिक्षा के सम्बन्ध में अलबेरूनी लिखता है कि केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय वेद का अध्ययन कर सकते थे। अन्य वर्ण तथा वर्ग इस अधिकार से वंचित थे।[५] अलबेरूनी के अनुसार वेदों की शिक्षा मौखिक थी, तथा उन्हें लिखने की स्वीकृति नहीं दी जाती थी, ताकि कोई त्रुटि न हो जाय। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग अनेकों बार वेदों को भूल गये।[६] लोगों के चरित्र गिर रहे थे और सत्धर्म तथा कर्म के प्रति वे उदासीन हो रहे थे।[७] अलबेरूनी के अनुसार वेदों के ऐसे अंश हैं, जिनका वर्णन बस्तियों में नहीं होना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से स्त्री तथा भैंस का गर्भपात हो सकता है। केवल खुले मैदानों में ही उनका वर्णन किया जा सकता है।[८] इस प्रकार अन्ध-विश्वास के आवरण ने ज्ञान स्रोत का प्रवाह अवरुद्ध कर दिया, तथा मानसिक दौर्बल्य बढ़ा। ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम थी, जो वेदों की

---

१. प्रबन्ध चिन्तामणि, पृ० १०८।
२. सिलसिलातुल तवारीख, पृ० ५०।
३. राजतरंगिणी, ७।४७८ आदि।
४. वही, ५।२२५।
५. अलबेरूनीज़ इंडिया, भाग २, पृ० १३६।
६. वही, भाग १, पृ० १२५-२६।
७. वही, पृ० १२६-१२७।
८. वही, पृ० १२७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्याख्या अथवा उन पर वाद-विवाद कर पाते।[1] अतः वेद को पढ़ने वाले बिना समझे ही पढ़ते थे। अलबेरूनी स्वीकार करता है कि भारतीयों के विज्ञान सम्बन्धी तथा साहित्यिक ग्रन्थ असीम थे तथा उन सब का अध्ययन करना उसकी सामर्थ्य से परे था।[2]

देश में हिन्दू, जैन तथा बौद्ध धर्म का प्रचार था। राजपूताना और गुजरात में जैन धर्मावलम्बियों का आधिक्य था। बंगाल, बिहार और नैपाल में बौद्धधर्म का प्रभाव था। अलबेरूनी लिखता है कि भारतीय लोग, मतभेद होते हुए भी धार्मिक विषयों पर आपस में बहुत कम झगड़ते थे। उनकी लड़ाई केवल शब्दों से होती थी। धार्मिक शास्त्रार्थों में वे कभी अपने प्राण, शरीर या सम्पत्ति को संकट में नहीं डालते थे।[3]

हिन्दू लोग विभिन्न देव एवं देवियों की उपासना करते थे। कोई राजा शिव मंदिर का निर्माण कराता था, तो कोई विष्णु मंदिर का। अरब लेखक मुतह्हिर (९८५-८६ ई०) ने किताबुल-विदअवत्-तारीख नामक पुस्तक में भारत के ९०० सम्प्रदायों का उल्लेख किया है जो ४५ धर्मों के अन्तर्गत थे।[4] इससे समाज के धार्मिक विभाजन का ज्ञान होता है। मूर्ति पूजा बलवती थी।[5] अलबेरूनी लिखता है कि मूर्ति पूजा तथा मूर्ति निर्माण हिन्दुओं के अशिक्षित वर्गों में ही दृष्टिगोचर थे, शिक्षितों में नहीं।[6] किन्तु समाज में अशिक्षितों की ही संख्या अधिक थी।

शैवों का जोर था। बहुत से शासक शिव-लिंग के उपासक थे, जैसे चालुक्य भीम प्रथम, परमार सम्राट भोज तथा चन्देल शासक धंग। बहुत से शासक वैष्णव भी थे। सूर्य के उपासकों की भी कमी न थी। तीर्थ स्थानों का महत्व अत्यधिक था। तीर्थ-यात्राओं का अत्यन्त प्रचलन था। उदाहरणार्थ जब कोई हत्यारा वाराणसी चला जाता था, तो उसे क्षमा मिल जाती थी।[7] अलबेरूनी हिन्दू धार्मिक त्यौहारों की भी चर्चा करता है।[8] दुर्गा पूजा में बलि की प्रथा थी। असंख्य पशुओं की बलि दी जाती थी। साधारणतः ब्राह्मणों के लिए मांस भक्षण का निषेध था, किन्तु उन्हें भी गैंड़े का मांस खाने का विशेष अधिकार था।[9] वैसे लक्ष्मीधर[10] तथा चंडेश्वर[11] ने भी ब्राह्मणों के मांस खाने का निर्देश किया है। बौद्ध तथा जैन धर्म के अहिंसा प्रचार के परिणाम स्वरूप शाकाहारी वृत्ति ने बल पाया, और बहुत से लोगों ने मांस भक्षण त्याग दिया।

---

१. वही, पृ० १३३।
२. अलबेरूनीज़ इंडिया, भाग १, पृ० १५९।
३. वही, पृ० १९।
४. भाग ४, पृ० ९-१० (पेरिस)।
५. अलबेरूनीज इंडिया, भाग १, पृ० १२१।
६. वही, पृ० १२२।
७. अलबेरूनीज इंडिया, भाग २, पृ० १४६-४७।
८. वही, पृ० १७८।
९. अलबेरूनीज इंडिया, भाग १, पृ० २०४; सुलेमान सौदागर, पृ० ५४-५५।
१०. कृत्यकल्पतरु, नियतकाल काण्ड, पृ० ३११-१७।
११. गृहस्थ रत्नाकर, पृ० ३८०-८४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यद्यपि स्मृतिकारों ने उच्च तीन वर्णों को सुरापान से वंचित रखा, तथापि सुरा प्रयोग का इतिहास अति प्राचीन है। अलबेरूनी लिखता है कि भारतीय खाली पेट मदिरा पीने के पश्चात भोजन करते थे।[१] लक्ष्मीधर राजा और वैश्य को मदिरापान करने की अनुमति देता है।[२] चंडेश्वर का भी यही कथन है।[३] विवाह के अवसर पर मदिरा का सेवन खुल कर होता था। दसवीं सदी में खम्भात की यात्रा करने वाले मुस्लिम यात्री मसूदी के अनुसार अपने आनन्द को पूर्णतः प्रकाशित करने के लिए भारत के लोग लड़कियों को मदिरा पान कराते थे, जिससे उनके मद को देख कर व्यक्ति उत्तेजित हो जाय।[४] महिलाओं द्वारा मदिरापान का उल्लेख अनेक साहित्यिक कृतियों में मिलता है।[५]

अलबेरूनी लिखता है कि हिन्दुओं के समस्त आचार-विचार तथा रीति-रिवाज इतने भिन्न हैं कि वे अपने बच्चों को मुसलमानों के नाम से, तथा उनकी वेशभूषा और चाल-ढाल से डराते हैं। और मुसलमानों को राक्षसों की सन्तान, तथा उनके कर्मों को अपवित्र तथा नीच कहते हैं।[६] विदेशियों के प्रति ऐसी भावना होना, अपने को सर्वश्रेष्ठ समझना तथा बच्चों को विदेशियों के नाम से डराना, उस कूप-मंडूक वृत्ति के परिचायक हैं, जिससे नैराश्य एवं कायरता का संचार होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत मुसलमानों से भयभीत था, तथा उनका सामना करने के लिए न उसमें ऐक्य था, न उत्साह, न सामर्थ्य, न शौर्य।

अलबेरूनी लिखता है, "मुझे बार-बार यह सूचना दी गई है कि जब हिन्दू दास भाग कर अपने देश और धर्म में लौटते हैं, तो लोग प्रायश्चित के रूप में उनके उपवास का विधान करते हैं। वे धरती के नीचे गोबर, गो-दुग्ध आदि तबतक दबाते हैं, जबतक वह सड़ न जाय। उसके बाद वे उन्हें खाने के लिए वही गन्दगी देते हैं। मैंने ब्राह्मणों से पूछा कि क्या यह सूचना ठीक है, किन्तु उन्होंने इसका निषेध किया, और कहा कि ऐसे व्यक्ति के लिए कोई प्रायश्चित सम्भव नहीं, और उसे कभी जीवन में वह स्थान नहीं मिल सकता जो उसे बन्दी होने के पूर्व प्राप्त था।"[७] हिन्दू समाज की यह कठोरता उसके पतन का कारण बनी। किन्तु ऐसे भी विधान प्रतिपादित किये गये जिनसे लौट कर आये हिन्दू दासों को शुद्ध कर सके। देवल ऋषि ने उन हिन्दुओं की शुद्धि का आदेश किया जिन्हें म्लेच्छ बलपूर्वक पकड़ ले गये हों तथा गो वध करने और मांस खाने के लिए बाध्य किया हो, अथवा जिन्हें उनकी स्त्रियों के

---

१. अलबेरूनीज़ इंडिया, भाग १, पृ० १८०।
२. कृत्यकल्पतरु, नियतकाल काण्ड, पृ० ३३१।
३. गृहस्थ रत्नाकर, पृ० ३९४।
४. नैनार, अरब ज्योग्रफर्स नॉलेज ऑफ सदर्न इंडिया, पृ० १०२।
५. सदुक्तिकर्णामृत, पृ० ११८; सूक्तिमुक्तावली, पृ० २६६-६७; शारंगधर पद्धति, पृ० ३६, ५३।
६. अलबेरूनीज इंडिया, भाग १, पृ० २०।
७. वही, भाग २, पृ० १६२-६३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साथ रहने तथा भोजन करने के लिए बाध्य किया गया हो। इसके अतिरिक्त उन स्त्रियों को भी शुद्ध किया जा सकता था, जिन्हें म्लेच्छ उठा ले गये हों।[१]

मंत्र-यंत्र और जादू टोने में हिन्दुओं का अडिग विश्वास था और उनके प्रति उनका बहुत झुकाव था।[२] यह अन्ध-विश्वास भी मानसिक दौर्बल्य का परिचायक है।

कुछ लोग आत्महत्या द्वारा प्राणत्याग करते थे, तथा उन्हें यह विश्वास था कि ऐसा करने से उन्हें मोक्ष प्राप्त होता है। इसलिए लोग तीर्थस्थलों में जाकर प्राण त्यागते थे। चीनी यात्री ह्वेनसांग भी लिखता है कि वृद्ध पुरुषों को एक नाव में बैठा कर गंगा के बीच पहुँचाया जाता था, जहाँ उन्हें डुबो दिया जाता था। यह धर्म का बहुत बड़ा कार्य समझा जाता था।[३] मत्स्य और कूर्म पुराणों ने तीर्थ स्थानों पर जीवन त्याग करने का निर्देश किया है। लक्ष्मीधर मत्स्य पुराण उद्धृत करते हुए कहता है कि वे लोग प्रशंसनीय हैं, जो अपने को वाराणसी में जलाकर या प्रयाग के संगम में डुबों कर या अमर कंटक की पहाड़ियों से नर्मदा में कूद कर प्राण त्याग देते हैं।[४] अलबेरूनी ने भी इस कुप्रथा का उल्लेख किया है। उसके अनुसार यदि हिन्दू लोग अपने को मार डालना चाहते हैं, तो वे किसी व्यक्ति को किराये पर ले जाते हैं, ताकि वह उन्हें गंगा में डुबो दे और पानी के नीचे इतनी देर तक रखे कि वे मर जायें।[५]

प्राण त्याग के लिए अलबेरूनी प्रयाग को बड़ा उपयुक्त स्थान बतलाता है। वहाँ संगम के किनारे खड़े वृक्ष की डालों से ब्राह्मण और क्षत्रिय गंगा में कूद कर प्राण-त्याग किया करते थे।[६] अलबेरूनी के बाद के लेखक गर्दीज़ी ने भी हिन्दुओं की प्राणत्याग प्रथा पर विस्तार पूर्वक लिखा है।[७] कुछ लोग आग तथा पानी से प्राणान्त करते थे, कुछ लोग पत्थर से अपने पेट को फाड़कर, तथा कुछ लोग अस्त्रों की सहायता से मृत्यु का वरण करते थे।

अबूज़ैद सराफ़ी ने भी इस प्रकार की आत्म-हत्या का उल्लेख किया है। जो लोग अपने आप को जलाना चाहते हैं, राजा से आज्ञा लेते हैं और फिर बाजारों में घूमते हैं। दूसरी ओर अग्नि प्रज्वलित की जाती है, तथा झांझ आदि बजाये जाते हैं। उनके सम्बन्धी चारों ओर एकत्रित होते हैं। फिर फूलों का एक मुकुट बनाकर, जिसमें जलती हुई अग्नि रखी रहती है, उनके सिर पर रख देते हैं। सिर की खाल जलने लगती है, पर मनुष्य उसी प्रकार

---

१. देवलस्मृति, संपादक पं० छुट्टनलाल स्वामी, मेरठ, वि० सं० १९८४, पृ० १६, श्लोक ७, ८ तथा आगे। देवल स्मृति में श्लोक ५ से ९० तक सभी श्लोकों में अनेक प्रकार से च्युत एवं भ्रष्ट लोगों के शुद्धिकरण के सम्बन्ध में विविध प्रकार के धार्मिक विधान बतलाये गये हैं। देवलस्मृति का रचनाकाल विद्वानों ने ६००-९०० ई० माना है जब कि भारत पर मुस्लिम दबाव बढ़ रहा था और उस समय सबसे बड़ा प्रश्न म्लेच्छों (मुसलमानों) द्वारा अशुद्ध कर दिये व्यक्ति का पुनः शुद्धिकरण था।

२. अलबेरूनीज इंडिया, भाग २, पृ० १९३।

३. वैटर्स, १, पृ० १७५।

४. कृत्यकल्पतरु, तीर्थ विवेचन काण्ड, पृ० २१, १३८-३९, १४१-४६, २००।

५. अलबेरूनीज इंडिया, भाग २, पृ० १७०।

६. वही, पृ० १७०-७१।

७. (गर्दीज़ी) मैनुस्क्रिप्ट, ओसले, पृ० २४०, पृ० २६० बी–२६२ बी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खड़ा रहता है, और धीरे-धीरे चल कर चिता में कूद पड़ता है।[1] आत्महत्या का एक और ढंग यह था कि मनुष्य एक विशाल छुरी से अपना कलेजा फाड़ कर तथा हाथ डालकर अन्दर से अपना हृदय बाहर निकाल लेता था। यह सब कार्य वह बड़े धैर्य तथा शांति से करता था।[2]

इब्ने-उल-फ़क़ीह ने भी प्राणत्याग का एक रोमांचकारी वृत्तान्त प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार मुल्तान के एक मंदिर में एक आदमी आया। उसने अपने सिर और उंगलियों में तेल से भीगी हुई रुई लपेट रखी थी, मंदिर में पहुँच कर उसने उस रुई में अग्नि लगा दी और जलती हुई बत्तियां उसके शरीर तक पहुंच गई। वह उसी प्रकार धैर्य एवं शान्ति के साथ जल कर राख हो गया।[3]

ऐतिहासिक प्रमाण भी अरब लेखकों द्वारा दिये गये विवरणों की पुष्टि करते हैं। चालुक्य भीमराज प्रथम ने ९९६ ई० में सरस्वती नदी के किनारे अपनी चिता जलाई।[4] चन्देल नरेश धंग ने १००२ ई० के कुछ दिन बाद प्रयाग में मृत्यु का वरण किया।[5] शाहीय नृप जयपाल ने महमूद गज़नवी द्वारा पराजित होने पर अपने को चिता में जला डाला।[6] १०३४ ई० और १०४८ई० के बीच कलचुरी शासक गांगेय देव ने अपनी सौ रानियों के साथ प्राणत्याग किया।[7]

इस प्रकार के उदाहरण तथा आत्म-हत्या की श्रेष्ठता में अन्ध विश्वास, समाज, देश, तथा जीवन के प्रति नैराश्य के परिचायक हैं। जीवन के दायित्व गहन थे, कठिनाइयां प्रबल थी; संकट महान थे; आत्मरक्षा का प्रश्न जटिल था, आक्रामकों का भय सर्वदा विद्यमान था। ऐसी स्थिति में आत्म-हत्या ही मोक्ष का साधन बन सकती थी। जिस देश में जीवन के प्रति इतनी उदासीनता एवं नैराश्य हो, जीवनोपभोग एवं आत्मरक्षा की भावना इतनी दुर्बल हो, वह साहसी आक्रामकों के आघात झेलने में कैसे समर्थ होगा? असहायता की दयनीय स्थिति में अन्ध-विश्वास रत, अन्तर्विभाजित भारत ने सुरक्षा के जो असम्बद्ध प्रयास किये, वे संकट का सफलतापूर्वक सामना करने के लिए पर्याप्त नहीं थे। देवी-देवताओं की निष्क्रियता ने भाग्यवादी हिन्दुओं को किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना दिया, तथा नवोत्साह एवं साहस से प्रेरित मुस्लिम सेनानियों के समक्ष उन्होंने बार-बार मुँह की खाई।

●

---

१. अबूज़ैद, पृ० ११५-१८; नदवी, पृ० १७५-७६।
२. अबूज़ैद, पृ० ११५-१८; नदवी, पृ० १७५, १७६।
३. आसार-उल-विलाद (कज़ावीनी), पृ० ८१; नदवी, पृ० १७६।
४. द्वयाश्रय काव्य, ६।१००-७।
५. ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० १४।
६. डी० एच० एन० आई, भाग १, पृ० ८७।
७. ऐपि० इंडि०, भाग २, पृ० ४; १२, २११, २१, ९४; जे० ए० एस० बी०, २१, पृ० ११६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

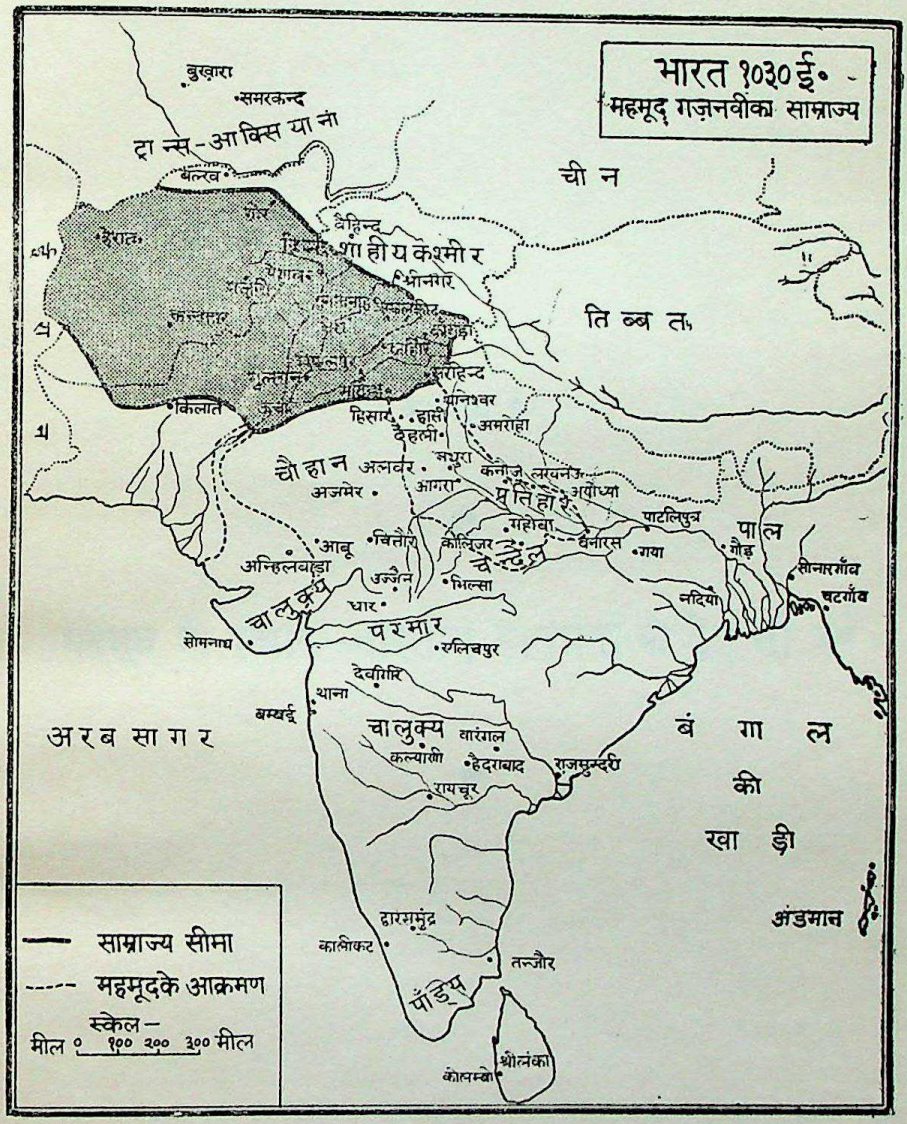

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

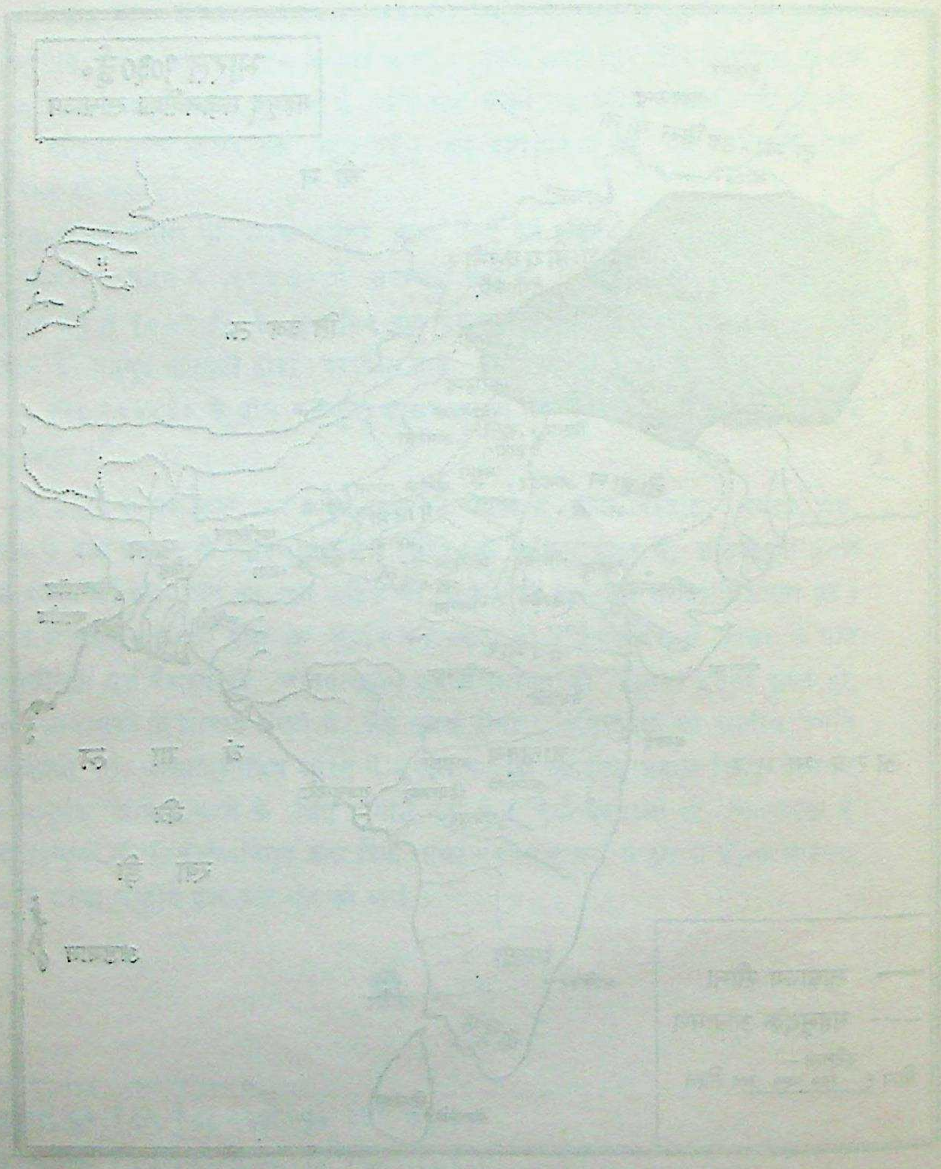

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ६

महमूद के पश्चात–भारतीय स्वतंत्रता के डेढ़ सौ वर्ष

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्यारहवीं एवं बारहवीं शताब्दी के प्रमुख राजवंश :

महमूद गज़नवी की भारतीय विजयों का तांता १०२७ ई० तक चलता रहा, जिसके पश्चात उसने पंजाब को अपने आधीन रख, और नियाल्तगीन को उसका सूबेदार नियुक्त कर, गज़नी के पश्चिमोत्तर प्रदेशों की ओर दृष्टि डाली। इसके उपरान्त प्रायः १५० वर्ष बाद ११९१ ई० में ग़ोर के शिहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी ने भारत पर आक्रमण कर मुस्लिम प्रसार नीति का आरम्भ किया। यह विशेष दूरगामी तीसरा आक्रमण था। पहला सिन्ध पर अरबों का था; दूसरा धावों के रूप में तुर्क महमूद का था; तीसरा सत्ता प्रसार की दृष्टि से शिहाबुद्दीन का था। महमूद और शिहाबुद्दीन के आक्रमणों के बीच का कालान्तर उत्तर भारतीय इतिहास में कुछ कम महत्व का न था। उस बीच अनेक प्रतापी राजकुलों का उदय एवं प्रसार हुआ। इन राजकुलों में प्रधान काशी और कान्यकुब्ज के गाहड़वाल, शाकम्भरी के चौहान, गुजरात के चालुक्य, मालवा के परमार, बंगाल के सेन, मध्य प्रदेश के कलचुरि तथा बुन्देलखण्ड के चन्देल आदि थे। इनके उत्कर्ष एवं पतन का संक्षिप्त विवरण यहां दे देना अनुचित न होगा।

कान्यकुब्ज के गाहड़वाल :

गुर्जर-प्रतिहारों के साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने पर जिन राजकुलों का नव निर्माण हुआ, उन्हीं में गुर्जर-प्रतिहारों की भूमि पर गाहड़वालों की प्रधान शाखा कन्नौज में प्रतिष्ठित हुई। महमूद के आक्रमणों के बाद १०३४ ई० के लगभग नियाल्तगीन ने उत्तरी भारत पर पुनः आक्रमण किया तथा काशी नगर को लूटा।[1] इसके बाद कुछ समय तक मुस्लिम आक्रमण नहीं हुए। इसका कारण परमार भोज (१०५५ ई०) तथा कलचुरि कर्ण (१०७२ ई०) की सैनिक शक्ति थी। ये दोनों उत्तरी भारत पर हावी थे तथा मुसलमान इनसे भयभीत थे। दोनों ही ने पंजाब पर भी आक्रमण किया था, जहां मुसलमान शक्तिशाली थे।[2] कलचुरि कर्ण ने कीर अथवा कांगड़ा घाटी पर भी आक्रमण किया, जहां गज़नी के यामिनियों का राज्य था तथा नगरकोट का प्रसिद्ध दुर्ग था।[3]

इसी राजनीतिक उथल-पुथल में गाहड़वालों का अभ्युदय हुआ। इस वंश का प्रथम प्रतिनिधि यशोविग्रह था, जिसके बाद उसका उत्तराधिकारी महीचन्द्र हुआ। महीचन्द्र के

---

१. देखिये इलि० एण्ड डाउ०, भाग २, पृ० १२३–२४; दि स्ट्रगिल फार ऐम्पायर पृ० ५१।

२. देखिये, डी० सी० गांगुली, हिस्ट्री ऑफ दि परमार डाइनेस्टी, पृ० १००–१०१; ऐपि० इंडि०, १, पृ० २३५; ५, पृ० ५८२ तथा उससे आगे।

३. दि स्ट्रगिल फॉर ऐम्पायर, पृ० १०२, टिप्पणी ११।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्चात् उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी चन्द्रदेव ने अपने बाहुबल एवं शौर्य से कान्यकुब्ज अथवा गाधिपुर पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया।[१] इसने अपनी राज्य लक्ष्मी गोपाल नामक व्यक्ति को परास्त कर १०८०–१०८५ ई० के बीच प्रतिष्ठित की थी।[२] उसने परम भट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर की उपाधि धारण की[३], तथा कन्नौज में ऐसी शक्ति का संस्थापन किया जिसकी इतिश्री आगे चल कर मुसलमानों के हाथों हुई।

पंजाब के राज्यपाल राजकुमार महमूद ने १०८६ ई० तथा १०९० ई० के मध्य किसी समय राज्यपाल तथा कालिंजर को लूटा और उज्जैन पर आक्रमण किया।[४] कन्नौज में उसकी सहायता चांदराय ने की, जिसका समीकरण चन्द्रदेव के साथ किया जा सकता है। १०९० ई० के गाहड़वाल अभिलेखों में तुरुष्कदंड नामक कर का उल्लेख है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह कर प्रजा से उनकी मुसलमानों से रक्षा करने के लिए लिया जाता था। किन्तु कुछ विद्वान कहते हैं कि वास्तव में गजनी के सुल्तानों को कर देने के लिए यह धनराशि प्रजा से वसूल की जाती थी। इसी कर की वसूली के लिए बार-बार मुसलमान उत्तरी भारत पर आक्रमण करते थे।[५] किन्तु तुरुष्कदण्ड शब्द की ये व्याख्यायें निर्विवाद नहीं हैं। यह भी संभावना है कि यह कर गाहड़वाल राज्य में बसे तुर्कों और गाहड़वाल राज्य में आने वाले तुर्कों से लिया जाता था।[६]

चन्द्रदेव अपने को कुशिक अथवा कान्यकुब्ज, काशी, उत्तर कोशल (अयोध्या) तथा इन्द्रस्थान का त्राता कहता है।[७]

चन्द्रदेव का उत्तराधिकारी मदनपाल[८] था, जिसके शासनकाल में अलाउद्दौला-महमूद तृतीय (१०९९–१११५ ई०) ने भारत पर आक्रमण किया। उसने कन्नौज के

---

१. आर० एस० त्रिपाठी, हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, पृ० ३०१; इंडि० एन्टि०, १८, पृ० १८।

२ त्रिपाठी, पृ० ३०१।

३. ऐपि० इंडि०, १४, पृ० १९३–९४।

४. इलि० एण्ड डाउ०, ४, पृ० ५१८ तथा आगे।

५. दि स्ट्रगिल फॉर ऐम्पायर, पृ० ५१।

६. डा० गोपाल, दि इकनामिक लाइफ ऑफ नार्दर्न इण्डिया, पृ० ४८-५२। तुरुष्क दंड कर के सम्बन्ध में डा० मोती चन्द का मत है कि यह कर जज़िया की तरह महमूद के समय के बचे थोड़े से मुसलमानों पर लगाया जाता था। देखिये काशी का इतिहास पृ० १२३। तुरुष्क दंड के बारे में जे० ए० एस० बी०, ५६, भाग १, पृ० ११३ में किसी सुगन्धित वस्तु पर लगने वाला कर विशेष का उल्लेख है।

७. इंडि० एन्टि०, भाग १५, पृ० ७–८; भाग १८, पृ० १६–१८।

८. अभिलेखों में इसके नाम मदनदेव तथा मदनचन्द भी मिलते हैं। देखिये, मदनदेव के लिए, इंडि० एन्टि०, १८।१२, २३; तथा मदनचन्द के लिए, ऐपि० इंडि० ९।३२४, श्लोक १४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शासक माल्ही को बन्दी बना लिया, जिसने बहुत सा धन देकर मुक्ति प्राप्त की थी।[१] मदन चन्द्र के पुत्र गोविन्द चन्द्र[२] ने भारतीय अभिलेखों के अनुसार अपने पिता के शासन काल में मुसलमानों को हराया। अतः यह भी सम्भव हो सकता है कि उसी ने अपने पिता को मुस्लिम आक्रमणकारियों के फंदे से छुड़ाया हो[३], क्योंकि गोविन्दचन्द्र बड़ा ही साहसी, पराक्रमी एवं सर्व शक्तिमान शासक था। मुसलमानों को परास्त करने के उपरान्त उसने धीरे-धीरे मगध और पूर्वी मालवा भी जीत कर अपने राज्य में मिला लिए।[४] उसके भूमिदान सम्बन्धी अभिलेख पटना[५] और मुंगेर[६] से प्राप्त हुए हैं। गोविन्द चन्द्र का साम्राज्य इस प्रकार उत्तर भारत का सबसे बड़ा साम्राज्य बन गया। उसके इस प्रकार साम्राज्यपदीय हो जाने के कारण कश्मीर के राजा जयसिंह[७], गुजरात के सिद्धराज जयसिंह[८] तथा दक्षिण के चोलों[९] ने भी उससे मैत्री रखना समीचीन समझा। बंगाल के सेनों से उसने मगध का अधिकांश भाग छीन लिया।[१०] गोविन्द चन्द्र का निधन ११५४ ई० के कुछ ही बाद हो गया।

गोविन्दचन्द्र के बाद गाहड़वाल राज्य के सिंहासन पर क्रम से उसके पुत्र और पौत्र विजयचन्द्र तथा जयचन्द्र बैठे। गोविन्दचन्द्र के समय से ही मुसलमानी आक्रमण के दौर फिर से आरम्भ हो गये थे। वे तब तक चलते रहे, जब तक कन्नौज का वह राजवंश नष्ट नहीं हो गया। विजय चन्द्र ने फिर भी गोविन्दचन्द्र की भांति मुसलमानी आक्रमणों का सफल सामना किया।[११] अमीर खुसरो ने लाहौर पर अधिकार करने के पश्चात् एक आक्रमण किया था।[१२] पृथ्वीराज रासों में विजयचन्द्र की विजयों की अटूट परम्परा दी हुई है। पर स्वाभाविक ही उस पर विश्वास करना सम्भव नहीं। बल्कि लगता है कि अपने

---

१. इलि० एण्ड डाउ०, ४, पृ० ५१८ तथा आगे; इस्लामिक कल्चर, अक्टूबर, १९४२, पृ० ४२४।
२. इसका एक अभिलेख में गोविन्दपाल नाम भी आया है, देखिये, ऐपि० इंडि०, ९, पृ० ३२४।
३. इलि० एण्ड डाउ०, ४, पृ० ४२६; इंडि० एन्टि, १८, पृ० १८।
४. रंभामंजरी, पृ० ४ (बम्बई)।
५. ज़े० बी० ओ० आर० एस०, २, ४, पृ० ४४१–४४७।
६. ऐपि० इंडि० भाग ७, पृ० ९८–९९।
७. राजतरंगिणी, ८।२४५३।
८. प्रबन्ध चिन्तामणि, जिन विजय जी द्वारा संपादित, १११, १२१, पृ० ७४।
९. ए० एस० आर०, १९०७–८, पृ० २२८।
१०. ऐपि० इंडि०, भाग ९, पृ० ९८–९९; जे० बी० ओ० आर० एस०, १९१६, पृ० ४४१–४४७।
११. इंडि० एन्टि०, भाग १५, पृ० ७–९।
१२. त्रिपाठी, पृ० ३१९ :

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शासन के अन्त में विजयचन्द्र को दिल्ली खो देने का अपमान भी सहना पड़ा। एक अभिलेख[1] से प्रकट है कि चौहान राजा विग्रहराज बीसलदेव ने उससे दिल्ली छीन ली थी।

विजयचन्द्र के पश्चात उसका तेजस्वी पुत्र जयचन्द्र २१ जून, ११७० ई० को गद्दी पर बैठा।[2] उसकी विजयों में देवगिरि और अन्हिलवाड़ के राजाओं के साथ-साथ आठ सामन्त नृपतियों को परास्त करने का उल्लेख हुआ है। फिर भी पड़ोसी चौहानों और चन्देलों के स्वतंत्र राज्यों के अस्तित्व के कारण यह प्रमाणित है कि कन्नौज के राज्य का विस्तार विशेष न था। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि चौहानों और चन्देलों के राज्यों का विस्तार कन्नौज की अपेक्षा सीमित था। गाहड़वाल कुल का शासन कन्नौज राजधानी में केन्द्रित था जिसे 'महोदय श्री' की संज्ञा दी गई थी, और 'महोदय श्री' पर अधिकार करने के लिए देशी विदेशी सभी शक्तियाँ लालायित रहती थीं।

शिहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज चौहान को तराइन के मैदान में परास्त कर दिल्ली हस्तगत कर ली, किन्तु उसका उद्देश्य वहीं तक सीमित रह जाना नहीं था। कन्नौज को भी जीत कर ग़ोरी ने गाहड़वाल साम्राज्य को विध्वंस कर दिया। इस प्रदेश का शासन ग़ोरी ने एक वरिष्ठ अधिकारी को सौंपा, किन्तु मुसलमान इस नवविजित भूमि पर बहुत दिनों तक जम न सके। जयचन्द्र का पुत्र हरिश्चन्द्र चंदावर के युद्ध के समम केवल अठारह वर्ष का था। किन्तु ११९७ ई० में कन्नौज, जौनपुर तथा मिर्ज़ापुर जिलों पर उसका अधिकार था।[3] ऐसा प्रतीत होता है कि उसने यह प्रदेश मुसलमानों से पुनः छीन लिया। चन्देल शासक त्रैलोक्य वर्मन ने कान्यकुब्ज के जिस शासक को परास्त किया, वह सम्भवतः हरिश्चन्द्र ही था।[4] हरिश्चन्द्र का उत्तराधिकारी अडक्कमल्ल था। कन्नौज पर स्थायी मुस्लिम अधिपत्य इल्तुतमिश ने स्थापित किया।

शाकम्भरी के चौहान :

शाकम्भरी या सांभर के चौहान (चाहमान , अग्नि कुलियों में गिने जाते हैं। 'हम्मीर महाकाव्य' और 'पृथ्वीराज विजय' उनके आदि पुरुष का नाम चाहमान बतलाते हैं और उसको सूर्य का पुत्र होना मानते हैं। परन्तु चौहानों का ऐतिहासिक आदि पुरुष वासुदेव हैं। ९७३ ई० के एक अभिलेख में इस वंश के राजा गुवक प्रथम का उल्लेख है।[5] जो नागभट्ट द्वितीय प्रतिहार का समकालीन था।

चौहान राजवंश के इतिहास में सबसे पहला महत्व का कार्य अजमेर (अजयमेरु) नगर बसा कर अजयराज ने किया। यह कार्य सम्भवतः बारहवीं शती के आरम्भ में सम्पन्न

१. जे० ए० एस० बी०, ५५, १, पृ० ४२।
२. ऐपि० इंडि०, ४, १२०–२१। राजगद्दी पर बैठने के पूर्व जयचन्द्र को १६ जून, ११६८ ई० को उसके पिता द्वारा युवराज पद दिया गया था, देखिये, ऐपि० इंडि०, ४, ११८–११९।
३. ऐपि० इंडि० १०, ९३-९८।
४. दि स्ट्रगिल फॉर ऐम्पायर, पृ० ५५।
५. ऐपि० इंडि०, भाग २, पृ० ११६-१३०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ। इस कुल का प्रतापी अधिपति विग्रहराज चतुर्थ बीसलदेव हुआ जो सम्भवत: ११५३ ई० में गद्दी पर बैठा।[1] गाहड़वालों से इसी ने दिल्ली छीनकर अपने राज्य में मिला ली, जैसा गुजरात के विजोला नामक स्थान से प्राप्त अभिलेख से ज्ञात होता है।[2] बीसलदेव के अभिलेख[3] से विदित होता है कि उसने हिमालय और विंध्याचल के बीच के प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। यह स्वाभाविक भी है। क्योंकि गाहड़वालों से दिल्ली छीन लेने के बाद उसके आसपास का समूचा प्रदेश चौहानों के हाथ में आ गया। विग्रहराज चतुर्थ ने मुसलमानों से भी लोहा लिया। मुस्लिम आक्रामक हम्मीर जयपुर क्षेत्र में खेत्री के पास वव्वेरा नामक स्थान तक बढ़ आया और विग्रहराज को अपनी सत्ता स्वीकार करने के लिए आमंत्रित किया। यद्यपि विग्रहराज के मंत्री श्रीधर ने शत्रु से सन्धि करने का आग्रह किया, किन्तु उसके स्वामी ने ब्राह्मणों, तीर्थों और मन्दिरों की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझा।[4] दशरथ शर्मा के अनुसार हम्मीर परास्त हुआ और उसे स्वदेश लौटना पड़ा। यह हम्मीर सम्भवत: गज़नी का अमीर खुसरो शाह था।[5] इसके पश्चात् विग्रहराज चतुर्थ ने अधिकतर हिन्दू प्रदेशों को गज़नविमों के आतंक से मुक्त किया। ११७० ई० में केवल पंजाब तक ही मुस्लिम सत्ता सीमित रह गई थी।[6]

विग्रहराज स्वयं कवि था, जिसकी प्रसिद्ध रचना 'हरकेलि' नाटक का कुछ अंश 'अढ़ाई दिन का झोपड़ा' नामक मस्जिद में जड़े शिलाखण्ड पर खुदा मिला है। यह मस्जिद अजमेर के पास विग्रहराज के बनवाये संस्कृत विद्यालय के स्थान पर खड़ी है। महाकवि सोमदेव ने उनकी प्रशस्ति में 'ललित विग्रहराज नाटक' लिखा था।[7] विग्रहराज की मृत्यु ११६३ ई० में हुई।

प्राय: तीस वर्ष बाद शिहाबुद्दीन ग़ोरी के हाथों इस राजवंश का अंत हुआ। वह अपयश इस कुल के प्रधान नृपति पृथ्वीराज तृतीय के सिर लगना था, जो इस राजवंश का सबसे विख्यात शासक हो गया है। उसके जीवन वृतान्त का विस्तृत विवरण 'पृथ्वीराज-रासो' नामक अपभ्रंश महाकाव्य में मिलता है, जिसकी रचना का श्रेय उस नृपति के मित्र महाकवि चन्दबरदाई को दिया जाता है, यद्यपि इस महाकाव्य के अनेक खण्ड सोलहवीं सदी में जोड़े गये थे। इस कृति में पृथ्वीराज का अतिरंजित प्रशस्ति गान हुआ है और उसे वीर तथा प्रतापी कहा गया है। इससे पृथ्वीराज को बड़ी प्रसिद्धि मिली है। पृथ्वीराज वीर होने

---

१. दि स्ट्रगिल फार ऐम्पायर, पृ० ८२।

२. जे० ए० एस० बी०, ५५, १, पृ० ४२।

३. इंडि० एन्टि०, भाग १९, पृ० २१९।

४. राजा—अकीर्ति: काप्युच्चै: सुहृदमयदान व्रतहतिस्तथा ध्वंसस्तीद्विर्थं जसुमनसां वीर्यविगमः। ममैतेषु व्यष्टेष्वपि भृशमसह्येषु सकलानिमानङ्गीकर्तुः कथयत विधेयकिमसुभिः॥
ललित विग्रहराज नाटक।

५. दशरथ शर्मा, अर्ली चौहान डाइनेस्टीज़, पृ० ६१ तथाटिप्पणी ३४।

६. वही, पृ० ६१-६२।

७. दशरथ शर्मा, अर्ली चौहान डाइनेस्टीज़, पृ० ६३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के साथ-साथ विलासी भी था। चन्दवरदाई और जगनिक के काव्यों में उसका यशोगान केवल वीरोचित कार्यों के लिए ही नहीं किया गया है, बल्कि विलास सम्बन्धी प्रयत्नों के लिए भी उसे सराहा गया है। वस्तुतः उसके अधिकतर अभियान एवं युद्धकार्य नारी के लिए हुए बतलाये गये हैं। पृथ्वीराज रासो से प्रकट है कि जब ग़ोरी ने दिल्ली पर आक्रमण किया, तब राय पिथौरा नर्मदा के जंगलों में हाथियों का शिकार कर रहा था। राजा जयचन्द्र की कन्या संयोगिता के हरण में जो उसने युद्ध किया, उसमें उसके अनेक वीर कन्ह, कैमास आदि खेत रहे। कन्नौज से वैमनस्य का सबसे बड़ा कारण यही था।[१]

पृथ्वीराज ने शीघ्र ही चन्देलों को भी अपना शत्रु बना लिया। तब चन्देलों का राजा परमर्दि (परमल) था। पृथ्वीराज ने उस पर आक्रमण कर महोबा आदि दुर्गों पर अधिकार कर लिया। ख्यातों से पता चलता है कि उसने गुजरात के चालुक्य राजा भीम द्वितीय को भी परास्त किया। पृथ्वीराज के शासनकाल में सबसे महत्वपूर्ण घटना शिहाबुद्दीन ग़ौरी का आक्रमण था। शिहाबुद्दीन मध्य एशिया और अफगानिस्तान के अनेक प्रान्तों पर अधिकार कर भारत की ओर बढ़ा। वह ११९१ ई० में पंजाब लांघ कर तराइन के मैदान में जा उतरा। राय पिथौरा अनेक हिन्दू राजाओं की सहायता सहित अपनी सेना लिए उसका प्रतिरोध करने के लिए उपस्थित हुआ, तथा चौहानों के आक्रमण ने गोरी की सेना में भगदड़ मचा दी। परास्त मुहम्मद ग़ोरी स्वयं भी घायल हुआ, तथा उसकी जान एक खलज़ी सिपाही ने बचाई।[२]

अगले वर्ष शिहाबुद्दीन विशाल सेना लिए पुनः तराइन के मैदान में उतरा। युद्ध में राय पिथौरा पराजित हुआ और सरस्वती नदी के तीर भागता हुआ पकड़ा गया और मारा गया। पृथ्वीराज का शासनकाल ११७९-९२ ई० तक रहा। उसके मरते ही मुसलमानों का अजमेर और दिल्ली पर अधिकार हो गया।

पृथ्वीराज तृतीय चौहान राजवंश का अजमेर और दिल्ली का अन्तिम शासक था। यद्यपि आत्म समर्पण कर देने के कारण पृथ्वीराज के पुत्र गोविन्दराज को वार्षिक कर देने के वचन पर शिहाबुद्दीन ने अजमेर की गद्दी दे दी[३], पर उसके चाचा हरिराज ने उसे दम नहीं लेने दिया और अजमेर से उखाड़ फेंका।[४] अन्त में वह अजमेर छोड़कर रणथम्भौर चला गया, जहां उसके वंशज अगले सौ वर्ष तक राज्य करते रहे। अजमेर में हरिराज को भी चैन नहीं मिला और शिहाबुद्दीन के सेनापति कुतुबुद्दीन ने उसे परास्त कर चौहान राजकुल के बचे अभिमान का भी नाश कर दिया।[५] हम्मीर महाकाव्य के अनुसार हरिराज ने निराशाग्रस्त होकर अपने को भस्म कर डाला।[६]

---

१. शर्मा, पृ० ७८-७९।
२. ब्रिग्स, फ़रिश्ता, भाग १, पृ० १७२; शर्मा, पृ० ८२-८३।
३. ताज-उल-मआसिर, इलि० डाउ०, भाग २, पृ० २१६।
४. शर्मा, पृ० १००, टिप्पणी ३।
५. फ़रिश्ता, १, पृ० १९४; शर्मा, १०१।
६. काण्ड ४, १८–१९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुजरात के चालुक्य :

गुजरात के सोलंकी चालुक्यों का राजकुल प्रायः ३५० वर्ष (९४०–१२९७ ई०) तक चला। उनकी राजधानी अन्हिलवाड़ थी। अणहिल्लपाटन अथवा अन्हिलवाड़ के इस राजकुल की प्रतिष्ठा मूलराज सोलंकी ने की थी। कल्याण कटक का स्वामी, राजी, मूलराज का पिता था और उस की माता उस चापोत्कट राजकुल की थी जिसने चालुक्यों से पूर्व गुजरात के एक भाग पर राज किया था[१]। उसने ९४१ ई० के लगभग अपने मामा को मार कर चापोत्कट का राज्य छीन लिया[२]। उसके अभिलेख के प्रकट है कि उसने कच्छ के राजा लक्ष्मणराज को रण में मार डाला और सौराष्ट्र के राजा ग्राहरिपु को परास्त कर बन्दी बना लिया[३]। लक्ष्मणराज ने कच्छ प्रदेश को तुरुष्कों से मुक्त किया था[४]। सांभर के विग्रहराज चौहान और लाट के बारप से भी उसके युद्ध हुए। उसने प्रायः आधी शती तक राज्य किया और ९९६ ई० के लगभग मरा।

उस कुल का दूसरा महत्वपूर्ण शासक भीम प्रथम हुआ, जिसने लगभग १०२२ ई० से १०६४ ई० तक राज्य किया। गज़नी के महमूद ने जब १०२५ ई० में अन्हिलवाड़ पर चढ़ाई की, तब भीम राजधानी छोड़ भाग गया। महमूद ने हिन्दुओं को अनन्त संख्या में मारकर सोमनाथ के मंदिर को लूटा, और रत्नराशि तथा तोड़ी हुई मूर्ति ले गज़नी लौट गया।

महमूद के लौटने पर भीम ने अपने राज्य पर पुनः अधिकार कर लिया तथा अपने पराजय का अपयश मिटाने के लिए उसने परमार धंधुक से आबू प्रदेश छीन लिया[५]। भीम ने भिनमाल पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर वहाँ के शासक परमार कृष्णराज को बन्दी बना लिया[६]। 'द्वयाश्रय काव्य' के अनुसार भीम पंजाब गया, तथा सिन्धु पर एक पत्थर का पुल बनाकर उस नदी को पार किया। तदुपरान्त सिन्ध के शासक हम्मुक को परास्त किया[७]। मेरुतुंग के अनुसार उसकी अनुपस्थिति में भोज ने अपने सेनापति कुलचन्द्र को अणहिल्लपाटन भेज उसे लुटवा लिया[८]। तब भीम ने कलचुरियों के शासक लक्ष्मीकर्ण से साझाकर भोज पर आक्रमण किया। इसी काल में जब भोज की मृत्यु हुई, तो मालवा का कोई रक्षक नहीं रहा, और दोनों की सेनाओं ने उस राज्य को रौंद डाला[९]। उधर भीम और लक्ष्मीकर्ण में भी वैमनस्य हो गया और दोनों ने एक दूसरे पर आक्रमण किये। भीम ने

---

१. ए० के० मजुमदार, चालुक्याज़ ऑफ गुजरात, पृ० २३।
२. वही।
३. वही, पृ० २६, २७।
४. हेमचन्द्र, युधोपराजिष्णुररेरभिरुस्त्राता तुरुष्कान् अपि कच्छदेशात्, द्वयाश्रम काव्य, २, ५, १०५।
५. दि स्ट्रगिल फॉर ऐम्पायर, पृ० ७४।
६. वही।
७. ए० के० मजूमदार, पृ० ४८।
८. वही पृ० ७५।
९. वही, पृ० ५१ तथा आगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लक्ष्मीकर्ण को हरा दिया, पर इस परस्पर की फूट से परमार जयसिंह सोमेश्वर प्रथम को जो अवसर मिला तो उसने चौलुम्पों की सहायता से मालवा को स्वतंत्र कर लिया।

भीम के बाद उसका पुत्र कर्ण गुजरात की गद्दी पर बैठा। मालवा के परमार अबतक फिर प्रबल हो उठे थे और कर्ण को उन्होंने अपनी चोटों से दुर्बल कर दिया। कर्ण १०६६-६७ ई० में गद्दी पर बैठा, तथा लगभग ३० वर्ष तक राज्य किया[१]। उसका पुत्र जयसिंह सिद्धराज गुजराती चालुक्यराज कुल का सबसे शक्तिशाली नरेश हुआ, जिसने लगभग १०९४ ई० से ११४४ ई० तक शासन किया[२]। सिद्धराज के पिता का देहान्त उसकी बाल्यावस्था में हो जाने के कारण सिद्धराज की माता ने पहले राज्य को संभाला और उस पर योग्यतापूर्वक शासन किया। सिद्धराज ने अपनी तरुणाई में ही अपनी वीरता का परिचय देना आरम्भ कर दिया था। उस पराक्रमी ने नादोल तथा सांभर के चौहानों को परास्त किया[३]। परमारों से भी उस का दीर्घकाल तक युद्ध हुआ और अन्त में धारा को जीत कर 'अवन्ति नाथ' का विरुद धारण किया[४]। परन्तु मदन वर्मन चन्देल के सामने उसे झुकना पड़ा[५]। जयसिंह सिद्धराज पुत्रहीन मरा।

अन्हिलवाड़ के सिंहासन का सही अधिकारी न होने के कारण जयसिंह के सम्बन्धी कुमारपाल (११४३–११७२ ई०) ने चालुक्यों के राज्य पर बरबस अधिकार कर लिया[६]। कुमारपाल स्वयं पराक्रमी था। उसने सांभर के चौहानों, मालवा के बल्लाल, और आबू के परमारों को परास्त कर अपने पराक्रम का परिचय दिया। अब उसने कोंकण देश पर आक्रमण किया और उसके राजा मल्लिकार्जुन को सहज ही परास्त कर दिया[७]। सोमनाथ का मंदिर ध्वस्त पड़ा था। उसका उसने फिर से निर्माण कराया। उसका जीवन चरित 'कुमारपाल चरित' कहलाया, जिसकी रचना जयसिंह ने की। प्रसिद्ध जैन आचार्य हेमचन्द्र ने कुमारपाल के शासनकाल में ही अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे। कुमारपाल की मृत्यु ११७२ ई० में हुई।

इस काल के विभिन्न राजवंशों के इतिहास का अध्ययन करने से केवल यही बात स्पष्ट होती है कि यह छोटे बड़े राज्य सदैव पारस्परिक कलह एवं गृह-युद्धों में अपनी शक्ति का ह्रास करते रहे। प्रादेशिक संकीर्णता, कौटुम्बिक वैमनस्य, डाह एवं प्रतिस्पर्धा ने भारतीय

---

१. वही, पृ० ५६।
२. वही, पृ० ६७।
३. ए० के० मजुमदार, पृ० ७०,७१; ऐपि० इंडि०, ११, ३०–३२; इंडि० एन्टि०, ५८, २३४।
४. ए० के० मजुमदार, पृ० ७२–७६।
५. बौम्बे गज़ेटियर, १, १, १७८; ए० एस० आई० (कनिंघम), २, २२, ८६; जे० ए० एस० बी०, १७, (१८४८), १, ३१८; १, १४; स्मिथ द्वारा उद्धृत, हिस्ट्री एण्ड क्वाइनेज़ ऑफ दि चन्देल डाइनेस्टी, इंडि० एन्डि०, ३७, १४४।
६. ए० के० मजुमदार, पृ० ८९, तथा पृ० ४४९ पर टि० २।
७. वही, पृ० १०४ तथा उससे आगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शासकों को बाह्य संकटों के प्रति उदासीन एवं क्षीण बना दिया। एक ओर तो धार्मिक आडम्बरों का आयोजन होता था, अन्धविश्वास का पोषण होता था तथा साथ ही साथ दूसरी ओर विलासिता तथा शृंगार का रसास्वादन होता था। वीर तथा जैन धर्म का पोषक कुमारपाल भी राज दरबार में अपने पार्श्व में वैश्या लेकर बैठता था[1]।

अगला शासक अजयपाल (११७२ ई०–११७५ ई०) हुआ, जिसके पश्चात् उसका पुत्र मूलराज द्वितीय (११७५–११७८ ई०) गद्दी पर बैठा। उसके सूक्ष्म शासनकाल की प्रमुख घटना उसकी मुस्लिम आक्रामकों पर विजय थी[2]। सोमेश्वर के अनुसार उसने तुरुष्कों के अधिपति को परास्त किया[3]। अरिसिंह भी मुसलमानों पर उसकी विजय का उल्लेख करता है[4]। इसमें सन्देह नहीं कि मूलराज द्वितीय ने एक मुस्लिम सेना को परास्त किया। किन्तु यह मुस्लिम आक्रमणकारी कौन था? फ़ोरबेस, बूलर, जैक्सन, होडीवाला तथा हबीबुल्ला के अनुसार यह आक्रमणकारी मुईज़ुद्दीन मुहम्मद बिन साम था, जिसे मुहम्मद ग़ोरी कहते हैं[5]। किन्तु मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार मुईज़ुद्दीन को भीमदेव ने परास्त किया, जिसका समीकरण मूलराज द्वितीय के भाई तथा उत्तराधिकारी भीम द्वितीय से किया जा सकता है। ऐसा लगता है कि मुस्लिम लेखकों ने हिन्दू शासक का नाम लिखने में इसलिये भूल की कि मूलराज अपनी विजय के पश्चात शीघ्र ही स्वर्गवासी हो गया। समस्त भारतीय ग्रन्थों में मुसलमानों को परास्त करने का श्रेय मूलराज को ही दिया गया है। स्वयं भीम के अभिलेख मूलराज को गर्जनकों का विजेता बताते हैं, तथा कहीं भी यह नहीं कहते कि भीम ने भी मुसलमानों को हराया। और न कोई भारतीय लेखक या कवि ही भीम की विजय का उल्लेख करता है। यदि भीम ने मुसलमानों को परास्त किया होता तो भारतीय सूत्रों में अवश्यमेव उसका यशगान होता[6]।

मुहम्मद ग़ोरी ने ११७५ ई० में भारत पर पहला आक्रमण किया तथा करामतियों से मुल्तान छीन लिया। इसके पश्चात् हिन्दू शासक को परास्त कर ऊच नामक प्रदेश पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार भारत में दो स्थानों पर उसका अधिकार हो गया, जहाँ से वह यदि चाहता तो लाहौर की ओर बढ़ सकता था। किन्तु अभी उसका यह इरादा नहीं था। लाहौर के लिए गज़नी से सबसे छोटा मर्ग खैबर के दर्रे से होकर जाता था। यदि मुहम्मद ग़ोरी लाहौर लेना चाहता तो पहले पेशावर पर अधिकार करता, जैसा उसने बाद में किया।

---

१. द्वयाश्रय काव्य, ६, ५, ३८।

२. चालुक्याज ऑफ गुजरात, पृ० १३१। उसके उत्तराधिकारियों के अभिलेखों में उसके विषय में कहा गया है: पराभूत-दुर्जयगर्जनकाधिराज, अथवा, म्लेच्छ-तमो-निचयच्छत्र-मही-वलय-प्रद्योत्तनवालार्क। देखिये वही, पृ० ४५७, टि० २७।

३. कीर्तिकौमुदी, २, श्लोक ४७–४८।

४. ए० के० मजुमदार, पृ० १३१।

५. रासमाला, १, १९९; इंडि० एन्टि०, ६, १८७; बाम्बे गज़ेटियर, १, १, टि० ४; होडीवाला, स्टडीज़ इन इंडो-मुस्लिम हिस्ट्री, २०२; हबीबुल्ला, फाउन्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया, ५३।

६. ए० के० मजुमदार, पृ० १३२-३३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर उसने गोमल के दर्रे को पार कर मुल्तान तथा ऊच पर अधिकार किया, तथा फिर एकदम दक्षिण की ओर दक्षिणी राजपूताना तथा गुजरात की ओर मुड़ गया।[1] यदि यह आक्रमण सफल हो गया होता, तो ग़ोरी का अधिकार सम्पूर्ण दक्षिणी राजपूताना तथा गुजरात पर हो जाता। उसके बाद वह गज़नवियों या शाकम्भरी के चौहानों पर आक्रमण कर सकता था। किन्तु ११७८ ई० में मूलराज के द्वारा उसकी पराजय ने उसकी योजना बदल दी। इसके अगले वर्ष वह भारत में ख़ैबर के दर्रे से प्रविष्ट हुआ, तथा पेशावर पर अधिकार करके बाद में चातुर्य से लाहौर पर भी अधिकार कर लिया। इसके बाद उसे चौहानों का सामना करना पड़ा। मुहम्मद ग़ोरी ने फिर कभी गुजरात पर आक्रमण नहीं किया, तथा अगला मुस्लिम आक्रमण भीम द्वितीय की आक्रामक नीति के कारण हुआ।

मिनहाज के अनुसार ११७८ ई० में मुहम्मद ग़ोरी 'एक सेना लेकर नहरवाल की ओर ऊच तथा मुल्तान की ओर बढ़ा। नहरवाल का राय युवा था, किन्तु उसके पास बड़ी सेना और बहुत से हाथी थे, तथा जब युद्ध हुआ, इस्लाम की सेना परास्त हुई तथा उसमें भगदड़ मच गई और सुल्तान-ए-ग़ाज़ी की अपनी योजना बिना पूर्ण किये वापिस जाना पड़ा'।[2] निज़ामुद्दीन,[3] बदाउनी,[4] फ़रिश्ता,[5] सभी गुजरात के शासक द्वारा मुहम्मद ग़ोरी की करारी हार का उल्लेख करते हैं, और कहते हैं कि वह कठिनाइयों से ग़ज़नी वापस पहुँचा। परन्तु ११९७ ई० में कुतुबुद्दीन ने भीम की राजधानी पर अधिकार कर लिया।[6] वह अधिकार चिरस्थायी तो न हो सका, पर उसने गुजरात के चालुक्य राजकुल को निर्बल कर दिया। उधर मालवा और देवगिरि के राजाओं ने भी भीम के राज्य को लूटा। गुजरात रक्षा में उसकी सहायता उसके बघेल सामन्त लवण प्रसाद तथा उसके पुत्र वीर धवल ने विशेष रूप से की। भीम ने लवण प्रसाद को वस्तुतः सर्व शक्तिमान बना दिया। भीम के बाद त्रिभुवनपाल सिंहासन पर आया, किंतु उसका शासन काल बहुत छोटा था। इसके पश्चात् गुजरात में बघेलों का राज्य प्रारम्भ हुआ।

मालवा के परमार :

मालवा के परमारों में प्रधान वाक्पति मुंज, उसके उत्तराधिकारी सिन्धुराज अथवा सिन्धुल, तथा सिन्धुराज का पुत्र भोज आदि थे। परमार भी अग्निकुलीय राजपूत माने जाते हैं,[7] यद्यपि एक अभिलेख के आधार पर उनका राष्ट्रकूट कुल से सम्बद्ध होना भी बतलाया

---

१. गोमल के दर्रे से लोग गज़नी से प्रायः भारत आते थे। देखिए, हबीबुल्ला, पूर्वोद्धृत, पृ० ५।

२. तबक़ाते–नासिरी, रैवर्टी द्वारा अनूदित, पृ० ४५१–५२।

३. तबक़ाते–अकबरी, अनुवाद, १, पृ० ३६।

४. मुन्तखब–उत्–तवारीख, अनुवाद, १, ६६।

५. फ़रिश्ता, ब्रिग्स १, १७०।

६. ए० के० मजुमदार, पृ० १४३।

७. नवसाहसांक चरित, सर्ग ११, श्लोक ६४–७६; बौम्बे गज़ेटियर, भाग १, पृ० ४८५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया है।[1] आइने अकबरी के अनुसार परमार वंश के संस्थापक धन जी ने दक्षिण से आकर मालवा पर अपना आधिपत्य स्थापित किया।[2] इस वंश की प्रमुख शाखा ने मालवा अथवा अवंति पर शासन किया।

परमार कुल के यश का प्रतिष्ठाता और पहला पराक्रमी नरेश सीयक हर्ष (सीयक द्वितीय) था, जिसने ९४९ ई० से ९७२ ई० तक शासन किया। प्रतिहारों की राज्य लक्ष्मी तब चंचल हो चली थी, और राष्ट्रकूटों की सत्ता उदीयमान थी। सीयक हर्ष ने पतितोन्मुख प्रतिहारों के साम्राज्य के अनेक प्रान्त दबा लिये, फिर वह राष्ट्रकूटों की ओर फिरा। उदयपुर के लेख से प्रकट है कि परमार सीयक ने राष्ट्रकूट खोट्टिग की लक्ष्मी हर ली।[3] खोट्टिग का शासन काल प्रायः वही है जो सीयक का है। सीयक हर्ष ने सम्भवतः हूणों पर भी विजय पाई थी।[4]

वाक्पति मुंज परमारों में बड़ा प्रतापी हुआ। सम्भवतः वह ९७३ ई० में गद्दी पर बैठा, तथा उसने 'उत्पल राज', 'पृथ्वीवल्लभ' आदि अनेक विरुद धारण किये। कलचुरियों, गुहिलों, चौहानों, हूणों, गुजरात के चालुक्यों, लाटों, कर्नाट के चालुक्यों आदि पर उसकी विजय की एक लम्बी तालिका है।[5] कलचुरि राजा युवराज द्वितीय को उससे हार माननी पड़ी। उसका विशेष और लम्बे काल तक चालुक्य तैलप द्वितीय के साथ संघर्ष हुआ। अनेक बार उसने तैलप को परास्त किया, किंतु उसे स्वयं अपने प्राण खोने पड़े। मेरुतुंग लिखता है कि तैलप को उसने छः बार परास्त किया। परन्तु सातवीं बार जब उसने फिर उस चालुक्य नृपति पर चढ़ाई की तैयारी की, तब उसके मंत्रियों ने उसके अभिमान का विरोध किया। मंत्रियों की मन्त्रणा की अवहेलना कर वह गोदावरी लांघ गया और तैलप के राज्य के भीतर निर्भीक रूप से प्रवेश कर गया। दोनों में मरणान्तक युद्ध हुआ, जिसमें मुंज न केवल परास्त हुआ, बल्कि तैलप ने उसे बन्दी बना लिया। चूँकि ९९३ ई० वाक्पति राज की अन्तिम जानी हुई तिथि है, अतः प्रकट हैं कि यह युद्ध उसके शीघ्र ही बाद हुआ होगा। तैलप की मृत्यु की तिथि ९९८ ई० है, इससे स्पष्ट है कि वह युद्ध ९९३ ई० और ९९८ ई० के बीच में कभी हुआ होगा।

वाक्पति मुंज की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई सिन्धुराज, जिस का लोकप्रिय नाम सिन्धुल था, परमारों के सिंहासन पर बैठे सिन्धुराज की कर्मठता विशेष जानी हुई नहीं है परंतु चूँकि पद्मगुप्त ने उसी के जीवन वृत्तान्त को लेकर अपना प्रसिद्ध ऐतिहासिक महाकाव्य 'नवसाहसांक चरित' लिखा, वह अवश्य पराक्रमी रहा होगा। उस काव्य से उसके द्वारा कलचुरियों, चालुक्यों और हूणों के परास्त होने की सूचना मिलती है। उसका शासन काल बहुत अल्प था।

साहित्य और रणस्थल में प्रख्यात राजा भोज परमार नरेशों में अनुपमेय हो गया है।

---

१. ऐपि० इंडि०, १९, पृ० २३७।
२. इंडि० एन्टि०, खं० २, पृ० २१४ तथा आगे।
३. ऐपि० इंडि०, खं० १, पृ० २३७, श्लोक १२।
४. नवसाहसांक चरित, सर्ग ११, श्लोक ९०।
५. ऐपि० इंडि०, खं० १, पृ० २३५, श्लोक १४; देखिये, डी० सी० गांगुली, हिस्ट्री ऑफ दि परमार डाइनेस्टी, पृ० ४३-६४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह सिन्धुराज का पुत्र और मुंज का भतीजा था। उसके शासन की अवधि ५५ वर्ष, ७ महीने ३ दिन है। मेरुतुंग की प्रबन्ध-चिन्तामणि के अनुसार मुंज की गद्दी पर भोज बैठा।[१] किंतु वास्तव में वह सिन्धुराज का पुत्र एवं उत्तराधिकारी था।[२] परमार वंश के इस अद्वितीय तेजस्वी नृपति के दीर्घकालीन शासन का अधिकतर भाग युद्ध क्षेत्र में ही बीता। वह अनेक बार परास्त भी हुआ, किंतु उसने अनेक राजाओं को परास्त भी किया।

उदयपुर की प्रशस्ति[३] में उसे कैलाश और मलय दोनों पर्वतों के बीच की भूमि का विजेता कहा गया है। राजा भोज का उसके चाचा के हत्याकारी चालुक्यों से वैमनस्य होना स्वाभाविक था। गद्दी पर बैठते ही भोज ने चाचा के वध का प्रतिशोध लेने का प्रण किया, और चालुक्यों पर धावा बोल दिया। विक्रमादित्य पंचम को उसने परास्त कर मार डाला।[४] कलचुरियों से भी परमारों का संघर्ष चला आ रहा था, सो भोज ने अब अपनी विजय वाहिनी का मुंह उधर मोड़ा और त्रिपुरी के गांगेय देव को परास्त किया।[५] उदयपुर अभिलेख से प्रमाणित है कि उसने इन्द्ररथ नामक एक शक्तिशाली शासक को भी परास्त किया। इन्द्ररथ आदिनगर अथवा नगर उड़ीसा के गंजाम जिले में स्थित आधुनिक मुखलिंगम का शासक था।[६] इन विजयों से राजा भोज की शक्ति एवं पराक्रम का साका चल गया। उदयपुर प्रशस्ति में उसे तुरुष्कों अथवा मुसलमानों का विजेता भी कहा गया है,[७] जिसको स्वीकार करना कठिन है। तथ्य तो यह है कि आनन्दपाल शाहीय के नेतृत्व में लड़ने के लिए भेजी गई उसकी सेना को महमूद गज़नवी से हारना पड़ा। वैसे वह अन्यत्र भी मुसलमानों के संपर्क में आया, यह निर्विवाद है। गुजरात का राजा भीम प्रथम जब मरुभूमि में तुरुष्कों से लोहा ले रहा था, तब भोज ने अपने सेनापति कुलचन्द्र को भेज कर उसकी राजधानी अन्हिलवाड़ को लुटवा लिया। यह भी हो सकता है कि महमूद को थार के मैदान से होकर लौटते समय जो जल के अभाव में संकट सहना पड़ा था, उसका लाभ उठाकर भोज ने उसकी पिछड़ी हुई सेना को परास्त किया हो।

चन्देलों के राजा विद्याधर[८] और कछवाहों के नरेश कीर्तिराज ने भोज को परास्त किया था। अपने पड़ोसियों से निरन्तर युद्ध करते-करते भोज की शक्ति क्षीण हो गई, तथा कर्णाट-शासक सोमेश्वर ने मालवा तथा उसकी राजधानी को लूटा। भोज को आत्म रक्षा के लिए भागना पड़ा। इस चोट से वह संभल न पाया। भोज की वृद्धावस्था ने भी उसे दुर्बल बना दिया। इसी समय भीम ने मालवा पर आक्रमण करने के लिए कलचुरि कर्ण से संधि

---

१. प्रबन्ध चिन्तामणि, पृ० २२।
२. दि स्ट्रगिल फॉर ऐम्पायर, पृ० ६६।
३. ऐपि० इंडि०, १, पृ० २३५।
४. आर० जी० भंडारकर, दि अर्ली हिस्ट्री ऑफ दि डकन, पृ० ६१।
५. गांगुली, पृ० १०२।
६. दि स्ट्रगिल फॉर ऐम्पायर, पृ० ६६।
७. ऐपि० इण्डि०, १, पृ० २३५, श्लोक १९।
८. ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० २२१-२२२।
९. इंडि० एन्टि०, भाग १, पृ० ३६, श्लोक १०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की। भोज ने दोनों की सम्मिलित सैनिक शक्ति का सामना करने की तैयारी की। किन्तु रोग-ग्रस्त हो जाने से उसकी मृत्यु हो गई, और उसका पुत्र जयसिंह शत्रुओं का सामना न कर सका। अतः उसने आत्म-समर्पण कर दिया। इस प्रकार १०५५ ई० के लगभग मालवा कलचुरियों तथा चालुक्यों के हाथ में आ गया।

भीम और कर्ण की मैत्री दीर्घकालिक न हो सकी, और दोनों में युद्ध छिड़ गया। उस युद्ध से लाभ उठाकर जयसिंह ने कर्णाट के चालुक्य नरेश सोमेश्वर प्रथम की सहायता से दोनों का सामना किया और उनको मालवा से मार भगाया। धारा की गद्दी अब उसके हाथ में थी। पर युद्ध बन्द नहीं हुआ, यद्यपि मोर्चा अब कर्णाटों की दिशा में बना। गुजरात के चालुक्यों से भी जयसिंह को युद्ध करना पड़ा, और यह डांवाडोल स्थिति तब तक चलती रही जब तक मालवा पर मुसलमानों का अधिकार नहीं हो गया। जयसिंह ने लगभग १०५५ ई०-१०६० ई० तक केवल छः वर्ष शासन किया। इसके उपरान्त उदयादित्यने मालवा का राजदंड धारण किया, और कर्ण को पराजित कर उसने परमार कुल लक्ष्मी को कुछ काल तक विचलित होने से बचा लिया।[१] उदयादित्य का अन्त लगभग १०८८ ई० के लगभग हुआ, यद्यपि परमार वंश का अन्त अभी कुछ काल तक स्तम्भित रहा। उदयादित्य के बाद कई परमार राजाओं ने मालवा पर राज्य किया। अन्त में १३०५ ई० में अलाउद्दीन के सेनापति ने मालवा को जीत कर उस पर स्थाई अधिकार कर लिया।[२]

पूर्व बंगाल के सेन :

पालों के पतन के बाद पूर्वीय बंगाल में सेन राजवंश का अभ्युदय हुआ। सेन उस परम्परा के प्रमाण हैं जिसमें युद्ध-कर्मा ब्राह्मण क्षत्रिय मान लिए जाते थे। सेनों को ब्रह्मक्षत्रिय अथवा कर्णाट क्षत्रिय कहा गया है,[३] जिससे संकेत मिलता है कि वे दक्षिण से आये थे और राज्यशक्ति पर अधिकार कर लेने के कारण क्षत्रिय कहलाये। सेनों में पहला प्रसिद्ध राजा वीरसेन का पुत्र सामन्त सेन था। पर सेनों का प्रभुत्व विशेषतः विजय सेन (१०९५-११५८ ई०) के यश के साथ बढ़ा।[४] विजय सेन सामन्त सेन का पौत्र था। विजय सेन का पहला संघर्ष स्वाभाविक ही उत्तर बंगाल अथवा गौड़ के पाल राजा मदनपाल से हुआ। मदन पाल को गौड़ से भगा कर विजय सेन ने वहाँ सेन आधिपत्य की प्रतिष्ठा की। विजय सेन के अभिलेखों से प्रामाणित है कि उसने गौड़, वंग तथा राढ़ पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था।[५] नौ सेना रखने के कारण उसे गंगवर्ती प्रदेश को जीतने में सरलता हुई।[६] विजयसेन का

---

१. गांगुली, पृ० १३२।
२. दि स्ट्रगिल फॉर ऐम्पायर, पृ० ७२।
३. उदाहरणार्थ देखिये, देवपारा अभिलेख, एन० जी० मजुमदार, इन्सक्रिप्शन्स ऑफ बंगाल, खं० ३, पृ० ४६, ५०; ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० ३०५।
४. मजुमदार, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग १, पृ० २१० तथा आगे।
५. देखिये देवपारा, बैरकपुर तथा पाइकोर अभिलेख; इन्सक्रिप्शन्स ऑफ बंगाल, ४२ तथा आगे; ऐपि० इंडि०, १५, पृ० २८४; दि स्ट्रगिल फॉर ऐम्पायर, पृ० ३७।
६. देवपारा अभिलेख, श्लोक २२, पृ० ५४; इन्सक्रिप्शन्स ऑफ बंगाल, भाग ३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रभुत्व धीरे-धीरे पूर्व, पश्चिम और दक्षिण की ओर भी बढ़ा। पूर्व में उसने कामरूप के शासक को परास्त करके खदेड़ दिया, यद्यपि वह उस प्रदेश पर स्थायी अधिकार न कर पाया। प्रारम्भ में तो कलिंग के शासक अनन्तवर्मन चौडगंग के साथ उसके सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे, किन्तु अनन्तवर्मन की मृत्यु के बाद उसने उसके पुत्र राघव को भी परास्त कर दिया।

अब वह पश्चिम की ओर बढ़ा और वीर तथा वर्धन नामक शासकों को वश में किया, जिनका समीकरण क्रमशः कोटाटवि, वीरगुण तथा कौशाम्बी के द्वोरपवर्धन के साथ किया जा सकता है।[1] उसने नौ सेना से गाहड़वाल गोविन्द चन्द्र पर भी आक्रमण किया, तथा मिथिला के शासक नान्यदेव को भी परास्त किया। उसने १०९५ ई० से लगभग ११५८ ई० तक शासन किया।[2] उसके राज्यकवि उमापति धर ने देवपारा प्रशस्ति में उसकी उपलब्धियों का सुन्दर वर्णन किया है। विजयसेन के बाद इस कुल का दूसरा राजा उसका पुत्र बल्लाल सेन हुआ। बल्लालसेन का महत्व इतिहास में 'कुलीन प्रथा' चलाने में है। यह कार्य उसने वर्ण-धर्म की रक्षा तथा उस विवाह-प्रथा को संजीवित करने में किया है, जिसे कुलीन प्रथा कहते हैं।

इस वंश का अन्तिम राजा लक्ष्मणसेन था, जो अनेक प्रमाणों से सेन राजकुल का सबसे प्रतापी राजा सिद्ध होता है। उसके अभिलेखों ने उसे असाधारण विजेता कहा है। उनमें लिखा है कि उसने पिता के जीते कलिंग और कामरूप के विद्रोह करने पर उन दोनों को कुचल डाला, और तिरहुत के भी पश्चिम की ओर बढ़कर काशी और प्रयाग तक में अपने विजय स्तम्भ खड़े किये।[3] पर लक्ष्मण सेन को यह गौरव उसके अभिलेखों ने दिया है, जो कि उसी के लिखवाये हुए थे। अतः उन अभिलेखों में अतिरंजन की संभावना स्वाभाविक है। काशी तथा प्रयाग तक वह लूट-खसोट ही कर सकता था, क्योंकि उसके आक्रमण से इन स्थानों पर उसकी सत्ता स्थापित न हो सकी। वे दोनों स्थल गाहड़वालों के प्रबल नृपति जयचन्द्र के अधिकार में थे। काशी तो उसकी कन्नौज के अतिरिक्त दूसरी राजधानी भी थी। वस्तुतः न केवल काशी तक, बल्कि गया तक पर जयचन्द्र का अधिकार था, जिसने वहाँ ग्राम दान दिये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि लक्ष्मण सेन ने जयचन्द्र को गया से आगे नहीं बढ़ने दिया, और ऐसे समय जब कि मुस्लिम संकट सिर पर था उसने जयचन्द्र का ध्यान पूर्व की ओर से न हटने दिया। इसके अतिरिक्त और उसके अभिलेखों के विपरीत सम-सामयिक मुस्लिम इतिहासकारों ने लक्ष्मण सेन का जो चरित्र चित्रित किया है, अत्यन्त निन्दनीय है। उनके अनुसार राय लखमनिया इतना कायर था कि जब बख्तियार अपनी सेना लिये लक्ष्मण सेन की राजधानी नदिया पहुंचा, तब राजा पिछले द्वार से पलायन कर गया। वह वहाँ से भाग कर गंगापार चला गया, और वहीं से १२०६ ई० तक राज करता रहा।

बख्तियार कुल १८ घुड़सवारों को साथ लेकर अपनी सेना से आगे बढ़ कर नदिया नगर में प्रविष्ट हुआ। जब उसके सैनिकों ने महल पर आक्रमण किया तो लक्ष्मण सेन भोजन छोड़ कर भाग निकला। उसके प्रशस्ति लेखों के बावजूद उसके बिना युद्ध किये पलायन की

---

१. दि स्ट्रगिल फॉर ऐम्पायर, पृ० ३६।
२. आर० सी० मजूमदार, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग १, पृ० २१०।
३. आर० सी० मजूमदार, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग १, पृ० २१८ तथा आगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह कालिमा नहीं मिट सकती। तबक़ाते-नासिरी में दिया गया यह वृत्तांत सर्वथा सही न हो, फिर भी राजधानी की प्रजा तथा सैनिकों की भगदड़ के लिए यदि लक्ष्मण सेन को उत्तरदायी न ठहराया जाय, तो और किस पर दोष मढ़ा जा सकता है ? यह निष्कर्ष निर्विवाद है कि लक्ष्मण सेन ने नेतृत्व, आत्म-बल तथा आत्म-रक्षा का सर्वथा अभाव दिखाया, जिससे जनता निराश एवं विन्नासित हो उठी।[1]

मध्य-प्रदेश के कलचुरि :

भारत के प्राचीन राजवंशों में कलचुरि राजवंश ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कलचुरियों ने लगभग बारह सौ वर्षों (५५०-१७४० ई०) तक मध्य-भारत में शासन किया, तथा भारतीय राजनीति को उद्वेलित कर अपना गौरव बढ़ाने का प्रयास किया। एक लम्बी अवधि तक शासन करने के कारण भारतीय जन जीवन को इनसे कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में बहुमूल्य धरोहर प्राप्त हुई है। कलचुरि एवं कलचुरिकालीन अन्य शिला लेखों में इस वंश का 'कटचुरि' तथा 'कलत्सूरि' नाम भी आया है। परन्तु वास्तव में ये नाम कलचुरि के ही तद्भव रूप में प्रयोग हुए हैं, क्योंकि बाद के अभिलेखों में सर्वत्र कलचुरि का ही उल्लेख है।

कलचुरि नरेशों ने अपना सम्बन्ध पुराणकालीन प्रसिद्ध कार्तवीर्य हैहय से बतलाया है। कलचुरि नरेश अधिकांश शैव थे। प्राचीन भारतीय इतिहास में कलचुरि राजवंश की चार शाखायें प्राप्त होती हैं : १—माहिष्मती के कलचुरि, २—सरयू पार के कलचुरि, ३—रत्नपुर के कलचुरि, तथा ४—त्रिपुरी के कलचुरि।

माहिष्मती के कलचुरि राजवंश ने कुल ७० वर्ष (५५०-६२० ई०) तक शासन किया। इस वंश का संस्थापक राजा कृष्णराज (५५०-५७५ ई०) था।[2] कृष्णराज के पश्चात् उसका पुत्र शंकर गण (५७५-६०० ई०) गद्दी पर बैठा। उसका एक ताम्रपत्र नासिक के आभोण[3] नामक स्थान से, तथा उसके एक मांडलिक का दूसरा अधूरा ताम्रपत्र गुजरात[4] से प्राप्त हुआ है। इन ताम्रपत्रों से ज्ञात होता है कि इसने पिता से प्राप्त राज्य को सुरक्षित रखा।

शंकरगण के पश्चात् उसका पुत्र बुद्धराज (६००-६३० ई०) गद्दी पर आसीन हुआ। उसके गद्दी पर बैठने के कुछ काल बाद ही, सम्भवतः ६०१ ई० में बदामी के चालुक्य वंश के मंगलेश ने उसके राज्य के दक्षिणी भाग पर आक्रमण किया, जिसमें बुद्धराज पराजित हुआ। मंगलेश को लूट का पर्याप्त धन प्राप्त हुआ।[5] इस घटना के पश्चात् बुद्धराज ने अपने राज्य की स्थिति सम्भाल ली। बुद्धराज ने लगभग बीस वर्ष शासन किया होगा, कि उसे चालुक्यराज पुलकेशिन द्वितीय के आक्रमण का भयंकर प्रहार सहना पड़ा। इस प्रहार ने बुद्ध-

१. देखिये, मजुमदार, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग १, पृ० २२३-२४; दि स्ट्रगिल फॉर ऐम्पायर, पृ० ३९।
२. इ० क० चे० इ०, भूमिका, पृ० १८०; वही, क्र० सं० १२०, पृ० ६११।
३. इ० क० चे० इ०, क्र० सं० १२, पृ० ३८।
४. वही, क्र० सं० १३, पृ० ४४।
५. मिराशी, कलचुरि नरेश और उनका राजत्वकाल, पृ० ९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज के राज्य की चूलें हिला दी। परिणामतः कलचुरि राज्य का सूर्यास्त हो गया। सम्भवतः यह पराजय ६२० ई० में हुई होगी।[1] क्योंकि इसके बाद लगभग १५० वर्षों तक कलचुरि वंश का कहीं पता नहीं चला।

सरयूपार के कलचुरि :

सरयूपार के कलचुरियों के सम्बन्ध में ऐतिहासिक सामग्री का नितान्त अभाव है। इनके मात्र दो अभिलेख कुशीनगर[2] (देवरिया) तथा वहाँ से ४० मील दूर कहला[3] नामक स्थान से प्राप्त हुए हैं। इन अभिलेखों से इनके ऐतिहासिक गौरव एवं पराक्रम आदि के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं प्राप्त होती। इस राजवंश का वंशवृक्ष उपर्युक्त अभिलेखों में अंकित है। इस वंश का प्रथम शासक-प्रथम शंकरगण तथा अंतिम शासक सोढ़देव था, जिसका अभिलेख कहला में प्राप्त हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके राज्य को गाहड़वालों ने जीत लिया, जिनका प्रताप सम्पूर्ण उत्तरी भारत पर छाया हुआ था।

रत्नपुर के कलचुरि :

नवीं शताब्दी ईस्वी के अन्त के लगभग त्रिपुरी के कलचुरियों ने दक्षिण कोशल में अपनी शाखा स्थापित करने का प्रयास किया। प्रथम कोकल्ल के पुत्र द्वितीय शंकरगण ने कोशल के शासक से पा'ल देश जीत लिया।[4] शंकरगण ने इस प्रदेश का राज्य अपने छोटे भाई को दे दिया, जिसकी राजधानी तुम्माण थी। दो तीन पीढ़ियों बाद स्वर्णपुर के सोमवंशी राजा ने इस शाखा को समाप्त कर किया। किन्तु कालान्तर में कलिंग राज नामक कलचुरि राजकुमार ने त्रिपुरी नरेश द्वितीय कोकल्ल देव के समय में दक्षिण कोशल में इस वंश का पुनर्संस्थापन किया। उसने पुनः तुम्माण नगर में राजधानी स्थापित की।[5] कलिंग राज ने १००० ई० से १०२० ई० तक शासन किया। इस बीच उसने आसपास के देशों को जीत कर एक सुव्यवस्थित शासन स्थापित किया।

रत्नपुर के कलचुरियों का शासन १००० ई० से १५२५ ई० तक चलता रहा। इस बीच कलिंगराज से लेकर वाहरराज तक ग्यारह राजाओं ने क्रम से शासन किया। इस वंश का सबसे प्रतापी राजा प्रथम जाजल्लदेव (१०९०-११२० ई०) हुआ है, जिसने अनेक राजाओं को जीत कर एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की थी। जाजल्लदेव से मैत्री स्थापित करने के लिये कन्नौज से गाहड़वाल, तथा जेजाकभुक्ति के चन्देल जैसे प्रतापी शासक भी इच्छा व्यक्त करने लगे थे, तथा परिणामतः इनकी मैत्री हो गयी थी।[6] इसने तांबे के सिक्के चलवाये और अपने नाम से जाजल्लपुर नामक नगर बसाया, जो आज भी जांजगीर (जाजल्लनगर) के

---

१. वही, पृ० ११।
२. इ० क० चे० इ०, क्र० सं ७३, पृ० ३७५।
३. वही, क्र० सं० ७४, पृ० ३८२।
४. मिराशी, पृ० ३५।
५. वही, पृ० ३६; डा० हीरालाल, मध्यप्रदेश का इतिहास, पृ० ४८।
६. डा० हीरालाल, मध्यप्रदेश का इतिहास, पृ० ५०-५१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाम से विद्यमान है।[१] इसके अतिरिक्त उसने पाली स्थित एक देवालय की मरम्मत करवाई।[२] वह शैव तो था ही, साथ ही बौद्ध धर्म में भी प्रगाढ़ अभिरुचि रखता था।[३] इस शाखा के अन्य शेष राजाओं के शासन काल में कोई विशेष उल्लेखनीय घटना नहीं हुई, जिसका ऐतिहासिक महत्व हो।

रत्नपुर के कलचुरियों की ही एक छोटी शाखा रायपुर में स्थापित हुई, जिसके एक प्रमुख शासक ब्रह्मदेव के (१४०३ ई० तथा १४०५ ई०) दो अभिलेख प्राप्त हुए हैं।[४] रत्नपुर के वाहरराज के काल में छत्तीसगढ़ पर पठानों के आक्रमण हुए, किन्तु अठारहवीं शताब्दी तक यहाँ किसी न किसी प्रकार हैहयवंशियों का राज्य बना रहा।[५]

त्रिपुरी के कलचुरि :

त्रिपुरी के कलचुरियों का शासन काल ६७५ ई० से १२१० ई० तक माना जाता है। इस राजवंश का संस्थापक वामराज देव (६७५-७०० ई०) नाम का एक महत्वाकांक्षी राजा हुआ है। इसके राज्य विस्तार की योजना दक्षिण में सफल न हो सकी, क्योंकि वहाँ चालुक्यों का एक सुदृढ़ एवं शक्तिशाली शासन था। इस स्थिति में उसने उत्तर की ओर प्रसार की योजना बनाई। चूँकि हर्ष का साम्राज्य छिन्न-भिन्न होकर नष्ट हो गया था, अतः उसे उत्तर में प्रसार की दृष्टि से सफलता प्राप्त होना स्वाभाविक था। उसने आगे बढ़ कर कालिंजर के दुर्भेद्य दुर्ग पर आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर उसे अपनी राजधानी बनाया। वहीं से उसने पूरे बघेल खण्ड एवं बुन्देलखण्ड पर अधिकार कर लिया।[६] इतना ही नहीं, उसने गंगा पार बढ़कर रायबरेली, प्रतापगढ़ व और आगे सरयूपार कर, गोरखपुर तक के क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। उसने अपने छोटे भाई लक्ष्मणराज को सरयूपार, गोरखपुर का शासन भार सौंप दिया। इस प्रकार इसका मध्य-भारत में एक विशाल साम्राज्य सरयू तट से लेकर नर्मदा तक फैल गया।[७]

वामराज देव की कालिंजर की राजधानी सैनिक महत्व के दृष्टिकोण से बनाई गई थी। उस काल में वही राजा स्थायित्व एवं सुदृढ़ता प्राप्त कर सकता था जिसके हाथ में कालिंजर एवं चित्रकूट के दुर्ग होते थे। ये दुर्ग सामारिक महत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण थे। इसकी दूसरी राजधानी नर्मदा तट पर त्रिपुरी में थी। त्रिपुरी का उल्लेख महाभारत में भी आया है।[८] इससे इसकी प्राचीनता स्पष्ट है। वामराज देव इस राज्य का संस्थापक था, अतः उसके उत्तराधिकारियों ने अभिलेखों में उसके नाम के साथ परम भट्टारक, महाराजधिराज,

१. मिराशी, पृ० ३९।
२. इ० क० चे० इ०, क्र० सं० ७८-८१, पृ० ४१७।
३. वही, क्र० सं० ७७, पृ० ४०९।
४. मिराशी, पृ० ४२।
५. वही, पृ० ४२।
६. मिराशी, कलचुरि नरेश और उनका राजत्वकाल, पृ० १२।
७. वही।
८. मिराशी, कलचुरिनरेश और उनका काल, पृ० १३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और परमेश्वर आदि सम्मान सूचक पदवियाँ अंकित कराई हैं। प्रथम शंकरगण के सागर से प्राप्त एक अभिलेख में उसके नाम के साथ पूरी पदवियाँ दी गई हैं[1]।

वामराज देव के बाद प्रथम शंकर गण (७५०–७७५ ई०) राजगद्दी पर बैठा। इन दोनों के बीच पचास वर्ष का अन्तर पड़ता है। संभव है, इस बीच अन्य राजा राज्यासीन हुए हों। परन्तु उनका कोई उल्लेख नहीं मिलता। चेदि देश में प्राप्त प्राचीनतम अभिलेख प्रथम शंकर गण के ही हैं जो सागर और कटनी आदि स्थानों से प्राप्त हुए हैं[2]। इसके समय में कोई उल्लेखनीय घटना नही घटी।

प्रथम शंकरगण के पश्चात् प्रथम लक्ष्मण राज (८२५–८५० ई०) गद्दी पर बैठा। इसका एक अभिलेख करीतलाई में प्राप्त हुई। इन दोनों के बीच में भी लगभग ५० वर्ष का अन्तर पड़ता है। यह काल राजनीतिक उथल-पुथल की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। क्योंकि इस काल में राजपूताना के गुर्जर-प्रतिहार, बंगाल के पाल तथा मान्यखेट के राष्ट्रकूट राज्य-लिप्सा में एक दूसरे से संघर्ष करने में लीन थे। इन तीनों दुर्मद शक्तियों ने तत्कालीन अन्य शक्तियों को आपसी संघर्ष में क्षीण कर डाला था। करीतलाई अभिलेख[3] से ज्ञात होता है कि कलचुरि नरेश प्रथम लक्ष्मण राज शक्तिशाली राष्ट्रकूटों से अपना सन्धिभाव रखता था, और उसने कौटुम्बिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया था, क्योंकि उसके लिए पराक्रमी राष्ट्रकूटों से पार पाना किसी प्रकार सम्भव नहीं था। इसीलिए कलचुरि राजकुमारियों का कई पीढ़ियों तक राष्ट्रकूटों से विवाह सन्बन्ध स्थापित होने का उल्लेख भी मिलता है[4]।

प्रथम लक्ष्मण राज के बाद त्रिपुरी की गद्दी पर प्रथम कोक्कल्ल देव (८५०–८९० ई०), द्वितीय शंकरगण (८९०–९१० ई०) तथा बाल हर्ष (९१०–९१५ ई०) नामक राजा क्रम से एक के बाद एक गद्दी पर बैठे। इनमें सबसे प्रतापी प्रथम कोकल्ल था, जिसने चालुक्यों से दीर्घकाल तक संघर्ष किया। अपने राज्य को सुदृढ़ बनाने के लिए उसने राष्ट्रकूट कृष्ण द्वितीय से अपनी पुत्री व्याह दी थी[5], तथा चन्देल कन्या नट्टादेवी से विवाह कर चन्देलों से मैत्री स्थापित की थी[6]। इस प्रकार कोकल्ल ने उत्तर तथा दक्षिण में अपना प्रभाव स्थापित किया था। शेष द्वितीत शंकरगण तथा बाल हर्ष के समय में कोई उल्लेखनीय ऐतिहासिक घटना नहीं घटी, न ही इनके सम्बन्ध में कोई जानकारी उपलब्ध है।

बाल हर्ष के बाद प्रथम युवराज देव (९१५–९४५ ई०) त्रिपुरी की गद्दी पर बैठा। भारत के तत्कालीन राजाओं में उसने अपने शौर्य एवं प्रभुत्व से एक विशिष्ट स्थान बना रखा था। उसकी प्रशंसा एवं ऐश्वर्य का वर्णन उसके शत्रुओं के अभिलेखों में भी पाया जाता है। उसने गौड़, मालवा एवं दक्षिण कोशल के राजओं को पराजित किया था। राष्ट्रकूट इन्द्र तृतीय

---

१. इ० क० चे० ए०, क्र० सं० ३५, पृ० १७४।
२. वही, क्र० सं० ३५, ३६, पृ० १७४, १७६; अ० भा० ओ० रि० इ०, खं० ३५, पृ० २०।
३. इ० क० चे० इ०, क्र० सं० ३७, पृ० १७८।
४. मिराशी, कलचुरि नरेश और उनका राजत्वकाल, पृ० १४३ (परिशिष्ट ३)।
५. डा० हीरालाल, मध्यप्रदेश का इतिहास, पृ० ३३।
६. मिराशी, कलचुरि नरेश और उनका राजत्वकाल, पृ० १६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का कलचुरि राजवंश में ननिहाल था[1], अतः इस घनिष्ट सम्बन्ध के कारण ही युवराज देव ने प्रतीहार नरेश महेन्द्रपाल एवं इन्द्र तृतीय से हुए युद्ध में इन्द्र तृतीय की सहायता की थी। परिणाम स्वरूप इन दोनों शक्तियों के सामने महेन्द्रपाल टिक न सका, और उसे युद्ध क्षेत्र से पलायन करना पड़ा[2]। यह वह काल था, जब गुर्जर प्रतिहार वंश का सूर्य अस्ताचल को जा रहा था। उसी काल में महाकवि राजशेखर भी, जो महेन्द्रपाल एवं महीपाल के राजाश्रय में था, गुर्जर प्रतिहार राजाओं को त्याग युवराज देव के दरबार में त्रिपुरी आ गया, और वहीं उसने संस्कृत साहित्य शास्त्र पर काव्य मीमांसा तथा विद्धशाल भंजिका नामक दो महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की[3]।

युवराज देव के समय की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी पयोष्णी (पूर्णा नदी) तट का युद्ध। यह युद्ध विलासी राष्ट्रकूट राजा चतुर्थगोविन्द[4] एवं उसके चाचा तृतीय अमोघवर्ष के बीच हुआ था। अमोघवर्ष युवराज देव का दामाद था और इसी के आश्रय में रहता था[5]। अतः युवराज देव ने उस की पूर्णरूपेण सहायता की। पयोष्णी तट पर दोनों सेनाओं का संघर्ष हुआ और विजयश्री कलचुरि सेना को मिली[6]। इसी समय राष्ट्रकूट राज्य में विप्लव हुआ और चतुर्थगोविन्द मार डाला गया[7]। उसके उपरान्त तृतीय अमोघवर्ष गद्दी पर बैठा। इस युद्ध की सफलता से युवराज देव का भारत के उत्तरी एवं दक्षिणी दोनों भागों में प्रभुत्व एवं यश फैला, और उसकी चक्रवर्ती होने की महत्वाकांक्षा सफलीभूत हुई। इसी अवसर पर महाकवि राजशेखर का विद्धशाल भंजिका नाटक भी अभिनीत हुआ था[8]। इस नाटक का कथानक पयोष्णी के युद्ध पर आधारित है[9]।

युवराज देव की प्रसिद्धि का एक कारण उसका शैव-सम्प्रदाय को राजाश्रय देना भी है। इसी के राजत्व काल में गोलकी मठ नाम का एक देवालय बना, जिसे युवराज देव द्वारा तीन लाख गांव दान देने का उल्लेख है[10]।

युवराज देव के बाद उसका पुत्र द्वितीय लक्ष्मणराज (सन् ९४५-९७० ई०) गद्दी पर बैठा। वह भी पिता की भांति ही पराक्रमी था। उस ने गद्दी पर बैठते ही बंग, पांड्य,

---

१ अल्तेकर, राष्ट्रकूटज़ एण्ड देयर टाइम्स, पृ० १०३।

२. मिराशी, कलचुरि नरेश और उनका राजत्वकाल, पृ० १६; राष्ट्रकूटज़ एण्ड देयर टाइम्स, पृ० १०२।

३. मिराशी, कलचुरि नरेश और उनका राजत्वकाल, पृ० १६।

४. ऐपि० इंडि०, भाग ३, पृ० २९८।

५. वही, पृ० १६६।

६. मिराशी, कलचुरि नरेश और उनका राजत्वकाल, पृ० १७।

७. वही।

८. मिराशी, कलचुरि नरेश और उनका राजत्वकाल, पृ० १७।

९. मिराशी, संशोधन मुक्तावली, प्रथम भाग, पृ० १८८-१९५।

१०. आन्ध्र हिस्टॉरिकल सोसाइटी का जरनल, खं० ४, पृ० १४७; मध्यप्रदेश का इतिहास, पृ० ३४; मिराशी, कलचुरि नरेश और उनका राजत्वकाल, पृ० १८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लाट, गुर्जर, कश्मीर, दक्षिण कोशल तथा उत्कल के राजाओं को पराजित किया[1]। उसने उत्कल नरेश से कालिय नाग की रत्न-जटित स्वर्ण मूर्ति छीन ली थी, जिसे बाद में उसने सोमनाथ मंदिर को अर्पित कर दिया[2]। इसी प्रकार के गृह युद्धों ने भारतीय शासकों को स्वदेश-रक्षा से विमुख कर दिया।

द्वितीय लक्ष्मण राज के पश्चात् उसका पुत्र तृतीय शंकरगण (९७०–९८० ई०) गद्दी पर बैठा। उसने कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारों एवं महोत्सवपुर (महोबा) के चन्देलों से युद्ध किया। चन्देलों से हुए युद्ध में उसने वीरगति पाई[3]। वैसे कलचुरि नरेश शिव के उपासक थे, किन्तु करीतलाई के अभिलेख में उसे परम वैष्णव कहा गया है। महामहोपाध्याय मिराशी ने उसका एक खण्डित शिलालेख प्रकाशित किया है[4]। उसमें प्रथम श्लोक विष्णु की स्तुति पर है। इससे स्पष्ट है कि वह विष्णु भक्त भी था।

तृतीय शंकर गण के बाद उसका भाई द्वितीय युवराज देव (९८०–९९० ई०) गद्दी पर बैठा। उसके राजत्वकाल में परमार नरेश वाक्पति मुंज का आक्रमण हुआ था। उसमें वह पराजित हुआ और त्रिपुरी पर मुंज का अधिकार हो गया[5]। परन्तु मुंज को तत्काल ही चालुक्य नरेश तैलप से युद्ध करना पड़ा, अतः कलचुरियों से सन्धि कर उनकी राजधानी उन्हें लौटानी पड़ी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय कलचुरि नरेश द्वितीय युवराज देव की शक्ति क्षीण हो चुकी थी, क्योंकि पश्चिमोत्तर भारत पर जब सुबुक्तग़ीन एवं महमूद के आक्रमण आरम्भ हुए और तत्कालीन सीमान्त शासक जयपाल एवं आनन्द पाल ने भारत के सभी शासकों को संघ बनाकर युद्ध करने का निमंत्रण भेजा, उस संघ में कलचुरि नरेश सम्मिलित नहीं हुआ[6]। ऐसा हो सकता है कि उसे निर्बल जान कर आमंत्रित नहीं किया गया हो।

द्वितीय युवराज देव के बाद द्वितीय कोकल्ल देव (९९०–१०२५ ई०) गद्दी पर बैठा। इस समय पश्चिमी सीमान्त पर महमूद ग़जनवी के आक्रमण आरम्भ हो गये थे। द्वितीय कोकल्ल पर्याप्त संघर्षशील, एवं प्रतापी जान पड़ता है, क्योंकि उसने गुर्जर प्रतिहार नरेश राजापाल, गौड़ के महीपाल, तथा चौलुक्य नरेश पंचम विक्रमादित्य को पराजित किया[7]। मुसलमान इतिहासकारों ने महमूद ग़जनवी से मथुरा के पास महावन नामक स्थान पर कुलचन्द्र नामक एक राजा की मुठभेड़ होने की बात लिखी है, जिसके पास अनेक किले और असंख्य हाथी थे। प्रो० होडीवाला का मत कि वह राजा कुलचन्द्र (कोकल्ल वैद्य) ही था, उचित प्रतीत होता है[8]।

---

१. डा० हीरालाल, मध्य प्रदेश का इतिहास, पृ० ३६।
२. मिराशी, कलचुरि नरेश और उनका राजत्वकाल, पृ० १९।
३. वही।
४. अ० भा० ओ० रि० इ०, खं० ३५, पृ० २३।
५. डा० हीरालाल, मध्य प्रदेश का इतिहास, पृ० ३६।
६. मिराशी, कलचुरि नरेश और उनका राजत्वकाल, पृ० २०।
७. वही।
८ प्रो० होडी वाला, स्टडीज इन इण्डोमुस्लिम हिस्ट्री, पृ० १४६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीय कोकल्लदेव के बाद उसका पुत्र गांगेयदेव (१०१५–१०४१ ई०) गद्दी पर बैठा। वह अपने पूर्वजों से अधिक प्रतापी एवं पराक्रमी था। यह वह काल था जब भारत पर महमूद के आक्रमण बराबर हो रहे थे और लूट से उत्तरी भारत तबाह हो रहा था। गुर्जर प्रतिहार वंश की शक्ति क्षीण हो गई थी, और उसके ऐश्वर्य का सूर्य अस्त हो रहा था। महमूद ने कन्नौज पर आक्रमण किया[1]। प्रतिहार नरेश राज्यपाल भयभीत हो, भाग कर गंगा पार बारी नामक स्थान पर चला गया[2]। इसका परिणाम यह हुआ कि मध्य भारत के राजे जिन्हें अपने गौरव की थोड़ी भी लाज शेष थी, महमूद एवं राज्यपाल के विरुद्ध उठ खड़े हुए। इनमें प्रमुख विद्याधर चन्देल, भोज परमार तथा गांगेयदेव कलचुरि थे। इनका नेतृत्व विद्याधर चन्देल ने ही किया था। परन्तु कुछ काल बाद गांगेयदेव और भोज की मैत्री भी नहीं चली, और भोज ने गांगेयदेव को पराजित कर अपनी इच्छा पूर्ति कर ली[3]। परिणामतः इन दोनों राजवंशों का वैमनस्य काफी दिनों चला।

महमूद के आक्रमण से प्रतिहार वंश समाप्तप्राय था, तथा चन्देल राजवंश भी शक्तिहीन हो चला था। इस स्थिति का लाभ उठा कर गांगेयदेव ने वाराणसी से यमुना नदी पर्यन्त राज्य को अपने साम्राज्य में मिला लिया और त्रिपुरी के अतिरिक्त प्रयाग में अपनी दूसरी राजधानी स्थापित की[4]। बाह्य आक्रमणों से लाभ उठा कर पारस्परिक युद्धों में शक्ति क्षय कर के अल्पकालिक साम्राज्य विस्तार करके ऐसे शासकों ने भारत के भविष्य को ठेस ही पहुँचाई। तारीखे-बैहक़ी के अनुसार गांगेय के राजत्वकाल में ही वाराणसी पर अहमद नियाल्तग़िन नामक एक पंजाबी सूबेदार का आकस्मिक आक्रमण हुआ, जो इस प्रदेश को लूट पाट कर वापस चला गया। भारतीय प्रशासक घर में शेर थे, किन्तु न जाने क्यों इन आक्रामकों से आत्मरक्षा तथा राज्य रक्षा करने में असमर्थ थे।

महमूद के साथ आये प्रसिद्ध इतिहासकार अलबेरुनी ने भी तिश्रौरी (त्रिपुरी) तथा गंग (गांगेयदेव) का उल्लेख किया है[5]। गांगेयदेव के काल में ही उसके पुत्र कर्ण ने गया पर आक्रमण किया तथा इस अवसर पर अनेक बौद्ध विहार लूटे गये तथा बौद्ध भिक्षु एवं उपासक मारे गये थे। उस समय वहाँ पाल वंशीय नयपाल का राज्य था। गया का यह आक्रमण अतिश दीपंकर नामक एक प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान की मध्यस्थता से समाप्त हुआ[6]। गांगेयदेव परम शिवभक्त था। उसका देहावसान प्रयाग में अक्षय वटवृक्ष के पास हुआ[7]। ऐसा उल्लेख

१. गर्दीज़ी, पृ० ७२-७३; उत्बी, पृ० ३०५।
२. उत्बी, पृ० ३०९; नाज़िम, पृ० १०८।
३. पारिजात मंजरी नाटक की प्रस्तावना, (पृ० २१ का श्लोक); डा० हीरालाल, मध्य प्रदेश का इतिहास, पृ० ३७।
४. मिराशी, कलचुरि नरेश और उनका राजत्वकाल, पृ० २२।
५. अलबेरूनीकालीन भारत, पृ० १५२ (श्री आर० के० शर्मा का अनुवाद), इलाहाबाद, १९६७।
६. मिराशी, पृ० २२।
७. मिराशी, पृ० २२; डा० हीरालाल, मध्य प्रदेश का इतिहास, पृ०, ३७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है कि उसके साथ उसकी सौ रानियाँ सती हुई थीं[1]। यह दृश्य वास्तव में बड़ा ही भयावह एवं हृदय विदारक रहा होगा।

गांगेयदेव के बाद उसका पुत्र कर्ण (१०४१–१०७३ ई०) गद्दी का उत्तराधिकारी हुआ। वह पराक्रम में अपने पिता से भी बढ़कर था। उसने बंग देश पर आक्रमण कर वहाँ के राजा गोविन्द चन्द्र को पदच्युत कर ब्रजवर्मा को राजगद्दी पर बिठाया। कर्ण ने पल्लव, चोल, कुन्तल एवं गुर्जर राजाओं को भी एक एक कर पराजित किया[2]। एक शिलालेख में उल्लेख है कि जब कर्ण के आक्रमण का समाचार गुर्जर रमणियों को मिला, तो उनके कपोलों पर से काजलयुक्त अश्रुधारा बह निकली और उनके माथे का सौभाग्य चिन्ह धूमिल हो गया[3]। इस प्रकार के वर्णन भारत के राजनैतिक कलह एवं पारस्परिक स्पर्धा व घृणा के परिचायक हैं। अन्यथा कोई वीर अबलाओं की अश्रुधारा पर गर्व नहीं करेगा।

परमार राज भोज की मृत्यु के बाद उसने गुजरात के राजा भीम से मित्रता कर मालवा पर आक्रमण किया और उसके उत्तराधिकारी जयसिंह को पदच्युत कर दिया। बाद में कर्ण ने मालवा को अपने राज्य में मिला लिया। परिणामतः भीम असन्तुष्ट हुआ और उसने कर्ण पर आक्रमण किया। अन्त में कर्ण ने उसे भोज की सुवर्ण मंडपिका देकर सन्तुष्ट किया तथा सन्धि कर ली[4]। इसके बाद कर्ण ने चन्देल राजा देववर्मा पर आक्रमण किया और उसे मार डाला, तथा उसके राज्य को अपने राज्य में मिला लिया[5]। कर्ण ने मगध एवं गौड़ देश के राजा विग्रहपाल तृतीय पर भी आक्रमण किया, तथा विग्रहपाल ने अपार सम्पत्ति देकर अपनी रक्षा की। कर्ण द्वारा वीर भूमि जिले में स्थापित एक स्तम्भ के अवशेष से जो निकट भूत में प्राप्त हुआ है, यह स्पष्ट हो जाता है कि इस आक्रमण में कर्ण को सफलता प्राप्त हुई थी[6]।

कर्ण ने १०५२ ई० तक पूरे उत्तरी भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। पूर्व में पाल और वर्मन राजाओं से कौटुम्बिक सम्बन्ध और गुजरात के भीम से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध होने के कारण उसकी दोनों सीमाएँ सुरक्षित थीं। दक्षिण के चोल, चौलुक्य राजाओं को उसने पराजित कर प्रभावहीन कर दिया था। निर्बल परमार एवं चन्देल वंशी राजाओं को पराजित कर अपने राज्य में मिला लिया। इस प्रकार उसके राज्य की सीमा उत्तर में कांगड़ा तक पहुँच गई थी[7]। अपने को चक्रवर्ती घोषित करने की कामना से प्रेरित होकर उसने अपना दूसरा राज्याभिषेक कराया। सम्भवतः यह घटना १०५२ ई० की है[8]।

कर्ण को क्रमबद्ध विजयों एवं द्वितीय राज्याभिषेक के प्रभुत्व सम्पन्न वैभव के आधार

---

१. मिराशी, पृ० २२।
२. डा० हीरालाल, पृ० ३८; मिराशी पृ० २३।
३. इ० क० चे० इ०, क्र० सं० ५१, पृ० २६३।
४. मिराशी, पृ० २४।
५. बिल्हण, विक्रमांकदेव चरित, सर्ग १८, श्लोक ९३।
६. इ० क० चे० इ०, क्र० सं० ४९, पृ० २५०।
७. डा० हीरालाल, मध्य प्रदेश का इतिहास, पृ० ३८; मिराशी, पृ० २४-२५।
८. इ० क० चे० इ०, क्र० सं० ५३, पृ० २७८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर इतिहास में 'हिन्दू नेपोलियन' की पदवी दी गई है[१]। इसमें सन्देह भी नहीं है कि कर्ण कलचुरि वंश का सबसे प्रतापी राजा था, और जिस गति से बढ़ रहा था, यदि परिस्थितियाँ प्रतिकूल नहीं होतीं, तो वह पश्चिमोत्तर सीमान्त पर बढ़ती हुई मुस्लिम शक्ति की बागडोर रोक देता। कर्ण समझ गया था कि मुसलमानों से जमकर लोहा लेने के लिए भारत में एक बलशाली संगठित केन्द्रीय सत्ता की आवश्यकता है। वह देख चुका था कि गुर्जर प्रतिहार एवं चन्देल राज्यों की जड़े मुसलमानों द्वारा कैसे उखाड़ फेकी गई थीं। वह बाह्य खतरे से पूर्ण सावधान था, अतः उत्तरी भारत पर वह एकछत्र राज्य स्थापित करना चाहता था। दुर्भाग्य कि उसकी मनोकामना पूरी न हो सकी।

उसके जीवन के उत्तरार्द्ध की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी, उसके तथा पदच्युत जयसिंह परमार एवं चौलुक्य प्रथम सोमेश्वर के बीच युद्ध। जयसिंह ने प्रथम सोमेश्वर से अपने राज्य प्राप्ति में सहायता मांगी। प्रथम सोमेश्वर यद्यपि एक बार धारा नगरी पर आक्रमण कर चुका था, लेकिन आश्रय में आये जयसिंह की सहायता करने में तत्पर हो गया। इसका मूल कारण था कर्ण के पराक्रम का भय। वह जानता था कि कर्ण का बलशाली रहना कभी भी भयावह हो सकता है। अतः उसने अपने पुत्र विक्रमादित्य को एक बड़ी सेना देकर युद्ध करने के लिए भेजा। इस युद्ध में कर्ण पराजित हुआ और जयसिंह को पुनः धारा में पदासीन किया गया। यह घटना १०५५ ई० के लगभग घटी[२]।

इस युद्ध ने कर्ण की स्थिति डांवाडोल कर दी। चन्देल नरेश कीर्ति वर्मा ने कर्ण को पराजित कर खोई हुई चन्देल राज्य लक्ष्मी हस्तगत कर ली[३]। यह विजय चन्देलों की महान् विजय थी, जिस पर अपार हर्ष मनाया गया। इस अवसर पर प्रबोध चन्द्रोदय नामक संस्कृत नाटक सर्व प्रथम अभिनीत हुआ। इस नाटक की भूमिका में कर्ण तत्कालीन राजवंशों में रुद्र की भाँति प्रतीत होता है[४]। अजयगढ़ के एक शिलालेख में कीर्तिवर्मा को अगस्त्य की उपमा दी गई है, जिन्होंने कर्ण रूपी समुद्र का पान किया[५]। कीर्तिवर्मा ने अपना राज्य कब वापस लिया, इस घटना के सम्बन्ध में स्मिथ ने १०६० ई० का समय बतलाया है, परन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता[६]। फिर भी यदि स्मिथ का मत मान लिया जाय तो चन्देल राज्य लगभग आठ वर्षों तक कर्ण के अधिकार में रहा।

कर्ण चन्देलों द्वारा पराजित होकर हताश नहीं हुआ, बल्कि उसने पुनः चौलुक्य सम्राट प्रथम सोमेश्वर के उत्तराधिकारी सोमेश्वर द्वितीय तथा गंग नृपति उदयादित्य की सहायता से परमार नरेश जयसिंह पर आक्रमण किया। इस युद्ध में जयसिंह मारा गया। इस घटना से मालवा में हाहाकार मच गया, और इसका बड़ा भयंकर परिणाम रहा[७]। परन्तु मालवा

१. मिराशी, पृ० २५।
२. ऐपि० इंडि०, खं० ३, पृ० ४८।
३. डा० हीरालाल, मध्य प्रदेश का इतिहास, पृ० ३८।
४. प्रबोध चन्द्रोदय, पृ० १९।
५. ऐपि० इंडि०, खं० १, पृ० २१६।
६. इं० हि० क्वा, खं० ३०, पृ० १८३।
७. मिराशी, पृ० २६-२७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिक दिनों तक विजेताओं के हाथ में नहीं रहा। परमार नरेश उदयादित्य ने उसे पुनः अपने अधिकार में ले लिया। एक शिलालेख में उदयादित्य की उपमा वराह अवतार एवं सूर्य से दी गई है[1]। यशःकर्ण के खैरा ताम्रपत्र से स्पष्ट है कि कर्ण अपने विरुद्ध उठ खड़े चन्देल परमार एवं चौलुक्य राजाओं की शक्ति के सम्मुख विवश हो गया[2]। अतः वह अपने पुत्र यशःकर्ण का राज्याभिषेक कर राज्य भार से अलग हो गया[3]।

कर्ण जितना बड़ा विजेता तथा अपने विजित शत्रुओं के प्रति कठोर व्यवहार करने वाला था, उतना ही बड़ा धर्म, कला एवं विद्या का उपासक भी था। वह स्वयं शिवोपासक था परन्तु उसके समय में वाराणसी में बौद्ध धर्म का बड़ा ही प्रभाव था[4]। कर्ण बड़ा ही दानी था; उसने अनेक ग्रामों का दान किया था। उसके दरबार में विल्हण नाम का एक महाकवि रहता था। विल्हण, नाचिराज, कर्पूर तथा विद्यापति आदि अनेक कवियों ने अपने काव्यों में कर्ण के पराक्रम का यश गाया है[5]। संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत के कवियों ने भी उसकी यशगाथा लिखी है।

कर्ण के बाद उसका पुत्र यशःकर्ण (१०७३-११२३ ई०) गद्दी पर बैठा। उसने राज्यारोहण के तत्काल बाद सप्तम विजयादित्य चौलुक्य पर आक्रमण किया और उसे पराजित कर दिया। परन्तु कुछ ही काल बाद उसके राज्य से कन्नौज के आस-पास का प्रदेश तथा बनारस आदि का क्षेत्र चन्द्रदेव गाहड़वाल ने छीन लिया[6]। यशःकर्ण ने उसे प्राप्त करने का प्रयास किया, किन्तु असफल रहा। उसे वाराणसी छोड़ अपनी राजधानी पुनः त्रिपुरी लानी पड़ी।[7] इतना ही नहीं, परमार नरेश लक्ष्मण देव ने त्रिपुरी पर आक्रमण कर यशःकर्ण को पराजित किया, जिससे उसकी शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गई और उसका राज्य मात्र बघेलखण्ड तक सिमट कर रह गया।[8]

यशःकर्ण के बाद उसका पुत्र गयाकर्ण (११२३-११५३ ई०) गद्दी पर बैठा। किन्तु उसका अधिकार त्रिपुरी के आसपास के क्षेत्र पर ही रह गया था। उसके समय की महत्वपूर्ण घटना थी रत्नपुर के कलचुरियों का त्रिपुरी के कलचुरियों से अलग हो जाना। पहले वे मांडलिक के रूप में कार्य करते थे। वे मुख्य शाखा की दुर्बलता के कारण अलग हो गये और द्वितीय रत्नदेव ने अपना अलग से राज्य स्थापित कर लिया।[9]

गयाकर्ण के बाद उसके दोनों पुत्र नरसिंह (११५३-११६३ ई०) तथा जयसिंह

---

१. ऐपि० इंडि०, खं० २, पृ० १८२।
२. इ० क० चे० इ०, क्र० सं० ५६, पृ० २८९।
३. डा० हीरालाल, मध्य प्रदेश का इतिहास, पृ० ३८।
४. इ० क० चे० इ०, क्र० सं० ५२, पृ० २७५।
५. मिराशी, पृ० २९।
६. डा० हीरालाल, मध्य प्रदेश का इतिहास, पृ० ३९।
७. मिराशी, पृ० ३०।
८. डा० हीरालाल, मध्य प्रदेश का इतिहास, पृ० ३९।
९. वही, पृ० ४९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(११६३-११८८ ई०) क्रम से एक के बाद एक गद्दी पर बैठे, किन्तु इनका मात्र शासन ही चलता रहा, कोई उल्लेखनीय घटना नहीं घटी ।

जयसिंह के बाद उसका पुत्र विजय सिंह (११८८-१२१० ई०) गद्दी पर बैठा । वह इस वंश का अन्तिम राजा माना जाता है । उसके उपरान्त अजयसिंह के नाम का भी उल्लेख मिलता है किन्तु प्रमाण नहीं मिलता कि वह गद्दी पर बैठा अथवा नहीं । विजय सिंह के समय में कलचुरि शक्ति नाम मात्र को रह गई थी । इस स्थिति में चन्देल नरेश त्रैलोक्य वर्मा ने आक्रमण कर उसके राज्य को अपने राज्य में मिला लिया ।[1] कालान्तर में यह राज्य भी मुस्लिम साम्राज्य में विलीन हो गया ।

जेजाक भुक्ति के चन्देल :

चन्देल वंश की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जनश्रुतियों, अभिलेखों तथा ऐतिहासिक तथ्यों को लेकर विद्वानों में अनेक मत-मतान्तर हैं । प्रसिद्ध जनश्रुति के अनुसार इस वंश का सर्व-प्रथम राजा चन्द्र वर्मा था । उसकी उत्पत्ति काशी के गाहड़वाल नृपति इन्द्रजित के पुरोहित हेमराज की कुमारी कन्या हेमवती एवं चन्द्रमा के सम्भोग से हुई बतलाई जाती है ।[2] चन्द्र-वर्मा का प्रथम राजा होना महोबा के कानूनगो परिवार की वंशावली से भी ज्ञात होता है ।[3] परन्तु आज के इस वैज्ञानिक युग में जब मनुष्य ने चन्द्रारोहण करके चन्द्रमा की स्थिति स्पष्ट कर दी है, ऐसी जनश्रुतियों पर विश्वास करना असम्भव है ।

अभिलेखों में इस वंश का संस्थापक अत्रि को माना गया है ।[4] अभिलेखों आदि प्रमाणों से इस वंश की स्थापना तिथि लगभग ७४० ई० ठहरती है ।[5] इस राज्य का आरम्भिक विकास नन्तुक (८३१ ई०) से लेकर राहिल (९०० ई०) तक हुआ । यह राज्य इस समय गुर्जर प्रतिहारों के संरक्षण में था । परन्तु इसकी आन्तरिक स्थिति सुदृढ़ हो गई थी ।

नन्तुक—(८३१-८४५ ई०) एक प्रभावशाली शासक था जिसने अपने राज्य का विस्तार किया और महोत्रा (महोत्सवपुर) को अपनी राजधानी बनाया । डॉ० स्मिथ के अनुसार महोबा राजधानी बनाने से पूर्व ही चन्देलों का विकास हो चुका था ।[6] नन्तुक और नागभट द्वितीय से ८३२ ई० में संघर्ष भी हुआ था, जिसके परिणामस्वरूप उसे गुर्जर प्रतिहारों की आधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी । अरब यात्री अलमसूदी ८५१ ई० में भारत आया था, जिसने प्रतिहारों की शक्तिशाली सेना का उल्लेख किया है ।[7] अतः नन्तुक का प्रतिहारों का संरक्षण प्राप्त करना एवं करद होना स्पष्ट है । डॉ० रायचौधरी ने इसे प्रतिहारों के पूर्ण आधीन

१. मिराशी, पृ० १३४; मित्र केशव चन्द्र—चन्देल और उनका राजत्वकाल, पृ० १३४ ।
२. ए० एस० आर०, भाग २, पृ० ४४५-४६ ।
३. जे० ए० एस० बी०, १८८१ ई०, भाग १, पृ० ३ ।
४. ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० १२८, ४४६ ।
५. केशवचन्द्र मित्र, चन्देल और उनका राजत्व काल, पृ० ४५ ।
६. इंडि० एन्टि०, भाग ३७, पृ० १३५ ।
७. इलि० डाउ०, भाग १, पृ० ४ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं माना है।[१] परन्तु करद होते हुए भी नन्नुक राज्य विस्तार एवं शक्ति की दृष्टि से अत्यन्त प्रभावशाली जान पड़ता है। धंग के एक खजुराहो अभिलेख[२] में उसे 'नृप' कहा गया है, और उसकी प्रशस्ति की गई है। धंग के एक दूसरे अभिलेख,[३] में भी उसे 'महीपति' कह कर सम्बोधित किया गया है, और उसकी प्रशस्ति की गई है। इस प्रकार चन्देल वंश के प्रमुख संस्थापक के रूप में नन्नुक का ही नाम आता है।

नन्नुक के पश्चात् उसका पुत्र वाक्पति (८४५-८६० ई०) राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। नन्नुक की भांति वह भी प्रभावशाली था। धंग के खजुराहो अभिलेख में इसकी प्रशस्ति की गई है।[४] वाक्पति के बाद उसका उत्तराधिकारी जयशक्ति (८६०-८८० ई०) शासनारूढ़ हुआ। अभिलेखों में जयशक्ति को जय, जेजा, जेजाक आदि नामों से विभूषित किया गया है। खजुराहो के एक अभिलेख[५] में इसे शत्रुओं को नाश करने वाला कहा गया है। महोबा से प्राप्त एक खंडित शिलालेख के अनुसार जेजा (जयशक्ति) ने अपने राज्य का जेजाकभुक्ति[६] नाम उसी प्रकार दिया जैसे पृथु के नाम पर पृथ्वी का नाम पड़ा।[७] इस प्रकार प्रकट है कि उसने चन्देल राज्यश्री को शक्ति प्रदान की। जयशक्ति सन्तानहीन था। अतः उत्तराधिकारी के रूप में उसका भाई विजयशक्ति (८८०-८९९ ई०) सिंहासन पर बैठा। यह एक वीर एवं विजेता शासक था। यद्यपि अबतक प्रतिहारों का संरक्षण चल रहा था, फिर भी चन्देलों ने पर्याप्त शक्ति संचित कर ली थी। धंग के खजुराहो अभिलेख[८] में इसे शक्ति और पराक्रम में राम की उपमा दी गई है। विजय शक्ति के बाद उसका पुत्र राहिल (९००-९१५ ई०) शासनारूढ़ हुआ। धंग के खजुराहो अभिलेख[९] में उसकी शक्ति और पराक्रम की पर्याप्त प्रशंसा की गई है।

राहिल ने रासन नामक एक रमणीक नगरी बसाई थी।[१०] तत्कालीन भवनों के अवशेषों से यह प्रकट होता है कि यह उच्चकोटि का नगर रहा होगा। इतना ही नहीं, राहिल ने तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के अन्तराल में कलचुरि शासकों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर एक महत्वपूर्ण पग उठाया।[११] इस प्रकार प्रतिहारों से मुक्त होने के लिए उसने एक प्रभावशाली भूमिका तैयार कर दी। एक ओर तो चन्देल अपने राज्य-प्रसार में प्रयत्नशील थे, दूसरी ओर वे प्रतिहारों की शक्ति को असन्तुलित एवं छिन्न-भिन्न कर देने के लिए आवश्यक राजनीतिक एवं सामाजिक उपादान संग्रह कर रहे थे।

---

१. डाइनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ दि नार्दर्न इण्डिया, भाग २, पृ० ६६८।
२. ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० १३५।
३. वही, पृ० १४१।
४. वही, पृ० १२५, १४१।
५. वही, पृ० १२६।
६. ए० एस० आर०, भाग १०, पृ० ३२; ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० ३५।
७. ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० १२६।
८. ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० १४१-४२।
९. वही, भाग १, पृ० १३१, २४२।
१०. जे० ए० एस० बी०, भाग १, पृ० ८९।
११. केशव चन्द्र मित्र, पृ० ६६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राहिल के बाद उसका पुत्र हर्ष (९१५-९३० ई०) गद्दी पर बैठा। इस समय तक प्रतिहारों, राष्ट्रकूटों एवं पालों के सतत संघर्ष के कारण प्रतिहार राज्य-लक्ष्मी विचलित हो चुकी थी, और दुर्बल प्रतिहार सम्राट उसे संभाल न सके। परिणामतः चन्देल नरेश हर्ष ने अपने को उनसे स्वतंत्र कर लिया। धंग के एक अभिलेख में हर्ष को 'परम भट्टारक' कहा गया है, जिससे स्पष्ट है कि वह स्वतन्त्र नृपति हो गया था।[१] उसने अनेक विजयाभियान किये और शत्रुओं को जीता।[२] हर्ष विष्णु का उपासक था, और धर्म विरुद्ध आचरण करने से भय-भीत रहता था।[३] एक अभिलेख में उसे अपनी सेनाओं द्वारा चारों ओर आतंक मचाने वाला तथा अनेक राजाओं को करद बनाने वाला कहा गया है।[४] साथ ही एक अभिलेख में विरोधियों का दमन करने वाला तथा सम्पूर्ण वसुंधरा की रक्षा करने वाला कहा गया है।[५] उसने अपने राज्य को स्थायित्व प्रदान करने की दृष्टि से ही तत्कालीन चौहान राजकुमारी कंचुका से विवाह किया।[६]

हर्ष के बाद उसका उत्तराधिकारी यशोवर्मन (लक्ष्मण वर्मन)–(९३०-९५० ई०) सिंहासनारूढ़ हुआ। वह अब तक के चन्देल राजाओं में सबसे प्रतापी था। उसने सर्व प्रथम हर्ष की प्रतिहारों के प्रति शांति एवं सहयोग की नीति का उल्लंघन किया और उन पर भीषण आक्रमण किया, जिससे लड़खड़ाती प्रतिहार व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। दूसरी महत्वपूर्ण विजय उसने कालिंजर दुर्ग की की थी। यह दुर्ग सामरिक दृष्टि से बड़े महत्व का था, तथा मध्य भारत में अपनी सत्ता स्थापित करने के इच्छुक किसी भी शासक के लिए इस पर अधिकार करना परमावश्यक था। डॉ० राय चौधरी का कथन है कि यशोवर्मन ने यह दुर्ग राष्ट्रकूटों से जीता,[७] क्योंकि यह राष्ट्रकूटों के राजा कर्ण तृतीय का समकालीन था,[८] और कर्ण तृतीय के महियर अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने वह दुर्ग गुर्जर प्रतिहारों से जीता था।

चिन्तामणि विनायक वैद्य[९] तथा कनिंघम[१०] के मतानुसार यशोवर्मन ने यह दुर्ग कलचुरियों से जीता था। परन्तु ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यशोवर्मन ने इसे प्रतिहारों से ही जीता था।[११] इसके अतिरिक्त उसने आस-पास के

---

१. इंडि० एण्टि०, भाग १७, पृ० २०२।
२. ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० १२१।
३. वही, पृ० १२६।
४. इंडि० एन्टि०, भाग १६, पृ० २०३।
५. ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० १४२।
६. वही, पृ० १२६।
७. डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इण्डिया, भाग २, पृ० ६७४।
८. वही।
९. वैद्य, हिस्ट्री ऑफ मेडिवल हिन्दू इंडिया, भाग २, पृ० १२६।
१०. कॉइन्स ऑफ मेडिवल हिन्दू इंडिया, पृ० ६७-६८।
११. केशवचन्द्र मिश्र, पृ० ७३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनेक राज्यों को जीत कर विग्विजय की, जिसका विस्तृत उल्लेख खजुराहो अभिलेख में अंकित है।[1]

यशोवर्मन ने साम्राज्य विस्तार किया, तथा अनेक महत्वपूर्ण निर्माण कार्य भी किये। उसने खजुराहो में एक विशाल विष्णु-मंदिर बनवाया, जिसमें उसने 'वैकुंठ की मूर्ति' स्थापित की, जो उसने हेरम्बपाल के पुत्र देवपाल से प्राप्त की थी।[2] कनिंघम के मतानुसार यह मंदिर खजुराहो का विष्णु मंदिर है।[3] यशोवर्मन ने प्रजा के लिए अनेक कल्याणकारी कार्य किये जिससे उसके यश की पताका फहराती रही, और प्रजा उसका यशगान करती रही।[4] उसने एक प्रभुत्व-सम्पन्न साम्राज्य स्थापित किया जो हिमालय से मालवा तक और कश्मीर से बंगाल तक विस्तृत था।

यशोवर्मन के बाद उसका पुत्र धंगदेव (९५०-१००० ई०) सिंहासन पर बैठा। सम्भवतः उसी के समय में खजुराहो चन्देलों की राजधानी बनी। उसके एक अभिलेख[5] में 'खरज्जुरवाहक' का सम्बोधन है। अल-तारीख-उल-कामिल[6] में धंग के पौत्र विद्याधर को खजुराहो का शासक कहा गया है। परन्तु राजनीतिक महत्व का नगर कालिंजर भी धंग के शासनकाल में राज्य की दूसरी राजधानी था।[7] ऐसा प्रतीत होता है कि चन्देलों ने खजुराहो को सांस्कृतिक तथा कालिंजर को राजनीतिक राजधानी बनाया था। धंग ने अपने पिता से एक सुदृढ़ एवं विस्तृत साम्राज्य पाया, जिसे उसने अपने बल और पौरुष से और शक्तिशाली बनाया। उसे एक अभिलेख में 'कालंजराधिपति' कहा गया है। खजुराहो[8] के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि कोशल, सिंहल एवं कुंतल देश के शासक उसके आदेशों को बड़े विनीत भाव से सुनते थे।[9] धंग के समय की सबसे महत्वपूर्ण घटना भारत पर मुसलमानों का आक्रमण था। दसवीं शती के अन्त में भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर जयपाल नामक राजा राज्य करता था।[10] गज़नी के शासक सुबुक्तगीन ने जब जयपाल पर आक्रमण किया, उस समय जयपाल के आवाहन पर जिन भारतीय राजाओं ने संघ बना कर दो बार सहायता की, उसमें धंग देव प्रधान था। मुस्लिम आक्रमणकारियों के सामने यह संघ टिक न सका, तथा जयपाल की पराजय हुई, लेकिन परिणाम स्वरूप चन्देल शासकों से मुसलमानों का संघर्ष आरम्भ हो गया, जो दिनों दिन उग्र होता गया, और कालान्तर में सीधी मुठभेड़ हुई।

---

१. ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० १२६-२८।
२. वही, पृ० १२९-१३४।
३. ए० एस० आर०, भाग २, पृ० ४२५-४२७।
४. ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० १३४।
५. वही, पृ० १४७।
६. वही, भाग ९, पृ० ११५-११६।
७. इंडि० एण्टि०, भाग १६, पृ० २०३।
८. वही।
९. ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० १४५।
१०. जे० आर० ए० एस०, (१९२७), पृ० ४९१-९२; स्मिथ, पृ० ३९६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धंगदेव के उपरान्त उसका पुत्र गंडदेव (१०००–१०२५ ई०) राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। अब तक गंडदेव का कोई अभिलेख नहीं प्राप्त हुआ है, बल्कि उसके उत्तराधिकारियों के अभिलेख उसके सम्बन्ध में अवश्य प्राप्त हुए हैं। ये अभिलेख सौ वर्ष बाद के हैं। चन्देलों के एक खंडित शिलालेख[1] में उसको सार्वभौम वीर एवं अपनी भुजाओं पर सम्पूर्ण पृथ्वी का भार धारण करने वाला कहा गया है। इसने पिता से प्राप्त साम्राज्य को सुरक्षित रखा तथा चन्देल वंश का गौरव बढ़ाया।

गंडदेव के समय की प्रसिद्ध घटना थी महमूद गज़नवी का कालिंजर पर आक्रमण। गंडदेव इसके पूर्व पश्चिमोत्तर प्रान्त में महमूद से जयपाल के पुत्र आनन्दपाल के सहायतार्थ युद्ध कर चुका था। महमूद क्रुद्ध होकर गंड पर आक्रमण करने के लिए गज़नी से १०१९ ई० में चल पड़ा, क्योंकि गंडदेव ने महमूद द्वारा विजित एवं संरक्षित कन्नौज के राजा राज्यपाल को अपमानित कर मार डाला था। महमूद ने इस घटना को अपने प्रति असम्मान माना। महमूद ने बारी[2] पर आक्रमण करके उसे ध्वस्त कर दिया, तथा वहाँ का शासक त्रिलोचन पाल भाग खड़ा हुआ। अब महमूद ने गंडदेव की ओर मुंह मोड़ा। दोनों सेनाओं का सामना हुआ, पर युद्ध नहीं हुआ, क्योंकि विशाल सेना का अधिपति गंड सहसा भयभीत हो उठा, और रात्रि के अन्धकार में भाग खड़ा हुआ[3]। महमूद के हाथ पर्याप्त लूट का माल तथा ५८० हाथी लगे। राज्यपाल के बधिक गंड ने भी उसी कायरता का परिचय दिया, जिसके लिए राज्यपाल पर आक्रमण किया गया था।

महमूद ने कालिंजर पर १०२२ ई० में चढ़ाई की। मार्ग में उसने ग्वालियर के शासक अर्जुन पर भी आक्रमण किया, जो गंड का सामन्त था। महमूद ग्वालियर के दुर्ग को जीत नहीं पाया, किन्तु फिर भी अर्जुन न जाने क्यों इतना भयभीत हो गया, कि उसने महमूद से संधि कर उसे ३५ हाथी भेंट रूप में दे दिये[4]। अब महमूद ने आगे बढ़ कर कालिंजर के दुर्ग पर घेरा डाला। उसने आवागमन के सारे मार्ग अवरुद्ध कर दिये। गंड ने संधि वार्ता आरम्भ कर दी, तथा ३०० हाथी एवं वार्षिक कर देने का वचन दिया। सुल्तान ने सन्तुष्ट होकर घेरा उठा लिया। गंड ने सुल्तान की प्रशंसा में हिन्दी में एक कविता की रचना की, जिससे प्रसन्न होकर महमूद ने उसे पन्द्रह दुर्गों की सरकार सौंप दी[5]। यह रही गंड की वीरता अथवा कायरता की कहानी। कालिंजर ऐसे दुर्गम, अजेय दुर्ग के स्वामी ने बिना सामना किए शत्रु के सम्मुख आत्म समर्पण कर, उपहार दे, उसका स्तुति गान किया। फिर भी कतिपय इतिहासकार उसके शौर्य की कल्पित गाथा प्रस्तुत कर अपने को धन्य मानते हैं। तत्कालीन कलचुरि नरेशों से तीव्रतर संघर्ष ने भी गंड की शक्ति क्षीण करने में सहायता दी, क्योंकि यदि उनसे मैत्री रहती तो वह उनसे सहायता ले सकता था। ऐसा प्रतीत होता है कि

---

१. ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० २१९-२२१।
२. कन्नौज के पतन के बाद बारी में प्रतिहारों की राजधानी बनी थी। बारी गंगा के पार है।
३. नाज़िम, पृ० ११२-१३।
४. गर्दीज़ी, पृ० ७९।
५. नाज़िम, पृ० ११४, तथा टिप्पणी ४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गंड और महमूद की मैत्री पर्याप्त समय तक बनी रही, क्योंकि उसने १०२९ ई० में सेलजुक के पुत्र को पकड़वा कर गंड के ही पास कालिंजर दुर्ग में बन्दी बनाने के लिए भेजा था[१]।

गंडदेव के पश्चात् उसका पुत्र विद्याधर देव (१०२५–१०४० ई०) गद्दी पर बैठा। वह अपने पिता के समय में ही राजपूत राजाओं के एक छोटे से संघ का नेतृत्व कर चुका था, जिसने महमूद को आत्म समर्पण करने वाले कन्नौज के प्रतिहार नरेश राज्यपाल के विरुद्ध अभियान किया था। चूंकि महमूद अब संसार में नहीं था, अतः विद्याधर देव को शान्तिपूर्ण शासन करने का अवसर मिला। सामान्य रूप से मुसलमानों के जो आक्रमण हुए, उन्हें उसने प्रभावहीन कर दिया। वह कलचुरि नरेश गांगेय देव का समकालीन था[२]। उस समय वह गांगेय देव का सामन्त था, जैसा कि कच्छपघाट के एक अभिलेख से ज्ञात है[३]। विद्याधर के समय में गांगेयदेव कलचुरि ने चन्देलों से तिरहुत प्रान्त लेना चाहा, किन्तु पूरी शक्ति लगाने पर भी वह उस प्रान्त को चन्देलों से मुक्त न करा सका[४]। मदनवर्मा के एक अभिलेख[५] में विद्याधर के एक मंत्री शिवनाग का नाम आया है, जिसने मंत्री पद ग्रहण करते ही अनेक राजाओं को पराजित कर 'करद' बनाया। इससे यह स्पष्ट है कि विद्याधर ने पिता से प्राप्त राज्य को कुशलता से रक्षित करते हुए शान्ति बनाए रखी।

विद्याधर के समय तक चन्देल साम्राज्य की नींव सुदृढ़ हो गई थी, तथा पूर्ण विकास हो चुका था। उसके बाद विजयपाल (१०४०–१०५५ ई०), देव वर्मन (१०५५–१०६० ई०) तथा कीर्ति वर्मन (१०६०-११०० ई०) नामक तीन राजा हुए। इस शासकों के समय में उत्थान तो नहीं हुआ, किन्तु शान्ति बनी रही। विजयपाल के सम्बन्ध में कीर्ति वर्मन के देवगढ़ अभिलेख[६] से ज्ञात होता है कि उसके समय में चन्देल राज्य अक्षुण्ण था। विजयपाल ने प्रभावशाली शासन व्यवस्था स्थापित की, और राज्य में होने वाले विद्रोहों को कठोरता पूर्वक दबाया, तथा विद्रोहियों को कठोर दण्ड दिया। वह कलिप्रभाव से बढ़ते हुए विग्रह को भी रोकता रहा[७]।

विजयपाल के बाद देववर्मन उत्तराधिकारी हुआ। उसके सम्बन्ध में कोई ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं प्राप्त हुआ है। मदनवर्मन के मऊ अभिलेख[८] में विजयपाल के बाद सीधे कीर्तिवर्मन को रखा गया है। डा० राय के अनुसार देववर्मन की प्रशस्तियों का चन्देल अभिलेखों में उल्लेख न होने का तात्पर्य यह है कि उसका शासन काल गौरवविहीन था[९]।

देववर्मन सन्तानहीन था, अतः उसके बाद उसका भाई कीर्तिवर्मन गद्दी पर बैठा। कीर्ति-

---

१. ब्राउन्स, लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ पर्शिया, पृ० १७०।
२. ए० एस० आर०, भाग ९, पृ० १०६।
३. ऐपि० इंडि०, भाग २, पृ० २१९, २२२।
४. जे० ए० एस० बी०, भाग १, पृ० १८।
५. ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० १९९।
६. इंडि० एन्टि०, भाग १८, पृ० २३९।
७. ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० २०३।
८. वही, पृ० १९८।
९. डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ दि० मॉर्डर्न इंडिया, भाग २, पृ० ६८९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्मन अत्यन्त प्रभावशाली शासक था। उसके साथ उसका परम विश्वासपात्र गोपाल नामक सामन्त था। चन्देल साम्राज्य चेदि राजा लक्ष्मी कर्ण द्वारा पदाक्रान्त कर दिया गया था। परन्तु महोबा के चन्देल अभिलेख[१] से ज्ञात होता है कि कीर्तिवर्मन ने पुनः लक्ष्मी कर्ण को वीरता पूर्वक पराजित किया। इसके अतिरिक्त वीरवर्मा के भी एक शिलालेख[२] में उल्लिखित है कि कीर्तिवर्मन ने लक्ष्मी कर्ण को पराजित किया था। उस लेख में उसकी प्रशस्ति भी की गई है। देवगढ़ के शिलालेख[३] में कीर्तिवर्मन की तुलना विष्णु से की गई है। इस प्रकार की यश गाथाओं से स्पष्ट है कि कीर्तिवर्मन ने चन्देल वंश की डूबती राज्य लक्ष्मी को बचा लिया और उसने पुनः एक सुदृढ़ शासन स्थापित किया।

कीर्तिवर्मन के बाद चन्देल साम्राज्य का ह्रास तो आरम्भ हो गया था, परन्तु सल्लक्षण वर्मन (११००–१११० ई०), जयवर्मन देव (१११०–११२० ई०) पृथ्वी वर्मन (११२०–११२९ ई०), मदन वर्मन देव (११२९-११६५ ई०) तथा परमर्दिदेव (११६५-१२०३ ई०) तक किसी न किसी रूप में साम्राज्य का स्वरूप बना रहा। इनमें सबसे प्रतापी मदन वर्मन एवं परमर्दिदेव थे। मदन वर्मन ने शासन को तो सुदृढ़ बनाया ही, उसने अनेक राज्यों पर विजयाभियान किया। उसके कालंजर अभिलेख[४] से प्रकट है कि उसने गुजरात नरेश को वैसे ही पराजित किया जैसे कृष्ण ने कंस को। गुजरात नरेश का कालंजर जाकर सन्धि करने का प्रमाण कुमारपाल चरित से भी प्रकट होता है[५]। महाकवि चन्दबरदाई ने भी एक जनश्रुति का सहारा लेकर उल्लेख किया है जिसमें सिद्धराज का मदन वर्मा से पराजित होने का उल्लेख है[६]। मदन वर्मा तथा गुजरात नरेश की कहानी के सम्बन्ध में प्रायः सभी इतिहासकार एकमत हैं[७]। मऊ से प्राप्त एक शिलालेख[८] से ज्ञात होता है कि मदन वर्मा के भय से चेदिराज गयाकर्ण भी एक बार पलायन कर गया था। साथ ही मऊ अभिलेख[९] से ही गाहड़वाल नरेश से मैत्री का भी उल्लेख मिलता है। इन युद्धों एवं मैत्री के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मदन वर्मा पतनोन्मुख चन्देल वंश का एक वीर एवं कुशल शासक था।

इसी भाँति परमर्दिदेव का भी राजत्वकाल था। इसके सम्बन्ध में अगले अध्याय में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। परमर्दि देव तक चन्देलों की सार्वभौम सत्ता स्थापित रही, और वे मध्य भारत के सबसे शक्तिशाली शासक रहे। परन्तु इसके उपरान्त महोबा एवं

---

१. ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० २२०; ए० एस० आई०, भाग २, पृ० ४५३; प्रबोध चन्द्रोदय १, ९।
२. ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० ३२७; जे० ए० एस० बी०, भाग १७, पृ० ३१।
३. इंडि० एन्टि०, भाग १८, पृ० २३९।
४. जे० ए० एस० बी०, १८४८, भाग १८, पृ० ३१८।
५. बॉम्बे गज़े०, भाग, १, पृ० १७८-१७९।
६. इंडि० एन्टि०, (१९०८), पृ० १४४।
७. बॉम्बे गज़े, भाग १, पृ० १७८।
८. ए० एस० आर० आइ०, भाग २, पृ० ४५४।
९. ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० १९८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालिंजर पर मुसलमानों का शासन छा गया। चन्देल वंश के शासक वैसे सोलहवीं शती के मध्य तक शासन करते रहे, परन्तु उनका ऐश्चर्य एवं वैभव मुस्लिम शासकों के साम्राज्य में समा सा गया और वे मात्र सामन्त की भाँति हो गये।

महमूद गज़नवी के आक्रमणों से भारतीय राजवंशों ने कुछ भी नहीं सीखा। यही पारस्परिक द्वेष, स्पर्धा, थोथा गर्व, एक दूसरे पर अकारण आक्रमण, एक दूसरे की क्षति एवं क्षोम में हर्षानुभूति भारत के दुःखान्त दौर्बल्य के लिए उत्तरदायी हुए। विभिन्न राजवंशों का इतिहास पढ़ते-पढ़ते विद्यार्थी असंख्य निष्प्रयोजन युद्धों के वृत्तान्त से घबरा उठता है। प्रादेशिक संकीर्णता ने समस्त देश की सामूहिक रक्षा का प्रश्न गौण कर दिया। शासकों ने अदूरदर्शिता का परिचय दिया, और पड़ोसियों के दुर्भाग्य को अपना सौभाग्य माना। यह नहीं समझ पाये कि प्रस्तुत संकट उन्हें भी आप्लावित एवं आत्मसात कर लेगा। परिणामतः मुस्लिम आक्रामकों ने विभाजित भारत को आशातीत सफलता सहित पदाक्रान्त कर दिया। विशाल भारतीय सेनाएँ, अल्प संख्यक, किन्तु सुसंगठित, सुअनुशासित मुस्लिम सेनाओं का सामना करने में सर्वथा असमर्थ रहीं। कारण कि घर के शेर अचानक विदेशी आक्रामकों के सम्मुख भीरु बन गये; कहीं आत्म समर्पण कर दिया; कहीं भाग खड़े हुए, कहीं आत्म-रक्षा करके भी फिर सन्धि-प्रार्थी बन गये। आपस में शौर्य का दम्भ प्रदर्शित करने वाले, एक दूसरे के रक्त के प्यासे भारतीय शासक, विदेशी आक्रामकों के सम्मुख कायर एवं भीरुता के उदाहरण बने। राजनीतिक निराशा, सामाजिक कुरीतियों एवं धार्मिक अन्ध विश्वासों के प्रभाव से और भी तीव्र हो उठी। महमूद के आक्रमणों के पश्चात् भारतीय नरेशों तथा सामन्तों ने डेढ़ सौ वर्षों तक आपस ही में रक्त की होली खेली। यह अकारण कलह एवं हिंसात्मक प्रवृत्ति भारत के अहिंसावादी एवं शान्तिप्रिय चित्र की कृत्रिमता का प्रमाण है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ७

भारत में इस्लाम तथा तुर्क सत्ता का संस्थापन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुर्क प्रभाव का प्रसार :

इस काल के इतिहास के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि तुर्क लोग शनैः-शनैः उत्तरी भारत में अपने प्रभाव का विस्तार करने के लिए प्रयत्नशील थे। गंगा की घाटी में उनका दबाव निरन्तर महसूस किया गया। रावी नदी के आगे भी वे लोग पग रखने के लिए स्थान बनाना चाहते थे। अहमद नियाल्तिगीन ने बनारस तक छापा मारा था।[1] मसूद ने हांसी पर अधिकार कर लिया था।[2] मदनपाल के राहन अभिलेख में उल्लेख है कि उसके पिता गोविन्दचन्द्र ने अपने अद्वितीय रणकौशल से हम्मीर को शत्रुता त्यागने के लिए बाध्य किया।[3] बदायूं के लाखनपाल के अभिलेख में उसके पूर्वज सदनपाल का वर्णन है जिसने देवताओं के नदस्थल में हम्मीर का आक्रमण असम्भव कर दिया।[4] कुमारदेवी के सारनाथ अभिलेख में गोविन्दचन्द्र (१११४-५५ ई०) की प्रशंसा की गई है, जिसने दुष्ट तुरुष्क योद्धा से वाराणसी की रक्षा की।[5] मसूद तृतीय के नीचे पंजाब का गवर्नर हाजिब तुग़ाल्तिगीन गंगा पार कर उस स्थान तक बढ़ गया, जहाँ मसूद के अतिरिक्त कोई नहीं पहुंचा था।[6] विजयचन्द्र (११५५-११७० ई०) की भी हम्मीर का विरोध करने के सम्बन्ध में प्रशंसा की गई है।[7] बीसलदेव के ११६४ ई० के दिल्ली-शिवालिक स्तम्भ लेख में उसे म्लेच्छों का हन्ता कहा गया है।[8] पृथ्वीराज प्रथम का ११६७ ई० का एक अभिलेख हम्मीर की प्रगति रोकने के लिए हांसी की दुर्गबन्दी का उल्लेख करता है।[9] इसी अभिलेख में पंचपुर की लूट का उल्लेख है, जिसका समीकरण सतलज नदी के किनारे पंचपत्तन (पकपत्तन) से किया जा सकता है। हांसी और पकपत्तन के उल्लेख से स्पष्ट है कि इसी मार्ग से तुर्क आक्रमणकारी अग्रसर हो रहे थे।

मसूद साद सालमान के दीवान से प्रतीत होता है कि बदायूँ, डहगन, कन्नौज,

---

१. बैहाक़ी (अनूदित, ग़नी तथा फैयाज़) पृ० ४०२।
२. वही, पृ० ५३०-३५।
३. इंडि० एण्टि०, १८ पृ० १६।
४. ऐपि० इंडि०, १ पृ० ६४।
५. वही, १९, पृ० ३१९।
६. मिनहाज़, पृ० २२।
७. ऐपि० इंडि० ४, पृ० ११९।
८. इंडि० एण्टि०, ३०, पृ० २१८।
९. वही, ४१, पृ० १९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मालवा तथा कालिंजर को गज़नवी शासकों के हमले झेलने पड़े।[1] ११७८ ई० के किरादू (जोधपुर) अभिलेख से ज्ञात होता है कि एक स्त्री ने इस स्थान पर तुरुष्कों द्वारा भग्न की गई एक मूर्ति के स्थान पर दूसरी प्रतिमा की स्थापना की।[2] डभोई अभिलेख में गुजरात के चौलुक्य बघेल राजवंश के लवण प्रसाद द्वारा तुरुष्क शासक को परास्त किये जाने का उल्लेख है।[3] सुन्ध पहाड़ी अभिलेख में किल्हण (लगभग ११६४-९४ ई०) द्वारा एक तुरुष्क के परास्त किये जाने का उल्लेख है।[4] राजपूत राजाओं ने तुर्क आक्रमणों से देश की रक्षा के लिए अपनी प्रजा से एक नया कर लेना प्रारम्भ कर दिया, जो तुरुष्क-दण्ड कहलाता था; तथा जो या तो तुर्कों के आघात से बचने के लिए उन्हें उपहार के रूप में दिया जाता था; और या फिर तुर्कों से युद्ध करने के कार्य में व्यय होता था। इस कर का उल्लेख गाहड़वाल शासक गोविन्द्रचन्द्र के एक अभिलेख में मिलता है।[5] यह भी हो सकता है कि कुछ शासकों ने प्रजा को इस कर से त्रसित कर, देश की रक्षा के बजाय यह धनराशि अपने भोग-विलास में ही व्यय कर ली हो। संगठन, साहस तथा संकल्प का अभाव हो यह सोचने के लिए बाध्य करता है। प्राचीन काल में भी आपद्धर्म का सहारा लेकर कुछ शासकों ने प्रजा का शोषण किया है।

सैयद हसन, मसूद साद सालमान, रूनी तथा सनाई जैसे उत्तरकालीन ग़ज़नवी कवियों की कृतियों के अध्ययन से पता चलता है कि उनके देश में, भारत के विषय में, प्रायः चर्चा होती थी, तथा उत्तरकालीन ग़ज़नवी शासकों के लिए भारत पर आक्रमण एक सामान्य सी बात बन गयी थी। अतः बारहवीं शताब्दी के अन्त में तथा १३ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ग़ोरियों द्वारा जो बृहद् आक्रमण भारत पर किये गये, वे सर्वथा अप्रत्याशित नहीं थे। वास्तव में पिछले डेढ़ सौ वर्षों में जो मुसलमानों के यत्र-तत्र आक्रमण होते रहे, यह उन्हीं का ऐतिहासिक परिणाम था।

ग़ोरी विजय से पूर्व भारत में मुसलमानों की उपस्थिति :

तुर्क राजनीतिक सत्ता के प्रसार का यथाशक्ति विभाजित भारत ने प्रतिरोध किया। किन्तु मुसलमान व्यापारी फ़क़ीर तथा सूफ़ी शान्तिपूर्वक ही देश के विभिन्न भागों में जा पहुँचे, तथा कई महत्वपूर्ण स्थानों में बस गये। यह मुसलमान आगन्तुक किलेबन्द शहर के बाहर भारतीय जनता के निम्न प्रतिनिधियों के साथ रहने लगे। इसका पहला कारण तो जाति-बन्धन था, तथा दूसरा कारण यह भी था कि वे लोग साधारण जनता के साथ अपना सम्पर्क बनाना चाहते थे। बनारस के विषय में इब्ने असीर लिखता है, "उस देश में महमूद बिन सबुक्तगीन के समय से मुसलमाम रहते हैं, जो इस्लाम के नियमों में विश्वास रखते

१. दीवान, मसूद साद सालमान (संपादित रशीद यासिमी) पृ० २६२-६५, ३०१, ३९७, १७०-१७१, २२८, २४७, २१९।
२. प्रोग्रेस रिपोर्ट, आर्क्योलॉजिकल सर्वे, डब्ल्यू० सी०, १९०६-७ पृ० ४२।
३. ऐपि० इंडि०, १, पृ० २६।
४. वही ९, पृ० ६९।
५. इंडि० एन्टि, १४, पृ० ११३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं, तथा निरन्तर प्रार्थना तथा सत्कार्य करते हैं।"[1] बहराइच में सैयद सालार मसूद ग़ाजी का मक़बरा है, जो सुल्तान महमूद की सेना का एक सैनिक था।[2] उसकी क़ब्र ग़ज़नवी आक्रमणों तथा उत्तरी भारत पर ग़ोरियों के अधिकार के बीच के काल में भी बनी रही, तथा सालार की शहादत की कहानी लोगों को याद रही। इससे स्पष्ट है कि इस प्रदेश में कुछ मुसलमान लोग रहते थे, जिन्होंने इस क़ब्र और गाथा को जीवित रखा। शेख मुईनुद्दीन चिश्ती तराइन के दूसरे युद्ध से पहले ही अजमेर जा पहुँचा था।[3], तथा उसके पवित्र व्यक्तित्व ने उसके चारों ओर उसके भक्तों को आकृष्ट कर लिया। मशारिक-उल-अनवर का प्रसिद्ध लेखक मौलाना रज़ीउद्दीन हसन सग़ानी बदायूँ मेंउ स नगर पर ग़ोरियों का अधिकार होने से बहुत पहले पैदा हुआ था।[4] कन्नौज में भी मुसलमानों का एक उपनिवेश था।[5]

उत्तर प्रदेश तथा बिहार के कुछ नगरों में ऐसे मुसलमान धार्मिक भवन हैं, जो स्थानीय परम्परा के अनुसार ग़ोरी के काल से पूर्व के ही हैं। बदायूँ में मीरान मुलहीम की क़ब्र[6], बिलग्राम में ख्वाजा मज़दुद्दीन की कब्र[7], गोपामऊ के अज़मत टोला में लालपीर की दरगाह[8], बदायूँ में बिल्सी रोड पर क़ब्रगाह[9], उन्नाव में असीवन की गंजी शहीदन[10] बिहार में हाजीपुर के समीप जरूहा को कब्रें, मानेर में बड़ी दरगाह के पश्चिम द्वार के समीप इमाम तक़ी फक़ीह की क़ब्र[11]—ये सभी ग़ोरी युग से पूर्व की हैं; तथा इन नगरों में कुछ वंश ऐसे हैं, जो इस प्राचीन काल के पूर्वजों से नाता जोड़ते हैं।

भारत में इन मुस्लिम उपनिवेशों के बसने का कारण व्यापार था। चीनी, रूई, रंग, विशेष कर नील तथा कत्था बाहरी व्यापारी भारत से ले जाया करते थे। भारतीयों को भी बाहरी वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती थी, जैसे अच्छी नस्ल के घोड़े, मेवे, तथा मुक्ता, मणियां आदि। फ़ारसी साहित्य के अनुसार प्रारम्भिक मध्ययुग का सुसज्जित योद्धा भारतीय तलवार रखता था; फ़ारसी कमान रखता तथा तातारी भाला रखता था। भारतीय लोगों से तो उनकी स्मृतियों ने बाहर जाने की आज्ञा छीन ली थी। कश्मीर को छोड़कर भारत के प्रायः सभी भागों में मुसलमान व्यापारी दृष्टिगोचर होते थे। किन्तु

---

१. इलि० डाउ०, भाग २, पृ० २५१।
२. बर्नी, तारीखे फिरोज़ शाही, पृ० ४९१।
३. सियारुल-औलिया, पृ० ४६।
४. मो० हबीब तथा खालिक अहमद निज़ामी, ए कॉम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग ५, दि डेल्ही सल्तनत, दिल्ली, १९७०, पृ० १३८।
५. वही।
६. कन्जुत तारीख़ (रज़ीउद्दीन द्वारा बदायूँ का इतिहास), पृ० ५१-५३।
७. डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, हरदोई, भाग ४१, पृ० १७८।
८. वही, पृ० १८७।
९. डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, बदायूँ, भाग १५, पृ० १९०।
१०. डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, उन्नाव, भाग ३८, पृ० ११८।
११. देखिये, हसन असकरी का लेख; हिस्टॉरिकल सिग्निफिकेन्स ऑफ इस्लामिक मिस्टिसिज्म इन मेडीवल बिहार, हिस्टॉरिकल मिसलेनी, १०-११।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईरान तथा मध्य एशिया में भारतीय व्यापारी दिखलाई नहीं देता था। अतः यह स्पष्ट है कि स्मृतियों की आज्ञाओं से सम्बद्ध एवं कुंठित भारतीय व्यापारियों ने आयात-निर्यात का व्यापार विदेशियों के हाथों में छोड़ दिया। डॉ० हबीबुल्ला के अनुसार जो भारतीय शासक अपने राज्य में व्यापार-संवर्धन चाहते थे, वे उन लोगों का आदर करते थे, तथा उनके साथ सद्व्यवहार करते थे, जो सभ्य विश्व के व्यापारी मार्गों पर अपना अधिकार रखते थे। लम्बे चोग़े पहने हुए दाढ़ी वाले लोग निश्चित समयों पर एक आयताकार भवन में एकत्रित होकर ईश्वर की प्रार्थना करते थे। किन्तु न वहां कोई मूर्ति थी न कोई जाति का बन्धन, न ऊंच-नीच की भावना। विदेशियों का यह दृश्य भारतीय जनता को प्रारम्भ में नया तथा विचित्र सा लगा, किन्तु समय की गति के साथ यह विचित्रता एवं नवीनता विलुप्त हो गयी। जैसे-जैसे ये उपनिवेश स्थापित हुए, तथा इनकी वृद्धि हुई, ये देश की जनता के अन्तरंग अंग बन गये। यह ताज़िक उपनिवेश बहुत से बड़े नगरों के बाह्य भागों में 'राय' की आज्ञा से बस गये, तथा उन्हें मकान, मस्जिद, स्कूल, दुकान, गोदाम आदि बनाने की आज्ञा मिल गई, तथा क़ब्रिस्तान बनाने के लिए भूमि भी दे दी गई। इनकी संख्या तथा आकार समय के साथ बढ़े। ईरान तथा मध्य एशिया की राजनीतिक उथल-पुथल से पीड़ित बहुत से लोग भारत की ओर चले आये, जहां वे शान्तिपूर्वक जीवनयापन कर सकते थे।[1]

ग़ोर तथा शिहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी के पूर्वज :

ग़ोर का प्रदेश पश्चिमी अफ़ग़ानिस्तान का केन्द्र बिन्दु है। हारीरूद नामक नदी की ऊपरी घाटी, फ़राहरूद, रूदिग़ोर तथा ख़ाशरूद नदियों की घाटियां तथा इस प्रदेश की पर्वत माला ग़ोर प्रदेश के अन्तर्गत आती हैं। इसी क्षेत्र में वे आक्रामक प्रबल हुए जिन्होंने आगे चलकर भारत में मुस्लिम सत्ता का शिलान्यास किया। यह पर्वत मालाएं दस हजार फुट की ऊंचाई तक जाती हैं, और हिन्दूकुश की ओर जाते-जाते इनकी ऊंचाई और भी बढ़ जाती है। इनके संरक्षण में ग़ोर का प्रदेश बाह्य संसार के प्रभाव से विलग रहा। जब ग़ज़नी के मसूद ने १०२० ई० में ग़ोर पर आक्रमण किया तो उसे वहां की भाषा समझने के लिए दुभाषियों का प्रयोग करना पड़ा था।[2]

भौगोलिक परिस्थितिवश ग़ोर में राजनीतिक एकता का भी अभाव था। भिन्न-भिन्न दुर्ग, भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के सत्ता-केन्द्र थे। ग़ोर घोड़ों तथा लोहे के अस्त्र-शस्त्रों के लिए विख्यात था। शहरों का अभाव था। केवल कृषकों की बस्तियां थीं, तथा दुर्गबन्द स्थानों का बाहुल्य था, जहां झगड़ालू, अनुशासनहीन तथा मूर्ख लोग अपनी रक्षा कर सकते थे।[3]

शिहाबुद्दीन ग़ोरी के वंश का नाम शन्सबनी था। इनका प्रारम्भिक इतिहास स्पष्ट

---

१. निज़ामी, ए कॉम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग ५, पृ० १४०।

२. इस्तख़री (सम्पादित डी० गोयजे), पृ० २८१; बेहक़ी (सम्पादित, ग़नी तथा फ़य्याज़) पृ० ११७।

३. सी० ई० बॉसवर्थ, दि अर्ली इस्लामिक हिस्ट्री ऑफ ग़ोर, सेन्ट्रल एशियाटिक जर्नल, भाग ६, १९६१, पृ० ११८; ए कॉम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग ५, पृ० १४४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं है। हमारे ज्ञान का मुख्य स्रोत मिनहाज-उस-सिराज है।[1] इस वंश का वास्तविक संस्थापक शन्सब था। इसी वंश के शासक मुहम्मद बिन सूरी से सुबुक्तगीन ने कर वसूल किया। सुबुक्तगीन की मृत्यु के पश्चात् मुहम्मद बिन सूरी ने अपनी स्वतंत्रता स्थापित करने का प्रयास किया, किन्तु सुल्तान महमूद ने उसे पूर्णतः परास्त कर दिया। महमूद ने ग़ोर के कई दुर्गों पर अधिकार कर लिया और बाद में अपने लड़के मसूद को ग़ोर के अन्य प्रदेशों पर आक्रमण करने के लिए भेजा। महमूद ने मुहम्मद बिन सूरी की गद्दी पर उसके पुत्र अबू अली को बिठाया, जिसने ग़ोर में इस्लाम का पर्याप्त प्रचार किया। उसके बाद उसका भतीजा अब्बास सिंहासन पर आया, जिसे मसूद के पुत्र सुल्तान इब्राहीम ने क़ैद करके उसके पुत्र मुहम्मद को गद्दी पर बिठाया। मुहम्मद के बाद कुतुबुद्दीन हसन सिंहासन पर आया। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र इज़्ज़ुद्दीन हुसेन (१११०–११४६ ई०) था, जो महत्वपूर्ण शासक था। ग़ोर की राजनीतिक शक्ति बढ़ी। ग़ज़नवियों की शक्ति में ह्रास हुआ, तथा उनका राज्य केवल दक्षिणी तथा पूर्वी अफ़ग़ानिस्तान एवं पंजाब में सीमित रह गया। ग़ोर प्रदेश सेल्जुकों तथा ग़ज़नवियों के बीच में पड़ गया, तथा ग़ोरियों को सेल्जुकों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखने पड़े।

इज़्ज़ुद्दीन हुसेन की मृत्यु के बाद उसका राज्य उसके पुत्र सैफ़ुद्दीन सूरी द्वारा अपने भाइयों में बांट दिया गया। किन्तु उसका भाई कुतुबुद्दीन इस बटवारे से असन्तुष्ट होकर बहराम शाह ग़ज़नवी के दरबार में चला गया। कुछ लोगों के बरग़लाने से बहराम ने कुतुबुद्दीन को मरवा डाला। शन्सबनी राजकुमार इस पर क्रुद्ध हो उठे, और सैफ़ुद्दीन सूरी ने ग़ज़नी पर आक्रमण कर दिया। उसने बहराम को मार भगाया, और ग़ज़नी के सिंहासन पर सुल्तान बन बैठा। ग़ज़नी के लोगों ने ऊपरी तौर पर उसे अपना शासक स्वीकार किया, और उनके व्यवहार से आश्वस्त होकर उसने अपनी सेना ग़ोर वापस भेज दी। किन्तु जैसे ही शरद् ऋतु आई तथा ग़ोर और ग़ज़नी के बीच का मार्ग अवरुद्ध हुआ, वैसे ही लोगों ने बहराम को वापस बुला लिया, और सैफ़ुद्दीन का साथ छोड़ दिया। बहराम ने सैफ़ुद्दीन का चेहरा काला करवा कर एक बूढ़ी गाय पर बैठा कर उसे सड़कों पर घुमाया, और उसे मरवा डाला।

सैफ़ुद्दीन के भाई बहाउद्दीन साम का रक्त यह सुनकर खौल उठा। उसने ग़ज़नी के लिए कूच कर दी, किन्तु मार्ग में उसकी मृत्यु हो गई। अलाउद्दीन हुसेन इन भाइयों में सबसे छोटा था। उसने बहराम को दण्ड देने का भार संभाला। बहराम परास्त हुआ तथा भारत भाग आया, जहां शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। अलाउद्दीन ने ग़ज़नी शहर को जला डाला, और अल-सुल्तान-अल-मुअज़्ज़म की उपाधि धारण की।[2]

यद्यपि उसे सेल्जुक सुल्तान संजर से परास्त होना पड़ा, फिर भी उसने ग़ोर में अपनी सत्ता संगठित की तथा गज़िस्तान, बामियान तथा समीपवर्ती प्रदेशों पर अपना आधिपत्य जमाया। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का अलउद्दीन ने पूरा लाभ उठाया।

---

१. ए कॉम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग, ५, पृ० १४५।

२. ए कॉम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग ५, पृ० १५४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग़ज़नवियों का पतन तो हो ही चुका था; उधर संजर को भी गूज़ लोगों ने पकड़ लिया। शन्सबनियों की एक शाखा तो ग़ोर में फिरोज़ कोह नामक स्थान में केन्द्रित रही, जिसने खूरासान की ओर बढ़ने का प्रयास किया। ११७३–७४ ई० में जब ग़ज़नी पर पूर्ण अधिकार हो गया, तो इस वंश की एक शाखा वहां स्थापित हो गई, जो भारत की ओर उन्मुख हुई। बामियान-विजय के पश्चात् फख़रुद्दीन मसूद को तुखारिस्तान, बदख़शां तथा शोग़नन के प्रदेश का शासन सौंप दिया गया।

अलाउद्दीन के बाद उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र सैफ़ुद्दीन मुहम्मद हुआ, जो एक संघर्ष में मारा गया। उसके उत्तराधिकारी बहाउद्दीन साम के दो पुत्र हुए। बड़े का नाम था ग़यासुद्दीन तथा छोटे का नाम मुइज़्ज़ुद्दीन (११७३–१२०६ ई०) था।[1] उनकी अध्यक्षता में ग़ोरी राज्य की गणना विश्व-शक्तियों में होने लगी।[2]

ग़यासुद्दीन ने शिहाबुद्दीन को टकीनाबाद का गवर्नर नियुक्त किया, तथा ग़ीज तुर्कों से ग़ज़नी जीतने का आदेश दिया। ११७३–११७४ ई० में ग़ज़नी विजय के पश्चात् ग़यासुद्दीन ने ग़ज़नी का राज्य शिहाबुद्दीन को सौंप दिया। यद्यपि ग़ज़नी का राज्य एक साम्राज्य बन गया, फिर भी शिहाबुद्दीन अपने बड़े भाई को अपना अधिपति मानता था और बिना उससे पूछे कोई युद्ध आदि नहीं करता था।[3]

शिहाबुद्दीन के भारतीय अभियान :

ग़ोर के सुल्तान गियासुद्दीन ने ११७३ ई० में अपने छोटे भाई शिहाबुद्दीन उर्फ मुइज़्ज़ुद्दीन मुहम्मद को ग़ज़नी का सूबेदार नियुक्त किया। शिहाबुद्दीन ने मुइज़्ज़ुद्दीन की उपाधि धारण की। उसने भारत की ओर अपनी सत्ता के प्रसार हेतु ११७५ ई० के लगभग प्रयास आरम्भ किया। उसने सर्व प्रथम मुल्तान के इस्लाम द्रोही करामतियों पर आक्रमण करके उन्हें परास्त कर दिया, और मुल्तान पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।[4]

मुल्तान पर अपना अधिकार स्थापित करने के पश्चात् शिहाबुद्दीन उच्च की ओर बढ़ा। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च को वहां के हिन्दू शासक से जीत लिया। मिनहाज उच्च की विजय का अलग वृत्तान्त नहीं देता है। किन्तु सुल्तान मुइज़्ज़ुद्दीन के नरवाल की ओर अभियान के सन्दर्भ में बतलाता है कि उच्च पर ग़ोरियों का अधिकार था। फ़रिश्ता के अनुसार ११७६ ई० में उच्च पर अधिकार किया गया[5] तथा सुल्तान ने वहां का शासन अली किरमाज को सौंपा। इब्न असीर के अनुसार मुइज़्ज़ुद्दीन ने उच्च के भट्टीय राय की पत्नी के साथ षडयंत्र किया तथा उसे यह प्रलोभन दिया कि यदि वह अपने पति को विष

१. ए कॉम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया भाग ५, पृ० १५५।
२. बार्थोल्ड, तुर्किस्तान डाउन टु दि मंगोल इन्वेज़न, पृ० ३३८।
३. हबीब, शिहाबुद्दीन ऑफ ग़ोर, दि मुस्लिम युनिवर्सिटी जर्नल, सं० १, जनवरी, १९३०।
४. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, दिल्ली सल्तनत, चतुर्थ संस्करण, १९६२, पृ० ८२; नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० ४०७।
५. फ़रिश्ता, भाग १, पृ० ५६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दे दे, तो वह उससे विवाह कर लेगा।[१] किन्तु यह बात संदिग्ध है, क्योंकि सम्भवतः उच्च पर भट्टियों का नहीं, वरन् करामतियों का अधिकार था।[२]

मिनहाज के अनुसार ११७८ ई० में मुइज़्ज़ुद्दीन उच्च और मुल्तान होता हुआ नहरवाल की ओर बढ़ा। अभिलेखीय सूत्रों के आधार पर कहा जा सकता है कि गत वर्षों में भी पश्चिमी राजपूताने पर तुर्की दबाव की अनुभूति होती रही। बहराम के पंजाब में स्थित गवर्नर बहलीम ने नागौर पर अधिकार कर लिया।[३] किन्तु यह विजय इस प्रकार की थी कि शेख रज़ीउद्दीन हसन सग़ानी को इस क्षेत्र में घूमने के लिए अपने वस्त्र बदलने पड़े।[४] मुसलमानों को गंगा-जमुना के दोआब की अपेक्षा पश्चिमी राजपूताने का अधिक ज्ञान था। इसलिये मुइज़्ज़ुद्दीन ने राजपूताना और गुजरात होते हुए दक्षिणी भारत और वहां के मंदिरों की अतुल सम्पत्ति को लूटने की योजना बनाई। मुइज़्ज़ुद्दीन की सेना आबू पर्वत की तलहटी में जा पहुंची, जहां नहरवाल के राय से उसका संघर्ष हुआ। भारतीय शासक के पास शक्तिशाली सेना थी, जिसमें हाथियों का बाहुल्य था। कायद्रां नामक स्थान पर हुए इस युद्ध में मुइज़्ज़ुद्दीन की सेना बुरी तरह परास्त हुई, किन्तु वह किसी भांति गुजरात से अपनी पराजित सेना लेकर भाग निकला।[५] मिनहाज के अनुसार नहरवाल के शासक का नाम भीमदेव था, किन्तु अभिलेखीय तथा अन्य भारतीय साक्ष्यों के आधार पर स्पष्ट है कि इस समय मूलराज द्वितीय अन्हिलवाड़ का शासक था।[६]

मुल्तान से गुजरात की ओर बढ़ते हुए मुइज़्ज़ुद्दीन ने सम्भवतः नड्डुल पर भी अधिकार कर लिया।[७] सुन्ध पर्वत अभिलेख के अनुसार नड्डुल चौहान केल्हण ने तुरुष्कों को परास्त करके पवित्र सोमेश के आदर में एक स्वर्णिम तोरण का निर्माण कराया। उसके भाई कीर्तिपाल ने भी इस अभिलेख के अनुसार काशह्रद नामक स्थान पर तुरुष्कों की एक सेना परास्त की।[८] ऐसा प्रायः होता है कि जिस युद्ध में सामन्त शासक अपने अधिपति के साथ लड़ते हैं, उसे जीतने का श्रेय स्वयं ही ले लेते हैं। सम्भवतः केल्हण तथा कीर्तिपाल ने अपने स्वामी मूलराज की सहायता की थी। विशेषकर इसलिए कि मुइज़्ज़ुद्दीन ने नड्डुल पर अधिकार कर लिया था। काशह्रद नामक स्थान का समीकरण कायंद्रा के साथ किया जाता है जो सम्भवतः मेरुतुंग के गाडरारघट्ट के साथ समीकृत किया जा सकता है।

नहरवाल की पराजय ने मुइज़्ज़ुद्दीन का मुँह मोड़ दिया। वह महमूद ग़ज़नवी की नक़ल न कर सका और सैनिक पराभव के इस अनुभव ने उसकी सारी योजना ही बदल डाली।

---

१. इब्ने असीर, ११, ७७; निज़ामुद्दीन, तबक़ाते अकबरी, भाग १, पृ० ३६; फ़रिश्ता, भाग १, पृ० ५६।
२. ए कॉम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग ५, पृ० १५६, टि० २।
३. वही, पृ० १५७।
४. वही।
५. इलि० डा उ०, भाग २, पृ० २२९–३०।
६. देखिये, पीछे पृ० २७ (अध्याय ५) पृ० १५; इंडि० एण्टि०, १८७७ ई०, पृ० १८६, १९८।
७. पृथ्वीराज विजय, १०, श्लोक ५०।
८. सुन्ध पर्वत अभिलेख, श्लोक ३४-३६; ऐपि० इंडि०, ११, पृ० ७२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसके पश्चात् ११७९-८० ई० में वह ख़ैबर के दर्रे से भारत में प्रविष्ट हुआ, और आगे बढ़कर उसने फ़रशोर अथवा पेशावर पर आक्रमण किया। यहाँ सम्भवतः ग़ज़नवियों का राज्य था, जिसे विजय कर मुइज़्ज़ुद्दीन ने अपना आधिपत्य जमा लिया। पेशावर की विजय तराइनकी दिशा में पहला क़दम था।

दो साल के अन्दर ही अन्दर ११८१-८२ ई० में वह लाहौर की ओर बढ़ा। खुसरो मलिक इतना दुर्बल था कि वह मुइज़्ज़ुद्दीन का सामना करने में सर्वथा असमर्थ था। अतः उसने मुइज़्ज़ुद्दीन से सन्धि करने का निश्चय किया और अपने पुत्र को एक हाथी सहित मुइज़्ज़ुद्दीन के यहाँ भेज दिया। किन्तु यह केवल एक अस्थायी व्यवस्था थी, क्योंकि भारत में प्रसार के लिए मुइज़्ज़ुद्दीन के लिए लाहौर पर अधिकार करना नितान्त आवश्यक था। महमूद के घराने से शन्सबनियों के प्राचीन सम्बन्धों के सन्दर्भ में भी यह व्यवस्था अधिक नहीं चल सकती थी। इसलिए ११८२ ई० में मुइज़्ज़ुद्दीन ने देवल पर चढ़ाई करके समुद्र तट पर्यन्त सारा प्रदेश अधिकृत कर लिया।[1]

अगले तीन साल शान्ति रही। ११८४-८५ ई० में मुइज़्ज़ुद्दीन की सेना लाहौर की ओर बढ़ी और सारे प्रदेश में लूट मार की। खुसरो मलिक ने नगर प्राचीरों में अपने आप को बन्द करके आत्मरक्षा की। ग़ज़नी लौटते समय मुइज़्ज़ुद्दीन ने स्यालकोट के किले पर अधिकार करने तथा वहाँ सेना रखने का आदेश दिया। दुर्ग पर अधिकार करके हुसेन बिन खरमिल को वहाँ का कार्यभार सौंपा गया। सुल्तान की योजना में स्यालकोट का बड़ा महत्व था, और यहीं से वह देश में आगे बढ़ना चाहता था। खुसरो मलिक ने अपनी राजधानी के इतने समीप ग़ोरी सत्ता स्थापित होने पर वास्तविक संकट को पहचाना, तथा अपनी समूची शक्ति संचित करके खोखरों की सहायता से उसने स्यालकोट के किले पर घेरा डाला।[2] किन्तु खुसरो मलिक को सफलता न मिल सकी और उसे लाहौर लौटना पड़ा। 'राजदर्शनी' के अनुसार खोखर लोग प्रारम्भ में जम्मू के आधीन थे। किन्तु उन्होंने कर देना बन्द करके खुसरो मलिक से मैत्री कर ली। इससे असन्तुष्ट होकर जम्मू के शासक चक्रदेव ने मुइज़्ज़ुद्दीन को खुसरो के विरुद्ध आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया।[3] उसी के परामर्श से मुइज़्ज़ुद्दीन ने स्यालकोट के दुर्ग में सेना रखी।[4]

खुसरो मलिक ने मुइज़्ज़ुद्दीन को इस प्रकार रुष्ट करके स्वयं बिना कुछ प्राप्त किये आक्रमण करने का बहाना दे दिया। अतः ११८६ ई० में मुइज़्ज़ुद्दीन लाहौर के द्वारों के सामने आ खड़ा हुआ। उसने ग़ज़नवियों का अन्त करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। किन्तु जब मुइज़्ज़ुद्दीन शक्ति से लाहौर पर अधिकार करने में असफल रहा, तो उसने कूटनीति से काम लिया। उसने खुसरो मलिक को पूर्ण आश्वासन देकर अपने खेमे में मिलने के लिए बुलाया।

---

१. ए कॉम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग ५, पृ० १५७।
२. मिनहाज, पृ० ११७; हबीबुल्ला, दि फाउण्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया, पृ० ३५।
३. हबीबुल्ला, दि फाउण्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया, पृ० ३५-३६, ४८-४९, टि० ६१, ६४।
४. वही, पृ० ४९, टि० ६४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वहाँ उसने विश्वासघात करके खुसरो मलिक को पकड़वा लिया और गर्जिस्तान में बलरवां के दुर्ग में कैद करवा दिया, जहाँ ११९२ ई० के आस-पास उसकी हत्या कर दी गई।[1] इस प्रकार लाहौर पर ग़ोरियों का अधिकार हो गया। देवल से स्यालकोट और पेशावर से लाहौर तक मुइज्जुद्दीन के सैनिक अड्डे स्थापित हो गये। इस विजय एवं प्रसार के सन्दर्भ में यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि मुइज्जुद्दीन सिन्ध तथा पंजाब में अपनी शक्ति पूर्णतः स्थापित करने के बाद ही राजपूत राज्यों से लोहा लेने के लिए आगे बढ़ा। यह समस्त प्रदेश उसके अधिकार में एक सूत्र में बांध लिया गया। मुल्तान का वली तथा सिपहसालार अली करमख लाहौर में रहने लगा तथा सैनिक एवं व्यवस्था सम्बन्धी शासनभार उसी को सौंपा गया। और न्याय प्रशासन मौलाना सिराजुद्दीन को सौंपा गया।[2]

जब सिन्ध और पंजाब में यह घटनायें घटित हो रही थीं, तथा भारत में एक नवीन प्रसारवान साम्राज्यवाद का संस्थापन हो रहा था, एक नव प्रशासन की नींव पड़ रही थी, उस समय भारतीय राजे स्थानीय उन्माद एवं पारस्परिक कलह में मग्न थे। उन्हें यह आभास भी न था कि यह ग़ोरी प्रसार का प्रवाह उन्हें भी आत्मसात् कर लेगा और कदापि सिन्ध तथा पंजाब तक ही सीमित न रहेगा। यदि इन शासकों में इतनी दूरदर्शिता होती, तो ये लोग यह अवश्य समझ लेते कि मुसलमानों पर भी आक्रमण करने वाले साम्राज्यवादी मुसलमान हिन्दू राज्यों को अछूता न छोड़ेंगे। अतः उन्हें खुसरो मलिक की सहायता करके आत्मरक्षा का प्रयास करना चाहिये था। क्योंकि उन्होंने ऐसा नहीं किया, उन्हें अपने-अपने द्वार पर उस शत्रु से लोहा लेना पड़ा, जिसे दूर ही रोका जा सकता था। एकता एवं सामूहिक प्रयास के अभाव में सभी ने मुँह की खाई। मुहम्मद ग़ोरी के हिन्दू राजाओं से संघर्ष पर दृष्टिपात करने से पूर्व तत्कालीन प्रमुख हिन्दू शासकों की स्थिति पर विचार करना न्यायसंगत होगा।

शाकम्भरी के चौहान :

शाकम्भरी के चौहानों में सबसे महान बीसलदेव विग्रहराज चतुर्थ हुआ। उसने उत्तर पश्चिम और पूर्व तीनों ओर अपनी सेना से राजकुलों में आतंक फैला दिया। चौलुक्यों को परास्त कर उसने मेवाड़ के अनेक प्रदेश छीन लिए, और दिल्ली को तोमरों से ११५३ ई० में जीतकर चौहान राजकुल को उत्तर भारतीय प्रधान राजकुलों में विख्यात कर दिया।[3] मुसलमानों को भी उसने उत्तर की ओर भगा दिया। विग्रहराज ने म्लेच्छों को पुनः पुनः परास्त करके आर्यावर्त नाम सार्थक कर दिया।[4] ऐसा प्रतीत होता है कि उसका मुसलमानों से संघर्ष आत्मरक्षा हेतु अपरिहार्य हो गया। हम्मीर नामक मुस्लिम आक्रामक जयपुर प्रदेश में बब्बेरा नामक स्थान तक बढ़ आया, और विग्रहराज को अपनी आधीनता स्वीकार करने के लिए आमंत्रित किया। किन्तु विग्रहराज ने अपने मुख्य मंत्री श्रीधर के परामर्श के विरुद्ध ब्राह्मण,

१. हबीबुल्ला, दि फाउण्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया, पृ० ३५-३६। मिनहाज ने इस घटना की तीन तिथियां दी हैं—५८७ हि०, ५८८ हि० तथा ५९८ हि०।
२. ए कॉम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग ५, पृ० १५८।
३. दशरथ शर्मा, अर्ली चौहान डाइनेस्टीज, पृ० ६०, ६५।
४. उसका देहली शिवालिक अभिलेख, वि० सम्वत् १२२०, श्लोक १।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीर्थों, तथा मंदिरों की रक्षा का संकल्प किया। इस संघर्ष का वृत्तान्त हमें ललित विग्रहराज में मिलता है, जो सहसा यहीं पर इस विषय में मूक हो जाता है। किन्तु प्रतीत होता है कि हम्मीर को परास्त होकर उल्टे पांव जाना पड़ा। जिन लोगों ने इस संघर्ष में विग्रहराज का साथ दिया, उनमें इसके मामा जोहिया के शासक सिंहबल ने इसकी विशेष सहायता की। दशरथ शर्मा के अनुसार यह हम्मीर सम्भवतः अमीर खुसरो शाह था।[१]

अब विग्रहराज चतुर्थ ने मुसलमानों से बहुत से हिन्दू प्रदेश मुक्त कर लिए। सन् ११६३ ई० तक मुसलमानों का अधिकार केवल पंजाब तक ही सीमित रह गया।[२]

पृथ्वीराज तृतीय (११७९-११९२ ई०) :

विग्रहराज जिस प्रकार चौहान राजकुल का उन्नायक था, पृथ्वीराज तृतीय उसी प्रकार उसका विध्वंसक सिद्ध हुआ। शौर्य और रण-कौशल में महान स्वयं पृथ्वीराज ने ही अपनी ललितक्रियाओं से राज्यशक्ति को विछिन्न कर दिया। पिता सोमेश्वर के मरने के बाद (१२३४ वि०) ११७८ ई०[३] में वह चौहानों की गद्दी का उत्तराधिकारी हुआ। अल्पायु होने के कारण उसके राज्यसूत्र का संचालन उसकी माता कर्पूरीदेवी और मंत्री कैमास ने किया। पृथ्वीराज के हाथों में राज्यसूत्र ११८१ ई०[४] (वि० १२३७) में आया, और तब से अपने देहावसान तक वह बराबर युद्ध करता रहा। पहला युद्ध उसको अपना उत्तराधिकार निश्चित करने के लिए करना पड़ा। विग्रहराज के पुत्र नागार्जुन ने पृथ्वीराज को तरुण देखकर गुड़पुर के नगर पर अधिकार कर लिया। पृथ्वीराज सेना लिए नागार्जुन पर चढ़ दौड़ा और गुड़पुर को घेर लिया। नागार्जुन दुर्ग से निकल भागा, और उसकी सेना तब तक लड़ती रही, जबतक सर्वथा विनष्ट नहीं हो गई।[५] उसे दूसरा युद्ध चौहानों के शत्रु मादानकों से करना पड़ा, जिसमें उसने विजय पायी।[६]

इन दो विजयों ने पृथ्वीराज का सिर घुमा दिया, और रणमद में चूर उसने दिग्विजय करने के मंसूबे बांधे। ११८३ ई० में उसने बुन्देलखण्ड की ओर दृष्टि डाली और उस वर्ष में उत्कीर्ण मदनपुर के उसके अभिलेखों से प्रकट है कि सोमेश्वर के पुत्र और अर्णोराज के पौत्र पृथ्वीराज ने जेजाकभुक्ति को रौंद डाला[७]। इससे प्रकट है कि चन्देलराज परमर्दि को परास्त कर वह दिल्ली लौटा। इस युद्ध में सम्भवतः कन्नौज के गाहड़वालों ने भी चन्देलों की सहायता की थी[८]। पृथ्वीराज का युद्ध उत्तर भारत के दोनों विशिष्ट राजकुलों, चन्देलों

---

१. दशरथ शर्मा, पृ० ६१।
२. वही, पृ० ६१-६२।
३. वही, पृ० ७३।
४. वही।
५. पृथ्वीराज विजय, १२, ८-३८।
६. दशरथ शर्मा, पृ० ७४, तथा टि० १३।
७. ए० एस० आई० आर०, १०, पृ० ९८; २२, पृ० १७३ तथा आगे।
८. मऊ अभिलेख में गाहड़वालों तथा मदनवर्मन चन्देल (वि० सं० ११८६-१२२०) के पारस्परिक प्रेमपूर्ण सम्बन्धों का उल्लेख है। यह सम्बन्ध परमर्दि के समय तक बने रहे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और गाहड़वालों, से हुआ। पृथ्वीराज रासो और आल्हाखण्ड के अनुसार तो पृथ्वीराज ने चन्देलों को अनेक बार पराजित किया। और एक बार तो महोबा पर अधिकार भी कर लिया। परन्तु स्वयं परमर्दि के अभिलेखों से, जो महोबा और कालिंजर में पाये गये हैं, स्पष्ट है कि चन्देल राज का प्रभुत्व उन दोनों राजधानियों पर बना रहा; केवल बुन्देलखण्ड का कुछ भाग पृथ्वीराज द्वारा लूटा गया था[१]। ११८८ ई० के पूर्व कभी पृथ्वीराज का संघर्ष सम्भवतः गुजरात के भीम द्वितीय के साथ हुआ, जैसा जिनपाल की 'खरतरगच्छपट्टावलि' से प्रमाणित होता है। इसी प्रकार की ध्वनि वेरावल के अभिलेख से भी निकलती है[२]। उसी अभियान में उसने आबू के धारावर्ष परमार पर भी आक्रमण किया, जिसका कुछ परिणाम न निकला[३]।

गुजरात और बुन्देलखण्ड के राजाओं के अतिरिक्त पृथ्वीराज का युद्ध कन्नौज के गाहड़वालों से भी हुआ। गाहड़वालों और चौहानों में संघर्ष अवश्यम्भावी था, कारण कि गाहड़वाल साम्राज्यपदीय और उत्तर भारत के केन्द्र बिन्दु थे। राज्यलक्ष्मी कन्नौज में विराजी थी और वहाँ 'महोदय श्री' कहलायी। उक्त महोदय श्री को हस्तगत करने के लिए सदा से युद्ध होते आये थे। पालों, प्रतिहारों, राष्ट्रकूटों आदि सभी ने कन्नौज को हस्तगत करने का प्रयास किया था। चौहान अपनी साम्राज्य लिप्सा में कन्नौज को नहीं भुला सकते थे और कन्नौज की शक्ति क्षीण कर अपनी शक्ति को अखिल उत्तर-भारतीय बना सकते थे। इसी उपक्रम के दौरान बीसलदेव विग्रहराज चतुर्थ ने कन्नौज के गाहड़वालों के सामन्त तोमरों से दिल्ली छीनी थी। शक्ति के लिए संघर्ष तो अनिवार्य था ही, दिल्ली का छिन जाना उस संघर्ष में अग्नि में घी का कार्य किया। दोनों राजकुलों में कशमकश तीव्र हो गई। चन्देल और गाहड़वाल कुछ समय के लिए इसी समान शत्रु के कारण मित्र बन गये थे। चन्देलों पर पृथ्वीराज की विजय ने, जिसमें सम्भवतः जयचन्द्र की सेना की हार भी शामिल थी, चौहानों और गाहड़वालों के बीच का यह तीखापन और तेज़ कर दिया। पृथ्वीराज जयचन्द पर विजय करने के अवसर की ताक में लगा, और जयचन्द्र गाहड़वालों के समीप चौहानों को तुच्छ समझता रहा। ताजुल मथासिर के अनुसार पृथ्वीराज संसार जीतने का स्वप्न देखने लगा था[४]। जयचन्द्र भी यही महत्वाकांक्षा रखता था, तथा जब पृथ्वीराज ने उसकी पुत्री संयोगिता का अपहरण कर लिया, तो दोनों में संघर्ष प्रारम्भ हो गया। इस घटना का उल्लेख पृथ्वीराज-प्रबन्ध, प्रबन्ध चिन्तामणि, प्रबन्ध-कोश हम्मीर महाकाव्य आदि में तो नहीं मिलता, पर अनेक प्रमाणों से यह घटना सही जान पड़ती है[५]। कारण कि अबुलफज़ल, चन्द्रशेखर व चन्दवरदाई

---

१. ऐपि० इंडि०, ५, ऐपेण्डिक्स, पृ० ३६ तथा ए० एस० आर०, २१, पृ० ७३; इंडि० एण्टि० १९, पृ० २५४।

२. हिस्टारिकल इन्स्क्रप्शन्स ऑफ गुजरात, २, पृ० २१८।

३. पार्थ पराक्रम व्यायोग, पृ० ३।

४. इलि० डाउ०, भाग २, पृ० २१४।

५. शर्मा, पृ० ७८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीनों ने इसका उल्लेख किया है[1]। साथ ही पृथ्वीराज विजय में भी संयोगिता-हरण का अप्रत्यक्ष उल्लेख मिलता है, जिसमें कहा गया है कि अप्सरा की अवतार उस कन्या के प्रति पृथ्वीराज असाधारण रूप से आकृष्ट हो गया था[2]। संयोगिता के अपहरण के परिणाम स्वरूप युद्ध में पृथ्वीराज की सेना को अपार क्षति पहुंची तथा एक सशक्त पड़ोसी शासक सर्वदा के लिए उसका शत्रु बन गया। यह घटना ११९२ ई० से पूर्व की है, जब मुहम्मद ग़ोरी ने पृथ्वीराज का सूर्यास्त कर डाला। यदि वे दोनों शासक विदेशी संकट का संबद्ध रूप से सामना करते, तो देश के इतिहास की रूपरेखा कदाचित् भिन्न ही होती।

भारतीय राजाओं के साथ चौहानों की जो कशमकश हुई, उसमें चौहान विजयी हुए, और पृथ्वीराज का यश गीतबद्ध होकर सर्वत्र गाया जाने लगा। अपने अभिलेखों में तो उसने अपनी विजयों का सविस्तार वर्णन किया ही है, रोमांचक जीवन व्यतीत करने के कारण वह अनेक कथाओं और काव्यों का पहले ही नायक बन गया था। अब उसकी राजनीतिक विजयों ने उसे उत्तर भारत के राजकुलों में सबसे शक्तिमान प्रतिष्ठित कर दिया। चौहानों का उत्कर्ष स्वाभाविक ही न चन्देलों को सह्य हुआ, और न गाहड़वालों को ही। गाहड़वाल नृपति जयचन्द्र को तो पृथ्वीराज का यश विष की भाँति लगा, पर यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि उसने अपने द्वेष का देश के विरुद्ध उपयोग नहीं किया। जब पृथ्वीराज शिहाबुद्दीन ग़ोरी के साथ अन्तिम संघर्ष में युद्धक्षेत्र में उतरा तब जहाँ अनेक अन्य शासक उसके आवाहन पर रणक्षेत्र में उसके झंडे के नीचे खड़े हुए, वहाँ जयचन्द्र ने अपनी सेना नहीं भेजी, जो निश्चय ही उसके कन्याहरण के ताजे घाव का परिणाम था।

जयचन्द्र गाहड़वाल (११७०–११९४ ई०) :

जयचन्द्र का जन्म उसी दिन हुआ जिस दिन उसके दादा गोविन्दचन्द्र ने दशार्ण की विजय की[3]। इसी से उसका नाम जयचन्द्र पड़ा। 'रम्भामंजरी' के अनुसार जयचन्द्र की माता का नाम चन्द्रलेखा था[4]। पिता विजयचन्द्र के जीवन काल में ही युवराज पद के साथ-साथ उसे अन्य राजकीय अधिकार भी दे दिये गये थे। यह युवराज पद उसे रविवार, १६ जून, ११६८ ई० को मिला था। उसी अवसर पर उसने काशी में गंगा स्नान कर अपने महापुरोहित, प्रहराज शर्मन को हरिपुर नामक ग्राम दान किया[5]। एक दूसरे अभिलेख के अनुसार २१ जून, ११७० ई० को रविवार के दिन जयचन्द्र गाहड़वालों की गद्दी पर बैठा[6]। जयचन्द्र असंख्य सेना रखने के कारण 'पंगु' अथवा 'दल पंगुल' कहलाता था[7]।

---

१ आइने अकबरी, २, पृ० ३०० तथा आगे; सुर्जनचरित (चन्द्रशेखर), १०, १३-१२८; पृथ्वीराज रासो, ४५-५० तथा ६०-६१ समय, नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण।

२. पृथ्वीराज विजय, १०, २ तथा १२, १-३८।

३. रम्भामंजरी, अंक १, पृ० २३।

४. वही, भूमिका, पृ० ४।

५. ऐपि० इंडि०, ४, पृ० ११८, ११९।

६. वही, ४, पृ० १२०-१२१।

७. 'सैन्यातिशयात् पंगुबिरुदधारकः'। देखिये, रम्भामंजरी, भूमिका, पृ० ४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चन्दबरदाई के अनुसार उसकी विशाल सेना का अग्र भाग युद्धस्थल पहुँच जाता था, जब कि पिछले की चलने की बारी भी न आ पाती थी[१]। यह कहना अनावश्यक है कि इस कथन में अतिशयोक्ति का भी समावेश है। सूरज प्रकाश के अनुसार उसकी सेना में ८० हजार कवच-धारी, ३० हजार घुड़सवार, ३ लाख पैदल और २ लाख धनुर्धर तथा परशुधारी थे; इसके साथ-साथ योद्धाओं से युक्त सशक्त गजदल भी था[२]। इन प्रमाणों के आधार पर कहा जाता है कि जयचन्द्र ने दूर-दूर तक पृथ्वी जीत ली, और उसने जब देवगिरि के यादवों पर आक्रमण किया, तब उसकी रक्षा पृथ्वीराज द्वारा भेजे चामुण्डराय द्वारा हुई[३]। विद्यापति की पुरुष परीक्षा में लिखा है कि जयचन्द्र ने शिहाबुद्दीन को अनेक बार पराजित किया[४]। रंभामंजरी के अनुसार वह 'निखिल यवन क्षयकरः' था[५]। रासो सार में भी उसके द्वारा ग़ोरी के पराभव का उल्लेख है[६]। यद्यपि इन ग्रन्थों में जयचन्द्र की मुसलमानों पर अनेक विजयों का यशगान मिलता है, परन्तु हमारे पास इस बात ही पुष्टि करने के लिए अन्य ऐतिहासिक तथ्यों का सर्वथा अभाव है। अतः यह कथन अत्यन्त संदिग्ध एवं काल्पनिक प्रशस्ति-गान सा लगता है।

चौहान ख्यातों का कहना है कि जयचन्द्र ने उत्तर के राजा को परास्त कर उसके आठ सामन्त राजाओं को बन्दी बना लिया। अन्हिलवाड़ के सिद्धराज को दो बार परास्त किया, और अपने राज्य की सीमा नर्मदा के दक्षिण तक फैला दी[७]। चाहे इन अतिरंजित विवरणों में विशेष तथ्य न हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जयचन्द्र उस काल का पराक्रमी और शक्तिमान राजा था, जिसके ऐश्वर्य को समकालीन मुसलमान इतिहासकारों ने भी सराहा है। इब्ने असीर का तो यहाँ तक कहना है कि 'बनारस का राजा भारत के राजाओं में सबसे महान था, जिसके राज्य का विस्तार लम्बाई में चीन की सीमा से मालवा के सूबे तक था, और चौड़ाई दस दिन की यात्रा में समाप्त होने वाली लाहौर की भूमि तक थी[८]। पर उत्तर-पश्चिम में चौहानों के और दक्षिण में चन्देलों के प्रबल राजवंशों के अस्तित्व के कारण इसे स्वीकार करना सम्भव नहीं कि जयचन्द्र का साम्राज्य इतना विस्तृत था। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जयचन्द्र का राज्य हिमालय की निचली श्रेणी से गया तक फैला हुआ था, और काशी उसके राजकुल की दूसरी राजधानी थी। मुस्लिम इतिहासकारों ने जयचन्द्र को 'बनारस का

---

१. टॉड, ऐनाल्स एण्ड एन्टिक्विटीज़ ऑफ राजस्थान (कुक), वो० २, पृ० ९३६।
२. वही।
३. आर० एस० त्रिपाठी, हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, पृ० ३२२।
४. पुरुष परीक्षा, इंगलिश अनुवाद, नेसरकर का संस्करण, बम्बई, १९१४, अध्याय ४, ग्यारहवीं कथा (घस्मरकथा), पृ० १४६-४७।
५. रम्भामंजरी, अंक १, पृ० ५।
६. रासो-सार, पृ० ९५-९८।
७. टॉड, ऐनाल्स एण्ड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ राजस्थान (कुक), खं० २, पृ० ९३६।
८. इलि० डाउ०, खं० २ पृ० २५१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राय' लिखा है[१]।' सेन अभिलेखों को यह गर्वोक्ति कि लक्ष्मणसेन ने प्रयाग और काशी में विजयस्तम्भ खड़े किये, नितान्त कपोलकल्पना है[२]।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जयचन्द्र शौर्य एवं पराक्रम में पृथ्वीराज से किसी भी प्रकार कम नहीं था। किन्तु इसके बावजूद तराइन के मैदान में पीठ दिखाकर भी कवि चन्द के प्रयत्न से रायपिथौरा वीरवर बने और चन्दावर के मैदान में मुट्ठी भर सैनिकों के साथ अस्सी वर्ष की वृद्धावस्था में खेत होनेवाले जयचन्द्र ने श्री हर्ष की उदासीनता से देशद्रोही होने का नाम कमाया और अपयश का भागी बना।

परमर्दिदेव (परमल) चन्देल (११६५–१२०३ ई०):

अपने पिता तथा चाचा की अकाल मृत्यु के कारण अपने पितामह मदन वर्मन के पश्चात् परमर्दिदेव चन्देल सिंहासनारूढ़ हुआ। पितामह ने अपने पराक्रम एवं विजयों से चंदेलों का जो सुयश उत्तर भारत में फैला दिया था, और उनके लिये जो शक्ति अर्जित कर दी थी, उसका शीघ्र ही ह्रास भी होने लग गया। यद्यपि परमर्दिदेव स्वयं भारतीय इतिहास के उसी काल में विशेष विख्यात हो गया, किन्तु उसकी ख्याति की नींव उसकी विजयों पर नहीं पड़ी, बल्कि पृथ्वीराज के सम्पर्क में आने से और पृथ्वीराज रासों तथा आल्हा खण्ड के माध्यम से हुई। पृथ्वीराज रासों में महोबा सम्बन्धी एक स्वतन्त्र खण्ड ही है। जिसमें आल्हा और ऊदल के कार्यों का यश गाया गया है। ये बनाकर राजपूत थे, जो चन्देल और गाहड़वाल दोनों राजकुलों से सम्बन्धित थे।

पृथ्वीराज के मदनपुर नामक नगर के अभिलेख से प्रकट है कि चन्देल राज्य की सीमा लांघ कर उसने परमर्दि को परास्त किया था, और उसके जनपदों को रौंद डाला था।[३] रासो के अनुसार पृथ्वीराज ने महोबा पर अधिकार भी कर लिया था।[४] सिसरागढ़ के युद्ध में परमर्दि को परास्त करने के उपरान्त पृथ्वीराज ने महोबा का शासन भार यज्जुन नामक सरदार को सौंप दिया। पृथ्वीराज की इस विजय की तिथि ११८२–८३ ई० का भास उपर्युक्त मदनपुर अभिलेख से होता है। इस संघर्ष में सम्भवतः जयचंद्र की सहायता भी चंदेलों को प्राप्त थी। महोबा पर पृथ्वीराज स्थायी अधिकार न कर सका, तथा पृथ्वीराज रासो के अनुसार परमर्दि के पुत्र समरजीत ने कन्नौज के जयचंद्र के कर्मचारी नृसिंह की सहायता से यज्जुन को महोबा से मार भगाया।[५] इसमें सन्देह नहीं कि पृथ्वीराज के इस आक्रमण ने चन्देलों को क्षति पहुंचाई,

---

१. इलि० डाउ० खं० २, पृ० २२२, २२३, ३०० आदि। फ़रिश्ता के अनुसार जयचन्द्र कन्नौज तथा बनारस का शासक था। देखिये, ब्रिग्स, १, पृ० १७८।

२. जे० ए० एस० बी०, ७, भाग १ (१८३८), पृ० ४२, ४८; आर० डी० बनर्जी द्वारा पुनः सम्पादित, न्यू सीरीज, १०, (१९१४), पृ० ८७–१०४; न्यू सीरीज, ५, (१९०९), पृ० ४७३–४७६, श्लोक ११।

३. वैद्य, डाउनफॉल ऑफ हिन्दू इंडिया, पृ० १८३।

४. वही, पृ० १८३; केशवचन्द्र मित्र, चन्देल और उनका राजत्वकाल, पृ० १२२।

५. वैद्य, पूर्वोद्धृत पृ० १८३; के० सी० मित्र, पूर्वोद्धृत, पृ० १२२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा दो प्रमुख राजवंशों में वैमनस्य एवं शत्रुता को दृढ़ बनाया, जब कि देश पर मुस्लिम आक्रामक आघात कर रहे थे। परस्पर संघर्ष से शक्ति क्षय करके इन शासकों ने आक्रामकों का कार्य कठिन न बनाकर सुलभ बना दिया।

परमर्दिदेव के अभिलेखों से उसके वैभव पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। उन अभिलेखों की संख्या सात और उनका उल्लेख काल ११६७–१२०१ ई० के मध्य है।[1] उसके एक अभिलेख में उल्लेख है कि 'परमर्दि के राज्य में विवाद का लेश भी न था, क्योंकि उसने सरस्वती और लक्ष्मी दोनों में मैत्री स्थापित कर दी थी।'[2] चूंकि यह अभिलेख पृथ्वीराज द्वारा उसकी पराजय के १३ वर्ष पीछे ११९५ ई० का है, इससे विदित है कि पृथ्वीराज से हारने के बाद परमर्दि ने अपनी शक्ति का पुनर्गठन कर लिया था। एक अभिलेख में चंदेल राज की महिमा का वर्णन इस प्रकार है—'राजा परमर्दि की किसके द्वारा पूजा नहीं हुई? पृथ्वी पर असमान वीरों के बीच वह देवता था। प्रजावत्सलता के रहस्य की जानकारी में वह निपुण था।'[3]

परमर्दि को अभिलेखों तथा दान पत्रों में अगणित ब्राह्मणों को अनेक ग्राम दान करनेवाला भी कहा गया है।[4] वह विद्वानों और कलाकारों का आश्रयदाता भी था। परमर्दि पृथ्वीराज की भांति ही अपने पराक्रम एवं शौर्य के कारण जन मानस का लोकप्रिय नायक था जो बुन्देलखण्ड के सर्वसाधारण की स्मृतियों में आज भी जागृत है, जहाँ उसकी प्रशस्तियों का गायन होता है।

मुहम्मद ग़ोरी और पृथ्वीराज तृतीय :

महात्वाकांक्षो मुइज़्ज़ुद्दीन का लाहौर से आगे बढ़ना अवश्यम्भावी था, अतः अगली चोट उसने तवर हिन्दा के किले (११९१ ई०) पर की।[5] सम्भवतः यह आक्रमण अचानक ही हुआ, क्यों कि आत्मरक्षा में असमर्थ दुर्ग की सेना ने शीघ्र ही आत्म-समर्पण कर दिया।[6] १२ हजार घुड़सवारों सहित ज़ियाउद्दीन तुलाकी को ८ माह तक दुर्ग की रक्षा का भार सौंप मुइज़्ज़ुद्दीन ने ग़ज़नी की ओर प्रस्थान का विचार किया, पर तभी उसे सूचना मिली कि पृथ्वीराज तवरहिन्दा पर पुनः अधिकार करने के लिए आगे बढ़ रहा है। पृथ्वीराज ने

---

१. वैद्य, पूर्वाद्धृत, पृ० १८४।

२. ऐपि० इंडि०, भाग १, पृ० २०९—परस्परविरोधस्य तस्य राज्ये कथैवका।
संगतं श्री सरस्वत्योरपि येन प्रवर्तितम्।

३. आ० स० रि०, भाग २१, पृ० ३७।

४. ऐपि० इंडि०, भाग ४, पृ० २०९।

५. तबक़ाते नासिरी की कुछ पाण्डुलिपियों में इसे तवरहिन्दा कहा गया है, तथा कुछ में सरहिन्द। जुब्दतुत-तवारीख में इसे सरहिन्द तथा फ़रिश्ता में इसे भटिंडा कहा गया है। डा० हबीबुल्ला के अनुसार यह वास्तव में भटिंडा ही था, जिसका समर्थन स्थानीय लोकोक्तियाँ तथा पुरातत्व दोनों ही करते हैं। लाहौर से हिन्दुस्तान के लिए सबसे छोटा तथा सीधा मार्ग पश्चिमी पटियाला होकर है, जहाँ भटिंडा स्थित है। देखिये, हबीबुल्ला, दि फाउंडेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया, पृ० ६०।

६. हबीबुल्ला, पृ० ६०; सी० मोबेल डफ, क्रॉनालाजी ऑफ इंडिया, पृ० १६७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रस्तुत संकट को पहचान कर ग़ोरियों को पूर्णतः सत्तारूढ़ होने से पूर्व ही खदेड़ने का दृढ़ निश्चय कर लिया। मुइज्जुद्दीन ने मुड़कर तराइन के मैदान में पृथ्वीराज का सामना किया। तबकाते नासिरी के अनुसार हिन्द के समस्त राजा कोल्ह के राय के साथ आये थे।[1] फ़रिश्ता के अनुसार पृथ्वीराज की सेना में २ लाख घुड़सवार तथा ३० हजार हाथी थे।[2] किन्तु यह संख्यायें तथा इस प्रकार के कथन अविश्वसनीय हैं।

यह ऐतिहासिक युद्ध तराइन के मैदान में ११९१ ई० में हुआ।[3] फारसी सूत्रों के आधार पर फ़रिश्ता कहता है कि मुइज्जुद्दीन की सेना के दाहिने तथा बायें बाजू टूट गये तथा मध्य में भी अधिक आदमी नहीं रहे। यह देख कर सुल्तान के एक अधिकारी ने कहा, 'बायीं और दायीं भुजाओं के नायक अमीर भाग गये हैं। अफगान तथा खल्जी अमीर जो आगे नेतृत्व कर रहे थे दिखाई नहीं दे रहे हैं। अतः ऐसी परिस्थिति में आप को तुरन्त लाहौर की ओर वापस चलना चाहिये।' सुल्तान यह सुन कर क्रुद्ध हो उठा और अपनी सेना के मध्य भाग के साथ तलवार खींच शत्रु पर टूट पड़ा। खांडेराय की दृष्टि सुल्तान पर पड़ी और उसने अपना विशाल हाथी उसी ओर मोड़ दिया। सुल्तान ने भी उस पर आक्रमण किया तथा बल्लम से उसके मुंह के कई दांत झाड़ दिये। किन्तु राय ने भी अत्यन्त वीरता सहित सुल्तान के कन्धे पर ऐसा वार किया कि वह अपने घोड़े से गिरते गिरते बचा। ठीक उसी समय एक खल्जी सिपाही ने उछल कर सुल्तान के घोड़े पर उसके पीछे बैठ उसे सम्हाल लिया, तथा घोड़े को एड़ लगा कर उसे पलायमान गोरी अमीरों के पास ले गया। सुल्तान की उपस्थिति से उसकी शेष सेना में पुनः व्यवस्था आ गई।

फ़रिश्ता जैनुलमासीर के आधार पर एक दूसरा वृत्तान्त भी देता है, जिसके अनुसार सुल्तान युद्धस्थल में घोड़े से गिर गया और वहीं पड़ा रहा। रात को कुछ तुर्की गुलाम मरे हुए लोगों में सुल्तान का शव ढूंढ़ने के लिए आये। अपने गुलामों की आवाज पहचान कर सुल्तान

---

१. तबक़ाते नासिरी, पृ० ११८

२. फ़रिश्ता, खं० १, पृ० ५७; इब्ने असीर, ११, पृ० २५५।

३. मिनहाज (बिब० इंडिका एडिशन, ११८; हबीबी एडिशन, १, ३९९) के अनुसार इस स्थान का नाम तराइन था। निज़ामुद्दीन (तबक़ाते अकबरी, ३८) तथा फ़रिश्ता (खं० १, ५७) भी यही कहते हैं, किन्तु कुछ बाद के इतिहासकारों ने इस स्थान का नाम नाराइन भी बताया है। यह तराइन का ही सम्भवतः गलत पाठ है। फ़रिश्ता उस स्थान को तरावरी भी कहता है। एल्फिस्टन, हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० ३५५, ने इसका समीकरण कर्नाल और थानेश्वर के बीच में किया है। रैवर्टी, वैद्य, तथा पंजाब गज़ेटियर इससे सहमत हैं। किन्तु कनिंघम ने [रिपोर्ट्स १४, ६८, ६९] तराइन को भटिंडा और सिरसा के बीच में तोरवान नामक ग्राम से समीकृत किया है। हबीबुल्ला ने [फाउंडेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया, पृ० ३२६] कनिंघम का मत मान लिया है। क्योंकि भटिंडा जीतने के बाद मुइज्जुद्दीन ग़ज़नी के लिए चला ही था, यह स्थान तारवान के आस-पास ही होना चाहिये। देखिये, ए कॉम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया, खं० ५, पृ० १५९–६०, टि० १४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने उन्हें पुकारा। सुल्तान को जीवित पाकर वे लोग अति प्रसन्न हुए और अपने कन्धों पर उसे अपने शिविर तक ले गये, जहाँ उसे पालकी में बिठा दिया गया।[1]

मिनहाज-उस-सिराज का वृत्तान्त पहले वृत्तान्त से मिलता है, जो अधिक विश्वसनीय प्रतीत होता है। यह बात माननी तनिक कठिन है कि सुल्तान रणक्षेत्र में पड़ा रहा और उसे कोई बहुत देर तक पहचान न सका। मिनहाज के अनुसार सुल्तान ने दिल्ली के शासक गोविन्द राय पर आक्रमण करके उसके मुँह के दांत झाड़ दिये। राय ने भी भाला फेंक कर सुल्तान का कंधा घायल कर दिया। सुल्तान घोड़े का मुँह फेर पीछे हट गया। घाव के कष्ट के कारण वह घोड़े से गिरने ही वाला था कि एक खल्जी सिपाही ने उसे पहचान कर उसके घोड़े पर बैठ उसे सम्भाल लिया, तथा युद्ध क्षेत्र से बाहर ले गया।[2] हम्मीर महाकाव्य के अनुसार पृथ्वीराज ने युद्ध में शिहाबुद्दीन को बन्दी बना लिया। किन्तु बाद में मुक्त करके मुल्तान जाने की आज्ञा दे दी। यह कथन अत्युक्ति सा लगता है।[3]

मुइज़्ज़ुद्दीन को परास्त कर राय पिथौरा तबरहिन्द की ओर बढ़ा। मलिक ज़िया-उद्दीन ने १३ महीने तक उक्त दुर्ग की रक्षा की, किन्तु अन्त में उसे समर्पण करना पड़ा। इस काल में मुइज़्ज़ुद्दीन ने पृथ्वीराज के साथ पुनः युद्ध की पूरी तैयारियां कीं।

मुइज़्ज़ुद्दीन द्वारा युद्ध की तैयारी :

फ़रिश्ता सम्भवतः कतिपय लुप्त सूत्रों के आधार पर मुइज़्ज़ुद्दीन द्वारा पुनः पृथ्वीराज से युद्ध करने के लिए की गई तैयारियों का वृत्तान्त प्रस्तुत करता है। उसके अनुसार ग़ोर लौटने पर मुइज़्ज़ुद्दीन ने ग़ोरी, ख़िल्जी तथा ख़ुरासानी अमीरों को कठोर दण्ड दिया। अपनी राजधानी ग़ज़नी लौटने पर पराजय के दुःख के कारण उसने न खाना खाया, न पानी पिया। अपनी पत्नी के पास तक नहीं गया, और अपने भीतरी वस्त्र भी नहीं बदले। रात और दिन उसने राय पिथौरा से युद्ध की तैयारी की और एक वर्ष पश्चात् हिन्दुस्तान की सड़क फिर पकड़ी।

पेशावर तथा मुल्तान होता हुआ वह लाहौर जा पहुँचा। ताजुलमासिर के अनुसार मुइज़्ज़ुद्दीन ने लाहौर से कवामुलमुल्क रुकमुद्दीन हम्ज़ा को यह सन्देश लेकर राय पिथौरा के पास भेजा कि वह आत्म समर्पण कर दे। राय ने कठोर उत्तर दिया तथा भारत के अन्य शासकों से सहायता की प्रार्थना की। फ़रिश्ता के अनुसार राय पिथौरा की सेना में ३ लाख राजपूत तथा अफ़गान घुड़सवार थे।[4] यह संख्या अवश्यमेव अतिरंजित है। मिनहाज को मुइनुद्दीन उशी नामक एक विश्वसनीय व्यक्ति ने बतलाया कि मुइज़्ज़ुद्दीन की सेना में १ लाख २० हजार अस्त्र शस्त्रों से लैस सैनिक थे।[5] मुइज़्ज़ुद्दीन की सेना में गज़नी के चार अनुभवी

१. फरिश्ता; खं० १, पृ० ५७।
२. तबकाते नासिरी, पृ० ११८, ११९।
३. देखिये, दि स्ट्रगिल फॉर एम्पायर, पृ० ११०।
४. फ़रिश्ता, खं० १, पृ० ५८।
५. तबक़ाते नासिरी, पृ० ११९। एसामी के अनुसार उसकी सेना में १ लाख ३० हजार सैनिक थे, पृ० ७८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा रणबांकुरे सेनापति भी थे। यह थे खरबक, खुरमेल, इलाह तथा मुकल्ब। प्रत्येक के नेतृत्व में एक विशाल सेना थी।[1] इसके अतिरिक्त अन्य प्रमुख सरदारों में ताजुद्दीन यालदुज़, कुबाचा तथा ऐबक थे।

सुल्तान ने ११९२ ई० में पुनः तराइन के मैदान में ठीक उसी स्थान पर अपने शिविर गाड़ दिये, जहाँ साल भर पहले उसे मुँह की खानी पड़ी थी। फ़रिश्ता के अनुसार राय पिथौरा के साथ १५० राजपूत राजे रणक्षेत्र में मरने मारने के लिए उद्यत थे।[2] हम्मीर महाकाव्य का यह कथन कि पृथ्वीराज अपनी पहली विजय के गर्व में छोटी सी सेना लेकर मुसलमानों का सामना करने के लिए बढ़ा, सही नहीं प्रतीत होता। स्कन्द जो पृथ्वीराज का सेनापति था, तथा जिसकी योग्यता से तराइन के प्रथम युद्ध में राजपूत विजयी हुए थे, एक अन्य युद्ध में व्यस्त होने के कारण अनुपस्थित था। पृथ्वीराज के एक और सेनापति उदयराज ने भी राजधानी से चलने में देरी की। मार्ग में पृथ्वीराज से उसके मंत्री सोमेश्वर ने आगे न बढ़ने की प्रार्थना की। पृथ्वीराज को उसके इस कृत्य पर विश्वासघाती होने की शंका हुई तथा उसने क्रुद्ध होकर सोमेश्वर के कान कटवा कर उसे निकाल दिया। इस अपमान की असह्य पीड़ा से विचलित होकर सोमेश्वर मुसलमानों से मिल गया।[3]

तराइन का द्वितीय युद्ध :

मुइज़्ज़ुद्दीन ने बड़ी सावधानी से युद्ध की योजना बनाई। अपनी सेना का मध्य भाग जिसमें सामान, झंडे, हाथी इत्यादि थे उसने कई मील पीछे छोड़ दिया, ताकि शत्रु को उसकी वास्तविक शक्ति का ज्ञान न हो सके। उसने सेना का यह भाग इसलिए सुरक्षित (रिजर्व) रखा कि जब उसकी शेष सेना पूर्ण रूप से शत्रु से भिड़ जाय, तब यह शक्ति सहसा शत्रु पर प्रहार कर उसे परास्त कर दे। इस भाग को पीछे छोड़ मुइज़्ज़ुद्दीन की शेष सेना धीरे-धीरे आगे बढ़ी।[4] इस अग्रगामी भाग में हलके हथियारों से लैस घुड़सवार थे, जिन पर कोई विशेष भार नहीं था। यह अश्वारोही चार भागों में विभक्त कर दिये गये, ताकि वे चारों ओर से शत्रु पर आक्रमण कर सकें। इस प्रकार अपनी सेना का विभाजन करके मुइज़्ज़ुद्दीन ने दस हजार घुड़सवार तीरंदाजों को आदेश दिया कि वे दायें, बायें, आगे तथा पीछे शत्रु की सेना पर दबाव डालते रहें। जब शत्रु के हाथी, घुड़सवार तथा पैदल आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ें, तब मुइज़्ज़ुद्दीन के आदेशानुसार उसके इन घुड़सवारों को मुँह फेरकर घोड़े की एक दौड़ भर पीछे हट जाना था।[5] इस प्रकार आगे बढ़कर तथा पीछे हटकर, तथा पुनः आगे बढ़कर इन सैनिकों को शत्रुदल के ऊपर निरन्तर दबाव डालने का निर्देश दिया गया, जिससे वे यह समझें कि गोरी की समस्त सेना युद्ध में रत है। यह वृत्तान्त हमें मिनहाज में मिलता है। किन्तु फ़रिश्ता कुछ अन्य बातें बतलाता है—अपनी पहली विजय के गर्व में उन्होंने (पृथ्वीराज तथा उसके

---

१. फुतूह-उल-सलातीन, आगरा संस्करण, पृ० ७३, ७४।
२. फ़रिश्ता, खंड १, पृ० ५८।
३. देखिये, दि स्ट्रगिल फॉर एम्पायर, पृ० १११।
४. मिनहाज, पृ० ११९, १२०।
५. मिनहाज, पृ० १२०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साथियों ने) सुल्तान को एक कठोर पत्र भेजा, "हमारी सेना की शक्ति तथा संख्या का ज्ञान तुम्हें शीघ्र हो जायगा। हिन्दुस्तान के समस्त भागों से और भी सैनिक टुकड़ियां चली आ रही हैं। यदि तुम्हें अपने पर दया नहीं आती तो कम से कम उन भ्रमित लोगों पर तो रहम करो जिन्हें तुम यहाँ लाये हो। यदि तुम अपने इस अभियान पर पश्चात्ताप करो तथा वापस चले जाओ, तो हम अपनी मूर्तियों की शपथ खाते हैं कि तुम्हें लौटते समय हम कोई यातना नहीं देंगे। अन्यथा हम कल तुम पर आक्रमण करके अपनी ३ लाख अश्वारोहियों से भी अधिक सेना से तथा असंख्य तीरंदाजों से·····तुम्हें कुचल डालेंगे।" मुइज़्ज़ुद्दीन ने उत्तर दिया, "आपका सन्देश अद्भुत प्रेम से पूर्ण तथा उदार है। किन्तु इस विषय में मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। अपने भाई की आज्ञानुसार मैं यहाँ आया हूँ और इस अभियान की समस्त कठिनाइयां सहन की हैं। यदि आप मुझे पर्याप्त समय दें तो मैं कुछ सन्देशवाहक भेज कर उन्हें (भाई को) आपकी दमनकारी शक्ति की सूचना दूं, तथा इस शर्त पर आपसे सन्धि करने की आज्ञा मांगूं कि सरहिन्द, मुल्तान तथा सिन्ध मेरे हैं, तथा शेष हिन्दुस्तान आपका है।"[1]

फ़रिश्ता के अनुसार राजपूत राजाओं ने समझा कि मुइज़्ज़ुद्दीन के उत्तर की नम्रता में मुसलमान सेना की दुर्बलता प्रतिबिम्बित थी। अतः वह लोग निश्चिन्त होकर सो गये। किन्तु मुइज़्ज़ुद्दीन ने रात भर युद्ध की तैयारी की, तथा जब प्रातः राजपूत लोग नित्य-क्रिया से निवृत्त होने के लिए तथा हाथ मुँह धोने के लिए बाहर निकले तभी मुहम्मद गोरी उन पर अपनी सुसज्जित सेना लेकर टूट पड़ा। हिन्दू लोग इस आकस्मिक आक्रमण से सहम गये, किन्तु किसी प्रकार वे अपने हथियार आदि लेकर रणक्षेत्र में आये। सुल्तान हिन्दुओं के निडर साहस को जानता था। इस कारण उसने अपनी सेना चार भागों में विभक्त कर दी थी जो क्रम से हिन्दुओं से लड़ने के लिए बढ़ी। जब हिन्दू हाथियों तथा घोड़ों ने मुइज़्ज़ुद्दीन की सेना पर आक्रमण किया, तो वह पीछे को भागी। किन्तु जब इस चाल में आकर हिन्दुओं ने उनका पीछा किया, तो मुइज़्ज़ुद्दीन की सेना ने लौटकर अपने फरसों से शत्रु के सिर धड़ से अलग करने आरम्भ कर दिये। इस प्रकार प्रातः से अपराह्न तक युद्ध चला, जब मुइज़्ज़ुद्दीन ने अपना कवच पहन कर बारह हजार घुड़सवारों का नेतृत्व करते हुए नंगी तलवारों और भालों सहित शत्रु पर आक्रमण कर दिया। बड़े बड़े सूरमाओं के रक्त से पृथ्वी रंजित हो उठी। और पलक मारते मारते हिन्दू सेना की पंक्तियां टूटने लगीं। ठीक उसी समय खरमिल तथा अन्य अमीरों ने चारों ओर से राजपूत सेना पर आक्रमण करके उन्हें युद्ध स्थल से खदेड़ दिया[2]।

एसामी के अनुसार राजपूत सेना का नेतृत्व गोविन्द राय कर रहा था। वह पिथौरा की सेना से आगे लड़ा। पिथौरा बीच में लड़ा, पिथौरा की सेना का बायां भाग उसके वजीर भोला के नेतृत्व में था, तथा दायां भाग बदमसा रावल के आधीन था। मुइज़्ज़ुद्दीन अपनी सेना के मध्य भाग का नेतृत्व कर रहा था। खरबक मुकद्दम अथवा अग्रगामी का नेता था। सेना का दांयां भाग इलाह के आधीन था, तथा बांया मकाल्ब के। खारमिल मध्य भाग के पृष्ठ में था। क़ुतुबुद्दीन ऐबक़ सेना की सामान्य व्यवस्था की देख रेख कर रहा था तथा मुइज़्ज़ुद्दीन के समीप था। मुइज़्ज़ुद्दीन की सेना में एसामी के अनुसार १ लाख ३० हजार घुड़-

१. फ़रिश्ता, खं० १, पृ० ५८।
२. फ़रिश्ता, खं० १, पृ० ५८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सवार थे, जो सब लोहे के कवचों से सुरक्षित थे। गोविन्द राय अपने हाथियों की सेना लेकर आगे बढ़ा तथा खरबक पर आक्रमण किया। खरबक ने अपना चेहरा ढाल से ढक कर अपनी रक्षा की, तथा अपने तीरंदाजों को महावतों को लक्ष्य कर तीर चलाने का आदेश दिया। जैसे ही तीन चार महावत घायल हुए हाथियों की समस्त पंक्ति अस्त-व्यस्त हो गई और रणक्षेत्र से भाग चली।[१] जब हाथियों की पंक्ति पीछे भागी खरबक ने अपना दबाव और बढ़ा दिया। जब मुइज्जुद्दीन ने शत्रु की सेना में अव्यवस्था देखी, तो उसने दायीं तथा बायीं ओर से आक्रमण का आदेश देकर स्वयं मध्य से आक्रमण किया। हिन्दू सेना टिक न सकी और भगदड़ मच गई।[२]

यद्यपि तत्कालीन सूत्रों में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता, तथापि ग़ोरी सेनाओं का एक मुख्य अंगरक्षक 'बाना करवा' कहलाता था। करवा बैल की खाल से बनता था, जिसके दोनों ओर ऊन अथवा रुई लगाई जाती थी। पैदल सेना का संरक्षण 'करवा' एक दीवार की भांति करता था, तथा कोई शस्त्र उसे आसानी से पार नहीं कर पाता था।[३]

मुइज्जुद्दीन की योजना इस प्रकार सफल हुई। इस भीषण युद्ध में एक लाख हिन्दू सैनिक मारे गये,[४] तथा राय पिथौरा की बुरी तरह हार हुई। वह अपने हाथी से उतर घोड़े पर बैठ रणक्षेत्र से भागा, किन्तु सरसुती के पास मुसलमान सेना द्वारा पकड़ लिया गया।[५] मिनहाज के अनुसार उसका तत्काल वध कर दिया गया।[६] किन्तु हसन निज़ामी के अनुसार उसे अजमेर ले जाया गया, तथा वहां उसे राज्य भी करने दिया गया। इस बात की पुष्टि मुद्रासाक्ष्य से होती है। राय पिथौरा के कुछ सिक्कों पर सीधी ओर "श्री मुहम्मद साम" लिखा मिलता है, जिससे यह सिद्ध होता है कि उसने मुहम्मद ग़ोरी की आधीनता स्वीकार कर ली थी।[७] इसी बात का संकेत हमें लगभग उसी काल की संस्कृत रचना विरुद्ध-विधि-विध्वंस में भी मिलता है।[८] हसन निज़ामी के अनुसार पृथ्वीराज के षड़यन्त्र करने के कारण सुल्तान ने उसका सिर कटवा लिया।[९]

दिल्ली का शासक गोविन्द राय अथवा खांडेराय युद्ध में मारा गया। उसके उत्तरा-

---

१. यहिया सरहिंदी के अनुसार मुइज्जुद्दीन ने यह योजना बनाई कि हिन्दुओं के हाथी तथा अश्वारोही जब उसकी सेना के एक भाग पर टूटें, तो उसकी सेना के अन्य भाग अन्य तीनों तरफ से उस पर धावा बोल दें। देखिये, तारीखे मुबारक शाही, पृ० १०।

२. फुतुह-उस-सलातीन, मद्रास एडीशन, पृ० ७७, ७८।

३. देखिये, मिनहाज, पृ० ५६।

४. इलि० डाउ०, भाग २, पृ० २१५।

५. देखिये, पृथ्वीराज रासो, समय ६६।

६. मिनहाज, पृ० १२०। एसामी भी यही कहता है।

७. क्रॉनिकल्स ऑफ दि पठान किंग्स ऑफ डेल्ही, १८, सं० १५; देखिये, हबीबुल्ला, दि फाउण्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया, पृ० ६१, ८१, टि० ३१।

८. आई० एच० क्यू०, १९४०, पृ० ५६७ तथा आगे।

९. हो सकता है कि षड्यन्त्र के संदर्भ में उस कहानी का सूत्रपात हुआ हो जिसका उल्लेख पृथ्वीराज प्रबन्ध में भी प्राप्त होता है। इस ग्रंथ की एक हस्तलिपि १४७१ ई० में प्रति-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धिकारी ने मुइज्जुद्दीन की आधीनता स्वीकार कर ली। हसन निज़ामी के अनुसार उस प्रदेश के रायों और मुकद्दमों ने आत्म-समर्पण कर दिया और उन्हें राज्य करने की अनुमति इस शर्त पर दी गई कि वे भूमि-कर अदा करेंगे तथा 'मरासिमी-ख़िदमती' करेंगे।[1] हांसी, गोहराम, समाना, सरसुती आदि सैनिक महत्व के स्थानों पर अधिकार करके वहां पर सेना नियुक्त कर दी गई।[2] इन्दरपत में कुतुबुद्दीन ऐबक की अध्यक्षता में एक सैनिक केन्द्र स्थापित किया गया।[3] ऐबक भारत में मुइज्जुद्दीन का प्रतिनिधि था।[4]

पृथ्वीराज की पराजय के कारण :

तराइन के इस युद्ध में पृथ्वीराज की पराजय ने राजपूतों की कमर तोड़ दी तथा देश में नैराश्य की लहर फैल गई। इस पराजय के कई कारण थे। सर्व प्रथम तो यह कि मुस्लिम सेना हिन्दू दल की अपेक्षा कहीं अधिक सुगठित तथा सुअनुशासित थी; एक स्वामी के आधीन थी; उसकी आज्ञा का तत्परता से पालन करती थी। अतः एक प्रधान के सेनापतित्व में उसके आधीन सेनापति निश्चित योजना का सफलतापूर्वक पालन कर सकते थे। इसके विपरीत हिन्दू सेनायें सामन्तवादी प्रथा पर आधारित थीं। विभिन्न सामन्तों की सेनायें संख्या में तो मिलकर बड़ी हो जाती थीं, किन्तु उनमें न ऐक्य था, न संगठन था, न अनुशासन था, और न ही वे एक सर्वोच्च प्रधान के पूर्णतः आधीन थीं। अतः बहुसंख्यक होते हुए भी वे युद्ध में प्रायः विशेष उपयोगी सिद्ध न हुईं।

लिपि करके तैयार की गई। मुनि जिनविजय के अनुसार मौलिक ग्रंथ की रचना इससे बहुत पहले हुई। इस कथा के अनुसार सुल्तान दरबार में उस स्थान के सामने बैठा हुआ था, जहाँ गिरफ्तारी के बाद पृथ्वीराज को रखा गया था। इससे पृथ्वीराज को बड़ा कष्ट हुआ। उसका प्रधान मंत्री विश्वासघाती था, किन्तु उसका पता पृथ्वीराज को नहीं था। उसने पृथ्वीराज से कहा "स्वामी किया ही क्या जा सकता है, यह तो विधि का विधान था।" राजा ने उत्तर दिया "यदि तू मेरा तीर और कमान ला दे तो मैं सुल्तान को मार दूं।" प्रधान मंत्री सहमत होकर चला गया, किन्तु उसने जाकर सुल्तान से कहा कि वह अपने निश्चित स्थान से हटकर अन्य स्थान पर बैठ जायँ। सुल्तान ने अपने पूर्व स्थान पर एक धातु की बनी अपनी प्रतिमा रखवा दी। तब मंत्री ने जाकर राजा को धनुष-बाण दे दिया। राजा ने तीर छोड़ा और प्रतिमा के दो टुकड़े हो गये। राजा ने कमान फेंककर कहा, "मेरा कार्य पूरा नहीं हो पाया, किन्तु किसी अन्य पुरुष का वध हो गया।" सुल्तान ने एक गढ़े में गिरवाकर उस पर पत्थर बरसवाये। देखिये, पुरातन प्रबन्ध संग्रह, पृ० ८७।

इस कहानी की सत्यता संदिग्ध है, और इसके और भी अतिरंजित विवरण पृथ्वीराज रासो, सुरजन चरित तथा आइने-अकबरी में मिलते हैं।

१. ताजुल मआसिर, पृ० १००।
२. मिनहाज, पृ० १२०; फख़े मुदब्बिर, पृ० २२।
३. ताजुल मआसिर, पृ० १०१।
४. ताजुल मआसिर, पृ० १०१, फो० ४६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरी विशेष बात यह है कि हिन्दू शासक तथा उनके आधीन सेनाएँ प्रायः आत्मरक्षा में ही संलग्न रहीं। उन्होंने कभी आक्रामक नीति का अनुसरण नहीं किया। वे यह बात कभी पूरी तरह न समझ सके कि आक्रमण सुरक्षा का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। पृथ्वीराज वीर था, साहसी, था, तथा योग्य सेनापति भी था। किन्तु उसमें राजनीतिक दूरदर्शिता का अभाव था।

तराइन के प्रथम युद्ध में पृथ्वीराज पूर्णतः विजयी हुआ, किन्तु फिर भी उसने इस विजय का पूर्ण लाभ नहीं उठाया। शत्रु को रणक्षेत्र से भाग जाने दिया। उसका पीछा करके उसे नष्ट करने का प्रयास ही नहीं किया। पृथ्वीराज को पंजाब तक मुइज़्ज़ुद्दीन का डटकर पीछा करना चाहिये था, तथा पंजाब से मुस्लिम सत्ता उखाड़ने का प्रयत्न करना चाहिये था। ग़ोरियों का प्रभुत्व अभीतक पंजाब में ठीक से जम नहीं पाया था, तथा तराइन की पराजय के तुरन्त बाद उनका उखाड़ फेंकना और भी आसान था। किन्तु मद-मस्त पृथ्वीराज ने यह सोचा ही नहीं कि यही संकट शीघ्र ही पुनः उपस्थित हो सकता है। उसने तबरहिन्दा के दुर्ग पर घेरा डाल कर उसे जीतने में बहुत समय नष्ट कर दिया; तथा उसे जीतने के बाद भी उसकी रक्षा का पर्याप्त प्रबन्ध नहीं किया। तबरहिन्दा उत्तरपश्चिमी भारत का संरक्षण करता था, अतः उसकी रक्षा के लिए जान लड़ा देनी चाहिये थी। किन्तु पृथ्वीराज तो अजमेर लौट आया। इस प्रकार उसने सीमान्त रक्षा की सर्वथा उपेक्षा की। परम्परागत कथाओं के अनुसार उसने अपनी शक्ति का गाहड़वालों के साथ युद्ध करने में अनावश्यक क्षय किया, तथा नव-विवाहिता संयोगिता के साथ प्रणय-क्रीड़ा में समय की गति भूल गया। किन्तु उसका शत्रु मुहम्मद ग़ोरी दृढ़ प्रतिज्ञ व्यक्ति था जिसने प्रतिशोध एवं पुनराक्रमण की तैयारी में कोई कसर न उठा रखी।[1] उसके दूसरे आक्रमण ने भारतीय इतिहास की रूपरेखा बदल डाली।

रणक्षेत्र में भी मुइज़्ज़ुद्दीन रात भर अपनी युद्ध योजना कार्यान्वित करता रहा, किन्तु पृथ्वीराज सोता रहा। वह सो ही रहा था, जब मुहम्मद ग़ोरी ने उषा की लालिमा में उसकी सेना पर पहली चोट कर डाली। 'विरुद्धविद्ध विध्वंस' के अनुसार, "जब पृथ्वी-राज का सेनापति स्कन्द एक अन्य युद्ध में गया हुआ था, तब राजा जिसका मस्तिष्क निद्रा-व्यसन से आच्छादित था, तथा जो जीवित रहते हुए भी युद्ध में मृत समान था, तुर्कों द्वारा मार डाला गया।[2]" इस प्रकार संस्कृत सूत्रों से भी पृथ्वीराज के आलस्य तथा उसकी असावधानी पर प्रकाश पड़ता है। प्रबन्ध चिन्तामणि के अनुसार पृथ्वीराज के निष्का-सित मंत्री सोमेश्वर ने मुस्लिम सैनिकों को पृथ्वीराज के डेरे तक पहुंचा दिया। पृथ्वीराज घोर निद्रा में मग्न था। उसके सैनिकों तथा तुर्क सैनिकों में भीषण युद्ध हुआ, और पृथ्वी-राज को बन्दी बना लिया गया। वह उस समय भी अध-सोता, अध-जगा था।

पृथ्वीराज ने उपस्थित संकट को कभी पहचानने का प्रयास ही नहीं किया। उसे

---

१. देखिये, पृथ्वीराज रासो, समय ६४, ६५, ना० प्र० सभा संस्करण।

२. गतेऽन्यसंगरे स्कन्दे निद्रा-व्यसन-सन्नधीः।
व्यायादितस्तुरुष्केस जीवन्मृतौ युधि॥
लक्ष्मीधर का विरुद्धविधि विध्वंस, कैटलॉग ऑफ मैनुस्क्रिप्ट्स इन दि लायब्रेरी ऑफ दि इंडिया ऑफिस, संख्या १५७७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने को दिग्विजयी सिद्ध करने की लालसा थी। अतः उसने देश में चारों ओर अपने शत्रु बना लिये। उसने यह सोचा ही नहीं कि ग़ोरी देश की सीमाओं पर प्रहार कर रहा है। जेबाकभुक्ति, कन्नौज तथा गुजरात पर आक्रमण करके उसने कुछ ख्याति और धन तो अवश्य प्राप्त किया, किन्तु अपने शत्रुओं की संख्या बढ़ा ली। उसे तो चाहिये था कि तत्कालीन प्रमुख शासकों से मैत्री तथा विचार विमर्श करके संभावित संकट का सामना करने के लिए समुचित, सामूहिक तैयारी करता। किन्तु उसने ऐसा किया ही नहीं, और जब तराइन के दूसरे युद्ध में उसकी पराजय हुई, तो कोई भी भारतीय शासक सपादलक्ष के धराशायी साम्राज्य के पुनरुद्धार के लिए सामने न आया। मुहम्मद ग़ोरी को पहले गुजरात के शासक से ११७८ ई० में मुंह की खानी पड़ी थी।[1] ११९१ ई० में पृथ्वीराज ने स्वयं ही उसे परास्त किया था।[2] यदि आपस में प्रेम, सूझबूझ तथा सहयोग होता, तो चौहान और चौलुक्य मिल कर मुसलमानों को पंजाब से भी निकाल सकते थे, ताकि भावी आक्रमण की सम्भावना ही न रहती। किन्तु ११७८ ई० में जब ग़ोरी ने गुजरात पर आक्रमण किया, तो पृथ्वीराज के रुख ने चौलुक्यों को उसके प्रति सर्वथा उदासीन बना दिया।[3] इस कारण चौलुक्यों ने तब तक कोई क़दम नहीं उठाया, जबतक पृथ्वीराज के साम्राज्य का समूल नाश न हो गया। गाहड़वालों का अनादर करके भी उसने जयचन्द्र को अपना शत्रु बना लिया। परिणामस्वरूप उसके संकट में जयचन्द्र उससे सर्वथा विमुख रहा। पृथ्वीराज प्रबन्ध के अनुसार जब जयचन्द्र ने पृथ्वीराज की मृत्यु का समाचार सुना, तो उसने अपनी राजधानी में रोशनी कराई।[4] यही पारस्परिक वैमनस्य तथा कलह देश के विषाद के कारण बने।

यद्यपि पृथ्वीराज हुमायूं की भांति कभी-कभी घोर परिश्रम तथा पुरुषार्थ प्रदर्शित कर सकता था, किन्तु उसका आलस्य उसकी विलासिता एवं उन्माद ने उस का पतन अवश्यम्भावी बना दिया। हम देख ही चुके हैं कि तराइन के प्रथम युद्ध की विजय से उसने कोई उपयुक्त लाभ नहीं उठाया। सम्भवतः परम प्रिय संयोगिता के साथ प्रणय-क्रीड़ा ने वास्तविकता से उसका मुख मोड़ दिया। तराइन के दूसरे युद्ध में तो उसने अद्वितीय उन्माद एवं असावधानी का परिचय दिया। उसने अपने शत्रु को दुर्बल समझा तथा उसकी शक्ति को ठीक से आंक भी न सका। यह चिर-सिद्ध कथन भूल गया कि शत्रु को कभी क्षीण नहीं समझना चाहिये। मुहम्मद ग़ोरी के कथन पर उसने बच्चों की भांति विश्वास कर लिया, और यह भूल गया कि उसी ग़ोरी ने उच्च और लाहौर में क्या किया था[5]। रात्रि में आक्रमण करने का भी

---

१. पीछे देखिये।

२. सी० मोबेल डफ, क्रॉनॉलाजी ऑफ इंडिया, पृ० १६७।

३. देखिये, जयानक की पृथ्वीराज विजय, ११, २–४।

४. देखिये, दशरथ शर्मा, अर्ली चौहान डाइनेस्टीज़, पृ० ७७, टि० ३०; पुरातन प्रबन्ध संग्रह, पृ० ८६–८९।

५. कुछ सूत्रों के अनुसार मुहम्मद ग़ोरी ने उच्च के शासक को उसी की रानी से विष दिलवा दिया। गज़नवी खुसरो मलिक को उसके संरक्षण का आश्वासन देकर बन्दी बना लिया। देखिये, तबकाते नासिरी, पृ० ४५५-५७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसे अभ्यास था, क्योंकि उसने स्वयं इस प्रकार का आक्रमण धारावर्ष परमार पर किया था। अतः उसे रात में भी शत्रु से सतर्क रहना चाहिये था। यदि वह स्वयं ही इस आक्रामक नीति का अनुसरण करता तो विदेशियों पर अचानक धावा बोल कर विजय श्री प्राप्त कर सकता था। किन्तु उसे तो अनंग-रंग से ही अवकाश नहीं था। सारी रात्रि उसने विलासिता में व्यतीत की, और जब ग़ोरी ने दुधारे का वार किया, असावधान पृथ्वीराज मीठी नींद सो रहा था। मानो, कोई संकट था ही नहीं। देश की इस ऐतिहासिक संकट की घड़ी में पृथ्वीराज की यह असावधानी एवं कर्तव्यहीनता उसके तथा हिन्दू स्वातंत्र्य के लिए घातक सिद्ध हुई[1]।

पृथ्वीराज के उत्तराधिकारी :

पृथ्वीराज की मृत्यु के बाद, विरुद्ध-विद्ध-विध्वंस के अनुसार उसके सेनापति स्कन्द ने उसके भाई हरिराज को शाकम्भरी के सिंहासन पर बिठाया। हम्मीर महाकाव्य के अनुसार भी अपने भाई की अन्त्येष्टि क्रिया करने के पश्चात् हरिराज सिंहासन पर बैठा[2]। किन्तु हसन निजामी[3] के अनुसार पृथ्वीराज के वध के पश्चात् मुइज़्ज़ुद्दीन ने उसके पुत्र को गद्दी पर बिठाया। पृथ्वीराज का पुत्र ग़ोरी को बहुत सा कर देने के लिए बाध्य था। ११७७ ई० में पृथ्वीराज स्वयं वयस्क नहीं था; इस लिए इस समय उसके पुत्र की आयु भी कम ही रही होगी।

अजमेर में यह प्रबन्ध करके सुल्तान मुइज़्ज़ुद्दीन दिल्ली की ओर बढ़ा और किले पर घेरा डाल दिया। कुछ समय तक उसका सामना करने के पश्चात् गोविन्द राय के पुत्र तथा उसके सरदारों ने आत्म समर्पण कर दिया, और कर देने के लिए सहमत हो गये[4]। दिल्ली में एक सेना तैनात कर, तथा कुतुबुद्दीन को गोहराम तथा समाना का शासक नियुक्त कर सुल्तान मुहम्मद ग़ोरी गज़नी लौट गया।

चौहानों ने पृथ्वीराज के पुत्र को इस बीच अजमेर से निकाल दिया। पृथ्वीराज के भाई हरिराज ने राज पाट सम्भाल लिया[5]। प्राचीन चौहान साम्राज्य के विभिन्न भागों से उसके मित्रों ने उसकी पूरी सहायता की। हरिराज ने अब रणथम्भौर पर आक्रमण किया,

---

१. लक्ष्मीधर के कथन का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। पृथ्वीराज प्रबन्ध के अनुसार 'पृथ्वीराज १० दिन से सो रहा था—इसी मध्य में प्रधान मंत्री ने सुल्तान को बुला भेजा।' देखिये, पुरातन प्रबन्ध संग्रह, पृ० ६८। यह कथन अत्युक्तिपूर्ण प्रतीत होता है, किन्तु फिर भी इससे हम उपर्युक्त निष्कर्ष निकाल सकते हैं। प्रबन्ध-चिन्तामणि के अनुसार पृथ्वीराज उस समय एकादशी का व्रत तोड़ कर सो रहा था। फ़रिश्ता के अनुसार राजपूतों ने सारी रात मदिरापान एवं विलास में व्यतीत की। इसलिए यदि आक्रमण के समय पृथ्वीराज सो रहा था, तो इसमें कोई विस्मय की बात नहीं।

२. देखिये, दि स्ट्रगिल फॉर एम्पायर, पृ० ११३।

३. ताजुल मआसिर, इलि० डाउ०, खं० २, पृ० २१६; सी मोबेल डफ, क्रॉनालॉजी आफ इंडिया, पृ० १६८।

४. देखिये, दि स्ट्रगिल फार एम्पायर, पृ० ११३।

५. तारीखे फ़रिश्ता, खं० १, पृ० १७९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जहाँ गोविन्दराज ने जाकर शरण ली थी[1]। ऐबक यह समाचार पा रणथम्भौर की ओर बढ़ा। उसके आते ही हरिराज घेरा उठाकर रणथम्भौर से पीछे हट गया। अजमेर से भी उसको हटना पड़ा, तथा ऐबक ने पुनः पृथ्वीराज के पुत्र गोविन्द को आदर-सूचक वस्त्र देकर सिंहासन पर बिठाया। गोविन्द ने भी उसे अपार धन दिया[2]।

क़ुतुबुद्दीन के दिल्ली लौटने पर हरिराज ने अपना सिर फिर उठाया, और सेनापति स्कन्द की सहायता से अजमेर पर पुनः अधिकार कर लिया। ११९३ ई० में अचानक मुहम्मद ग़ोरी ने ऐबक को ग़ज़नी बुलाया, जिससे हरिराज को अपनी कार्यवाही करने का उपयुक्त अवसर मिल गया। ११९४ ई० के एक अभिलेख से सिद्ध होता है कि उस वर्ष अजमेर पर हरिराज का अधिकार था। दिल्ली लौटने पर ऐबक को पता चला कि हरिराज ने पुनः अजमेर पर अधिकार कर लिया था, और दिल्ली पर आक्रमण की तैयारी कर रहा था। झटराय नाम का सेनापति इस आक्रमण का नायक था। ऐबक तुरन्त ही आगे बढ़ कर इन्हें रोकने के लिए चल पड़ा, तथा उसके इस अचानक हमले से हरिराज तथा सेनापति झटराय घबड़ा गये। झटराय ने अजमेर में शरण ली, किन्तु हरिराज ने जौहर करके आत्म हत्या कर ली[3]। ऐबक ने अजमेर में एक मुस्लिम अधिकारी की नियुक्ति की तथा पृथ्वीराज के पुत्र को रणथम्भौर भेज कर उसे वहाँ का कार्यभार सौंप दिया। इस प्रकार रणथम्भौर कुछ समय बाद पुनर्जीवित चौहान वंश का केन्द्र बना[4]। अजमेर से प्रतापी हिन्दूराज्य का अन्त हो गया[5]। कुछ ही माह पश्चात् राजपूतों ने एक बार फिर अजमेर से तुर्कों को निकाल फेंकने का प्रयास किया। अजमेर के आस-पास रहने वाले म्हेर नामक राजपूत जाति के लोगों ने विद्रोह कर दिया और अजमेर-स्थित तुर्की सेना को घेर लिया। म्हेरों ने चौलुक्य सेना की सहायता भी मांगी थी। ऐबक तुरन्त बढ़कर मोर्चे पर पहुँचा, तथा म्हेरों से जा भिड़ा। पूरे दिन युद्ध होता रहा। अगले दिन नहरवाल की सेना आ पहुँची और मुसलमानों को परास्त करके उन्हें अजमेर के किले में शरण लेने के लिए बाध्य कर दिया। क़ुतुबुद्दीन का घोड़ा घायल होकर गिर पड़ा, तथा उसके सिपाही उसे बड़ी कठिनाई से दूसरे घोड़े पर

१. ओझा, राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृ० ३०७।

२. दि स्ट्रगिल फॉर एम्पायर, पृ० ११४।

३. देखिये, दि स्ट्रगिल फॉर एम्पायर, पृ० ११४। हरिराज की प्रजा उस की विलास-प्रियता के कारण उससे दुःखी और असन्तुष्ट थी। गुजरात के शासक भीम द्वितीय ने मैत्री के नाते उसे कुछ नर्तकियाँ भेंट में दी थीं। हरिराज उनके रूप लावण्य पर इतना मुग्ध हो गया कि वह रात और दिन उन्हीं के साथ व्यतीत करने लगा, तथा इस प्रकार अपार धन नष्ट किया। जब क़ुतुबुद्दीन ने उस पर आक्रमण किया तो वह इस संकट का सामना करने के लिए तैयार नहीं था। अतः उसने परिवार सहित जौहर कर लिया और अजमेर बगैर युद्ध क़ुतुबुद्दीन के अधिकार में आ गया। यद्यपि हसन निज़ामी इस घटना की तिथि ११९३ ई० बताता है, यह ११९५ ई० के बाद घटी होगी, क्योंकि उस वर्ष अजमेर में हरिराज राज कर रहा था।

४. ताजुल मआसिर, फो० १३६; दि स्ट्रगिल फॉर एम्पायर, पृ० ८४।

५. ओझा, भाग १, पृ० ३०७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बिठाकर अजमेर ले गये[1]। वह परिस्थिति ही ऐसी संकटपूर्ण थी कि वहाँ से क़ुतुबुद्दीन का हटकर अजमेर चला जाना ही उचित था। अजमेर पर राजपूतों का दबाव बढ़ता गया और ऐबक की स्थिति डावांडोल हो उठी। यदि इस समय गज़नी से सहायता न आती तो सम्भवतः ऐबक परास्त हो जाता। परन्तु इस सामयिक सहायता ने राजपूतों को पीछे हटने के लिए बाध्य कर दिया।

इसी समय के आस-पास अपने विजय के समारोह एवं जोश में ऐबक ने दिल्ली में कुव्वतुलइस्लाम नामक मस्जिद का निर्माण कराया, जिसमें सत्ताईस हिन्दू तथा जैन मंदिरों को तोड़कर उनकी सामग्री प्रयुक्त की गई[2]। उसने ११९६ ई० के लगभग अजमेर में बीसलदेव के संस्कृत विद्यालय के स्थान पर एक और मस्जिद बनवाई जो अढ़ाई दिन का झोंपड़ा कहलाती है। इस मस्जिद का निर्माण कार्य १२०० ई० में पूर्ण हुआ[3]।

क़ुतुबुद्दीन ऐबक के विजयाभियान :

क़ुतुबुद्दीन ऐबक को हिन्दू राजाओं के प्रति समयोचित नीति का अनुसरण करके राज्य विस्तार करने का सुल्तान ने पूर्ण अधिकार दे दिया था। तराइन के द्वितीय युद्ध के कुछ ही बाद रमज़ान ५८८ हि० अथवा सितम्बर ११९२ ई० में जटवान नाम के एक हिन्दू राजा ने हाँसी पर घेरा डाल दिया। ऐबक ने तुरन्त हाँसी की रक्षा के लिए कूच की, तथा जटवान का पश्चिमी राजपूताने में स्थित आगर नामक स्थान तक बड़ी तत्परता से पीछा किया। वहाँ युद्ध हुआ, जिसमें जटवान मारा गया[4]। हाँसी में पुनः सेना नियुक्त कर दी गई।

ऐबक गोहराम लौट आया और अभी दोआब में अपना अधिकार प्रसारित करने के विचार से यमुना नदी पार करने की तैयारी की। मेरठ, कोइल, बारन आदि स्थान ढोड़ राजपूतों के आधीन थे, जिन्होंने तुर्कों का डटकर सामना किया। किन्तु वे पराजित हुए, और ऐबक ने ११९२ ई० में ही मेरठ पर अधिकार कर लिया[5]। इसी समय बारन अथवा बुलन्द-शहर पर अधिकार कर लिया गया। बारन के ढोड़ शासक चन्द्रसेन की पराजय उसके एक सम्बन्धी अजयपाल के विश्वासघात के कारण हुई[6]। यह बात मुइज्जुद्दीन मुहम्मद बिन साम

---

१. "युद्ध में बार-बार अश्वहीन हो जाने पर तथा ६ घाव लग जाने पर भी वह अपने स्वाभाविक साहस के साथ लड़ता रहा, जब उसके सेवक जबर्दस्ती एक पालकी में उसे अजमेर ले गये।" देखिये, फ़रिश्ता, ब्रिग्स, १, १९६। किन्तु रेवर्टी के संशोधित अनुवाद के अनुसार उसका घोड़ा घायल होकर गिर गया, इस्लाम की सेना का दिल टूट गया, और वे उसे शक्तिपूर्वक दूसरे घोड़े पर बिठाकर अजमेर ले गये। तबक़ाते नासिरी, अनूदित रेवर्टी, ५२१, टि०।

२. दि स्ट्रगिल फॉर एम्पायर, पृ० १२०।

३. वही, पृ० १२०।

४. ताजुल मआसिर, फो० ५५ ए तथा ६० ए। बागर सम्भवतः पश्चिमी राजपूताने के लिए एक सामान्य नाम है।

५. तबक़ाते नासिरी, पृ० १२०।

६. यह ढोड़ शासक गाहड़वालों का सामन्त था। दि स्ट्रगिल फॉर एम्पायर, पृ० ११८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के नाम से दिये गये एक दान पत्र से सिद्ध होती है, जिसमें अजयपाल को बारन विजय में उसके द्वारा दी गई सहायता के बदले में पुरस्कृत किया गया है ।[1] इससे स्पष्टतः सिद्ध होता है कि विश्वासघात ने मुसलमानों की विजय अपेक्षाकृत सरल बना दी। मेरठ तथा बारन की विजय सैनिक तथा राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण थी, क्योंकि इन दोनों स्थानों से ऐबक गाहड़वाल राज्य पर संगठित आक्रमण कर सकता था।

अपनी विजयों को सुसंगठित राज्य के रूप में सुसम्बद्ध करने के हेतु ऐबक को एक केन्द्रीय स्थान पर शक्ति संचित करना अनिवार्य था। इन्दरपत तो एक अस्थाई सैनिक अड्डा था। अतः ११९२ ई० के लगभग ऐबक दिल्ली पर चढ़ दौड़ा और वहाँ के तोमर शासक को खदेड़ बाहर किया। क्योंकि वह षड़यंत्र कर रहा था[2]। अब ऐबक ने दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया। यहाँ से वह अपने शत्रुओं पर वार भी कर सकता था, और आत्मरक्षा भी कर सकता था। इसके अतिरिक्त पंजाब के ग़ोरी सत्ता के केन्द्र तथा दिल्ली के मध्य सरल सम्पर्क भी स्थापित रह सकता था।

इसी समय (११९३ ई० में) ऐबक को अचानक सुल्तान मुइज़्ज़ुद्दीन के आदेशानुसार ग़ज़नी जाना पड़ा[3]। यह बात समझ में नहीं आती कि इस समय उसे अचानक सुल्तान ने क्यों बुलाया। मिनहाज इस विषय में कुछ नहीं कहता। किन्तु एसामी के अनुसार कुछ लोगों ने सुल्तान को ऐबक के विरुद्ध भड़काने का प्रयास किया। सुल्तान ने ऐबक की स्वामि-भक्ति सिद्ध करने के लिए उसे बुला भेजा। परन्तु यह पूर्णतः समझ में नहीं आता। हो सकता है कि सुल्तान ने उसे ख़्वारिज़्म द्वारा प्रस्तुत संकट में सहायता लेने के लिए बुलाया हो। यह भी हो सकता है कि उसे भारत में अपनी सत्ता के भावी प्रसार की योजना निश्चित करने के लिए बुलाया हो। ऐबक छः महीने भारत से बाहर रहा। यह आश्चर्य का विषय है कि उसकी इस अनुपस्थिति से भारतीय राजाओं ने कोई लाभ नहीं उठाया। विदेशियों के विरुद्ध सामूहिक मोर्चा बनाने का कोई प्रयास नहीं किया और न उनके पुनरागमन को रोकने का ही यत्न किया। इस प्रकार एक स्वर्णिम अवसर नष्ट कर दिया गया। केवल यत्र-तत्र छोटे-छोटे विद्रोह हुए, जो सरलतापूर्वक दबा दिये गये।

ऐबक ने ५९० हि० अर्थात् ११९४ ई० में ग़ज़नी से लौट कर यमुना पार की और कोइल अथवा अलीगढ़ पर अधिकार कर लिया[4]।

गाहड़वालों पर आक्रमण :

गाहड़वालों के प्रदेश पर आक्रमण करने से पूर्व डोढ़ों का दमन अनिवार्य था। सम्भवतः ऐबक गज़नी इसी अभियान के संदर्भ में वार्ता करने के लिए गया था। अभी वह दोआब में

१. देखिये, हबीबुल्ला, दि फाउण्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया, पृ० ६२ तथा परिशिष्ट ए।
२. ताजुल मआसिर तथा तबक़ाते नासिरी के अनुसार उसने ११९२ ई० में दिल्ली जीती।
३. नीचे देखिये, पृ० १८७।
४. ताजुल मआसिर, फो० १०३ बी। मिनहाज के अनुसार इसकी तिथि ५८९ हि० पृ० १२०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही था कि मुइज़्ज़ुद्दीन ५० हजार घुड़सवारों की सेना लेकर इस प्रसार योजना को कार्यान्वित करने के लिए पुनः आ पहुँचा। दिल्ली में उसने अपनी सेना में और भर्ती की, तथा कन्नौज तथा बनारस की ओर बढ़ा।[1] ऐबक तथा सेनापति इज़्ज़ुद्दीन हुसैन बिन खारमिल उसकी सेना के अग्रभाग के नायक थे। जयचन्द्र की सेना के अग्रगामी दल की मुठभेड़ ऐबक के सिपाहियों से हुई, जिसमें जयचन्द्र के दल की हार हुई।[2] दोनों सेनाओं की वास्तविक मुठभेड़ यमुना के किनारे कन्नौज और एटा के बीच चन्दावर के पास हुई। जयचन्द्र ने स्वयं अपनी सेना का वीरोचित नेतृत्व किया, तथा घोर युद्ध हुआ। गाहड़वाल सम्भवतः विजयी हो जाते, किन्तु उस समय जयचन्द्र मारा गया। उसके मरते ही उसकी सेना में खलबली मच गई। मुइज़्ज़ुद्दीन ने इसका लाभ उठाकर शत्रु के पैर उखाड़ दिये।[3] मुसलमानों ने बड़ी निर्दयता से हत्याकांड मचा डाला, तथा बड़े जोरों से समस्त क्षेत्र की लूट खसोट की। मंदिर आदि ध्वस्त कर दिये गये, और जयचन्द्र के कोष लूट लिए गये।[4] मिनहाज के अनुसार मुइज़्ज़ुद्दीन को अन्य सम्पत्ति के साथ-साथ लगभग ३०० हाथी भी प्राप्त हुए।

बनारस तथा असनी के दुर्गों पर सबसे पहले अधिकार किया गया, क्योंकि वहाँ पर गाहड़वालों का कोष था।[5] अकेले बनारस ही में लगभग एक हजार मंदिरों को ध्वस्त कर दिया गया, और उनके स्थान पर मस्जिदें बनवाई गईं।[6] बनारस तथा असनी जैसे कई महत्वपूर्ण स्थानों पर सेना नियुक्त कर दी गई। इस विजय के फलस्वरूप पूर्व में बनारस तथा चन्द्रावती तक विस्तृत हिन्दुस्तान के भू-भाग पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। मलिक हुसामुद्दीन उग़ुलजाक नामक व्यक्ति को इस प्रदेश पर पहला सैनिक शासक अथवा मुक़्ती नियुक्त किया गया।[7] इस विजय से भारत का एक विस्तृत एवं मुख्य भू-भाग शंसबनी साम्राज्य का अंग बन गया। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि गाहड़वाल सत्ता पूर्णतः विलीन हो गई। गाहड़वाल अनेक स्थानों पर अब भी अपना अधिकार बनाये रहे। जयचन्द्र के पुत्र हरिश्चन्द्र का अधिकार कन्नौज, जौनपुर तथा मिर्ज़ापुर पर ११९७ ई० तक बना रहा।[8] कन्नौज पर मुसलमानों ने ११९८-९९ ई० में अधिकार किया। तिस पर भी गाहड़वालों की सत्ता समाप्त

---

१. ताजुल मआसिर, फो० १२३ बी। तारीख़ अल्फ़ी, फो० ४८५ के अनुसार १ लाख घुड़सवार तथा ७०० हाथी लेकर जयचन्द्र स्वयं मुइज़्ज़ुद्दीन के अधिकृत प्रदेश की ओर बढ़ा।

२. केवल फ़रिश्ता ही, १, पृ० ५८ पर इस प्रारम्भिक संघर्ष का उल्लेख करता है।

३. फख़्र मुदब्बिर, पृ० २३; ताजुल मआसिर, फो० ११२, ११७-१८; इब्नेउल असीर, १२, पृ० ४९।

४. दि स्ट्रगिल फॉर एम्पायर, पृ० ११९। मुसलमानों ने कन्नौज में बड़ी निर्दयता दिखलाई। किन्तु इसका उल्लेख मिलता है कि जयचन्द्र ने तुरुष्क दण्ड उठा लिया था और मुसलमानों के प्रति उसकी सहानुभूति थी। देखिये, एनाल्स ऑफ दि भांडारकर रिसर्च इस्टीट्यूट, ११, २ (१९३०), १३९।

५. ताजुल मआसिर, फो० १२३ बी।

६. दि स्ट्रगिल फॉर एम्पायर, पृ० ११९।

७. हबीबुल्ला, पृ० ६४।

८. हबीबुल्ला, पृ० ८२, टि० ४८; दि स्ट्रगिल फॉर एम्पायर, पृ० ५४-५५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं हुई। मछली शहर (जौनपुर) नामक स्थान से जयचन्द्र के पुत्र हरिश्चन्द्र का ११९९ ई० का एक दान पत्र प्राप्त हुआ है, जिसमें वह स्वतंत्र शासक प्रतीत होता है।[१] मिर्ज़ापुर जिले में प्राप्त रनक विजयकर्ण के एक अभिलेख से ऐसा प्रतीत होता है कि गाहड़वाल राज्य उस समय भी विद्यमान था, परन्तु तत्कालीन शासक का नाम नहीं मिलता। हो सकता है कि यह हाल ही में हुए गाहड़वाल पराभव का संकेत हो।[२] परम्परानुसार जौनपुर के समीप स्थित ज़फ़राबाद उत्तरकालीन गाहड़वालों की राजधानी था। कन्नौज पर भी उन्होंने पुनः अधिकार कर लिया होगा, क्योंकि इल्तुतमिश को फिर से कन्नौज पर अधिकार करना पड़ा। उसने अपनी विजय की स्मृति में नये सिक्के चलाये[३]। स्मिथ के अनुसार गाहड़वालों की पराजय के बाद भी आठ पीढ़ियों तक कन्नौज पर चन्देल राज्य करते रहे[४]।

मुइज़्ज़ुद्दीन के लौटते ही ऐबक को तुरन्त मोइल अथवा कोल (अलीगढ़) की ओर आकृष्ट होना पड़ा। वह अपनी स्थिति को वहाँ पूर्णतः दृढ़ नहीं कर पाया था, जब मुइज़्ज़ुद्दीन के आगमन ने उसे गाहड़वालों की ओर बढ़ने के लिए बाध्य किया था। अब उसने फिर से वहाँ अपना अधिकार जमाकर दोड़ राजपूतों को परास्त किया।

अजमेर में मुस्लिम सत्ता स्थापित करने के लिए ऐबक ने इस समय हरिराज तथा झटराय के साथ जो संघर्ष किया, उसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं।[५]

११९५-९६ ई० में मुइज़्ज़ुद्दीन उत्तरी भारतवर्ष की विजय पूर्ण करने की लालसा से एक बार फिर भारत आया। उसने बयाना पर आक्रमण किया, जहाँ जादोभट्टी राजपूतों का राज्य था। उनके शासक कुमार पाल अथवा कुंवरपाल[६] ने राजधानी छोड़ कर पास ही में स्थित थानगढ़ के दुर्ग में शरण ली। किन्तु अल्पकालीन घेरे के बाद ही उसने आत्मसमर्पण कर दिया। थानगढ़ तथा विजयमंदिरगढ़ पर अधिकार करके वहाँ बहाउद्दीन तुग़रिल के नेतृत्व में सेना नियुक्त कर दी गई।[७] एक प्रचलित स्थानीय हिन्दी दोहे में भी इस मुसलमान अधिकारी का नाम मिलता है।[८] तुग़रिल ने सुल्तान कोट नामक स्थान पर एक सैनिक छावनी बनाई, जहाँ से पूर्व तथा पश्चिम की ओर शक्ति का प्रसार हो सके[९]।

अब मुइज़्ज़ुद्दीन ने ग्वालियर के दुर्ग पर आक्रमण किया, तथा उस पर घेरा डाल दिया। किन्तु इस दुर्गम दुर्ग ने उसका वीरतापूर्वक सामना किया, तथा यह दिखा दिया कि

---

१. एपि० इंडि०, खं० १०, पृ० ९३-९८।
२. जे० ए० एस० बी०, (एन० एस०) ७, पृ० ७५७।
३. सी० सी० आई० एम०, २, भाग १, पृ० २१, क्र० सं० ३९।
४. जे० ए० एस० बी०, १८८१, पृ० ४८-४९।
५. पीछे देखिये, पृ० १८५।
६. हसन निज़ामी, फो० ११४ ए, उसका नाम कुपल बतलाता है। करौली के जादोंभट्टी राजवंश के इतिहास में कुँवरपाल का नाम आता है। देखिये, कनिंघम, रिपोर्ट्स, २०, पृ० ६, ७, ८।
७. ताजुल मआसिर, फो० ११४ बी; मिनहाज, पृ० ११४।
८. कनिंघम, रिपोर्ट्स, ६, पृ० ५५।
९. हबीबुल्ला, पृ० ६६; दि स्ट्रगिल फॉर एम्पायर, पृ० १२०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस पर विजय पाने में बहुत समय की आवश्यकता थी। अतः जब वहाँ के परिहार शासक सल्लक्षण पाल ने आधीनता स्वीकार करने का संदेश भेजा, तो मुहम्मद ग़ोरी ने घेरा उठा लिया[1]। किन्तु दबे हुए शत्रु का भी किसी अजेय दुर्ग पर अधिकार होना खतरे से खाली नहीं था। इसी कारण मुहम्मद ग़ोरी ने यह निश्चय किया कि आगे चल कर उचित अवसर पाकर किले पर अधिकार कर लिया जाय, तथा यह कार्य तुग़रिल को सौंपा गया। तुग़रिल ने सुल्तान कोट से आक्रमण पर आक्रमण करके मैदानी क्षेत्र से ग्वालियर के किले का सम्बन्ध विच्छेद कर दिया। डेढ़ साल के अन्दर ही अन्दर राजपूतों की स्थिति डावांडोल हो उठी, और उन्होंने किला खाली करने का प्रस्ताव किया। इस प्रकार ऐबक ने अपने स्वामी के नाम पर ग्वालियर पर अधिकार कर लिया[2]। ग्वालियर जैसा अजेय दुर्ग भी इस प्रकार कायरता-पूर्वक विदेशियों को समर्पित कर दिया गया। यह विदेशी अपने घर से सैकड़ों मील दूर थे। इस देश में इनका कौन था? केवल उनके साहस तथा पराक्रम ने ही उनकी रक्षा की। ग्वालियर की कहानी तत्कालीन शासकों तथा जनता की निराशावादिता एवं प्रतिज्ञा दौर्बल्य की उदाहरण मात्र है। किंकर्तव्यविमूढ़ शासक दम्भ, मान, फूट तथा विलासिता के पाश में आत्म-बलिदान की भावना खो बैठे थे। मिट जाने से, मर जाने से, उन्हें आत्मसमर्पण अधिक श्रेयस्कर लगा, किन्तु वह भी तो मृत्युवत् था।

ऐबक का अनवरत संघर्ष :

भारत में नवोदित मुस्लिम सत्ता के कर्णधार ऐबक को चैन नहीं था। ११९५–९६ ई० में म्हेरो ने चौलुक्यों की सहायता से तुर्कों को राजपूताने से निकालने का भीषण प्रयास किया, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है[3]। ग़ज़नी से प्राप्त सहायता से ही ऐबक मुस्लिम सत्ता को बचा पाया, अन्यथा उसकी पराजय हो जाती।

चौलुक्यों से बदला लेने के लिए ११९७ ई० में ऐबक ने एक शक्तिशाली सेना लेकर अन्हिलवाड़ पर धावा बोल दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि गुजरात का शासक भीम द्वितीय ऐबक के आगे बढ़ने पर किसी दूर स्थित दुर्ग में पलायन कर छिप गया[4]। यद्यपि निज़ामी और फ़रिश्ता में इस विषय पर मतभेद है कि ऐबक किस मार्ग से गया, वह सम्भवतः पाली और नाडोल होता हुआ आगे बढ़ा। यह दोनों स्थान उसे उजाड़ मिले, क्योंकि लोग वहाँ से पलायन कर गये थे। अन्त में रबी-उल-अव्वल १३, ५९३ हि० अर्थात् ३ या ४ फरवरी, ११९७ ई० को ऐबक़ भीम की मुख्य सेना के सम्मुख आया। यह सेना राय करन, वल्लन तथा दरबरस के नेतृत्व में थी। दरबरस आबू का धारावर्ष परमार ही था।

---

१. ताजुल मआसिर, फो० १४६ ए; मिनहाज, पृ० १४५।
२. मिनहाज, पृ० १४५। हसन निज़ामी तथा ग्वालियरनामा वहाँ पर किये गये अन्तिम अधिकार पर प्रकाश नहीं डालते। फ़ख़्र मुदब्बिर के अनुसार यह घटना ५९७ हि०, १२००–१ में हुई।
३. पीछे देखिये, पृ० १८५।
४. दि स्ट्रगिल फॉर एम्पायर, पृ० १२१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन लोगों ने आबू पर्वत की तलहटी में ठीक उसी स्थान पर अपनी विशाल सेना जमा रखी थी, जहाँ पहले मुइज़्ज़ुद्दीन परास्त हुआ था। कुतुबुद्दीन इस ऐतिहासिक स्थल पर यह विशाल शत्रु दल देख कर आक्रमण करने में हिचका[1], क्योंकि यहीं पर उसका स्वामी पराजित हुआ था। वह स्वयं युद्ध प्रारम्भ करना नहीं चाहता था। हिन्दू सेना का व्यूह भौगोलक तथा सामरिक दृष्टिकोण से दृढ़ एवं सबल था। ऐबक को भयभीत समझ राजपूत अपने सुरक्षित स्थानों से बाहर निकल कर उस पर चढ़ दौड़े। अब तो ऐबक को खुले मैदान में अपने घुड़सवारों का उचित प्रयोग करने का अवसर मिल गया। उसकी लाजवाब चालों ने, उसके अश्वारोहियों की असाधारण फुर्ती ने, तथा सहसा आक्रमण की नीति ने राजपूतों के पैर उखाड़ दिये[2]। राजपूतों की भारी पराजय हुई। पचास हजार सैनिक मारे गये, तथा बीस हजार बन्दी बना लिए गये[3]। रायकरन २० हाथी तथा अन्य बहुत सा माल पीछे छोड़ रणक्षेत्र से भाग गया। ऐबक अपना मार्ग निर्विरोध पाकर अन्हिलवाड़ की ओर बढ़ा। चौलुक्य शासक भीम द्वितीय तो वहाँ से भाग ही गया था[4]। ऐबक ने यह अभियान केवल चौलुक्यों को दण्ड देने के लिए किया था। किन्तु अप्रत्याशित सफलता पाने पर उसने वहाँ अपना स्थायी अधिकार स्थापित करने का प्रयास किया। अन्हिलवाड़ को निर्दयता से लूटा गया। मंदिरों का विध्वंस किया गया। फ़रिश्ता के अनुसार वहाँ एक मुस्लिम अधिकारी की नियुक्ति की गई, ताकि वह इस प्रदेश में तुर्कों की सत्ता को दृढ़ बना सके[5]। यह सब करके ऐबक अजमेर होता हुआ दिल्ली लौट गया। अणहिल पाटक में मुसलमानों द्वारा लूट मार का उल्लेख हमें खरतर गच्छपट्टावलि में भी मिलता है[6]।

गुजरात की यह विजय स्थायी सिद्ध नहीं हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि भीम अज्ञातवास से बाहर निकल आया और धीरे धीरे तुर्कों को गुजरात से बाहर निकाल दिया गया। दिल्ली से गुजरात का फासला, तथा राजपूताने पर तुर्कों का अस्थायी अधिकार, गुजरात से पीछे हटने के मुख्य कारण बने। तत्कालीन चौलुक्य अभिलेखों में तुर्कों के निष्कासन का उल्लेख है। इब्ने उल असीर के अनुसार ऐबक ने स्वयं ही यह देश यहाँ के हिन्दू शासकों को सौंप दिया[7]। अभिलेखीय आधार पर यह स्पष्ट है कि चौलुक्य शासक १२४० ई० तक स्वतंत्र रहे तथा आबू पर भी उनका अधिकार अविच्छिन्न रहा[8]। लगभग एक शताब्दी तक तुर्कों ने गुजरात पर आक्रमण करने की हिम्मत न की। मुस्लिम इतिहासकार इस बात पर

---

१. ए० के० मजुमदार, चौलुक्याज़ ऑफ गुजरात, पृ० १४३; हबीबुल्ला, पृ० ६७; दि स्ट्रगिल फॉर एम्पायर, पृ० १२१।
२. मिनहाज, पृ० १४०।
३. फ़रिश्ता, (ब्रिग्स), १, पृ० १९७।
४. ओझा, भाग १, पृ० २७१।
५. फ़रिश्ता, १, पृ० ५२।
६. आई० एच० क्यू०, ११, पृ० ७८०; आई० एच० क्यू०, २६, पृ. २२७।
७. इलि० डाउ०, भाग, १, पृ० २२, ३३८–३९; २, पृ० ४३९। अलकमितफित तवारीख, १२, पृ० ७९।
८. एशियाटिक रिसर्चेज, पृ० २८९; इंडि० एण्टि०, १८७७, पृ० १८७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाश नहीं डालते कि तुर्कों को गुजरात से क्यों पीछे हटना पड़ा। इस विषय में दो प्रशस्तियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सोमेश्वर द्वारा लिखित लवण प्रसाद की दब्बोई प्रशस्ति में उसके द्वारा तुर्क शासक के परास्त किये जाने का उल्लेख है[१]। दूसरा उल्लेख श्रीधर की देवपत्तन प्रशस्ति में प्राप्त होता है[२]। इन उल्लेखों से आभास होता है कि क़ुतुबुद्दीन के लौटने के पश्चात् गुजरात स्थित मुस्लिम सेना ने कैम्बे तथा सोमनाथ पर विजय करके अपनी सत्ता के प्रसार का प्रयास किया। चौलुक्यों के सेनापति राजधानी छोड़ समुद्र की ओर चले गये थे। जब मुसलमानों ने इन दुर्ग बन्द स्थानों पर आक्रमण किया, तो उन्हें परास्त कर के पीछे खदेड़ दिया गया। हिन्दुओं में आशावादिता का पुनः संचार हुआ, और उन्होंने क्रमशः मुसलमानों को गुजरात से बाहर निकाल दिया। विक्रम सम्वत् १२५८ अर्थात् १२०१ ई० में भीम फिर से अण्हिलपाटक में उपस्थित था[३]।

फ़खरे मुदब्बिर से ऐबक की विजयों का अगले छः वर्षों का वृतान्त मिलता है। उत्तरी दोआब के क्षेत्र पर अभी तक तुर्कों का प्रभाव नहीं जम पाया था, तथा यहाँ पर भागे हुए गाहड़वाल सामन्तों ने शरण ली थी। बदायूं में सम्भवतः राष्ट्रकूट शासन कर रहे थे[४]। ५९४ हि० अर्थात् ११९७-९८ ई० में ऐबक ने बदायूँ पर अधिकार कर लिया। इस बीच में सम्भवतः बनारस के क्षेत्र पर तुर्कों का आधिपत्य क्षीण हो गया था। इसलिये बनारस पर दुबारा अधिकार कर लिया गया[५]। ५९५ हि० अर्थात् ११९८-९९ ई० में चन्दावर तथा कन्नौज पर भी अधिकार कर लिया गया।

अब ऐबक ने राजपूताने की ओर पुनः ध्यान दिया। सिरोह अथवा सिरोही राज्य पर विजय प्राप्त की, तथा फखरेमुदब्बिर के अनुसार ५९६ हि० अर्थात् ११९९-१२०० ई० में मालवा का प्रदेश जीता[६]। मिनहाज भी ऐबक द्वारा उज्जेन पर्यन्त प्रदेश पर अधिकार किये जाने की चर्चा करता है[७]। मालवा विजय का प्रश्न संदिग्ध है। सम्भवतः उसने यहाँ केवल लूटमार ही की होगी[८]।

राजपूताने पर ऐबक के दबाव के कारण चौहानों को नाडोल छोड़ कर दक्षिण की ओर जाना पड़ा। लगभग इसी समय बूंदी, कोटा तथा सिरोही में चौहान राज्य स्थापित हुए[९]। किन्तु ऐबक राजपूताने में स्थायी सत्ता स्थापित करने में सफल न हुआ।

---

१. दब्बोई प्रशस्ति, श्लोक १५-१७; एपि० इंडि० १, २२।
२. चौलुक्याज़ ऑफ गुजरात, पृ० १४६।
३. पीटर्सन, पाण्डुलिपि, १८८७, संख्या २२०, पृ० ३७-४५।
४ हबीबुल्ला, पृ० ६८।
५. फ़खरे मुदब्बिर, पृ० २४। ताजुल मआसिर, फो० १७६ बी, में ५९९ हि० अर्थात् १२०२-३ ई० में ऐबक के बदायूँ में ठहरने का उल्लेख मिलता है।
६. तारीखे फखरुद्दीन मुबारक शाह पृ० २४।
७ तबक़ाते नासिरी, पृ० १४०।
८. हबीबुल्ला, पृ० ६८; ए० कॉम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया, खं० ५, पृ० १६९।
९. अर्सकाइन, राजपूताना गज़ेटियर, पृ० २३७। नाडोल पर ११९७ ई० में ऐबक के आक्रमण के सम्बन्ध में देखिये, दि स्ट्रगिल फॉर एम्पायर, पृ० ८७-१२१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अब ऐबक ने चन्देलों की ओर मुंह मोड़ा। यह अन्तिम प्रमुख राजपूत राजवंश था, जिसका दमन आवश्यक था। चन्देलों के राज्य की उत्तरी सीमा तुर्की राज्य की दक्षिण-पूर्वी सीमा से मिलती थी। जेजाकभुक्ति अथवा बुन्देलखण्ड के चन्देलों का राज्य उत्तर में काल्पी तथा असनी तक व्याप्त था, तथा पूर्व में यमुना पार तक। उनका प्रदेश दुर्गम था, पहाड़ी था, तथा बीहड़ कटानों से भरपूर था। पानी का अभाव, तथा चन्देलों के पास पहाड़ियों की चोटियों पर स्थित बहुत शक्तिशाली दुर्ग थे, जिनमें कालिंजर तथा महोबा अग्रगण्य थे। इस समय परमर्दि अथवा परमाल चन्देलों का शासक था (११६३-१२०३)। सीमावर्ती लूट-खसोट तथा झगड़े तो दोनों शक्तियों में तभी से चल रहे थे, जब से तुर्कों ने बनारस तथा असनी पर अधिकार कर लिया था। ऐबक ने ५९९ हि० अथवा १२०२ ई० में कालिंजर पर खुलकर आक्रमण कर दिया। चन्देलों ने डटकर उसका सामना किया, किन्तु परास्त होने पर उन्होंने किले में शरण ली। किले पर धीरे-धीरे ऐबक के घेरे का दबाव बढ़ता गया। बाध्य होकर परमर्दि देव ने संधिवार्ता प्रारम्भ की, तथा आधीनता स्वीकार करने के लिए सहमत हो गया। किन्तु तभी उसकी मृत्यु हो गई[1] तथा उसके मुख्य मंत्री अजयदेव ने सन्धि-वार्ता तोड़ दी, और एक पहाड़ी चश्मे से आवश्यक पानी की पूर्ति प्राप्त कर उसने तुर्कों का सामना किया। तुर्कों को इस चश्मे का पता चल गया, तथा उन्होंने इसके जल-प्रवाह का रुख बदल कर अजयदेव को सन्धि करने के लिए बाध्य कर दिया। तुर्कों ने उसे दुर्ग खाली करने की आज्ञा दी, तथा वह अजयगढ़ के किले में चला गया। कालिंजर, महोबा तथा खजुराहो पर मुसलमानों ने अधिकार कर लिया, तथा इस प्रदेश का प्रबन्ध करने के लिए हसन अरनाल नामक सैनिक अधिकारी की नियुक्ति की गई[2]।

ऐबक की सफलता में परमर्दि की कायरता, कर्तव्य-हीनता तथा निश्चय-हीनता ने पर्याप्त सहायता की। पृथ्वीराज रासो तथा आल्हाखण्ड से हमें परमर्दि के चरित्र पर महत्वपूर्ण प्रकाश प्राप्त होता है। इन दोनों ग्रन्थों के अनुसार परमर्दि अयोग्य था, कायर था, तथा हमेशा गलत परामर्श देनेवालों की बात मानता था[3]। पृथ्वीराज द्वारा परमर्दि की पराजय तथा मुसलमानों के समक्ष उसका आत्म-समर्पण उसकी भीरुता के परिचायक थे।

---

१. फ़रिश्ता के अनुसार परमर्दि की प्राकृतिक मृत्यु नहीं हुई। उसके अनुसार परमर्दि के मंत्री ने अपने स्वामी का वध करा दिया, क्योंकि उसे अपने स्वामी का आत्म-समर्पण अच्छा न लगा। हिन्दू ध्वज दुर्ग पर फिर से लहराया गया, तथा लड़ाई पुनः प्रारम्भ हो गई (ब्रिग्स, खं० १, पृ० १९७) डॉ० राय के अनुसार फ़रिश्ता का कथन कपोलकल्पित है, देखिये, डी०, एच० एन० आई०, खं० २, पृ० ७२१; एन० एस० बोस, हिस्ट्री ऑफ दि चन्देलाज ऑफ जेजाकभुक्ति, कलकत्ता, १९५६, पृ० ९८-९९।

२. ताजुल मआसिर, फो० १८५ बी; फखरे मुदब्बिर, तारीखे फखरुद्दीन मुबारक शाह, पृ० २५। कनिंघम, रिपोर्ट्स, २, पृ० ४५६ पर कहता है कि कालिंजर पर ११९६ ई० में तथा १२०२ में, दो बार आक्रमण हुआ। किन्तु यह सही नहीं है।

३. एन० एस० बोस, हिस्ट्री ऑफ दि चन्देलाज ऑफ जेजाकभुक्ति, कलकत्ता, १९५६, पृ० १९३–१९४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मलिक बहाउद्दीन तुग़रिल :

उन मुइज़्ज़ी गुलामों में, जिन्होंने ग़ोरी की उत्तर भारत विजय में विशिष्ट पराक्रम व योग्यता का परिचय दिया, मलिक बहाउद्दीन तुग़रिल अल मुईज़ी अल सुल्तानी का नाम अग्रगण्य है। उसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। रेवर्टी के अनुसार वह सुल्तान मुइज़्ज़ुद्दीन के मेमलुकों में सबसे योग्य तथा सौम्य जनों में था[1]। सुल्तान मुइज़्ज़ुद्दीन के प्रारम्भिक शासन-काल में ही गुलामों में उसकी भर्ती कर ली गई थी। केवल अपनी योग्यता से ही वह सुल्तान की दृष्टि में उठा। थानगढ़ का दुर्ग जीतने के बाद तुग़रिल को वहां का प्रशासन सौंपा गया। उसने यह कार्य बड़ी योग्यता से सम्पन्न किया। तुर्कों को भारतीय नगरों में बसाने का प्रारम्भिक श्रेय उसी को था। उसने इस क्षेत्र में बड़ी-बड़ी मुस्लिम बस्तियां बसाईं। मिनहाज के अनुसार हिन्दुस्तान तथा खुरासान के विभिन्न भागों से व्यापारी तथा प्रतिभा सम्पन्न पुरुष उससे आकर मिले, तथा उसने सभी के लिए मकान तथा सामान दिये, जो उनकी सम्पत्ति हो गये।[2]

उसने बयाना प्रदेश में सुल्तानकोट नामक नगर बसाया, जिसे उसने अपना सत्ता-केन्द्र बनाया। यहां से उसने ग्वालियर के विरुद्ध अभियान किये। जब मुइज़्ज़ुद्दीन ग्वालियर बिना जीते चला गया, तो यह कार्य बहाउद्दीन को सौंपा गया। बड़ी योजनापूर्वक बहाउद्दीन ने घोर परिश्रम करके इस प्रदेश पर अधिकार करने का प्रयास किया। ग्वालियर के दुर्ग के पास उसने एक नया दुर्ग बनाया, ताकि रात्रि को उसकी सेना वहां ठहर सके। एक साल पश्चात् उसने ग्वालियर के किले पर घेरा डाला। दुर्ग के रक्षक जब अति दुःखी हो गये तो उन्होंने ऐबक के पास आत्म-समर्पण का सन्देश भेजा, तथा १२०० ई० में ग्वालियर दुर्ग ऐबक को समर्पित कर दिया।[3] इस कारण बहाउद्दीन तुग़रिल तथा ऐबक में मनमुटाव हो गया। सम्भवतः दोनों एक दूसरे को नापसन्द करते थे।[4] अतः जब तुग़रिल ने ग्वालियर के शासकों को दबाया, तो उन्होंने ऐबक को आत्म-समर्पण किया। सम्भवतः वे इन दोनों मुस्लिम अधिकारियों के वैमनस्य से अवगत थे। फ़रिश्ता के अनुसार दोनों ने युद्ध की तैयारी की, किन्तु तुग़रिल की मृत्यु ने ऐबक का कार्य सरल बना दिया।[5] मिनहाज के अनुसार तुग़रिल अतीव योग्य व्यक्ति था, जिसने बयाना के प्रदेश में बहुत से सार्वजनिक हित के कार्य सम्पन्न किये।[6]

इख़्तियारउद्दीन मुहम्मद बख़्तियार ख़लजी :

मुहम्मद ग़ोरी तथा ऐबक ने सम्भवतः गाहड़वालों के राज्य से भी आगे पूर्ववर्ती प्रदेश

---

१. तबक़ाते नासिरी, पृ० ५४४, टि० ४।
२. वही, पृ० १४५।
३. तारीख़े फख़रुद्दीन मुबारक शाह, पृ० २४; ए कॉम्प्रहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया, खं० ५, पृ० १७१ तथा टि० ८।
४. मिनहाज, पृ० १४५।
५. फ़रिश्ता, १, पृ० ६४।
६. तबक़ाते नासिरी, पृ० १४५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर आक्रमण करने की कल्पना भी न की थी। किन्तु यह कार्य मुहम्मद बख्तियार खलजी ने अपनी वीरता, अपार साहस तथा निर्भयता से सम्पन्न किया। वह गर्मसीर का रहने वाला था।[१] वहीं से नौकरी की खोज में गज़नी आया। दीवाने अर्ज़[२] के अध्यक्ष ने देखा कि वह अत्यन्त 'विनम्र तथा सीधा साधा' था; अतः उसने अपने विभाग में उसकी थोड़े से वेतन पर नियुक्ति कर दी। किन्तु बख्तियार ने यह नियुक्ति स्वीकार नहीं की[३], और अपना भाग्य परखने हिन्दुस्तान चला आया। परन्तु दिल्ली में भी सेना विभाग के अध्यक्ष ने उसकी कुरूपता के कारण उसकी नियुक्ति नहीं की। गज़नी तथा दिल्ली में इस प्रकार हताश होने पर भी वह अपने लिए सम्मानजनक पद प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध रहा। अतः दिल्ली से बदायूं जा पहुँचा। बदायूं के मुक्ता सिपहसालार हिज़बुद्दीन हसन अदीब ने उसे अपने यहां नौकरी दे दी। मिनहाज के अनुसार यह बख्तियार की पहली नौकरी थी।[४] एसामी के अनुसार बख्तियार ने सबसे पहले जित्तूर के जयसिंह के यहां नौकरी की[५], किन्तु इस बात की कोई तत्कालीन पुष्टि नहीं। वैसे कुछ प्रारम्भिक युद्धों में किराये के अफ़गान सैनिकों का राजपूतों की ओर से लड़ने का प्रमाण मिलता है।[६]

बख्तियार का चाचा मुहम्मद बिन महमूद तराइन के दूसरे युद्ध में पृथ्वीराज के विरुद्ध लड़ा था। उसकी बहादुरी ने अली नागौरी को आकृष्ट किया; अली नागौरी ने उसे अपने यहां नौकरी दे दी, और कश्मंडी का इक़्ता भी उसे प्रदान किया।[७] मुहम्मद की मृत्यु के बाद यह इक़्ता बख्तियार को सौंपा गया। किन्तु जो कार्य उसने कश्मंडी के मुक्ता पद पर किया, उसके विषय में कुछ भी जानकारी नहीं। वह यहां अधिक नहीं ठहरा और इसके पश्चात् अवध जाकर बनारस तथा अवध के सेनापति मलिक हुसामुद्दीन आग़ूल बेक से मिला। उसके साहस से प्रभावित होकर आग़ूल ने भगवत तथा भिउली के इक़्ते उसे प्रदान किये।[८]

---

१. तबक़ाते नासिरी, पृ० १४६।

२. यह विभाग युद्ध का प्रबन्ध करता था। इस विभाग का सबसे बड़ा अधिकारी आरिज़े ममालिक होता था। वह तथा उसके नीचे वाले अधिकारी सेना की भर्ती तथा निरीक्षण करते थे।

३. तबक़ाते नासिरी, पृ० १४६।

४. तबक़ाते नासिरी, पृ० १४६–१४७।

५. इसका तात्पर्य सम्भवतः गुहिलौत शासक जैत्रसिंह से है, जो उस समय चित्तौड़ से ७० मील दूर नागदा नामक स्थान पर शासन कर रहा था। देखिये, ए कॉम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया, खं० ५, पृ० १७१, टि० १३।

६. फ़रिश्ता, खं० १, पृ० ५८।

७. मिनहाज, पृ० १४६।

८. तबक़ाते नासिरी की मुद्रित प्रति, पृ० १४७ में सिहिलट तथा सिहिली नामक स्थानों का उल्लेख है, जो रेवर्टी के अनुसार भिउली तथा भगवत हैं। भिउली चुनार तहसील का उत्तरपूर्वी परगना है, तथा उसके पश्चिम में भगवत परगना स्थित है। ये दोनों परगने आधुनिक मिर्ज़ापुर जिले के दक्षिण पूर्वी कोने में हैं। देखिये, होडीवाला, स्टडीज़ इन इण्डो मुस्लिम हिस्ट्री, पृ० २०६; कनिंघम, रिपोर्ट्स, ११, पृ० १२८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बख्तियार को इस प्रकार एक केन्द्र मिल गया, जहां से वह पड़ोसी प्रदेशों पर आक्रमण कर सकता था। उसने साहसी योद्धाओं का एक छोटा सा दल तैयार किया. तथा १२०० ई० के लगभग कर्मनाशा पार कर मगध पर छापामारी शुरू की। गाहड़वालों के पराभव के पश्चात् इस प्रदेश में संगठित प्रतिरोध का सर्वथा अभाव था। मनेर के प्रदेश में बार-बार छापे मार कर बख्तियार ने यश एवं धन दोनों ही कमाये तथा अपनी सैनिक शक्ति में संवर्धन किया।[१] यह विस्मय का विषय है कि सेन शासक ने इन छापों को रोकने के लिए कोई कदम नहीं उठाया। इस प्रदेश को सर्वथा अरक्षित पा बख्तियार ओदन्त पुरी के विहार तक जा पहुँचा, तथा ऐबक की आज्ञा पाकर इस भिक्षु विश्वविद्यालय वाली नगरी पर आक्रमण कर दिया।[२] इसी विहार के कारण चारों ओर का प्रदेश बिहार कहलाने लगा था।[३]

बख्तियार के पास न तो ऐसी सेना ही थी जिससे वह हिन्दू दुर्गों पर विजय पा सकता, और न ही वह देश में विशेष खलबली मचाना चाहता था। उसका लक्ष्य अधिक से अधिक लूट मार तथा कम से कम रक्तपात तथा संकट मोल लेना था। इसी कारण उसने ऐसे प्रदेश में ही लूटमार की जिसकी रक्षा करने के लिए किसी राज्य की संगठित सेना का सर्वथा अभाव था।[४]

लखनौती में ६४१ हि० अर्थात् १२४३ ई० में मिनहाज की मुलाकात सम्सामुद्दीन नामक एक व्यक्ति से हुई जो बख्तियार के यहां नौकरी कर चुका था।[५] इस व्यक्ति ने मिनहाज को बिहार तथा बंगाल में बख्तियार के अभियानों का विवरण दिया, तथा उसकी मृत्यु का हाल भी सुनाया। मिनहाज को बतलाया कि बख्तियार ने बिहार पर अचानक धावा बोल दिया; उसके पास इस आक्रमण में केवल दो सौ बख्तरबन्द घुड़सवार थे। बख्तियार ने इसी शक्ति से ओदन्तपुरी के दुर्ग पर अधिकार कर लिया।[६] मिनहाज के अनुसार उस स्थान के अधिकतर निवासी "ब्राह्मण थे, तथा उनके सिर घुटे हुए थे। यह सब मार डाले गये। वहां पर पुस्तकों का बड़ा भंडार था। जब मुसलमानों ने इन पुस्तकों को देखा, तो उन्होंने बहुत से हिन्दुओं को बुलाया जो उन्हें इन पुस्तकों के विषय में कुछ सूचना दे सकें, किन्तु सारे (शिक्षित) हिन्दू मारे जा चुके थे। इन पुस्तकों के तथ्यों से अवगत होने पर यह पता चला कि समस्त दुर्ग

१. मनेर पटना से २० मील पश्चिम में है। देखिये, तबक़ाते नासिरी, पृ० १४७।
२. तबक़ाते नासिरी, पृ० १४७।
३. मिनहाज, पृ० १४७। देखिये, कनिंघम, रिपोर्ट्स, ३, पृ० ११८; ८, पृ० ७५; ११, १८५। तारानाथ भी उद्दण्ड पुर पर एक प्रारम्भिक तुरुष्क आक्रमण का उल्लेख करता है, जिसमें आक्रमणकारी परास्त हुए थे; समद्दर, ग्लोरीज ऑफ मगध, पृ० १३१-१३२; एस० सी० सरकार, सम टिबेटन रेफ़रेन्सेज टु मुस्लिम एडवान्स इन बिहार एण्ड बंगाल, पी० आई० एच० आर० सी०, १९४२।
४. हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग २, पृ० ३ (सम्पादित सर यदुनाथ सरकार, ढाका विश्व-विद्यालय, १९४८)।
५. मिनहाज, पृ० १४७।
६. मिनहाज, पृ० १४८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा नगर एक विद्यालय था, तथा हिन्दी भाषा में लोग विद्यालय को बिहार कहते हैं।[1]" मुसलमानों ने जिन सिरघुटे लोगों को ब्राह्मण समझा था, वे वास्तव में श्रमण थे।[2] इन्हीं श्रमणों ने थोड़ा बहुत आत्म-रक्षा का प्रयास किया, किन्तु मारे गये और ओदन्तपुरी पर बख्तियार का अधिकार हो गया। तारानाथ के अनुसार इसी समय बख्तियार ने विक्रमशील तथा नालन्दा पर भी अधिकार किया, तथा ओदन्तपुर में एक दुर्ग का निर्माण कराया।[3] एक बौद्ध परम्परा के अनुसार १२०० ई० में कश्मीर का प्रसिद्ध विद्वान भिक्षु शाक्य श्रीभद्र ओदन्तपुर तथा विक्रमशील गया, किन्तु उसने दोनों ही विहारों को पूर्णतः ध्वस्त पाया।[4]

इस विजय की तिथि के विषय में तबक़ाते नासिरी मौन है, तथा इसका अनुमान केवल घटनाओं के क्रम से ही लगाया जा सकता है।[5] इस प्रदेश पर अधिकार करके मुसलमान सेन राज्य की सीमा तक आ पहुंचे। किन्तु सेनों ने तुर्कों को बिहार से निकालने का कोई प्रयास नहीं किया, और न आत्म-रक्षा का ही कोई विशेष प्रबन्ध किया; न सीमा की रक्षा के लिए कोई विशेष कदम उठाया। यह बात तत्कालीन हिन्दू शासकों की क्षुद्र बुद्धि, संकुचित मनोवृत्ति, मानसिक संकीर्णता एवं अदूरदर्शिता की परिचायक है। जो भूल अन्य भारतीय शासकों ने की, वही सेनों ने भी की। शत्रु के आगमन का भास तभी सार्थक माना जाता था, जब वह किसी शासक के द्वार पर ही जा धमके; पड़ोसी की तथा सीमावर्ती प्रदेशों की रक्षा के प्रति भारतीय शासक सर्वथा उदासीन थे। सेनों के नीति-दौर्बल्य तथा उनकी अकर्मण्यता ने बख्तियार को और आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। वह ऐबक के पास गया तथा उसके लिए अपार लूटी हुई सम्पत्ति एवं भेंट आदि ले गया। ऐबक ने उसे अपनी विजय का वृत्त बढ़ाने की आज्ञा दे दी, यद्यपि उसने बख्तियार की कोई सैनिक सहायता नहीं की। इसी समय बख्तियार ने अपनी गदा के एक ही प्रहार से एक हाथी का मुंह तोड़ कर ऐबक तथा अन्य तुर्क सरदारों के सम्मुख अपने निर्भीक साहस का परिचय दिया। हाथी के साथ यह युद्ध उसे अपने प्रतिद्वन्दी सरदारों की ईर्ष्या एवं स्पर्धा के फल स्वरूप करना पड़ा, क्योंकि बख्तियार की

---

१. मिनहाज, पृ० १४८।

२. वही, पृ० १४८; आर० डी० बनर्जी, बांगलार इतिहास, भाग १, पृ० २५२–५३, के अनुसार उदण्डपुर, नालन्दा तथा विक्रमशील के चारों ओर के इलाके पर गोविन्दपाल शासन कर रहा था। बख्तियार की सेना द्वारा उसका वध कर दिया गया। देखिये, जे० ए० एस० बी०, १९३१, पृ० १४; राय, डाइनेस्टिक हिस्ट्री, खं० १, पृ० ३६९।

३. इंडि० एण्टि०, ४, ३६६–६७।

४. एस० सी० दास, ऐन्टिक्विटी ऑफ चिटागाँग, जे० ए० एस० बी०, १८९८, पृ० २५।

५. फखरेमुदब्बिर, पृ० २५ में ६०० हि० अर्थात् १२०३–४ ई० में बिदूर (बिहार) की विजय का उल्लेख है। हसन निज़ामी, ताजुल मआसिर, फो० १७६ बी, में उल्लेख है कि कालिंजर की विजय के बाद जब ५९९ हि० अर्थात् १२०२–३ ई० में ऐबक बदायूं में था, तब बख्तियार उससे मिलने 'उदन्द बिहार' की दिशा से आया। इसका उल्लेख मिनहाज, पृ० १४७ तथा १५० में भी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अप्रत्याशित सफलता से कुतुबुद्दीन अत्यन्त प्रसन्न था और उसके दरबारी जलते थे। अतः उन्होंने हाथी से लड़ाने का आयोजन किया।[1]

बख्तियार ने जब यह सुना कि सेन राज्य का शासक वृद्ध एवं दुर्बल है तथा विद्याव्यसन में शान्तिमय जीवन व्यतीत करता है, तो उसने इस समृद्ध राज्य पर चोट करने का निश्चय कर लिया। किन्तु उसके पास इतनी बड़ी सेना नहीं थी कि वह सेन राज्य पर बृहद् आक्रमण कर पाता; अतः उसने राज प्रासाद पर अचानक आक्रमण करने की योजना बनाई। राज महल पर इस प्रकार सहसा अप्रत्याशित आक्रमण एवं अधिकार करके वह महान् ख्याति तथा नवीन शक्ति प्राप्त कर सकता था। इस प्रकार जनता को आश्चर्य चकित एवं आतंकित कर बंगाल में अपने पैर भी जमा सकता था।

बख्तियार सेन राज्य की सीमा पर खड़ा अपने अभियान की योजना बना रहा था। उसके शौर्य एवं साहस की गाथा नदिया के राय लखमनियाँ अर्थात् लक्ष्मणसेन के कानों तक जा पहुँची। मिनहाज के अनुसार राय ८० वर्ष से शासन कर रहा था,[2] तथा उसकी जनता उसके न्याय एवं औदार्य से सन्तुष्ट थी। कुछ भविष्य वक्ताओं ने राय को बताया कि उन की प्राचीन पुस्तकों के कथनानुसार देश तुर्कों के हाथ में चला जायगा। इन भविष्य वक्ताओं ने तुर्कों की यातना से बचने के लिए राय को अपना प्रदेश छोड़ने का परामर्श दिया। जब राय ने उस पुरुष के लक्षणों के विषय में पूछा जो उसके राज्य पर विजय करेगा, तो उन्होंने बतलाया कि जब वह खड़ा होगा तथा अपने दोनों हाथ नीचे करेगा तो उसके हाथ उसके घुटनों से नीचे पहुँच कर उसकी पिंडलियों को छुएंगे। राय ने इस विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए अपने कुछ विश्वस्त सेवकों को भेजा, जिन्होंने बख्तियार में यह लक्षण पाये। परिणामस्वरूप राजधानी के अधिक ब्राह्मण तथा अन्य निवासी संकनात,[3] बंग के अन्य नगरों तथा कामरूप की ओर चले गये। किन्तु राय लखमनियाँ ने अपनी राजधानी नहीं छोड़ी।[4] अन्धविश्वास के शिकार उसने भी १२०३ ई० में ऐन्द्रिय-महाशान्ति नामक महायज्ञ किया, ताकि देवताओं की सहायता से वह इस आगामी दुःख से मुक्त हो जाय।[5]

अगले वर्ष, १२०४–५ ई० में बख्तियार बिहार से अचानक नदिया की ओर बढ़ा। वह इतनी शीघ्रता से आगे बढ़ा कि बिहार के दुर्गम झारखण्ड प्रदेश में होकर केवल अठारह घुड़ सवार ही उसका साथ दे सके[6]। उसकी मुख्य सेना पीछे-पीछे आई। नदिया नगर के द्वार पर पहुँच कर बख्तियार ने किसी को नहीं छेड़ा, अपितु इस प्रकार आगे बढ़ा कि लोगों ने उसे घोड़ों का सौदागर समझा। किन्तु जैसे ही वह लक्ष्मणसेन के महल के द्वार पर पहुँचा, अपनी

---

१. तबक़ाते नासिरी, पृ० १४८।
२. तबक़ाते नासिरी, पृ० १४९।
३. होड़ीवाला के मतानुसार यह स्थान सुनारगांव अथवा सतगांव है। देखिये, स्टडीज़ इन दी हिन्दू मुस्लिम हिस्ट्री, पृ० २०७।
४. तबक़ाते नासिरी, पृ० १५०।
५. जर्नल ऑफ दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, लेटर्स, १९४२, १७–२१।
६. मिनहाज, पृ० १५१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तलवार खींच प्रहरियों पर टूट पड़ा।[१] राय उस समय भोजन कर रहा था। जब तक उस तक यह समाचार पहुँचा, बख्तियार दरवाज़ा पार कर चुका था। राय नंगे पांव ही पिछले द्वार से भाग खड़ा हुआ। 'उसका सम्पूर्ण खज़ाना, उसकी पत्नियां तथा अन्य स्त्रियां, उसके चाकर, सब पकड़ लिये गये। मुसलमानों ने बहुत से हाथी पकड़ लिये तथा उनके हाथ इतनी बड़ी लूट लगी कि उसका उल्लेख करना कठिन है।'[२]

कुछ ही समय पश्चात् बख्तियार की मुख्य सेना आ पहुँची, तथा नदिया के नगर तथा चारों ओर के क्षेत्र पर अधिकार कर लिया गया। राय लखमनियां संकनात तथा बंग एवं कामरूप के नगरों की ओर भाग गया। उसके भागने से उसके भौचक्के सैनिकों का दम टूट गया, और शत्रु का प्रतिरोध निष्प्रयोजन हो गया।[३] अपने राज्य के बचे हुए भाग पर उसने सुनार गांव से कुछ वर्षों तक और शासन किया।[४]

जिस सरलता से बख्तियार का नदिया पर अधिकार हो गया, उससे उसे स्वयं ही आश्चर्य हुआ होगा। अठारह घुड़सवारों की विजय की कहानी मानने में कुछ हिन्दू इतिहासकारों को आपत्ति है।[५] मिनहाज के वृत्तान्त पर सन्देह प्रकट किया गया है, किन्तु वास्तविक तथ्य तो यही है कि लक्ष्मणसेन भयभीत एवं परास्त होकर भागा। क्योंकि इसमें कोई संशय नहीं कि नदिया पर आक्रमण करने के पश्चात् बख्तियार ने सेन राज्य के कुछ भाग पर अधिकार स्थापित कर लिया। बंगाल की दशा वास्तव में शोधनीय थी। समाज ब्राह्मणों के शोषण से त्रस्त था; शासक वृद्ध एवं दुर्बल था, तथा उसे धर्म तथा साहित्य से ही अवकाश नहीं मिलता था। केन्द्रीभूत शासन की क्षीणता के कारण सामन्त अपने स्वातन्त्र्य की घोषणा कर रहे थे[६]। लक्ष्मणसेन का राज्य किसी भी सुनियोजित आक्रमण का सामना करने में असमर्थ था। तुरुष्कों का भय सम्पूर्ण उत्तरी भारत में व्याप्त था। हो सकता है कि मिनहाज अतिशयोक्ति का किसी हद तक अपराधी हो, तथा महाभूजी बख्तियार के विषय में भविष्यवाणी की कथा कपोलकल्पित हो। किन्तु फिर भी लक्ष्मणसेन भयभीत अवश्य था, क्योंकि उसने शासन के पच्चीसवें वर्ष (१२०३ ई०) में दैवी सहायता प्राप्त करने के लिये तथा इस संकट को टालने के लिए महायज्ञ किया।[७] जैसे-जैसे तुर्क पूर्व में अग्रसर हुए, लक्ष्मणसेन तथा उसके

---

१. मिनहाज, पृ० १५१।
२. वही, पृ० १५१।
३. वही, पृ० १५०।
४. आर० सी० मजूमदार, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, खं० १, (१९४३), पृ० २२४।
५. वैद्य, दि डाउनफाल ऑफ हिन्दू इंडिया, पृ० २५३–५४–५५; आर० डी० बनर्जी, बांगलार इतिहास, पृ० ३२४–२५; इंडियन कल्चर, १९३५, पृ० १३३–३६।
६. देखिये, इंडि० हिस्टॉ० क्वा०, १०, पृ० ३२१, जहां सुन्दरवन प्रदेश में प्राप्त १११८ शक सम्वत् अर्थात् ११९६ ई० के एक स्वतन्त्र शासक सामन्त मोदम्मनपाल के दान पत्र का उल्लेख है। सेन प्रशासन के दौर्बल्य के लिए देखिये, निहार रंजन राय, बंगालीर इतिहास, पृ० ५१६–२९।
७. जे० आर० ए० एस० बी० एल०, १९४२, पृ० १७–२१। ऐन्द्रिय महाशान्ति यज्ञ बृहत् संकटों के मोचन के लिए ही किया जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामन्तों के आत्म-विश्वास एवं साहस पर आघात पहुँचा। बख्तियार के आकस्मिक आक्रमण ने उसके पैर उखाड़ दिये। नदिया पर तो तभी अधिकार हो सका, जब बख्तियार की मुख्य सेना पीछे से आ पहुँची।[1] बख्तियार नदिया पर स्थायी अधिकार नहीं करना चाहता था, क्योंकि इस स्थान को वह सत्ता-केन्द्र बनाने के लिए पूर्णतः सुरक्षित नहीं समझता था। उड़ीसा के गंग शक्तिशाली शासक थे। सेनों की सेना भी विद्यमान थी। अत. बिहार के पास ही कोई स्थान इस कार्य के लिए खोजना था। बख्तियार ने नदिया को लूट कर लखनौती में अपना केन्द्र बनाया। लखनौती अर्थात् लक्ष्मणावती सेनों की पश्चिमी राजधानी थी, तथा मालदा जिले में गौड़ नामक स्थान के पास स्थित थी।[2] बख्तियार का विचार बिल्कुल सही था, क्योंकि राढ़ एवं नदिया प्रदेश पर अगले ५० वर्षों तक हिन्दू राज चलता रहा। १२०५ ई० का स्वयं लक्ष्मणसेन का एक दानपत्र प्राप्त हुआ है, जिसमें ऐसे स्थान का उल्लेख है, जो नदिया ही प्रतीत होता है।[3] जैसा ऊपर उल्लेख कर चुके हैं, लक्ष्मणसेन संकनात की ओर चला गया। संकनात का समीकरण संकट अथवा संकाकोट के साथ किया जा सकता है जो पूर्व बंगाल में विक्रमपुर के पास स्थित था।[4] इस प्रदेश में अगली तीन पीढ़ियों तक लक्ष्मणसेन का वंश शासन करता रहा।[5]

बख्तियार का अधिकार केवल उत्तरी बंगाल के थोड़े से भाग पर ही स्थापित हो सका, जहां से उसने लक्ष्मणसेन के पुत्र को निकाल बाहर किया।[6] बख्तियार ने अपने अधिकृत प्रदेश में मस्जिदें, मदरसे, तथा खनकाह आदि स्थापित किये, तथा लाखानोर (जिला वीरभूमि में स्थित नगर) और देवकोट में सेना नियुक्त की। मुइज्जुद्दीन के नाम से खुतबा पढ़वाया। लाखानोर के बिहार तथा उड़ीसा के मध्य मार्ग में होने के कारण उसका सामरिक महत्व

---

१. बंगाली इतिहासकारों द्वारा लक्ष्मणसेन के शौर्य की अनावश्यक प्रशंसा ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अनुचित है। देखिये, मजूमदार, हिस्ट्री ऑफ बंगाल. भाग १, पृ० २२४–२५।

२. आई० जी० आई०, १२, पृ० १८; जे० ए० एस० बी०, न्यू सीरीज़ २ पृ० २८२।

३. जे० आर० ए० एस० बी० एल०, १९४२, पृ० ७१–७२।

४. मिनहाज, पृ० १५०-५१; फ़रिश्ता, २, २८२ के अनुसार यह स्थान उड़ीसा स्थित जगन्नाथ था। संथाकोट के विषय में देखिये, दत्ता, वैश्याज़ इन मेडिवल बंगाल, आई० एच० क्यू०, १९४०, पृ० ७०५–६।

५. बख्तियार के आक्रमण के पश्चात् जारी किये गये लक्ष्मणसेन के एक भूदानपत्र में उसे बड़ी बड़ी राजसी पदवियों से अलंकृत किया गया है। म्लेच्छ शासक पर उसकी विजय का भी उल्लेख है, जिसका तात्पर्य, बंगाल के मुस्लिम शासक से भी हो सकता है। लक्ष्मणसेन के पुत्र भी यवनों पर अपनी विजय का उल्लेख करते हैं, तथा बड़ी बड़ी पदवियों का प्रयोग करते हैं। हो सकता है कि यह केवल कृत्रिम आत्म-प्रशंसा हो। अथवा जो थोड़ी बहुत सफलता उन्हें मुसलमानों के विरुद्ध प्राप्त हुई, उसी का उल्लेख हो। देखिये, मजूमदार, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग १, पृ० २२४।

६. जे० ए० एस० बी०, १८९६, पृ० २०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था।[1] देवकोट का समीकरण उत्तर पूर्व में जानगढ़ के साथ किया जा सकता है, जो दिनाजपुर नगर से कुछ मील दक्षिण पश्चिम में है।[2] इस प्रकार बख्तियार का अधिकार केवल मालदा, दिनाजपुर, मुर्शिदाबाद तथा वीरभूमि जिलों में ही सीमित था। मिनहाज के अनुसार यह प्रदेश 'राल' अथवा राढ़, तथा 'बरिन्द' अथवा बरेन्द्री कहलाता था, तथा उसकी पश्चिमी सीमा तिस्ता-करतोया नदी के बेसिन तक फैली थी।[3]

उसके पश्चात् बख्तियार ने 'लखनौती के पूर्व में तुर्किस्तान तथा तिब्बत के पहाड़ी क्षेत्रों' के विषय में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया। तिब्बत के ऊपर उसने क्यों आक्रमण किया, यह बात समझना कठिन है। उसने उन हिन्दू राज्यों की ओर ध्यान नहीं दिया, जिन्हें वह सरलता से परास्त कर सकता था। सम्भवतः वह तुर्किस्तान के लिए किसी नये तथा छोटे मार्ग की खोज में था। तुर्किस्तान से इस प्रकार सीधा सम्बन्ध स्थापित करके वह वहाँ से सामरिक सहायता प्राप्त कर सकता था, तथा बंगाल में अपने राज्य का प्रसार कर सकता था। बख्तियार जैसा साहसी तथा महत्वाकांक्षी व्यक्ति दिल्ली से सर्वथा स्वतन्त्र राज्य के सृजन का स्वप्न भी देख सकता था।

मिनहाज लगभग ३५ व्यापार मार्गों का उल्लेख करता है, जिनसे करमवहन[4] तथा तिब्बत से टंगन नस्ल के घोड़े कामरूप होते हुए लखनौती बिकने आते थे।[5] हो सकता है कि बख्तियार ने यह आक्रमण इसलिये किया हो कि घोड़ों की इस उत्तम नस्ल पर उसका एकाधिकार हो जाय। बंगाल में घोड़ों का भारी अभाव था, किन्तु युद्ध में उनकी महती आवश्यकता थी[6]।

बख्तियार ने इस अभियान की सुनियोजित तैयारी की। उसने कुछ स्थानीय कबीलों से भी उनकी सहायता प्राप्त करने के लिए सम्पर्क स्थापित किया। मिनहाज के अनुसार 'तिब्बत तथा लखनौती प्रदेश के बीच में स्थित पहाड़ियों के विभिन्न भागों में मनुष्यों की तीन जातियां हैं; पहली कूंच कहलाती है, दूसरी मेज, तथा तीसरी तहारू; और सभी की तुर्कों जैसी शक्ल है। उनकी भाषा भी दूसरी है, जो हिन्द तथा तुर्की की भाषा से अलग है। कूंच तथा मेज कबीलों का एक सरदार जिसे अली मेज कहते थे, मुहम्मद बख्तियार खलजी के हाथ में आ गया, जिसने उसे मुसलमान बना दिया।[7] यह आदमी पहाड़ी मार्गों में बख्तियार का मार्ग दर्शक बना। मुहम्मद शेरान को लाखानौर की सुरक्षा के लिए तैनात कर बख्तियार अली

१. देखिये हबीबुल्ला, पृ० ८४–८५; टिप्पणी ९१।
२. हबीबुल्ला, पृ० ७४।
३. लघु भारत नामक एक हिन्दू ग्रन्थ के अनुसार बख्तियार ने बोगरा के निकट बोगी भावन के व्यापारियों को लूटा, तथा करतोया नदी के किनारे पर सेनों की सम्पत्ति अधिकृत की; डी० एच० बी०, २, पृ० ३४।
४. करमबट्टन सम्भवतः भूटान स्थित कुमरीकोटा है।
५. मिनहाज, पृ० १५४।
६. देखिये, हबीबुल्ला, पृ० ७५।
७. तबक़ाते नासिरी, पृ० १५२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मेज के साथ दस हजार घुड़सवार ले बुरधन कोट नामक नगर जा पहुँचा।[1] यहां बेगमती नाम की नदी बहती थी। अब यह नदी हिन्दुस्तान में प्रवेश करती थी, हिन्दुई भाषा में इसे 'समुन्द' अर्थात् समुद्र कहते थे।[2] १० दिन तक इस नदी के किनारे किनारे अली मेज द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर बख्तियार की सेना चलती रही। अब वे एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहां एक काटे हुए पत्थरों का पुल था, जिसमें बीस से अधिक मेहराबें अथवा डाटें थीं। सेना सहित पुल पार कर बख्तियार ने अपने दो अमीरों को कुछ सैनिकों सहित उसके लौटने तक पुल की रक्षा करने के लिए वहीं छोड़ दिया। जब कामरूप के शासक को उसके अभियान का पता चला, तो उसने बख्तियार के पास यह सन्देश भेजा कि वह अपना अभियान अगले वर्ष के लिए स्थगित कर दे। उसने अगले वर्ष स्वयं उस प्रदेश की विजय में बख्तियार की सहायता करने का वचन दिया[3]। किन्तु बख्तियार ने उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया, तथा तिब्बत की पहाड़ियों की ओर बढ़ता रहा। पन्द्रह दिन तक हिमालय के दुर्गम मार्गों से आगे बढ़ता रहा, और सोलहवें दिन उसकी सेना तिब्बत के खुले पठार में जा पहुंची। यह प्रदेश भली भांति आबाद था, तथा यहाँ अच्छी खेती बारी भी थी। अन्त में उसकी सेना एक शक्तिशाली दुर्ग के पास पहुंची, तथा आस-पास के क्षेत्र को त्रस्त करना प्रारम्भ किया। दुर्ग तथा सीमावर्ती क्षेत्र के लोगों ने एकत्रित होकर मुसलमानों का सामना किया। प्रातः से सायं तक युद्ध होता रहा, जिसमें बहुत से मुसलमान सैनिक धराशायी हुए। रात्रि में मुस्लिम सैनिकों ने अपने युद्ध बन्दियों से बातचीत की, जिन्होंने बताया कि वहाँ से पांच फरसंग पर करमपट्टन[4] नामक नगर था, जहाँ पचास हजार वीर तुर्क घुड़सवार तथा तीरंदाज़ रहते थे। उनके प्रातः तक इस स्थान पर आ पहुँचने की आशा थी।[5]

बख्तियार ने बीहड़ पहाड़ी क्षेत्र देखकर तथा अपने सैनिकों की लम्बी यात्रा तथा युद्ध से अकथ थकान समझ कर अपने अमीरों से परामर्श किया। उनकी सलाह के अनुरूप बख्तियार वापस चल दिया। लौटते समय उनके मार्ग में न तो उन्हें कहीं घास मिली, और न जलाने के लिए लकड़ी। वहाँ के निवासियों ने सभी कुछ जला डाला था, और दर्रों तथा घाटियों में रहने वाले लोग उनके मार्ग से दूर चले गये थे। पन्द्रह दिन की यात्रा में बख्तियार के मवेशियों तथा घोड़ों को न घास मिली न दाना सैनिकों ने अपनी प्राण-रक्षा के लिए अपने

---

१. तबक़ाते नासिरी, पृ० १५२।

२. ब्लाखमान के अनुसार यह प्राचीन तिस्ता नदी थी। दि स्ट्रगिल फॉर एम्पायर, पृ० १२३, के अनुसार यह नदी ब्रह्मपुत्र थी।

३ मिनहाज, पृ० १५२, १५३।

४. करबट्टन अथवा करमपट्टन सम्भवतः भूटान स्थित कुर्मिकोटा था। मिनहाज के अनुसार करबट्टन के चारों ओर पत्थर की दीवारें थीं; वहाँ के निवासी ब्राह्मण तथा नूनी थे; नगर एक मेहतर के आधीन था। वहाँ के मवेशी बाजार में प्रतिदिन लगभग १५०० घोड़े बिकते थे। लखनौती जाने वाले सभी घोड़े वहाँ से आते थे। देखिये, तबक़ाते नासिरी, पृ० १५४।

५. वही, पृ० १५३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घोड़ों को मार कर खाया। तब कहीं जाकर वे पहाड़ी प्रदेश पार करके कामरूप में उसी पुल पर जा पहुंचे, जिसे पार करके तिब्बत की ओर बढ़े थे। उन्होंने देखा कि पुल की दो मेहराबें नष्ट कर दी गई थीं। उनकी अनुपस्थिति में उन दो अमीरों में आपस में झगड़ा हो गया, जिन्हें पुल की रक्षा के लिए नियुक्त किया गया था। अतः उन्होंने पुल की पर्याप्त रक्षा नहीं की, और कामरूप के हिन्दुओं ने पुल तोड़ डाला।[1]

उस स्थान पर नदी पार करने का कोई और मार्ग ही नहीं था। नावें भी नहीं थीं, अतः बख्तियार ने निश्चय किया कि किसी स्थान पर ठहर कर नावें बनवायी जायें। पास ही में एक मंदिर में उसने अपना पड़ाव डाल दिया, तथा बेड़े बनवाने के लिए लकड़ी तथा रस्सी का प्रबन्ध किया। जब कामरूप के शासक को बख्तियार की पराजय का पता चला, तो उसकी आज्ञानुसार हिन्दुओं ने मंदिर को घेर लिया, तथा उसके चारों ओर उन्होंने बांसों के भालों की रोक लगाकर बख्तियार को फँसाने का प्रयास किया। इस स्थिति में बख्तियार ने तुरन्त आक्रमण करके भाग निकलने का निश्चय किया। बांसों की रोक को तोड़ वह खुले मैदान में आ पहुँचा तथा अपनी सेना सहित नदी के किनारे जाकर रुका। किन्तु हिन्दुओं के दबाव के कारण उसकी सेना नदी में कूद पड़ी। किन्तु थोड़ी दूर जाकर तैरना असम्भव हो गया। अधिकतर सिपाही डूब गये। बख्तियार केवल सौ घुड़सवारों सहित बड़ी कठिनाई से नदी पार कर पाया।[2]

इस अभियान में बख्तियार के मार्ग तथा अन्य तथ्यों के विषय में विद्वानों में मतभेद है। बुरधनकोट का नाम तो अब भी वर्धनकोट है, जो बोगारा से २० मील दूर करतोया नदी पर स्थित है। बेगमती नदी का समीकरण कठिन है। पत्थर के पुल का समीकरण सिलहाको से कर सकते हैं, जो ब्रह्मपुत्र की सहायक नदी बर्नादी के ऊपर है। गौहाटी के पास एक संस्कृत अभिलेख प्राप्त हुआ है जिसमें मार्च १२०६ में एक तुरुष्क सेना के नाश का उल्लेख है। इस अभिलेख से प्रस्तुत प्रश्न पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है[3]।

---

१. तबक़ाते नासिरी, पृ० १५४-५५।

२. वही, पृ० १५५-५६।

३. हबीबुल्ला, पृ० ७६। रेवर्टी के मत के लिए देखिये, अनुवाद तबक़ाते नासिरी, पृ० ५६१-५६५, टि०। ब्लाखमान के मत के लिए देखिये, जे० ए० एस० बी०, १८७५, पृ० २८३, कर्नल हेनी द्वारा सिलहाकी पुल की खोज के विषय में देखिये, जे० ए० एस० बी०, १८५१, पृ० २९-९४। इस स्थान पर प्राप्त संस्कृत अभिलेख के उल्लेख के विषय में देखिये, भट्टाचार्य, कामरूप शासनावली, पृ० २७-४४। इसमें तुर्कों के लिए समगत्ये शब्द का उल्लेख है, जिसका अर्थ है "जो आये थे।" बख्तियार के मार्ग के विषय में देखिये, भट्टशाली, आई० एच० क्यू०, १९२७, पृ० ४९ तथा आगे। बंगाल में बेगमती अथवा बंगमती नाम की कोई नदी नहीं है किन्तु हो सकता है मिनहाज ने भूलवश रंगमती नामक ब्रह्मपुत्र के किनारे स्थित स्थान को करतोया के किनारे ला रखा। रंगमती के स्थान पर गलती से बंगमती लिखा जा सकता है। ऐसा भी हो सकता है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कूंच तथा मेज कबीलों के लोगों ने बख्तियार का साथ दिया। अली मेज के सम्बन्धियों ने उसे देवकोट पहुँचने में पूर्ण सहायता दी। इस भीषण पराभव ने बख्तियार के यश को अपार क्षति पहुंचाई। वह खलजी विधवाओं तथा अनाथों के समक्ष, जिनके स्वामियों का विनाश हो गया था, लज्जावश घोड़े पर सवार भी न हो सकता था। क्योंकि जब कभी वह घोड़े पर सवार होकर चलता था, तो स्त्री-पुरुष तथा बच्चे रोते और उसे गालियां देते थे। अपने दुःख के भार से दबकर बख्तियार ने घुड़सवारी भी छोड़ दी। इस समय वह यही कहता था : 'सम्भवतः सुल्तान-ए-गाज़ी मुइज़्ज़ुद्दीन संकटग्रस्त हो गया है, इसी कारण मेरे भाग्य ने मेरा साथ छोड़ दिया है।" यह बात सही थी, क्योंकि लगभग इसी समय दम्पक नामक स्थान पर मुइज़्ज़ुद्दीन का वध कर दिया गया। इस दुर्घटना ने बख्तियार की हिम्मत तोड़ दी, और वह रोगग्रस्त हो गया। उसकी बीमारी का समाचार सुनकर उसका अलीमर्दन-खलजी नामक अमीर देवकोट आया। बख्तियार बिस्तर पर पड़ा था, तथा पिछले तीन दिनों से किसी से नहीं मिला था। अलीमर्दन ने उसके पलंग के पास पहुँच कर उसके सिर से चादर हटा कर उसकी छाती में कटार भोंक दी। पराक्रमी बख्तियार की जीवन ज्योति बुझ गई।[1]

मुइज़्ज़ुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी का अन्त :

ग़ोरी वंश की सत्ता के प्रसार में ख्वारिज़्म घराना सदा बाधक सिद्ध हुआ। ख्वारिज़्म टकाश की मृत्यु (१२०० ई०) के पश्चात् उसके पुत्र तथा पौत्र में उत्तराधिकार-युद्ध छिड़ गया। इस अवसर का लाभ उठाकर बग़दाद के खलीफा के उकसाने से ग़ोरियों ने खुरासान तथा वहाँ के मुख्य नगरों पर (१२०१ ई०) अधिकार कर लिया। किन्तु टकाश के उत्तराधिकारी अलाउद्दीन ने ग़ोरियों से नीशापुर तथा अन्य विजित प्रदेश पुनः छीन लिये, और हिरात पर भी अधिकार कर लिया। १२०२ ई० में ज्येष्ठ भ्राता ग़यासुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् मुइज़्ज़ुद्दीन ग़ोर के सिंहासन पर बैठा। ख्वारिज़्म वंश के साथ युद्ध चलता रहा। १२०५ ई० में उनके हाथों अन्धखूद नामक स्थान पर मुइज़्ज़ुद्दीन की करारी हार हुई। मुइज़्ज़ुद्दीन की ख्याति पर इस पराजय ने घोर आघात किया। उसके समस्त साम्राज्य में विद्रोही सजग हो उठे। उसके शत्रुओं ने उसकी मृत्यु तक का मिथ्या समाचार उड़ा दिया। हसन निज़ामी के अनुसार मुइज़्ज़ुद्दीन के ऐबक बेक नामक एक सैनिक अधिकारी ने अन्धखूद से उसका साथ छोड़ दिया और तीव्र गति से मुल्तान की राह ली, जहाँ उसने स्थानीय शासक को मार कर अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली।[2] मिनहाज के अनुसार हुसेन खारमिल ने भी अपने स्वामी का साथ छोड़ दिया।[3] तारीखे-गुज़ीदा के अनुसार इलादगीज़ नामक उसके

कि बर्नादी के स्थान पर बंगमती लिख दिया गया हो। एक मत के अनुसार नेपाल की बंगमती नदी पहले बंगाल में होकर बहती होगी और करतोया से मिलती होगी।

१. मिनहाज, पृ० १५६।

२. ताजुल मआसिर, फो० १७८ बी।

३. मिनहाज, पृ० १२२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक अधिकारी ने ग़ज़नी पर भी अधिकार कर लिया,[१] यद्यपि इसकी पुष्टि अन्य कहीं से नहीं होती। केवल फ़रिश्ता ने इस कथन को दुहरा दिया है।

भारतवर्ष में भी मुइज़्ज़ुद्दीन की पराजय के समाचारों ने खलबली मचा दी। नमक के पहाड़ी प्रदेश के रायसल नामक शासक ने बकन और सरकार नामक दो खोकर सरदारों के साथ मिल कर लाहौर ग़ज़नी मार्ग के क्षेत्रों तथा चिनाब तथा झेलम के बीच के जिलों में लूट मार मचा दी, तथा लाहौर पर भी अधिकार करने की तैयारियां कीं।[२] लाहौर से ग़ज़नी का मार्ग अवरुद्ध हो गया। मुइज़्ज़ुद्दीन ने संकट की विषमता को समझ कर स्वयं ही खोकरों का दमन करने के लिए प्रस्थान कर दिया। ऐबक को झेलम नदी के किनारे अपनी सेना से आ मिलने का आदेश देकर वह पंजाब आ पहुँचा, और नदी के तट पर खोकरों से भीषण युद्ध हुआ। खोकर अकथ वीरता से लड़े, किन्तु परास्त हुए। बहुत से मारे गये, अथवा बन्दी बना लिए गये। बचे खुचे एक समीपवर्ती पहाड़ी दुर्ग में जा छिपे। अगले दिन दुर्ग भी जीत लिया गया। कुछ खोकर पास के जंगल में जा छिपे, किन्तु मुइज़्ज़ुद्दीन ने जंगल में आग लगवा दी, जिसमें वे सभी भस्म हो गये।

ऐबक के साथ मुइज़्ज़ुद्दीन लाहौर तक आया, तथा उसे दिल्ली वापस जाने की आज्ञा दे वह ग़ज़नी की ओर लौट पड़ा। मार्ग में सिन्ध नदी के किनारे दम्यक नामक एक रमणीक स्थल पर उसने अपना डेरा डाला। यहीं पर १५ मार्च, १२०६ ई० के दिन जब वह शाम की नमाज़ पढ़ रहा था, कुछ हत्यारों ने चोरी से उसके डेरे में प्रवेश कर उसे मार डाला। इन हत्यारों के विषय में विभिन्न मत प्रकट किये गये हैं। तबक़ाते नासिरी के अनुसार यह हत्यारे फ़िदाइमुलहिदाह थे[३]। जुवायनी के अनुसार ये लोग फ़िदायन थे।[४] ज़ाहबी के अनुसार ये हत्यारे इस्माइली थे।[५] इब्ने असीर के अनुसार यह लोग खोकर थे।[६] खोकर तथा इस्माइली दोनों ही मुइज़्ज़ुद्दीन के शत्रु थे। अतः यह सम्भव है कि दोनों ही ने मिल कर उसका वध किया हो। इब्ने-उल-असीर के अनुसार जब हत्यारे पकड़े गये, तो उनमें से दो खतनायुक्त थे।[७] इसका यह अर्थ हुआ कि हत्यारों में मुसलमान तथा ग़ैर-मुसलमान दोनों ही सम्मिलित थे।

---

१. तारीखे–गुज़ीदा, १, ४११-१२।

२. इब्ने-उल-असीर, १२, पृ० ९६; ताजुल-मआसिर, फो० १८०।

३. तबक़ाते नासिरी, पृ० १२३-२४। इस शब्द का प्रयोग करामतियों, इस्माइली शियाओं तथा कभी-कभी गैर मुसलमानों के लिये भी होता था। देखिये, ताजुल-मआसिर, फो० १९७ बी; तारीखे मुबारकशाही, पृ० १२; हाजीदबीर, पृ० ६०२; रेवर्टी, उपर्युक्त, पृ० ४५८, टि०।

४. जुबायनी, २, ५९।

५. दुवाल, २, ८१।

६. इब्ने असीर, १२, ८२।

७. १२, पृ० ९९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क़ुतुबुद्दीन का राज्यारोहण :

मुइज़्ज़ुद्दीन की आकस्मिक मृत्यु ने भारत में उसके अधिकारियों के लिए संकटमय स्थिति उत्पन्न कर दी। दिल्ली का शासन अभी भली भांति स्थापित भी न हो पाया था। सुल्तान की मृत्यु के कारण उसके अधिकारियों में पारस्परिक एवं वैयक्तिक स्पर्धा बलवती हो उठी। ग़ज़नी के साथ सम्पर्क भी कठिन हो गया। हिन्दुओं ने पुनः सिर उठाया। १२०६ ई० तक चन्देलों ने फिर कालिंजर पर अधिकार कर लिया, और दक्षिण की ओर मुस्लिम सत्ता के प्रसार का प्रतिरोध किया।[१] गंगा की घाटी में भी बहुत से हिन्दू शासक मुसलमानों का प्रतिरोध कर रहे थे।[२] हरिश्चन्द्र गाहड़वाल ने फ़रुख़ाबाद और बदायूं के जिलों में पुनः अपनी सत्ता स्थापित कर ली[३]। परिहारों ने भी ग्वालियर पर पुनः अधिकार कर लिया। पूर्व दिशा में भी बख़्तियार की पराजय ने मुस्लिम सत्ता की जड़ें हिला दीं। तुर्कों ने समस्त उत्तरी भारत रौंद डाला था, किन्तु मुइज़्ज़ुद्दीन की मृत्यु के समय उनका अधिकार केवल सिन्ध, पंजाब तथा दोआब तक ही सीमित रह गया था।

मुइज़्ज़ुद्दीन का कोई पुत्र न था। उसका भतीजा ग़यासुद्दीन महमूद अब ग़ोर का स्वामी बना। किन्तु वह अयोग्य था। ख़्वारिज़्म का शाह ग़ज़नी और ग़ोर की ओर बढ़ रहा था। अतः दिल्ली में स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करना अनिवार्य था। मुइज़्ज़ुद्दीन के भारत स्थित अधिकारियों में तीन अग्रगण्य थे। ताजुद्दीन यातदुज़ करमान तथा सन्कूर का अधिकारी था, जो अफ़ग़ानिस्तान-सिन्ध के मार्ग पर स्थित थे। दूसरा अधिकारी नासिरुद्दीन कुबाचा, याल्दुज का दामाद था, और ऊच्च का प्रशासक था। तीसरा क़ुतुबुद्दीन ऐबक था जो सुल्तान के दासों में सबसे योग्य एवं स्वामिभक्त था। तराइन की विजय के पश्चात् मुइज़्ज़ुद्दीन ने उसे अपने भारतीय राज्य का भार सौंपा। मुइज़्ज़ुद्दीन के प्रतिनिधि के रूप में वह वाइसराय तथा सिपहसालार के कर्त्तव्यों की पूर्ति करता था। १२०६ ई० में वायसराय के पद पर उसकी नियुक्ति हुई, और उसे मलिक के पद से विभूषित किया गया।[४]

लाहौर के निवासियों द्वारा निमंत्रित हो ऐबक वहाँ जा पहुंचा, और राजसी सत्ता ग्रहण की। २४ जून, १२०६ ई० को वह सिंहासन पर बैठा,[५] और इस प्रकार भारत में गुलामवंश का शिलान्यास हुआ। आगामी शताब्दियों की कहानी भारत में मुस्लिम सत्ता के प्रसार की गाथा है।

---

१. परमर्दिदेव के उत्तराधिकारी त्रैलोक्यवर्मन के अभिलेख उसके द्वारा अपने राज्य से तुर्कों के निष्कासन का उल्लेख करते हैं; ऐ० इंडि०, १, पृ० ३२७; १६, पृ० २७३।

२. एपि० इंडि०, खं० ४, पृ० ३१०-१२।

३. हिस्ट्री ऑफ दि राठौर्स, (आशुतोष सिलवर जुबली वौल्यूम्स, ३), पृ० २६५।

४. फखरेमुद्दब्बिर; तारीखे फखरुद्दीन मुबारकशाह, पृ० २८; तबक़ाते अकबरी, १, पृ० ४७; ताजुल मआसिर, फो० ८३ के अनुसार तो वह ११९३ ई० में ही वायसराय नियुक्त हो गया था।

५. फखरे मुद्दब्बिर; तारीखे फखरुद्दीन मुबारकशाह, पृ० ३०, ३२; मिनहाज, पृ० १४०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

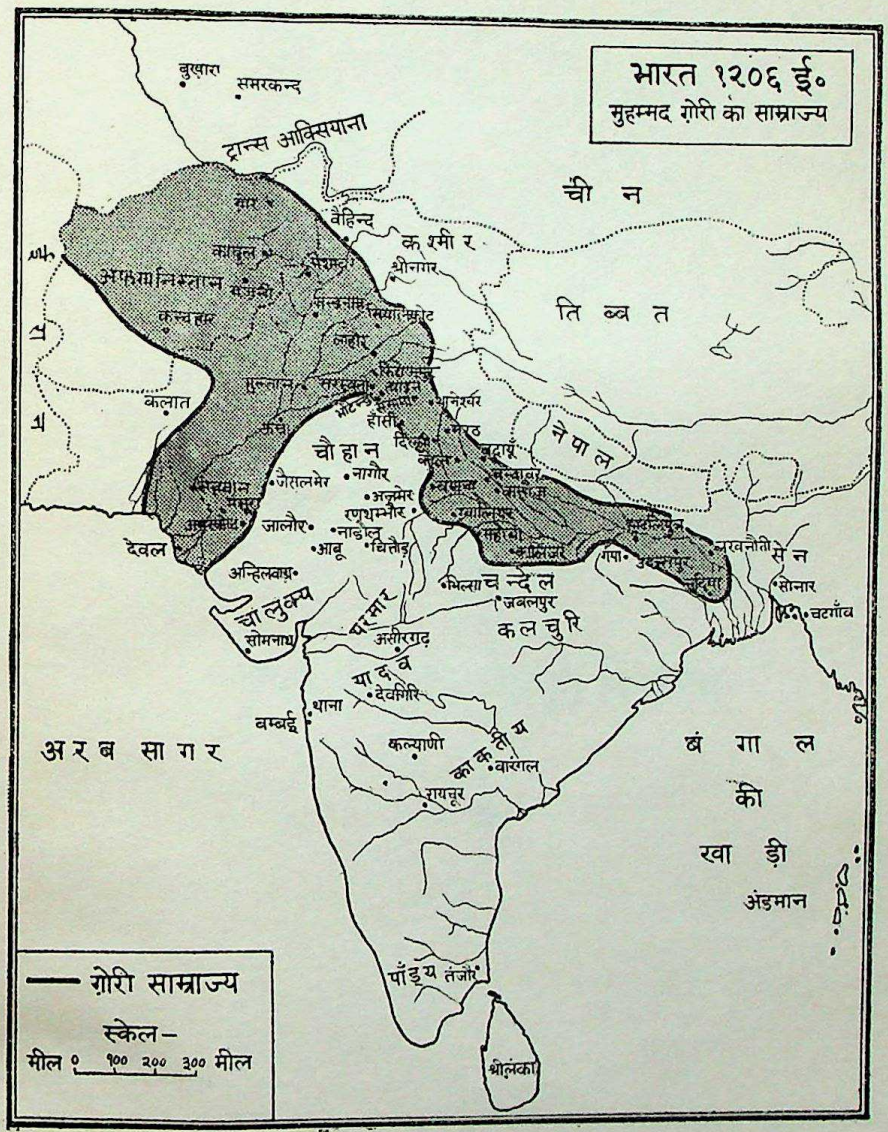

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

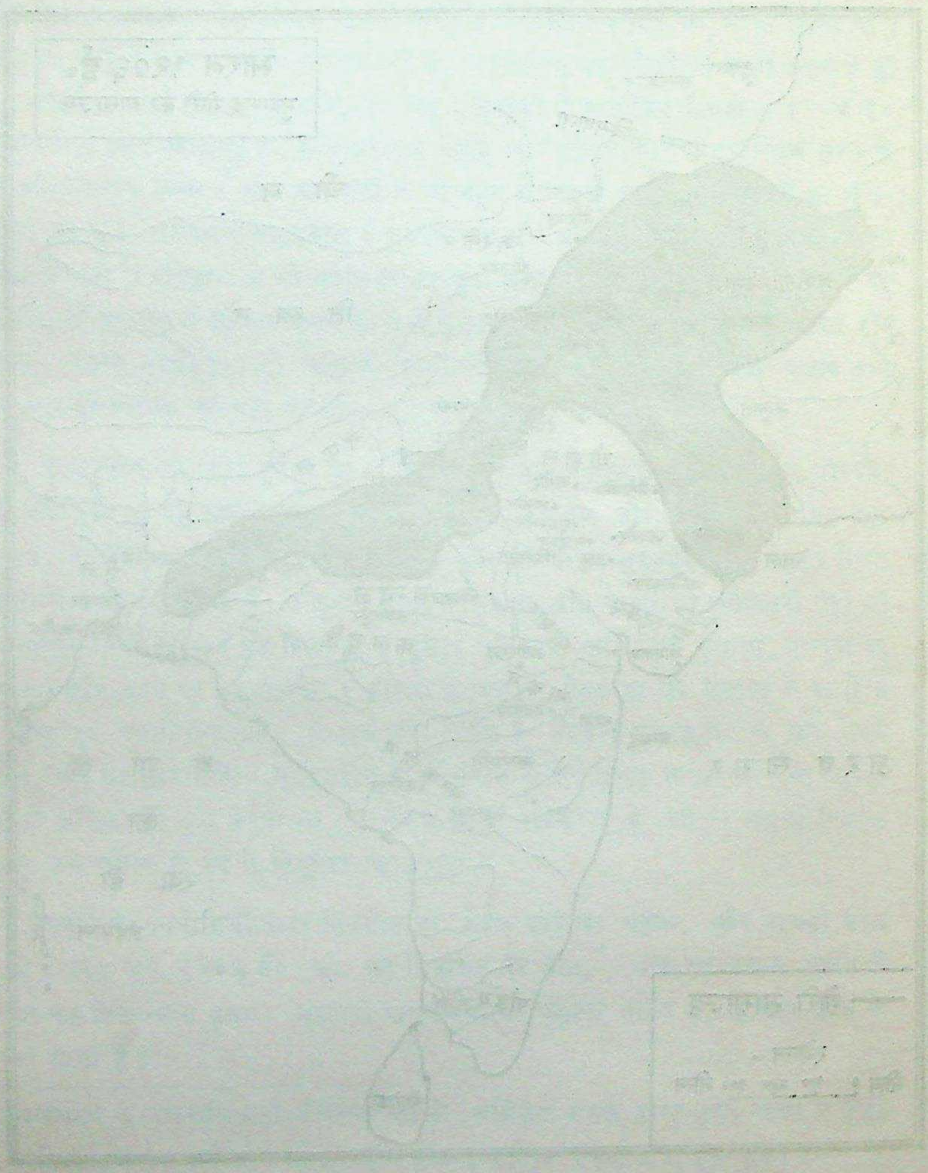

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ८

भारतीय पराभव–विस्तृत विश्लेषण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुइज़्ज़ुद्दीन का चरित्र तथा उसकी उपलब्धियाँ :

मुइज़्ज़ुद्दीन मुहम्मद बिन साम की तुलना प्रायः सुल्तान महमूद से की जाती है। सेना-नायक के रूप में महमूद ग़ज़नवी मुहम्मद ग़ोरी से कहीं अधिक योग्य तथा महान था। किन्तु यद्यपि मुहम्मद ग़ोरी को अन्हिलवाड़ा, तराइन तथा अन्दखूद के रणक्षेत्रों में मुँह की खानी पड़ी थी, फिर भी उसने एक महान् साम्राज्य का शिलान्यास किया। इसमें सन्देह नहीं कि भारत की राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक विडम्बना ने भारत विजय का कार्य अपेक्षाकृत सरल बना दिया; तथापि भारत में तुर्क सत्ता के संस्थापन के लिये मुख्यतः मुइज़्ज़ुद्दीन का साहस, उसका शौर्य, उसका सेनापतित्व, उसकी दूरदर्शिता तथा अजेय मनोबल उत्तरदायी सिद्ध हुए। पराजय भी उसे परास्त न कर सकी, तथा दृढ़ संकल्प एवं प्रयास ने अन्त में उसे पर्याप्त सफलता प्रदान की। ऑक्सस से यमुना तक उसने सफल सैनिक अभियानों का नेतृत्व एवं संचालन किया। उत्तरी भारत की विजय कठिनाइयों से परिपूर्ण थी। राजपूतों ने यथाशक्ति मुस्लिम प्रसार का विरोध किया, किन्तु मुइज़्ज़ुद्दीन ने धैर्य एवं चातुर्य से काम लिया। यद्यपि अधिकतर उसे भारत के बाहर ही रहना पड़ा, तथापि उसने वहाँ भी अपने आप को अपनी भारतीय सेनाओं की गति-विधियों से पूर्णतः अवगत रखा।

मुइज़्ज़ुद्दीन के शासन-प्रबन्ध के विषय में हमें कोई विशेष ज्ञान नहीं है। विजित प्रदेशों पर शासन संस्थापन कोई सरल कार्य न था। भाषा की कठिनाई थी। रावी नदी के आस-पास सुल्तान महमूद ने साम्राज्य विस्तार का कोई प्रयास नहीं किया था। अतः नव विजित प्रदेश में मुस्लिम शासन स्थापित करना और भी कठिन था। परन्तु महमूद के आक्रमणों के पश्चात् लगभग १५० वर्ष के काल में उत्तरी भारत में कई स्थानों पर मुसलमान बस्तियाँ बस गई थीं। इनमें मुइज़्ज़ुद्दीन को कुछ ऐसे लोग मिल गये जो दुभाषिये थे, तथा जिनकी सहायता से शासन प्रबन्ध स्थापित किया जा सकता था। किन्तु इनकी संख्या इतनी कम थी कि पंजाब से बंगाल तक विस्तृत भू-भाग पर केन्द्रीय, प्रान्तीय, तथा स्थानीय शासन स्थापित करने के लिए योग्य व्यक्तियों का घोर अभाव था। ग़ोर में भी ऐसे व्यक्तियों की कमी थी, जो यह भार संभाल लेते। अतः उसने अपने योग्य दासों का सहारा लिया, जिन्हें युद्ध तथा शासन के कार्यों में उसने पूर्ण दक्ष बना दिया था। वह जानता था कि भारत के विजित प्रदेशों पर सीधा शासन स्थापित करना असम्भव था। अतः यदि वह बड़े-बड़े शासकों को परास्त कर लेता और छोटे-छोटे नगरों तथा ग्रामीण क्षेत्रों को स्थानीय राजाओं तथा रावतों के आधीन छोड़ देता तो सामान्य जनता को प्रभुत्व परिवर्तन का आभास भी नहीं होता। केवल इसी प्रकार उसका राज्य स्थापित हो सकता था। ग़ोरी अधिकारी तो केवल बड़े-बड़े नगरों तथा व्यापारिक मार्गों पर ही स्वयं नियंत्रण कर सकते थे, क्योंकि इन स्थानों का व्यापक सामरिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महत्व था। मुइज़्ज़ुद्दीन यह भी जानता था कि भारत के बड़े शासकों की कोई भी पारस्परिक संधि उसके लिए दुरूह संकट प्रस्तुत कर देगी। अतः उसने अपने सैनिक अभियान का संपादन इस प्रकार किया कि भारतीय शासक आपस में मिल न पायें, तथा उसका सामूहिक प्रतिरोध न कर सकें। बहुत से प्रदेशों पर वह पूर्णतः विजय न कर पाया, किन्तु उसने विवेक की सीमा पार नहीं की, और ऐसे स्थानों पर पूर्ण विजय करने का घातक प्रयत्न नहीं किया। उसके व्यक्तित्व में दृढ़ता, संलग्नशीलता तथा राजनीतिक यथार्थवाद विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। भारत में ही उसे दो बार पराजय का मुँह देखना पड़ा, किन्तु किसी हार को वह अन्तिम अथवा अपरिवर्तनीय मानने को तैयार न था। कोई और सेनापति इन पराभवों से हतोत्साह हो जाता, किन्तु मुइज़्ज़ुद्दीन ने अपनी सेना का पुनर्गठन किया, तथा अपनी लक्ष्य पूर्ति के लिए पुनर्प्रयास किया। उसने समयानुसार अपनी हार के कारणों को समझकर अपनी नीतियों में आवश्यक परिवर्तन किया। जब वह राजस्थान होकर देश में प्रविष्ट न हो सका, तो वह योजना बदल कर पंजाब की ओर अग्रसर हुआ। गंगा से हारीरूद पर्यन्त विस्तृत प्रदेश में उसकी सामरिक योजनायें सुसंचालित एवं सुगठित थीं।

मुइज़्ज़ुद्दीन की मृत्यु के चौदह वर्ष के भीतर ही उसके देश में मंगोलों ने भीषण नरसंहार मचा दिया; स्वतंत्र मुस्लिम एशियाई शक्तियों का लोप हो गया; तथा दिल्ली ही एक ऐसा सत्ता-केन्द्र बना जो मंगोलों का सामना कर सकता था।

ग़ोरी अभियानों के कारण :

प्रायः यह मत प्रकट किया जाता है कि ग़ोरी अभियानों में धार्मिक लक्ष्य निहित थे। किन्तु यदि हम प्रस्तुत तथ्यों का विश्लेषण करें, तो यह मत मान्य नहीं प्रतीत होता। ग़ोरी सैनिक मुसलमान अवश्य थे, किन्तु वह इस्लाम के प्रतिनिधि नहीं थे। यदि कभी-कभी, कहीं-कहीं उन्होंने कतिपय कार्य धार्मिक भावना से प्रेरित होकर किये, तो इसका यह अर्थ नहीं कि वे मुख्यतः राजनीतिक लक्ष्यों द्वारा अग्रसरित नहीं थे। जिस प्रकार ग़ोरियों ने फ़ारस तथा मध्य एशिया में अपनी शक्ति के प्रसार का प्रयास किया, उसी प्रकार उन्होंने भारत में भी अपनी सत्ता संस्थापन का प्रयत्न किया। वे जिस प्रकार हिन्दुओं से लड़े, उसी प्रकार मुसलमानों से भी लड़े। सम्भवतः ख्वारिज़्मी सेना की भाँति ग़ोरी सेनाओं में भी अधिकतर भाड़े पर लड़ने वाले पेशेवर सिपाही भर्ती होते थे। ये लोग किसी राजा अथवा देश अथवा धर्म के लिए नहीं लड़ते थे। वे तो मुख्यतः अपने भाड़े के लिए युद्ध करते थे। यह बात मुइज़्ज़ुद्दीन तथा दिल्ली के प्रारम्भिक तुर्क शासकों की नीति से स्पष्ट हो जाती है। क़ुतुबुद्दीन ऐबक ने हिन्दू अश्वारोहियों का प्रयोग किया[1]। उसने हिन्दू अफ़सरों की भी नियुक्ति की। हसन निज़ामी के अनुसार ११९३ ई० में असनी विजय करने के पश्चात् ऐबक ने चारों ओर जनता तथा देश पर शासन करने के लिए राजाओं की नियुक्ति की[2]। वास्तव में इन मुसलमान विजेताओं ने यद्यपि मंदिरों आदि का विध्वंस किया, लूट मार तथा हत्याकांड मचाया, तथापि उन्होंने धर्मान्धता पर राजनीतिक दूरदर्शिता एवं चापल्य का अंकुश रखा। इब्ने असीर के

१. तारीखे फखरुद्दीन मुबारकशाह, पृ० ३३।
२. ताजुल-मआसिर, फो० १२५ बी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुसार अन्हिलवाड़ भी वहाँ के हिन्दू शासकों को सुपुर्द कर दिया गया [1]। अजमेर विजय के पश्चात् ही मुइज़्ज़ुद्दीन ने पृथ्वीराज के पुत्र को अपनी आधीनता में वहाँ का राज्य सौंप दिया। दिल्ली विजय के पश्चात् भी खांडेराय के पुत्र को वहाँ शासन करने की अनुमति दे दी गई। जब चौहानों ने पृथ्वीराज के पुत्र को तंग किया, तब भी ऐबक ने वहाँ सीधा शासन स्थापित करके पृथ्वीराज के पुत्र की रणथम्भौर सौंप दिया।

अतः मलिक जुवाइनी द्वारा प्रस्तुत शिहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी के अन्तिम भारत अभियान के वृत्तान्त से स्पष्ट हो जाता है कि सुल्तान भारत से इतनी लूटी हुई सम्पत्ति ले जाता था कि खुरासान आदि में उसके द्वारा व्यय किये हुए समस्त धन की पूर्ति हो जाती थी [2]।

तुर्क विजय के कारण :

भारतीय इतिहास के विद्यार्थी के लिए तुर्कों की असाधारण विजय मनन का प्रश्न है। थोड़े से ही समय में मुस्लिम आक्रमणकारियों के समक्ष सम्पूर्ण उत्तरी भारत धराशायी हो गया। बड़े-बड़े हिन्दू राज्य शक्ति तथा साधनों में इन आक्रमणकारियों से कहीं आगे थे। यदि ये आपस में मिल जाते, तब तो इनकी संचित शक्ति तुलनात्मक दृष्टि से मुसलमानों से कहीं अधिक होती। फिर भी वे न तो अपनी ही रक्षा कर पाये, और न देश की। ऐसा क्यों हुआ ? यह महत्वपूर्ण प्रश्न विस्तृत विचार का विषय है। तत्कालीन भारतीय साहित्य में इस प्रश्न पर कोई प्रत्यक्ष विवेचन प्राप्त नहीं होता। केवल मुस्लिम लेखकों द्वारा प्रस्तुत वृत्तान्तों पर भी पूर्णतः विश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि विजेता हर बात स्ववैभव प्रदर्शन हेतु ही कहता है। इन लेखकों द्वारा प्रस्तुत तुर्क विजय की रूप रेखा यदि सत्य है तो भी बहुत सी छोटी-छोटी बातों में उनकी सपक्षता परिलक्षित होती है। हसन निज़ामी, मिनहाजुस सिराज तथा फ़ख़े मुदब्बिर इन तीन तत्कालीन मुस्लिम लेखकों में से पहले दो तुर्क विजय के कारणों पर कोई प्रकाश नहीं डालते। उनके अनुसार तो सर्वशक्तिमान परमेश्वर ने ही इस्लाम को विजयी बनाया। फ़ख़े मुदब्बिर द्वारा प्रस्तुत तुर्क विजयों के वृत्तान्त भी विशेष सहायक नहीं हैं। किन्तु अपने अदबुल हर्ब में वह युद्ध में घोड़े के सर्वोच्च महत्व का विश्लेषण करता है। इसके अतिरिक्त वह सामन्तशाही के अन्तर्गत एकत्रित की गई सेनाओं की भर्त्सना करता है। इससे तुर्क सेना की शक्ति तथा भारतीय सैन्य दौर्बल्य का स्पष्टीकरण होता है। इस कथन के अतिरिक्त और किसी तत्कालीन लेखक की रचना में हमें तुर्क विजय के कारणों की कोई अन्य समीक्षा प्राप्त नहीं होती।

अंग्रेज इतिहासकारों ने इस प्रश्न पर विचार किया है। एलफिन्स्टन के अनुसार मुइज़्ज़ुद्दीन के सैनिक सिन्ध और ऑक्सस की मध्यवर्ती लड़ाकू जातियों से भर्ती किये गये थे तथा सेल्जुकों व तातारों से युद्ध करने के अभ्यस्त थे। अतः हमें यह आशा नहीं करनी

---

१. अलकमिलफ़ित् तवारीख, १२, ७९। किन्तु एक चौलुक्य अभिलेख में उस प्रदेश से तुर्कों के निकाल दिये जाने का उल्लेख है। देखिये, एपि० इंडि०, १, २२, ३३८-३९; २, ४३९।

२. तारीखे जहाँगुंशा, तेहरान संस्करण, खं० २, ३७, हिजरी १३११।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाहिये कि ऐसे अनुभवी योद्धाओं को भारत के शान्तिप्रिय तथा विनम्र निवासियों को जीतने में कोई कठिनाई हो सकती थी। तिस पर भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था, जिन्हें बिना किसी लाभ अथवा नव प्रदेश प्राप्त करने की आशा से युद्ध करना पड़ा[१]। लेनपूल के अनुसार आक्रमणकारियों में संगठन तथा एकता थी, और हिन्दुओं में फूट थी। आक्रमणकारी उत्तर के रहने वाले थे और हिन्दू दक्षिण के। आक्रमणकारी बहादुर जाति के और अच्छी जलवायु के निवासी थे, उनमें इस्लाम धर्म का जोश था, और धन एवं लूटमार का लालच था। यही हिन्दू तथा आक्रमणकारियों में भेद था[२]। स्मिथ के अनुसार भी "आक्रमणकारी अच्छे योद्धा थे, क्योंकि वे उत्तरी शीतप्रधान देश से आये थे, मांसाहारी थे, तथा युद्धकला में दक्ष थे[३]।" लेकिन इस प्रकार के मत मान्य नहीं, क्योंकि १२१८-२० ई० में मंगोलों ने मुस्लिम प्रदेशों को बिना युद्ध के जीत लिया। इसके अतिरिक्त एलफिन्स्टन आदि विद्वान यह बात भूल जाते हैं कि राजपूत भी तुर्कों की ही भाँति युद्धप्रिय थे, तथा उनमें शौर्य एवं साहस का अभाव न था। यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि तुर्क भारतीयों की तुलना में अधिक अच्छे सैनिक थे, क्योंकि वे शीत प्रदेशों के निवासी थे, तथा मांस खाते थे। इस मत में गम्भीरता का अभाव है, तथा राजनीतिक मन्तव्य निहित प्रतीत होते हैं। दासता तथा पतन के युग में भी भारतीय सैनिकों ने विश्व के विभिन्न रण-स्थलों में अपने अपार शौर्य का परिचय दिया है। प्रथम तथा द्वितीय विश्व-युद्धों में भारतीय सैनिकों ने यूरोप, एशिया तथा अफ्रीका में सर्वत्र यश तथा गौरव अर्जित किया। यह मत भी सर्वथा अवैज्ञानिक है कि शीत जलवायु के निवासी अथवा मांसाहारी अन्य लोगों की अपेक्षा अच्छे सैनिक एवं योग्य होते हैं। और फिर महमूद ग़ज़नवी अथवा मुहम्मद ग़ोरी के समय के भारतीय सैनिक पूर्णतया निरामिश भोजी नहीं थे, और न आज ही हैं। अतः हमें भारतीय पराभव के कारण अन्यत्र ही ढूंढने पड़ेंगे।

भारतीयों ने भी इस प्रश्न पर चिन्तन किया है। रमेशचन्द्र दत्त ने १८९० ई० में प्राचीन भारतीय सभ्यता पर एक पुस्तक लिखी[४], जिसमें उन्होंने अलबेरूनी के प्रसिद्ध कथन का उद्धरण करते हुए उसके साथ एक मत प्रकट किया। अलबेरूनी स्वकालीन हिन्दुओं पर बौद्धिक संकीर्णता का आरोप लगाता है, और कहता है कि उनकी यह दशा उनके थोथे घमंड तथा विदेश यात्रा से विमुख होने के कारण ही थी[५]। दत्त मुस्लिम विजय के तीन चार सौ वर्ष पूर्व तक की शोचनीय राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक दशा पर विचार करते हुए कहते हैं कि यह भारत के पतन का युग था। देश छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था, जो आपस में लड़ते रहते थे। जनता पतनोन्मुख थी, ब्राह्मण पुरोहित अधिकाधिक शक्तिशाली होते गये, जिन्होंने सामान्य जनों का निर्दय शोषण किया। केवल थोड़े से शिक्षित लोग उपनिषदों के

१. हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० ३६१।
२. स्टेनली लेनपूल, मैडिवल इंडिया, लन्दन, १९१४, पृ० ६२–६४।
३. दि आक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया।
४. आर. सी. दत्त ए हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेशन इन एन्शेण्ट इंडिया कलकत्ता, १८९० ई०।
५. सचाउ, अलबेरूनीज इंडिया, १८८८, १, पृ० २२–२३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धार्मिक सिद्धान्तों से तथा अद्वैतवाद से अवगत थे। साधारण जन मंदिरों एवं मूर्तियों की उपासना में रत थे, तथा ब्राह्मणों द्वारा पूरित निरर्थक रूढ़ियों के शिकार थे। ब्राह्मणों ने वैश्यों को गिरा कर शूद्रों की श्रेणी में पहुँचा दिया था, तथा यह भी कहा जाने लगा कि ब्राह्मणों को छोड़ कर सभी शूद्र हैं। अलबेरूनी हिन्दुओं द्वारा विधवाओं पर किये गये अत्याचारों का हृदय विदारक उल्लेख करता है[1]। अलबेरूनी के अनुसार हिन्दू ज्योतिर्विदों ने निरर्थक प्राचीन सिद्धान्तों का दामन नहीं छोड़ा था, तथा हिन्दू चिकित्साशास्त्र में धर्मान्धता का बड़ा प्रभाव था[2]। दत के अनुसार दशवीं तथा ग्यारहवीं सदी का भारत मध्ययुगीन योरप की भाँति था। अन्तर केवल इतना था कि योरप के सामन्तशाह अन्त में जनता में घुलमिल गये, तथा आधुनिक राष्ट्रों में नव जीवन का संचार किया, किन्तु भारतीय जाति प्रथा ने यह सम्मिश्रण असम्भव बना दिया और क्षत्रिय विदेशी आक्रमणकारियों के शिकार बन गये[3]।

सर यदुनाथ सरकार के अनुसार इस्लाम ने अपने अनुयायियों में तीन ऐसे गुणों का संचार किया जो कोई अन्य धर्म इतनी सफलता पूर्वक नहीं कर पाया। इन गुणों ने अरब, अर्बर, पठान तथा तुर्क जैसे प्राकृतिक योद्धाओं में सैनिक कुशलता का संवर्द्धन किया। सबसे पहला गुण तो यह था कि ये लोग एक दूसरे को बिल्कुल समान और बराबर समझते थे। सामाजिक समानता के कारण धर्म तथा न्याय सम्बन्धी विषयों में भी सब को समान व्यवहार प्राप्त था। इससे एकता की पुष्टि हुई। जाति तथा नस्ल (रेस) के समस्त भेद समाप्त हो गये, और इस्लाम के सभी अवलम्बी एक विस्तृत भ्रातृवंश की भावना से सम्बद्ध हो गये। दूसरा गुण ईश्वर में अटूट विश्वास था, जिसने भाग्यवादिता को बल दिया। अल्लाह की मर्जी प्रत्येक मानवी परिश्रम पर विजय पाती थी। यह सोच कर मुसलमान युद्ध में मृत्यु के आलिंगन से भी पीछे न हटे। तीसरा गुण मदिरापान तथा अन्य नशीली वस्तुओं का बहिष्कार था। कुरान के अनुसार मदिरा पान एक अपराध है, तथा मुसलमान राज्यों में सरकार द्वारा दंडनीय है। इसके विपरीत मदिरापान ने राजपूतों, मराठों तथा अन्य हिन्दू सैनिकों का मानसिक तथा शारीरिक ह्रास किया, तथा उन्हें दूरदर्शी सामरिक योजना बनाने, अकस्मात आक्रमण करने, तथा अपने स्कन्धावारों की रक्षा करने के लिए अयोग्य बना दिया[4]। के० एम० पनिक्कर ने भी इस प्रश्न पर विचार किया है[5]। उनके अनुसार महमूद ग़ज़नवी के आक्रमणों से पूर्व ५०० वर्षों से भी अधिक समय तक भारत पर बाह्य आक्रमण नहीं हुए[6], जिस कारण भारतीयों में देश प्रेम तथा राष्ट्रीय सम्मान की भावना शिथिल हो गई। भारत

---

१. सचाउ, भाग २, पृ० १५५।
२. वही, भाग १, पृ० २६५, २७३, ३३१।
३. देखिये, आर० सी० दत्त, हिस्ट्री आफ सिविलाइजेशन इन ऐन्शेन्ट इंडिया, भाग ३, बुक ५, पृ० ४७६–७७, ४७९–८२, ४८७–८८, ४९४–९५।
४. देखिये, यदुनाथ सरकार, मिलिटरी हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० २६।
५. ए सर्वे आफ इंडियन हिस्ट्री, १९४७, अध्याय १२।
६. यह कथन असत्य है। जैसा पिछले अध्याय—१ से स्पष्ट है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का यह दीर्घकालिक पृथकत्व विश्व-इतिहास में अद्वितीय है, तथा इसके कारण भारतीयों में थोथा गर्व उत्पन्न हो गया, और वे अन्य राष्ट्रों से अपने को अधिक महान समझने लगे। इस प्रकार पनिक्कर अलबेरूनी के कथन की पुष्टि करते हैं तथा भारतीय अनुशासनहीनता, सामूहिक-प्रयास-हीनता और वैयक्तिक स्वार्थपरता के समक्ष जन कल्याण की भावना की क्षीणता की ओर इंगित करते हैं। जाति, खाद्य तथा पेय सम्बन्धी नियमों ने समाज में विभाजन तथा आत्म-घातक कट्टरता को बल दिया। काव्य में भी कृत्रिमता आ गई तथा विलासिता के कामोन्मादक वर्णन प्रस्तुत किये जाने लगे। स्थापत्य तथा शिल्प कला में भी नैतिक पतन दृष्टिगोचर होने लगा। वाम मार्ग के धार्मिक क्रिया कलापों ने समाज के सभी वर्गों को जकड़ लिया। मठ तथा विद्या मंदिर विलासिता, आलस्य तथा अनैतिक कार्यों के केन्द्र बन गये। नैतिक बन्धनों के शैथिल्य की ओर इंगित करते हुए पनिक्कर देवदासी प्रथा का उल्लेख करते हैं, तथा वेश्याओं के जीवन पर बड़े विद्वानों द्वारा लिखे गये ग्रन्थों की ओर ध्यानाकर्षण करते हैं। तत्कालीन अश्लील तांत्रिक साहित्य तथा मंदिरों के शिल्प की ओर भी संकेत करते हैं। उच्च परिवारों में विधवाओं के साथ किये गये अत्याचारों का उल्लेख करते हैं। इसके अतिरिक्त साधारण ग्रामीण जनता व्यापारी वर्गों के विपरीत अत्यन्त निर्धन थी। भारतीय राज्य अर्ध-सैनिक व्यवस्था तथा सामन्तशाही पर आधारित थे। अतः बड़ी होते हुए भी उनकी सेनाएँ अकुशल एवं अयोग्य थीं। राज्य भ्रष्ट नौकरशाही पर आधारित था, तथा देश प्रेम एवं शत्रु का सामूहिक सामना करने की भावना का सर्वथा अभाव था[1]।

डॉ० आर० सी० मजूमदार के अनुसार हिन्दुओं की संकीर्णता तथा अधःपतन के दो मुख्य कारण थे—पहला कारण तो जाति प्रथा की कठोरता थी, तथा दूसरा कारण भारतीय स्त्रियों की अधोगति थी। ब्राह्मणों ने क्षत्रियों के प्रतिरोध की अवहेलना कर ऐसी कठोर जाति प्रथा का पोषण किया जिसमें उनकी जाति सर्वोच्च थी, जन्म से जाति निर्धारण होता था, तथा अन्तर्जातीय विवाह एवं भोज वर्जित थे। प्राचीन ग्रन्थों में ऐसी जाति योजना का न कोई प्रमाण है न विधान है, और न अनुमति ही है। ब्राह्मणों ने अपनी सत्ता एवं शक्ति का संवर्धन करने के लिए शूद्र के भोजन तथा स्पर्श को अपवित्र घोषित किया। यही नहीं, उन्होंने क्षत्रियों तथा वैश्यों को मान्यता देने पर भी उत्तरोत्तर प्रतिबन्ध लगाये, जिसके परिणाम स्वरूप वैश्य भारतीय समाज से विलुप्त हो गये, तथा उनके वंशजों की गणना शूद्रों की श्रेणी में होने लगी। आत्मपूर्ति तथा सामाजिक शोषण के इस कार्य में ब्राह्मणों को राजपूतों की सहायता मिली, जो विदेशी हूणों, गुर्जर, तथा अन्य आदिवासी जातियों के वंशज थे, तथा जिन्हें ब्राह्मणों ने क्षत्रिय पद पर आसीन करके प्रतिष्ठा प्रदान की। जाति प्रथा की बुराइयों में दस्तकारों तथा कारीगरों के सामाजिक स्तर की अधोगति अग्रगण्य है। इसके अतिरिक्त जाति का हित देश से ऊपर रखा जाने लगा, जिससे राष्ट्रीयता की भावना विकसित न हो सकी। इसी जाति प्रथा ने उच्च वर्गों में दम्भ तथा एकांतिकता का संचार किया, जिसके फलस्वरूप हिन्दू मस्तिष्क के कपाट बन्द हो गये, सामान्य विज्ञान तथा सैन्य विज्ञान की प्रगति बन्द हो गई, और भारतीय अन्य एशियाई जातियों से पिछड़ गये[2]। इसके अति-

१. पनिक्कर, पृ० १२९–३८।

२. देखिये, आर० सी० मजूमदार, ऐन्शेन्ट इंडिया, वाराणसी, १९५२, अध्याय २१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रिक्त गुप्तयुग के पश्चात् राजकार्य तथा प्रशासन परिपाटी में जनता की आवाज क्षीण हो गई, और निरंकुश नौकरतंत्र तथा एकाधिपत्य का बोलबाला हो गया [1]।

डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने भी इस समस्या पर मनन किया है। उनके अनुसार यद्यपि सिन्ध पर अरब आक्रमण के समय जनता की अवस्था अच्छी थी, तथापि भारतीय दौर्बल्य का मुख्य कारण राजनीतिक एकता तथा देश प्रेम की भावना का अभाव था। महमूद ग़ज़नवी के आक्रमणों के समय प्रतिहारों और पालों की सर्वोच्च शक्तियाँ पतनोन्मुखी थीं, तथा दक्षिण में चौलुक्य और चोल आपस में जूझ रहे थे। इसके अतिरिक्त सिन्ध विजय के पश्चात् तीन शताब्दियों तक विदेशी आक्रमणों के अभाव ने भारतीय शासकों को अपनी सेनाओं तथा सीमा सुरक्षा के प्रति उदासीन बना दिया था। इस कारण भारतीय लोग नई रणनीतियों से अनभिज्ञ रह गये, और देश प्रेम तथा राष्ट्रीय उमंग खो बैठे, और यह विश्वास कर बैठे कि वे तो ईश्वर द्वारा चुनी हुई सर्वोच्च जाति के थे, जिन्हें अन्य जनों से सम्पर्क रखने की कोई आवश्यकता नहीं थी। भारतीय सभ्यता का अधःपतन भारतीय पृथकत्व एवं एकांतिकता के अतिरिक्त तत्कालीन साहित्य और कला की अधोगति से स्पष्ट हो जाता है। जाति प्रथा तथा तत्सम्बन्धी नियमों की कठोरता, वाम मार्ग का बोलबाला तथा विद्या-केन्द्रों पर उसका प्रभाव, धार्मिक अपचय उच्च तथा मध्यम वर्गों का देवदासी प्रथा के प्रसार में परिलक्षित नैतिक ह्रास, तांत्रिक साहित्य का विकास तथा सर्वोच्च लेखकों द्वारा रचित वेश्याओं के जीवन चरित्र तत्कालीन भारतीय जन-जीवन के पतन तथा सुरक्षा की क्षीणता के प्रमाण हैं। कश्मीर के राजा के मन्त्री ने 'कुट्टनीमतम्' नामक पुस्तक लिखा। संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् क्षेमेन्द्र ने 'समय मातृका' (वेश्या की आत्म-कथा) नामक ग्रंथ की रचना की। इस पुस्तक में नायिका अपने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के अनुभवों का वर्णन करती है। उसे एक दरबारी स्त्री, एक सामन्त की रखैल, सड़कों पर घूमनेवाली, कुट्टनी, कपटनी, तथा भिक्षुणी के जीवन का व्यक्तिगत अनुभव है, तथा उसने न जाने कितने युवकों को भ्रष्ट किया है, और न जाने कितने धार्मिक स्थानों की यात्रा करके वहाँ विलासिता का संचार किया है। इस प्रकार के सुलभ प्रलोभनों से समाज के उच्च तथा मध्यम वर्ग अनैतिकता के गर्त की ओर उन्मुख हो गये। यद्यपि देश इस समय सामान्य एवं आर्थिक रूप से समृद्ध था, तथापि एक ओर राजवंशों में, सामन्तों में, बड़े बड़े व्यापारियों में, तथा दूसरी ओर ग्रामीण जनता में आर्थिक दृष्टिकोण से शोचनीय असमानता थी [3]।

अपनी दिल्ली सल्तनत के आठवें अध्याय में डॉक्टर आशीर्वादीलाल मुसलमानों के विजय के कुछ सामान्य तथा कुछ विशेष कारण बतलाते हैं। सामान्य कारणों में भारत में राजनीतिक एकता तथा समर्थ नेतृत्व का अभाव था। भारतीय सैनिक संगठन पुराने तथा

---

१. आर० सी० मजूमदार, ऐन्शेण्ट इण्डिया, वाराणसी १९५२, अध्याय १४।

२. दिल्ली सल्तनत, चतुर्थ संस्करण, १९६२, अध्याय १, पृ० १–१०।

३. दिल्ली सल्तनत, अध्याय ५, पृ० ४९–५५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पिछड़े सिद्धांतों पर आधारित था। अस्त्र-शस्त्रों तथा समर नीति में विदेशी भारतीयों से बढ़े हुए थे। इसके अतिरिक्त भारतीय जनता ने अपने नेताओं और सैनिकों का साथ नहीं दिया। इसका यह अर्थ नहीं कि वह उनसे विमुख थी, किन्तु लोगों ने आततायियों से युद्ध करना सामान्य कर्त्तव्य नहीं समझा। सम्भवतः वह समझते थे कि दिल्ली के शासकों के बदलने से उनके भाग्य में कोई परिवर्त्तन नहीं होगा। यदि जनता सेना के पीछे दूसरी रक्षा पंक्ति का कार्य करती, तो भारतीय शासक एक ही युद्ध में सर्वस्व न गंवाकर बार-बार आक्रामकों का प्रतिरोध करते रहते। महमूद ग़ज़नवी और मुहम्मद ग़ोरी ने 'सहसा आक्रमण' की नीति से काम लिया, जिससे भारतीय जनता का उत्साह और मनोबल टूट गया। विद्युत गति से वे भारतीय सैनिकों तनथा गरों पर झपट पड़े तथा अगणित बार इस नीति के प्रयोग से भारतीय इतने आतंकित हो गये कि वे महमूद ग़ज़नवी को तो अजेय समझने लगे। मनोबल ध्वस्त होने के परिणाम स्वरूप निराशा-रत भारतीय तुर्कों का प्रतिरोध निरर्थक समझने लगे। तिस पर तुर्क महान धार्मिक तथा सैनिक उत्साह से अनुप्राणित थे। इसके विपरीत भारतीयों में बल अथवा उत्तेजना उत्पन्न करने के लिए उपयुक्त आदर्श अथवा लक्ष्य का अभाव था। किसी भी सेना की सफलता के लिए केवल शारीरिक शक्ति तथा अस्त्र-शस्त्र पर्याप्त नही होते; उत्साहवर्द्धक आदर्श तथा लक्ष्य उसके प्रयास के प्राण होते हैं। इसके अतिरिक्त तुर्क आक्रमणकारी शत्रु की शक्ति का पूरा पता लगा लेते थे, और उसकी दुर्बलताओं का पूर्ण लाभ उठाते थे। इसके विपरीत भारतीय शासकों ने शत्रु के सैन्य संगठन की दुर्बलताओं को जानने का कभी कोई प्रयास नहीं किया। सुल्तान युद्ध से पहले सदैव रणक्षेत्र की जांच-पड़ताल कर लेते थे, तथा भौगोलिक स्थिति का पूरा ध्यान रखते थे। भारतीय शासक सदैव सेना को दक्षिण, वाम तथा मध्य पार्श्वों में विभक्त करके शत्रु पर सामने से प्रहार करते थे। किन्तु तुर्कों की सेना में इन तीन भागों के अतिरिक्त अग्रगामी तथा सुरक्षित (रिजर्व) दो अन्य वाहिनियाँ भी होती थीं। सुरक्षित सेना पीछे तैयार रहती थी, और जब भारतीय सेना थक कर बुरी तरह शिथिल हो जाती थी, तब सुल्तान उसे युद्ध में झोंक देता था। तुर्क लोग उन तालाब और नदियों को दूषित कर देते थे, जिनसे भारतीय सैनिकों को पानी मिलता था। कभी-कभी वे स्रोतों का रुख ही बदल देते थे। भारतीय सेनाओं तथा दुर्गों के रसद के मार्ग को काट कर आस-पास के प्रदेश को ध्वस्त कर देते थे। किन्तु किसी भी मुस्लिम लेखक ने इस बात का कहीं उल्लेख नहीं किया कि किसी भारतीय शासक ने कभी भी इस प्रकार की युद्ध नीति अपनाई। इसके अतिरिक्त भारतीय शासकों ने अन्य अनेक मूर्खतापूर्ण त्रुटियाँ कीं। दाहिर ने अपनी भूलों का परिणाम पाया, जयपाल ने नई रीति से शत्रु का सामना करने के बजाय अपने को चिता में भस्म कर दिया। बाणों के प्रयोग से हाथी घबड़ा कर युद्ध से भाग खड़े होते थे, जिसके कारण उनसे लाभ की अपेक्षा हानि हुई। भारतीय सैनिकों का मुख्य हथियार तलवार थी, किन्तु तुर्क लोग तीर कमानों का अधिक प्रयोग करते थे। भारतीय मन्दगति वाले टट्टुओं तथा पर्वताकार हाथियों से तुर्कों की तीव्र गामिनी अश्वारोही सेना कहीं अधिक उत्तम थी।[1] अन्त में डॉक्टर आशीर्वादीलाल के अनुसार तुर्कों द्वारा भारत के पराभव के तीन प्रमुख कारण थे। पहला, विदेशी आक्रामकों के विरुद्ध देश के राजनीतिक विभाजन के कारण सामूहिक प्रयास का अभाव; दूसरा जनता की

१. दिल्ली सल्तनत, पृ० ९४-९७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजनीतिक उदासीनता तथा देश प्रेम का अभाव; तीसरा सुल्तानों द्वारा 'सहसा आक्रमण' (शॉक टैक्टिक्स) की नीति का प्रयोग।[1]

यद्यपि उपर्युक्त विद्वानों के यह विचार माननीय हैं, तथापि इनमें कतिपय त्रुटियां अथवा कमियां भी हैं। भारतीय पराभव के बहुत से कारण थे, जो अत्यन्त पेचीदे तथा जटिल थे, तथा जो लम्बी अवधि से भारत को उत्तरोत्तर दुर्बल बना रहे थे। विद्वानों ने अपने वैयक्तिक मतों की पुष्टि के लिए कहीं किसी कारण पर विशेष बल दिया है, कहीं किसी पर। उदाहरणतः एक मत के अनुसार अहिंसा और कर्म के सिद्धान्त मुस्लिम आक्रामकों के समक्ष हिन्दू पराजय के लिए उत्तरदायी थे। दूसरे मत के अनुसार जाति प्रथा का कुप्रभाव हिन्दुओं की असफलता का कारण बना। इसमें सन्देह नहीं कि अहिंसा के सिद्धान्त ने कुछ भारतीयों के हृदय में हिंसा के विरुद्ध घृणा उत्पन्न कर दी, तथा कर्म के सिद्धान्त ने निराशावादिता, भाग्यवादिता तथा कर्महीनता को बल दिया। किन्तु यह समझना कि इन्हीं सिद्धान्तों के कारण हिन्दुओं का अधःपतन हुआ, उतना ही त्रुटिपूर्ण होगा जितना यह समझना कि रोमन साम्राज्य का अन्त ईसाई धर्म के कारण हुआ। दोनों ही सन्दर्भों में अन्य गहन कारण उनके पतनोन्मुख होने के लिए उत्तरदायी थे, जो उनकी प्राण-शक्ति को क्षीण बना रहे थे। यदि रोमन साम्राज्य में ईसाई धर्म का प्रचार न होता, तो भी उसका पतन अवश्यम्भावी था। इसी प्रकार यदि हिन्दू अहिंसा और कर्म के सिद्धान्त न भी जानते, तो भी अन्य कारणों के वश वे तुर्कों से अवश्य परास्त होते।

इस कारण इस समस्या का विस्तृत विश्लेषण करने के लिए इसे विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन करना पड़ेगा। सर्व प्रथम राजनीतिक कारण विचारणीय हैं।

राजनीतिक कारण :

प्रायः यह कहा जाता है कि मुस्लिम विजय के समय भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था जो आपस में सदा युद्धग्रस्त रहते थे। अतः यह भारत के राजनीतिक अधःपतन की अन्तिम श्रेणी थी। किन्तु इस मत में उतनी ही अतिशयोक्ति है जितनी अंग्रेज इतिहासकारों के इस कथन में है कि उनके आगमन से पूर्व भारत में अराजकता थी।[2] यह सत्य है कि इस समय मौर्य साम्राज्य के समान कोई विशाल साम्राज्य भारत में नहीं था। किन्तु कुछ ऐसे राज्य थे, जिनका भारत के विस्तृत भू-भागों पर अधिकार था, तथा जो सदियों से विद्यमान थे। अतः यह कहना पूर्णतः सत्य नहीं कि भारत बहुत से छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। इसके अतिरिक्त प्राचीन चक्रवर्ती परम्परा एवं आदर्श अब भी प्रमुख भारतीय शासकों को साम्राज्य विस्तार के लिए अनुप्राणित करते थे। अतः भारत के ये थोड़े से शक्तिशाली राज्य इस काल में निरन्तर अपने प्रभुत्व विस्तार के लिए एक दूसरे से लड़ते रहते थे, जिससे देश के सैनिक एवं आर्थिक साधनों का ऐसे समय क्षय हुआ जब विदेशी आक्रामकों के कारण देश संकटापन्न था। इन पारस्परिक युद्धों ने पारस्परिक अविश्वास की भावना को बल दिया, तथा यही कारण था कि भारतीय शासकों ने मिलकर शत्रु का सामू-

१. दिल्ली सल्तनत, पृ० ३७४–७५।
२. देखिये, वी० ए० स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, चतुर्थ संस्करण, पृ० ३७१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिक सामना नहीं किया। किन्तु एलफ़िन्स्टन के अनुसार भारत के विभाजन ने तथा विभिन्न भारतीय शासकों ने मुसलमानों की विजय तथा प्रगति में निरंतर बाधा उत्पन्न करके उनके प्रसार का वेग धीमा कर दिया।[1] यह बात निर्विवाद है कि भारत में इस समय समर्थ तथा सफल नेता एवं सेना नायक का अभाव था। भारतीय शासकों के लिये अतीत के अनुभव निःसार थे। आठवीं शताब्दी की सिन्ध विजय ने भावी संकट की झलक प्रस्तुत कर दी थी। दसवीं शताब्दी के अन्त तथा ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में महमूद के आक्रमणों ने यह संकट अत्यन्त विषम बना दिया। अगले डेढ़ सौ वर्षों में छोटे-छोटे हमलों के अतिरिक्त कोई बड़ा मुस्लिम आक्रमण नहीं हुआ। किन्तु जब मुइज़्ज़ुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी ने भारत के विरुद्ध शस्त्र उठाये, तो उसने भी शत्रु उतना ही प्रतिज्ञा दुर्बल पाया, जितना उससे कहीं अधिक योग्य तथा शक्तिशाली महमूद ने पाया था। जैसा ऊपर कह चुके हैं, यह आश्चर्य का विषय है कि तराइन के प्रथम युद्ध में विजय प्राप्ति के पश्चात् पृथ्वीराज ने न तो यही पता लगाने का प्रयास किया कि मुइज़्ज़ुद्दीन क्या तैयारियां कर रहा था, और न उसने किसी दूसरे आक्रमण को रोकने के लिए स्वयं कोई उचित प्रबन्ध ही किया। मुहम्मद बिन बख़्तियार ख़लजी ने बिहार तथा बंगाल रौंद डाला, किन्तु इस बात का कोई प्रमाण नहीं कि सेन शासक ने ऐसी विपत्ति से बचने के लिए कोई पूर्व प्रयत्न किया था। निरन्तर जागरूकता ही स्वतंत्रता का मूल्य है। प्रमादी तथा सुशुप्त शासक किसी भी देश की आज़ादी की रक्षा नहीं कर सकते। व्यक्तिगत साहस एवं शौर्य के प्रमाण उपलब्ध हैं, किन्तु राजनीतिज्ञता, दूरदर्शिता, बाह्य विश्व के ज्ञान तथा समय की गति के साथ आगे बढ़ने की इच्छा का दुःखद अभाव था। समय ने चन्द्रगुप्त मौर्य की भांति किसी ऐसे भारत पुत्र को जन्म नहीं दिया जो इस परिस्थिति पर वश पा सकता। फिर भी भारतीय शासकों में इतनी शक्ति थी कि वे वैयक्तिक रूप से भी मुसलमानों को परास्त कर सकते थे। ११७८ ई० में गुजरात में तथा ११९१ ई० में तराइन में मुहम्मद ग़ोरी की पराजय इसका प्रमाण है। किन्तु प्रमाद तथा पारस्परिक कलह ने भारतीय शासकों को ग़ाफिल व कर्तव्यविमुख बना दिया।

प्रतिहार मुसलमानों के शत्रु थे, किन्तु राष्ट्रकूट उनके मित्र थे। जयपाल वीर देशभक्त था, किन्तु अनंगपाल स्वार्थरत था। एक ओर देश पर ग़ोरी का आक्रमण हो रहा था, तथा दूसरी ओर पृथ्वीराज कान्यकुब्ज के शासक की पुत्री संयोगिता का अपहरण कर रहा था।[2] तराइन के युद्ध में पृथ्वीराज की पराजय का समाचार पाकर जयचन्द्र ने अपनी राजधानी में खुशियां भी मनाई हों, तो इसमें विस्मय की कोई बात नहीं।[3]

यह कथन कि बाह्य आक्रमण से भारत सदियों मुक्त रहा, तथा इस कारण भारतीय

---

१. एलफ़िन्स्टन, हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० ३१३।

२. मुहम्मद ग़ोरी को इस घटना का समाचार मिल गया था। देखिये, रेवर्टी, तबक़ाते नासिरी, भाग १, पृ० ४६६, टिप्पणी १।

३. इह पृथ्वीराजे दिवंगतौ श्री जैत्रचन्द्रेणवर्धापन कार्याण्यारब्धानि।
गृहेगृहे घृतेनोदुम्बराक्षलनमारब्धम् तूर्यखः प्रववृते।
पुरातन प्रबन्ध संग्रह में जयचन्द्र प्रबन्ध, सम्पादित जिन विजयमुनि, सिंघी जैन ग्रंथमाला, पृ० ८९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देशप्रेम की भावना खो राजनीतिक गतिविधियों के प्रति उदासीन हो गये, ऐतिहासिक दृष्टि-कोण से सर्वथा मिथ्या है। न तो भारतवासी इन आक्रमणों से सदियों मुक्त ही रहे, और न इनके प्रति सर्वथा उदासीन ही रहे। छोटे-छोटे राजाओं द्वारा आक्रामकों का कठोर विरोध तथा विभिन्न स्थानों में जनता द्वारा उनका प्रतिरोध इस बात के परिचायक हैं कि जनता प्रस्तुत संकट को समझती थी। सुल्तानों की दुर्बलता का लाभ उठा कर बार-बार भारतीयों ने अपने खोये राज्यों को पाने का प्रयास किया। यद्यपि वे पूर्णतः सफल न हुए, फिर भी उन्होंने राजनीतिक अशान्ति तथा अस्थिरता बनाए रखी, जिसके कारण विदेशी शासकों को बार-बार पूर्व-विजित प्रदेशों की पुनर्विजय का प्रयास करना पड़ा। इस सन्दर्भ में, हरिराज, पृथु, हम्मीर देव, खोकर, मेवाती जाटों तथा राजपूतों द्वारा मुसलमानों के विरुद्ध लिए गये मोर्चे स्मरणीय हैं। यह बात भी नहीं भूलनी चाहिये कि सम्पूर्ण राष्ट्र द्वारा शस्त्र ग्रहण करना आधुनिक सिद्धान्त है, जिसकी उत्पत्ति केवल फ्रांस की महाक्रान्ति तथा नेपोलियन के युद्धों के बाद हुई।

अभिलेखों से भारत की प्राचीन शासन पद्धति पर प्रकाश पड़ता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में, मनुस्मृति में, कालिदास की 'शकुन्तला' में, क्षेमेन्द्र[1] के व्यंगात्मक काव्य में, तथा कल्हण[2] की राजतरंगिणी में राज्याधिकारियों के भ्रष्टाचार तथा अत्याचार का उल्लेख प्राप्त होता है। परन्तु यह बात स्पष्ट नहीं हो पाती कि मुस्लिम विजय से कुछ पूर्व यह दोष और अधिक बढ़ गये थे।[3] इसके विपरीत मुस्लिम इतिहासकार कन्नौज के प्रतिहारों के शासन प्रबन्ध की प्रशंसा करते हैं। भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था की सबसे बड़ी दुर्बलता सामन्तवाद-जनित थी। गुप्तकाल से ही सामन्तवादी प्रवृत्तियां बलशाली हो चली थीं। हर्ष के पश्चात् सैनिक एवं प्रशासनिक उच्चाधिकारियों को उनकी सेवाओं के वेतनस्वरूप उन्हें भूमि दी जाने लगी। भूमि के साथ-साथ उन्हें पदवियां तथा विशेषाधिकार भी दिये गये। यह सामन्त आवश्यकता के समय अपने अधिपति की सेवा करते थे, सैनिक सहायता प्रदान करते थे, तथा कर आदि भी देते थे। इस सब के बदले में अपने क्षेत्र में वे शासन सम्बन्धी विषयों में पूर्ण स्वतंत्रता का उपभोग करते थे। इन सामन्तों ने स्वयं को राजा की उपाधि से अलंकृत किया तथा अपने सम्बन्धियों को सहायक राजा बनाया।[4] प्रायः युद्ध में वीरता तथा स्वामिभक्ति के बदले में राजा भूमिदान देकर अपने सेनापतियों को ज़मींदार बना देता था।[5] ब्राह्मणों और वैश्यों को भी भूमिदान देकर सामन्तवाद की सीमा और भी

१. क्षेमेन्द्र, कला विलास, ६, २, ५, ७।

२. राजतरंगिणी, ८, ८६, ८९।

३. देखिये, यू० एन० घोषाल, स्टडीज इन इंडियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, कलकत्ता, १९६५, पृ० ३५८।

४. देखिये, उदयमान का दूधपानी शिलालेख, एपि० इंडि०, भाग २, पृ० ३४३।

५. चित्रदल्लूर प्लेट्स, एपि० इंडि०, भाग ३, पृ० २३७; अम्म तृतीय का मंगल्ल दानपत्र, एपि० इंडि०, भाग ३१, पृ० ३०८; अपराजित का उदयपुर अभिलेख; एपि० इंडि०, भाग ४, पृ० ३०; सिंगर वत्सराज का कमौली दानपत्र, एपि० इंडि०, भाग ४, पृ०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विस्तृत बना दी गयी। बड़े-बड़े सामन्त भी अपने आश्रितों को भूमि प्रदान करते थे, तथा उनके आधीन सामन्त ठक्कुर कहलाते थे। प्रायः ये सामन्त एक दूसरे के प्रति वैमनस्य एवं स्पर्धा से प्रेरित हो पारस्परिक कलह से राज्य की शक्ति को क्षति पहुंचाते थे, तथा प्रायः शक्तिशाली साम्राज्य स्वतंत्र होने की योजनायें बनाया करते थे। यदि किसी बाह्य आक्रमण के कारण अथवा आन्तरिक कारणवश केन्द्रीय सत्ता क्षीण हो जाती थी, तो सामन्त ऐसी परिस्थिति का लाभ उठाकर अपनी पूर्ण स्वतंत्रता स्थापित करने का प्रयास तो करते ही थे[1], उसके साथ ही साथ पास पड़ोस के अन्य छोटे सामन्तों को अपनी आधीनता स्वीकार करने के लिये भी बाध्य करते थे। इस काल के अधिकतर हिन्दू राज्य इन्हीं अस्थिर एवं अविश्वसनीय सामन्तवादी तथा अर्ध-सामन्तवादी स्तम्भों पर आधारित थे। अतः हिन्दू शासक जिन सेनाओं की सहायता से लड़े, वे अधिकतर उनके आधीन राजाओं और सामन्तों की सेनाएं थीं, जिनमें समान संगठन, केन्द्रीभूत नियंत्रण तथा संचालन का अभाव था। वास्तव में हर्ष के काल से ही सामन्त तथा महासामन्त भारतीय राज्यों के मुख्य आधार बन गये थे, तथा इन्हीं के कारण शासन व्यवस्था में विकेन्द्रीकरण हो क्षीणता उत्पन्न हो गई थी।[2]

सैनिक कारण :

यह कहना कि जाति प्रथा के कारण हिन्दू सेनाओं में घोर दौर्बल्य उत्पन्न हो गया, क्योंकि उनमें केवल कुछ ही जाति तथा वर्ग विशेषों के लोग भर्ती होते थे[3], पूर्णतः सत्य नहीं है। यह बात तो निर्विवाद है कि जातिवाद ने भारतीयों को विभिन्न वर्गों में बांट दिया, सत्तारूढ़ वर्गों द्वारा अन्य वर्गों के शोषण में अभिवृद्धि की, तथा राष्ट्रीय भावना और सुरक्षा के प्रयास को दुर्बल बनाया। किन्तु केवल इसी कारण पर भारतीय पराजय को थोप देना एक जटिल प्रश्न के उत्तर का असाधारण सरलीकरण है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने यूनानियों को परास्त किया; तथा सेल्यूकस का मुँह मोड़ दिया; स्कन्दगुप्त तथा यशोधर्मन ने हूणों को परास्त किया; विजयनगर के हिन्दू राज्य ने दो सौ वर्ष से अधिक मुस्लिम आक्रमण के वेग को रोका (१३३६ से १५५६ ई० तक); तथा मराठों ने मुगल साम्राज्य की चूलें हिला कर अपनी विस्तृत सत्ता स्थापित की। यह सब जाति प्रथा के बावजूद सम्भव हो सका। यह धारणा भी कि हिन्दू सेनाओं में केवल क्षत्रिय ही

१३०; पृथ्वीश्वर का पिठपुरम् अभिलेख, एपि० इंडि०, भाग ४, पृ० ४९; चन्देल वीर वर्मनदेव का चरखारी दानपत्र, भंडारकर की लिस्ट आफ ब्राह्मी इंसक्रिप्शन्स, सं० १९१४।

१. सुन्दरवन ताम्रपत्र, इंडि० हिस्टा० क्वा०, भाग ११, पृ० ३२४ तथा उसके आगे।

२. देखिये, वी० एस० अग्रवाल, हर्ष चरित, एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २१७–२२०; वी० पी० मजूमदार, सोशियो इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इंडिया (१०३०–११९४), अध्याय १।

३. ए कॉम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग ५, पृ० १८५-८६ में इस मत का प्रतिपादन किया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भर्ती होते थे, सर्वथा निराधार है।[1] वैसे तो मध्ययुगीन योरप में भी युद्ध करना अधिकतर सामन्तशाही वीरों (नाइट्स) का ही काम था। आधुनिक युग के प्रारम्भ में भी निरंकुश शासकों की आधीनता में स्थायी सेनायें ही युद्ध किया करती थीं। जैसे भारत में, वैसे ही योरप में भी अठारहवीं शताब्दी तक सामान्य जनता अपने शासकों द्वारा लड़े युद्धों में भाग नहीं लेती थी। किन्तु हम देख चुके हैं कि भारतीय जनता के विभिन्न वर्गों ने भी यथाशक्ति मुस्लिम आक्रमणों का प्रतिरोध किया।[2] भारतीयों ने लम्बी अवधि तक सफलता पूर्वक मुसलमान आक्रमणों का जो सामना किया, वह महत्वपूर्ण है। एशिया, अफ्रिका तथा योरप के अनेक देशों ने तो अरबों के आक्रमणों के आगे कुछ ही वर्षों में आत्म-समर्पण कर दिया। यद्यपि सिन्ध तथा हिन्दू अफ़ग़ानिस्तान के पतन के बाद पहले अरबों के लिए तथा बाद में तुर्कों के लिए आक्रमण का मार्ग सुलभ हो गया था, फिर भी अरब सिन्ध तथा मुल्तान के आगे अपनी सत्ता प्रसारित करने में असफल रहे, तथा तुर्कों को भी पंजाब पर आधिपत्य स्थापित करने मे डेढ़ सौ वर्ष (८७०-१०२६ ई०) लग गये। मुहम्मद ग़ोरी के ११७५ ई० में भारत पर प्रथम आक्रमण से १३१६ ई० में अलाउद्दीन खलज़ी की मृत्यु तक तुर्कों को उत्तर भारत की विजय पाने में डेढ़ सौ वर्ष लग गये; फिर भी यह विजय अपूर्ण रही, तथा इसमें कश्मीर, आसाम, उड़ीसा शामिल नहीं थे। देश में यत्र-तत्र स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष होता रहा। मध्ययुग तक राजस्थान पूर्णत: न जीता जा सका, और सारे सल्तनत काल में दोआबे के जमींदारों से कर वसूली के लिए प्रतिवर्ष सैनिक कार्यवाही करनी पड़ती थी।[3]

वास्तव में भारतीयों की पराजय का कारण केवल उनकी सामाजिक अथवा भौगोलिक पृथकत्व की भावना ही नहीं थी, अपितु भारतीय रंगमंच पर ऐसे नायकों का अभाव था जो सामयिक आवश्यकता के अनुरूप भारतीय युद्धकला एवं सैन्य संचालन को बदल डालें। जो कार्य तत्कालीन भारतीय न कर सके, सत्रहवीं शताब्दी में मराठा शासक शिवाजी ने कर दिखाया। स्मिथ ने ठीक ही लिखा है कि भारत के हिन्दू संरक्षक साहस में, तथा मृत्यु की अवहेलना करने में, आक्रामकों से किसी प्रकार कम नहीं थे, किन्तु युद्धकौशल में उनसे पिछड़े होने के कारण अपनी स्वतंत्रता खो बैठे[4]। युद्ध में सफलता नैतिक बल, संगठन, शस्त्रसज्जा तथा नेतृत्व पर निर्भर होती है। आक्रान्त हिन्दू तथा मुस्लिम आक्रामकों का इस दृष्टिकोण से तुलनात्मक अध्ययन एक कठिन कार्य है। तत्कालीन या कुछ समय बाद के मुस्लिम इतिहास वृत्तों पर अन्धविश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे प्राय: स्वपक्षीय हैं।

नैतिकबल, साहस, शक्ति एवं दृढ़ प्रतिज्ञता में परिलक्षित होता है। यह बात इतिहास

---

१. एन० के० भट्टशाली, मॉडर्न रिव्यू, अगस्त १९३०, पृ० १५८, हिन्दुओं के अधःपतन का यही कारण बतलाते हैं। किन्तु देखिये, पी० सी० चक्रवर्ती, दि आर्ट ऑफ वॉर इन एन्शेन्ट इंडिया, ढाका, १९४१, पृ० ७८-८२; एस० डी० सिंह, एन्शेन्ट इण्डियन वॉरफेयर, लीडेन, १९६५, पृ० १०,१२,१४,१६,५७,५८ आदि।

२. देखिये, पीछे, पृ० २५।

३. देखिये, मिनहाजुससिराज कृत, तबक़ाते नासिरी, पृ० १९९,२०० और आगे, बरनी कृत, तारीख़-ए-फिरोज़ शाही; इलि० डाउ०, भाग २, ४।

४. स्मिथ, ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री, पृ० २२०, ऑक्सफोर्ड, १९२३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के अध्ययन से स्पष्ट हो आती है कि किसी भी समाज एवं सभ्यता के विकास के पूर्व वहाँ के सरल-हृदय कबीलों में साहस एवं आत्मबलिदान के गुण सर्वोपरि होते हैं, तथा व्यक्तिगत सुख तथा लाभ सम्पूर्णरूप से समुदाय की भलाई के अन्तर्गत रहते है। इसके विपरीत किसी भी सुसभ्य तथा समृद्ध समाज में यह गुण प्राकृतिक रूप से विकसित नहीं होते; तथा इसमें कोई सन्देह नहीं कि हिन्दू तुर्कों की अपेक्षा कहीं अधिक सभ्य एवं समृद्ध थे। अर्द्ध-सभ्य तुर्कों में बर्बर शक्ति एवं साहस का संचार तो था ही, साथ ही साथ इस्लाम धर्म के नवांगी-करण ने उनमें प्रबल धार्मिक उत्साह भी फूंक दिया था।

"मुहम्मद का महान प्रचारवादी धर्म, जो अरबों तथा पारसियों का सुपरिचित जीवन-क्रम बन गया था, चौरस मैदानों में रहने वाले ताज़े अशिक्षित लोगों के लिए ज्वलंत प्रेरणा का स्रोत बन गया। विजय द्वारा धर्म प्रसार करने की इच्छा ने उनकी प्राकृतिक युद्धप्रियता को दूना कर दिया, और उन्हें आस्थावान शहीदों की शक्ति प्रदान की।"[१]

ऑलिवर क्रॉम्वेल के अनुसार वही सर्वश्रेष्ठ सैनिक है, जो यह जानता है कि वह किस लिए लड़ रहा है, तथा मनोवांछित लक्ष्य में पूर्ण अनुराग रखता है। क्रॉम्वेल के आइरन साइड्स (Ironsides)[२] की भाँति तुर्कों को भी इस विश्वास से अपार शक्ति एवं साहस मिला कि वे अल्लाह की ओर से लड़ रहे थे, तथा उन्हें सर्वदा अल्लाह का संरक्षण प्राप्त था। इसके विपरीत हिन्दुओं में सामान्य लक्ष्य का अभाव था, जिसके लिए वे जीवन की बलि देते। इतिहासक्रम-निर्धारक राष्ट्रीयता तथा देशप्रेम की भावनाएँ उस समय तक विश्व में कहीं भी जागृत नहीं हुई थीं, तथा हिन्दू धर्म की असंख्य विविधताओं ने हिन्दुओं को कट्टर धार्मिक असहिष्णुताविहीन बना दिया था। कुछ ऐसे भी अवसर आये जब विदेशियों के प्रति सामान्य प्रतिरोध की भावना ने कुछ शासकों को एक साथ मिलकर आक्रामकों का सामना करने के लिए प्रेरित किया, किन्तु यह संगठन एवं सहयोग एक पराजय के बाद छिन्न-भिन्न हो गया तथा देश में विभाजक प्रवृत्तियाँ पुनः बलवती हो उठीं। किसी सर्वोच्च,

---

१. लेनपूल, मिडीवल इंडिया, पृ० १७–१८। के० ए० निज़ामी ने इसके विपरीत यह मत प्रकट किया कि इस्लाम के धार्मिक उत्साह ने तुर्कों को कोई प्रेरणा नहीं प्रदान की। बहुत से तुर्क कबीले तो, जो इस काल में भारत आये, पूर्णतः मुसलमान नहीं हो पाये थे, तथा उनके बहुत से सेनानायकों को इस्लाम धर्म का बहुत अल्प ज्ञान था। किन्तु निज़ामी को भी यह मानने के लिए बाध्य होना पड़ा कि जब तुर्कों का युद्ध बहुदेव-पूजक तथा मूर्तिपूजक जातियों से हुआ, तो सम्भवतः तुर्कों में भी धार्मिक भावना जागृत हो उठी। किन्तु यह केवल एक अस्थायी मनोदशा थी, और तुर्कों के भारतीय अभियानों का निश्चित लक्ष्य नहीं था। देखिये, ए कॉम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग ५, पृ० १८५। यह तो सत्य है कि भारत पर आक्रमण धर्म प्रचारार्थ नहीं हुए, किन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि तुर्क धार्मिक प्रेरणा से भी अनुप्राणित थे। सेनानायकों को गूढ़ धार्मिक ज्ञान की कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती। अल्पज्ञान ही अधिक कट्टरता उत्पन्न करता है, तथा नये धर्मावलम्बी पुराने अनुयायियों की अपेक्षा अधिक असहिष्णु तथा उग्र होते हैं।

२. क्रॉम्वेल की सेना के घुड़सवार।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सर्वग्राही प्रेरक आदर्श के अभाव में हिन्दू ऐसे पारस्परिक सहयोग एवं सामूहिक प्रयास का अनुष्ठान करने में असमर्थ रहे जो लगातार संकट का दीर्घकालिक प्रतिरोध कर पाता।

विशाल लूट के सुन्दर स्वप्नों ने तथा अपने नवीन धर्म के प्रति अपार उत्साह ने तुर्कों की भारतीय सफलता में विशेष योगदान दिया। सम्पत्ति की लालसा तथा धर्म से अनुप्राणित हो वे तीन सौ वर्षों से अधिक समय तक लड़ते रहे, और भारत के एक बड़े भू-भाग पर अधिकार कर लिया। इन्हीं लक्ष्यों से प्रेरित होकर ग्यारहवीं शताब्दी में सेल्जुक तुर्कों ने तथा पन्द्रहवीं शताब्दी में आटोमन तुर्कों ने बिज़ेन्टाइन साम्राज्य को लूटा, और अन्त में उसका सर्वनाश ही कर डाला[1]। स्मरण रहे कि बिज़ेन्टाइन साम्राज्य में भारतीय राजनीतिक तथा सामाजिक संगठन की दुर्बलतायें नहीं थीं। हिन्दुओं का हौसला तथा मनोबल मुसलमानों की अपेक्षा दुर्बल था। प्रारम्भ में तो जयपाल (१००१ ई०) तथा आनन्दपाल (१००८ ई०) ने सुल्तान महमूद का डटकर सामना किया, किन्तु उनकी पराजय से देश में भय एवं निराशा की लहर दौड़ गयी। यह आतंक इतना बढ़ा कि बहुत से राजे तो अपना राज्य तथा राजधानी छोड़ बिना शत्रु का सामना किये हुए ही जंगलों तथा पहाड़ियों में जा छिपे[2]। भयातुर हिन्दू शासकों की मनःस्थिति भीमपाल द्वारा चन्देल शासक गंड को लिखे गये पत्र से स्पष्ट है : "सुल्तान महमूद भारतीय शासकों की भाँति नहीं है, तथा वह काले व्यक्तियों का नायक नहीं है। स्पष्टतः ऐसे पुरुष से अपनी रक्षा करने की सलाह देना उचित है, क्योंकि उसका तथा उसके पिता का नाम सुनकर सेनायें भाग खड़ी होती हैं। मैं उसकी लगाम तुम्हारी लगाम से अधिक मजबूत समझता हूँ, क्योंकि वह तलवार का केवल एक वार करके ही सन्तुष्ट नहीं होता, और न वह किसी पर्वत माला के एक ही पहाड़ पर विजय करके ही सन्तुष्ट होता है। इसलिए यदि तुम उससे युद्ध करना चाहते हो तो हानि उठाओगे; परन्तु जैसा चाहो करो। तुम अपने विषय में स्वयं सबसे अधिक समझते हो। यदि तुम अपनी सुरक्षा चाहते हो, तो तुम्हें छिप जाना चाहिये[3]।" किन्तु गंड ने फिर भी युद्ध की तैयारी की, तथा उसकी सेना देखकर महमूद भी कंपायमान हो उठा। परन्तु गंड सहसा अपना सारा सामान तथा युद्ध सामग्री छोड़कर रात्रि में भाग खड़ा हुआ। महमूद को उसकी कायरता पर आश्चर्य भी हुआ तथा हर्ष भी[4]। तराइन के द्वितीय युद्ध के पश्चात् भी हिन्दू राजे इसी प्रकार की निराशा एवं दुर्बल मनोवृत्ति के शिकार हुए। पृथ्वीराज की पराजय के बाद भारतीय शासकों ने शत्रु का कोई संगठित तथा सामूहिक प्रतिरोध नहीं किया। १२०० ई० के दबोई अभिलेख में तत्कालीन हिन्दू शासकों के हृदय दौर्बल्य का महत्वपूर्ण प्रमाण मिलता है : "इस पृथ्वी पर बहुत से देवतुल्य शासक हैं; किन्तु उन सभी के हृदय तुरुष्क शासक के उल्लेख मात्र से उद्वेलित हो उठते हैं[5]।" यह कहना निराधार है कि भारतीयों की पराजय उनकी शान्तिप्रियता अथवा युद्ध के प्रति घृणा के कारण हुई। युद्ध

---

१. यू० एन० घोषाल, स्टडीज इन इंडियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर पृ० ३५९–६०।
२. इलि० डाउ०, भाग २, पृ० २८, ३९, ४९ आदि।
३. इलि० डाउ०, भाग २, पृ० ४८।
४. ईश्वरी प्रसाद, हिस्ट्री ऑफ मिडीवल इंडिया, इलाहाबाद, १९२८, पृ० ८१।
५. एपि० इंडि०, भाग १, पृ० २६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करना तो राजपूतों का कर्म ही था, तथा ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दियों का भारतीय इतिहास आंतरिक संघर्षों एवं युद्धों को दुखद कहानी है।

संगठन एवं शस्त्र-सज्जा में भी तुर्क आततायी हिन्दू सैनिकों से कहीं अधिक बढ़े-चढ़े थे। उनमें पूर्ण एकता था। इस्लाम धर्म ने जाति तथा वंश की दीवारें तोड़ दी थीं। इस सामाजिक सामंजस्य एवं व्यापक भ्रातृ-भावना ने मुस्लिम सेनाओं के गठन तथा अभिप्राय को एकरूपता प्रदान की। शराब न पीने के कारण तुर्क सेना सदैव सक्रिय तथा सतर्क रहती थी। इसके विपरीत हिन्दू सेना जाति, धर्म तथा सामाजिक रूढ़ियों द्वारा विभाजित थी। नशेबाज़ी का भी भारतीय सेनाओं पर व्यापक हानिकारक प्रभाव था। छूआछूत के विचारों के कारण हिन्दू सेनाओं में विभिन्न कार्यों का उचित विभाजन नहीं हो पाता था। अतः उपयुक्त श्रम विभाजन के अभाव में निम्न जातियों के सैनिकों को लड़ना भी पड़ता था, पानी भी ढोना पड़ता था, तथा इस प्रकार के अन्य कार्य भी करने पड़ते थे[1]। ऐसे समाज में, तथा ऐसी सेना में पूर्ण एकता का संचार असम्भव था।

तुर्क सैनिक संगठन का मूल-मंत्र उनकी तीव्र गति थी। यह अश्वारोहियों का युग था। तुर्क आक्रामक अच्छे घुड़सवार थे। उनके घोड़े तथा उनके हथियार श्रेष्ठ थे। अरबी घोड़े की बहुत प्रशंसा की गई है, किन्तु तुर्कमान घोड़े उनसे भी अच्छे होते थे। केम्ब्रिज मिडीवल हिस्ट्री के अनुसार "मध्य एशिया में तुर्कमान घोड़े सबसे अच्छे हैं। द्रुतगति, पार-श्रमशीलता, सूझ-बूझ, बुद्धिमानी, स्वामि-भक्ति तथा भूमि के पहचानने में ये सब नस्लों से अच्छे माने जाते हैं। तुर्कमान घोड़ा लम्बा, पतला और दुबला होता है, इसके पैर पतले तथा गर्दन भी पतली और लम्बी होती है.....तुर्क लूटमार तथा आक्रमण करते समय इन घोड़ों पर सवार होकर निर्जल रेगिस्तान में पाँच दिन में ६५० मील तक पार कर लेते थे।..... वे इस प्रकार की शिक्षा असीम बंजरों और रेगिस्तानों में हज़ारों वर्ष से ले रहे थे। लूटमार के लगातार जीवन के लिए अधिक से अधिक थकावट तथा कष्टों को सहने की आवश्यकता होती है, और यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इन घोड़ों तथा घुड़सवारों में यह दोनों गुण विद्यमान थे[2]।" तुर्कों का जन्मस्थल तुर्कमानों की जन्मभूमि से थोड़ी दूर दक्षिण में है। वे भी उन जैसे ही स्वस्थ तथा कष्ट सहन में कुशल थे, और अरबी तथा तुर्कमानी घोड़ों पर चढ़ते थे। सर यदुनाथ सरकार के अनुसार "तुर्क अपने घोड़ों की तीव्रगति के लिए तथा घोड़ों पर सवार होकर बलशाली आक्रमण के लिए इतने प्रसिद्ध थे कि एशियायी जगत में किसी भी जाति के अच्छे वीर तथा सुसज्जित घुड़सवारों को तुर्क सवार पुकारा जाता था।"[3] तुर्क अमीर और उनके घोड़े भी कवच पहनते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि द्रुतगति, सहसा आक्रमण, तीव्रता से आगे बढ़ना तथा पीछे हटना तुर्क सेना की युद्ध नीति के सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग थे। इसके विपरीत हिन्दू तीव्र गति की अपेक्षा स्थूलता तथा सैन्य भार पर अधिक बल देते थे। राजपूत योद्धा इस सैन्य भार से शत्रु को चूर्ण करने में अधिक विश्वास रखते थे, तथा बिजली जैसी तीव्रता से

१. देखिये, ए कॉम्प्रिहेंसिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग ५, पृ० १८६।
२. केम्ब्रिज मिडीवल हिस्ट्री, खण्ड १, पृ० ३३१।
३. हिन्दुस्तान स्टैण्टर्ड, सण्डे एडीशन, ७ मार्च, १९५४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बढ़कर या मुड़कर शत्रु पर वार करने का महत्व हो नहीं समझते थे। सुसज्जित अग्रगामी हाथियों सहित भीमकाय भारतीय सेवाएँ सरलता तथा वेगपूर्वक चलनेवाले अश्वारोहियों का सामना नहीं कर सकती थीं, क्योंकि यह अश्वारोही उन पर बगलों से तथा पीछे से भी द्रुतगति से आक्रमण कर सकते थे।

वास्तव में गतिहीनता भारतीय सैन्य संगठन की सबसे बड़ी दुर्बलता थी। यदुनाथ सरकार के अनुसार सीमापार के इन आक्रामकों के अस्त्र-शस्त्रों तथा घोड़ों ने उन्हें भारतीयों की अपेक्षा सैनिक दृष्टिकोण से अधिक श्रेष्ठ बना दिया। उनकी रसद आदि का सामान भी ऊँटों पर ले जाया जाता था जो तेज़ दुलकी चलते थे, और जिनके लिए कोई चारा आदि भी ले जाने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि वे मार्ग में ही जड़ों और पत्तियों आदि से अपना पेट भर लेते थे। इसके विपरीत हिन्दू सेनाओं की रसद आदि तथा अन्य सामान बंजारे बैलों तथा भैंसों आदि पर लाद कर ले जाते थे। मुस्लिम आक्रमणकारियों की अपेक्षा हिन्दू सेना का यह अंग भी धीमी गति के कारण क्षीण, शिथिल एवं पंगु था[1]।

तीव्रगति के अतिरिक्त घुड़सवार तुर्क तीरंदाजों ने भारतीय सेनाओं के दांत खट्टे कर दिये। वे दौड़ते हुए घोड़ों से बड़ी दक्षता के साथ शत्रु पर बाण वर्षा करते थे। गतिहीन भारतीय सेनाएँ उनकी इस पैंतरेबाजी का प्रतिरोध न कर सकीं। आक्रमणकारियों के धनुष के दो टुकड़े हो जाते थे, जो धातु से जुड़े रहते थे। इनसे जो घातक बाण छूटते थे, वे अस्सी से सौ कदम तक मार करते थे, और कवच तथा ढाल को सरलता से बेध देते थे। इसके अतिरिक्त उनके पास लम्बे-लम्बे भाले भी थे, तथा लम्बी और तेज तलवारें भी थीं। धनुष-बाण युक्त तेज घुड़सवार पहले तो घोर बाण-वर्षा से अरिदल में आतंक तथा खलबली मचा देते थे, तथा फिर घुड़सवार सेना शत्रु पर वेगपूर्वक आक्रमण कर देती थी। आक्रामक अपनी सेना को पांच भागों में बाँटते थे—दक्षिणदल, केन्द्र, वामदल, अग्रगामी सुरक्षादल तथा कोतलदल। ये दल अर्द्ध-चन्द्राकार रूप में तैनात किये जाते थे; न तो वे आक्रमण करने के लिए समीप जाते थे, और न आमने-सामने की मुठभेड़ ही करते थे। वे तो अपनी सेना की इन टुकड़ियों से भारतीय सेना को चारों ओर से घेर कर उस पर बाण वर्षा करते थे। भारतीय सेना एक लम्बी पंक्ति के रूप में खड़ी होती थी, तथा दक्षिण दल, केन्द्र तथा वामदल में विभक्त होती थी। दिन ढलने के समय भारतीय सेना के किनारों पर तुर्क सेना तेज आक्रमण कर देती थी, तथा आक्रामक सेना के चन्द्रमारूपी किनारों के दोनों भाग भारतीय सेना के पिछले भाग को घेर लेते थे। इस प्रकार अपने रणकौशल तथा पैंतरेबाजी से तुर्कों ने भारतीय सेनाओं के दांत खट्टे कर दिये। सामन्तवादी प्रथा पर आधारित लक्ष्य एवं आदर्शविहीन स्वयं-विभाजित भारतीय सेनायें तुर्कों की सुसंगठित, समान आदर्श एवं उद्देश्य से अनुप्राणित सेना का सामना करने में यदि असफल रहीं, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। तुर्क सेनाएँ एकता की भावना से सुसम्बद्ध थीं तथा अपने सेनानायकों की आज्ञा

१. देखिये, सर यदुनाथ सरकार, मिलिटरी हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० २६।
२. देखिये, आर० सी० स्मेल, क्रूसेडिंग वारफेयर, ए कन्ट्रीब्यूशन टु मेडीवल मिलीटरी हिस्ट्री, पृ० ८०–८१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का अनुशासित रूप से पालन करती थीं। इसके विपरीत भारतीय सेनाओं में न ऐक्य था, न अनुशासन, न संगठन।

इस संदर्भ में यह बात भी विचारणीय है कि तुर्क सेनानायक भारतीय शासकों की अपेक्षा कहीं अधिक योग्य थे। जब बाबर भारत आया तो उसने अपने अनुभव के आधार पर ठीक ही कहा कि उसके समकालीन हिन्दू युद्ध में मरना तो जानते थे, किन्तु विजय प्राप्त करना नहीं जानते थे। राजपूत वीर थे तथा युद्ध में वैयक्तिक शौर्य का प्रदर्शन करते थे, किन्तु अरब तथा तुर्क सैनिक विजय को लक्ष्य बनाकर योजना-बद्ध युद्ध करते थे। जयपाल, आनन्द-पाल तथा पृथ्वीराज परम वीर थे, साहसी भी थे। परन्तु पैंतरेबाजी तथा सामरिक चातुर्य की तकनीकों में बहुत पिछड़े हुए थे। उन्होंने कभी उत्तर पश्चिमी सीमा के दर्रों की रक्षा के लिए कोई सैनिक प्रबन्ध नहीं किया। न उन्होंने कभी पर्वतों में आते हुए शत्रु पर उसे कहीं अचानक घेरकर ही आक्रमण किया। पृथ्वीराज को अपनी सामरिक योग्यता पर आवश्यकता से अधिक विश्वास था, किन्तु तराइन के प्रथम युद्ध के बाद उसने अपनी विजय से कोई लाभ नहीं उठाया, और ग़ोरी के पुनराक्रमण को रोकने के लिए कोई उचित प्रबन्ध नहीं किया। तराइन के दूसरे युद्ध में भी संकट की घड़ी में पुनः पृथ्वीराज ने अपने उन्माद तथा आलस्य का परिचय दिया। इसके अतिरिक्त हिन्दू शासकों ने प्रारम्भ से अन्त तक केवल सुरक्षात्मक प्रयास किया, तथा आक्रामक नीति का अनुसरण न करके शत्रु को इच्छा तथा योजनानुसार क्रमशः अपने पर आक्रमण करने का अवसर दिया। वे यह भूल गये कि शत्रु पर आक्रमण आत्मरक्षा का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। आक्रमणकारी को सर्वदा विजय की आशा रहती है; आक्रान्त को सर्वदा आत्मरक्षा की चिन्ता रहती है। आशा साहस की जननी है, चिन्ता उसे कुंठित कर देती है।

सुल्तान महमूद तथा मुहम्मदग़ोरी दोनों ही बड़े प्रभावशाली तथा कुशल सेनानायक थे, जो अपने सैनिकों में अपार श्रद्धा, साहस एवं स्वामिभक्ति का संचार कर सकते थे। उन्होंने अपने सैनिकों को न केवल अपार लूट तथा सम्पत्ति का प्रलोभन ही दिया, साथ ही साथ उन्हें धर्म की सेवा करने का निमंत्रण भी दिया। अतः मुस्लिम शक्ति के प्रवाह में आर्थिक, राजनीतिक एवं प्रबल धार्मिक कारण, सभी सन्निहित थे। पार्थियन युद्ध विद्या की परम्परा से वे पूर्णतः अवगत थे।[1] इसके अतिरिक्त व्यूह-रचना पैंतरेबाजी तथा चालाकी में वे भारतीयों से कहीं आगे थे। विश्वास करना तो कठिन होगा कि मुसलमान सेनानायकों ने कभी कोई भूल नहीं की, किन्तु फिर भी उनकी निर्द्वन्द्व एवं भीषण आक्रामक भावना ने उन्हें सफलता प्रदान की। सुल्तान महमूद में अपार शक्ति और साहस था; वह तीस साल से अधिक निरन्तर युद्ध करता रहा, तथा उसने कभी हार नहीं मानी। वह बड़े-बड़े अभियानों की योजना बनाता था, बड़ी दक्षता से अपनी सेना का संगठन करता था, तथा स्वयं भी अत्यन्त शक्तिशाली बल्लम-बाज था। वह प्रायः घमासान युद्ध में घुस जाता था, तथा विभिन्न युद्धों में उसे बहत्तर घाव लगे।[2] छोटी-छोटी सेनाओं से उसने बड़े-बड़े भाग जीत लिए। चतुर पैंतरेबाजी ने, सैन्य-

१. पी० सी० चक्रवर्ती, दि आर्ट ऑफ वॉर इन एन्शेन्ट इंडिया, पृ० १९५।
२. देखिये, नाज़िम, पृ० १५४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गतिशीलता तथा तीव्रता ने महमूद की सफलता में प्रधान योग दिया। उसकी तीव्र चाल से प्रायः उसके शत्रु विस्मित एवं हतप्रभ रह जाते थे। "विद्रोही सुखपाल सुख की नींद सो ही रहा था कि महमूद अचानक मुल्तान के द्वार पर जा पहुँचा, तथा उसने वहाँ के शासकों को पता होने से पूर्व ही कुशदार के नगर को घेर लिया। जब वह अपने मृत्युवाहक रोग से ग्रसित था, तब भी उसकी तीव्रगति ने मीनूचिहर को आश्चर्य चकित कर दिया तथा सेल्जुकों को खुरासान से हट जाने के लिए बाध्य कर दिया।"[1]

मुहम्मद गोरी यद्यपि महमूद के समान सुयोग्य अथवा महान सेनापति नहीं था, तथापि अपने भारतीय प्रतिद्वन्द्वियों से वह भी कहीं अधिक चतुर था। वह यह बात भली-भांति समझता था कि अश्वारोहियों के युद्ध में वही विजयी होता है, जो अन्तिम रिज़र्वदल निर्णय के क्षण के लिए रखता है। तराइन के द्वितीय युद्ध में उसने अपने कोतल दल से, अश्वारोही तीरंदाजों से, तथा 'सहसा आक्रमण' की नीति (Shock Tactics) से ही विजय पायी।[2]

भारतीयों की पराजय में भारतीय शासकों तथा उच्चाधिकारियों के विश्वासघात का भी अत्यधिक प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त मुस्लिम आक्रामकों की कूटनीति तथा प्रचार भी उनकी सफलता के लिए उत्तरदायी सिद्ध हुए। बार-बार देश पर आक्रमण करके, तीव्रगति से नगरों को नष्ट-भ्रष्ट करके, आग लगाकर, मारकाट मचाकर अपने विध्वंस तांण्डव से मुस्लिम सेनाओं ने भारतीयों को पूर्णतः आतंकित कर उनके नैतिक बल का नाश कर दिया। भारतीय महमूद को अजेय समझने लगे थे, तथा ऐसी भीरु भावना बन गई थी कि तुर्कों का प्रतिरोध करना निरर्थक होगा। आक्रामक सैनिक यह समझने लगे थे कि खुदा ने उन्हें बुतों को तोड़कर इस्लाम का प्रचार करने के लिए नियुक्त किया था। धन की लालसा तथा धार्मिक प्रेरणा, दोनों ही ने उन्हें मरने मारने के लिए प्रोत्साहित किया। हिन्दुओं को न तो सामूहिक एवं कटिबद्ध आत्म-रक्षा की ही सूझी, न कभी स्वयं शत्रु पर आक्रमण करने की। सेना को उत्साहित करने वाले उद्देश्यों की भी उतनी ही आवश्यकता होती है जितनी अस्त्र-शस्त्रों की।

सामाजिक कारण :

भारतीय शासकों तथा सामन्तों का जीवन अनावश्यक पारस्परिक युद्धों तथा रंग-रेलियों में बीतता था। उनके अन्तःपुरों में विभिन्न प्रदेशों की स्त्रियाँ निवास करती थीं। दक्षिण में सिन्हल, कांची, कर्णाट तथा श्री पर्वत (नागार्जुनीकोंडा) उत्तर में नेपाल, शोवि तथा तुंग विषयों, पश्चिम में द्वारवती, सिन्ध, कच्छ तथा कोंकण, मध्य देश में उज्जयिनी तथा कान्यकुब्ज, पूर्व में काशी तथा उड़ीसा, की सुन्दरियाँ आठवीं शताब्दी के कवि स्वयंभू के अनुसार अयोध्या के अन्तः पुरों की शोभा थीं[3]। उदाहरणतः कलचुरि शासक युवराज द्वितीय के बिल्हरी अभिलेख के अनुसार उसके पितामह को गौड़, कर्णाट आदि की सुन्दर युवतियों का सुख प्राप्त था। उसका कवि राजशेखर भी "कर्णाट कुमारियों का साहचर्य

१. नाज़िम, पृ० १५५-५६।
२. देखिये, इलि० डाउ०, भाग २, पृ० २९६-१९७; ब्रिग्स, भाग १, पृ० १७७।
३. स्वयंभू, पौमचरिउ, संपादित, एच० सी० भयाणी, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ४९, ८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भोगता था, आन्ध्रीयों के वक्षस्थल का भार वहन करता था, लाट कुमारियों के बाहुपाश में बंध जाता था, तथा मलय की स्त्रियों की कोमल उंगलियों के स्पर्श से संतप्त था।"[१]

"वैजयन्ती"[२] में राजा की पत्नियों तथा रखैलों का वर्गीकरण प्राप्त होता है। राजा की प्रथम विवाहित स्त्री महिषी अथवा महादेवी कहलाती थी, जो अभिषिक्त होती थी। दूसरी पत्नी देवी कहलाती थी, जो किसी राजवंश की होती थी। तीसरी परिवृक्ती कहलाती थी तथा आदरणीय होती थी। चौथी आवाता अर्थात् परमप्रिया कहलाती थी। पांचवीं, जो किसी राजा की पुत्री नहीं होती थी, स्वामिनी कहलाती थी। छठी, जो युद्ध में जीती जाती थी, फालाकली कहलाती थी। इसके अतिरिक्त राजा की प्रियाओं में वे स्त्रियाँ होती थीं, जो उससे विवाहित नहीं होती थीं, किन्तु जो भिन्न-भिन्न कलाओं में प्रवीण होती थीं तथा गणिका कहलाती थीं। इनका भी वर्गीकरण किया गया है। 'मानसोल्लास[३]' के अनुसार राजा को क्षत्रिय कन्या अपनी रानी बनानी चाहिए। वह सुन्दर हो, सुशील हो, उसके शरीर पर शुभलक्षण प्रस्तुत हों, तथा काम शास्त्र के अन्तर्गत किसी सर्वोच्चकोटि की हो। इसके अतिरिक्त राजा को अन्य अवरोध वधुओं का भी चयन करना चाहिये, जो सुखदायिनी हों, सुन्दर हों, नवयुवती हों तथा वैश्य एवं शूद्र वर्णों की हों। इनके अतिरिक्त राजा को विलासिनी स्त्रियों का भी सहभोग करना चाहिये जिनमें शारीरिक लावण्य हो, तथा उन सबको भेंट देकर तथा प्रेम करके प्रसन्न करना चाहिये[४]।

जिस देश के साहित्यकार एवं चिन्तक बुद्धिजीवी जन राजा के लिए इस प्रकार के विलास तथा प्रणय प्रमोदों का प्रतिपादन करें, उस देश के शासक यदि अपने राजनीतिक एवं सामाजिक दायित्वों से विमुख अथवा उदासीन हो जायें तो इसमें विस्मय की कौन सी बात है? कामप्रवृत्ति स्वाभाविक है, प्राकृतिक है, वांछनीय भी है। कृत्रिम नैतिकता के आवरण में यह सत्य छिप नहीं सकता। किन्तु सफल जीवनयापन के लिए नाना प्रवृत्तियों का सामूहिक जीवन के कर्त्तव्यों से सामंजस्य स्थापित करना नितान्त अनिवार्य है। जन नायकों के लिए, शासकों के लिए, देश की स्वतंत्रता के प्रहरियों के लिए, इसकी और भी अधिक आवश्यकता है कि वे प्रणय प्रमाद में अपने गहन दायित्वों को न भूलें। जहां भोग विलास का प्राधान्य होगा वहां सामाजिक, राजनीतिक, सामरिक दायित्वों की पूर्ति में आशातीत कठिनाइयां प्रस्तुत होंगी। राजा को जीवन-सुख के रसास्वादन का पूर्ण अधिकार है, किन्तु उसका उत्तरदायित्व भी उतना ही विस्तृत है जितने उसके अधिकार।

भारतीय सामन्त सुन्दरियों के साथ अपने महलों, उद्यानों तथा सरोवरों में किल्लोल

---

१. क्षेमेन्द्र की औचित्य विचार चर्चा, श्लोक २७ में राजशेखर के एक श्लोक का उद्धरण है। ग्यारहवीं शताब्दी, के 'राउलवेल' नामक ग्रंथ में, जो धार में एक पत्थर पर अंकित है, एक सामन्त के अन्तः पुर की स्त्रियों का विस्तृत विवरण है। देखिये, भारतीय विद्या, खं० १७, भाग ३, पृ० १३०–१४६।

२. १०६। ३१–३४।

३. ३। १८०८–१०।

४. वही, ३। १८१०–१६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करते थे। उनके भव्य भवनों की दीवारें, स्तम्भ तथा चौखटे कामोत्तेजक शिल्पों से अलंकृत होती थीं[१]। कुछ सामन्त तिस पर भी वेश्याओं की गलियों में घूमते थे, जहां वे इन सुसंस्कृत स्त्रियों की गानविद्या, वाक्पटुता तथा अठखेलियों का रसास्वादन करते थे[२]। वेश्याओं तथा नगरवधुओं के निवासों का जीवन अनेक संस्कृत ग्रंथों में वर्णित है[३]। सामन्तों का जीवन इतना अधिक विलासमय हो गया था कि वे अपनी सेनाओं के साथ भी स्त्रियों को ले जाते थे। बारहवीं शताब्दी के लेखक हेमचन्द्र ने जाम्बवती में चौलुक्य स्कन्धावार का विवरण प्रस्तुत किया है—"वह स्कन्धावार, जिसमें लोग सुन्दर स्वप्न देखने की आशा में सोते थे, जिसमें एक पल में कामोत्तेजित हो जाने वाले व्यक्ति पहरा देते थे, जिनकी कमर अत्यधिक सम्भोग से शिथिल हो गई थी, तथा जिनके नेत्र थकान में डूबे हुए थे, जहां स्त्रियां सौंदर्य एवं क्रीड़ा का वातावरण प्रस्तुत करती थीं, जहां बाज़ार खुले थे, जहां योद्धा अच्छी और बुरी नींद से मुक्त थे, गंधर्वों की नगरी की भाँति मन मोहक था[४]।" इस प्रकार के भोग-विलास ने भारतीय सेनाओं को कोमल एवं दुर्बल बना दिया था।

उस काल के कुछ विद्वानों ने ब्राह्मणों के अधिकारों पर आक्षेप किया है। उदाहरणार्थ विज्ञानेश्वर के अनुसार ब्राह्मण दण्ड से मुक्त नहीं हैं[५]। वह 'गौतम धर्मशास्त्र[६]' के इस मत का भी खण्डन करता है कि राजा ब्राह्मणों को छोड़ कर सब का स्वामी है। गौतम को उद्धृत करते हुए वह यह भी कहता है कि राजा के द्वारा ब्राह्मणों को दी गई छः प्रकार की छूट केवल उसी ब्राह्मण के लिए है जो अत्यन्त विद्वान हो[७]। हरदत्त[८] के अनुसार यह छूट केवल उसी ब्राह्मण के लिए है जो बहुत बड़ा विद्वान हो, तथा जिसने बिना सोचे समझे अपराध कर दिया हो। अतः इन लेखकों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ब्राह्मण दण्ड से पूर्णतया मुक्त नहीं था। आततायी ब्राह्मण का भी केवल आत्मरक्षा हेतु वध किया जा सकता है। किन्तु यह भी तब किया जाय जब मनुष्य प्राण बचाने में असमर्थ हो। स्मृतियों द्वारा प्रतिपादित उच्च जीवन के आदर्शों का ब्राह्मण प्रायः पालन नहीं कर पाते थे। टीकाओं तथा अन्य ग्रंथों में ऐसे ब्राह्मणों का अनेक स्थानों पर उल्लेख है जो चरित्रहीन थे, तथा अपने कर्त्तव्यों एवं दायित्वों से विमुख थे। तत्कालीन कोशों में भी पतित ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है[९]।

इस काल के साहित्य में शूद्रों के विषय में कोई विशेष परिवर्तन का आभास नहीं

---

१. विल्हण, विक्रमांक देव चरित, १२, ५०–७८; २०।
२. पुष्पदन्त, नायकुमार-चरिउ, संपादित, हीरालाल जैन (कारंजा जैन सीरीज) पृ० ४८–४९।
३. देखिये, चतुरभाणि (शृंगार हाट) संपादित, वासुदेव शरण अग्रवाल तथा मोती चन्द्र, बम्बई, १९५९।
४. हेमचन्द्र, संस्कृत द्वयाश्रय काव्य, ३, १५९, संपादित ए० बी० कथवते, बम्बई।
५. याज्ञवल्क्य, २। ४ पर विज्ञानेश्वर।
६. ११। १।
७. ८। १२–१३।
८. गौतम उपर्युक्त पर हरदत्त।
९. दि स्ट्रगिल फॉर एम्पायर, पृ० ४७५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होता, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जाति प्रथा और अधिक कठोर हो गई थी। ब्राह्मण अपने दास से, अपने ग्वाले से, अपने परिवार के मित्र से तथा अपने अधीन किसान से केवल अतीव संकट के समय भोजन प्राप्त कर सकता था[1], और यह भी अन्त में उसके लिए कलियुग में वर्जित कर दिया गया[2]। शूद्र द्वारा छुआ अथवा दिया गया भोजन ब्राह्मण के लिए अग्राह्य था। शूद्रों को खाना आदि पकाने के लिए नौकर नहीं रखा जा सकता था। कुछ ग्रंथों में शूद्र को अस्पृश्य कहा गया है[3]। यदि शूद्र का स्पर्श हो जाय, तो वस्त्र पहने ही नहाना चाहिये[4]। एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि शूद्र का स्पर्श करने पर प्रायश्चित्त के लिए उपवास करना चाहिए[5]।

अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों से विभिन्न जातियों का विकास हुआ, जिनकी सबसे लम्बी सूची वैजयन्ती में प्राप्त होती है[6]। इसमें चौंसठ जातियों का उल्लेख है। अनुलोम जातियाँ द्विज मानी जाती थीं, किन्तु प्रतिलोम जातियाँ हीन मानी जाती थीं। 'बृहद्धर्म पुराण' में भी छत्तीस मिश्रित जातियों का उल्लेख है, जो बढ़ कर ४१ हो जाती हैं। बृहद्धर्म पुराण के अनुसार अनुलोम तथा प्रतिलोम, ये सभी जातियाँ शूद्र हैं[7]।

अन्त्य अथवा अन्त्य जातियों के विषय में भी इस काल के लेखकों एवं टीकाकारों ने विचार व्यक्त किये हैं। इनमें चंडाल प्रमुख थे। वैजयन्ती में सात अन्त्य जातियों का उल्लेख है—धोबी, चर्मकार, वेण, बुरुल, मछुआ (केवर्त्य), मेद तथा भिल्ल। इस सूची में वेण-बुरुल, मेद तथा भिल्ल आदिवासी जातियों के नाम हैं। शेष अन्य जातियाँ सबसे नीची जातियां थीं। चंडाल सर्वथा अस्पृश्य थे। उनका स्पर्श करने के पश्चात्, एक निश्चित दूरी से उनके समीप आने के पश्चात्, उन्हें देखने के पश्चात्, उनसे बात करने के पश्चात्, उनके उत्सव आदि देखने के पश्चात्, उनकी छाया पार करने के पश्चात्, और दूससे तीसरे या चौथे माध्यम के द्वारा भी उनसे स्पर्श हो जाने के पश्चात् प्रायश्चित्त करना आवश्यक था।[8] अस्पृश्यता की भावना का इतना विस्तार कर दिया गया था कि बौद्ध, जैन, लोकायतिक, नास्तिक, कपिल के अनुयायी, वैदिक मत न मानने वाले, शैव और शाक्त, तथा वाममार्गी शाक्त भी अस्पृश्य कहे गये।[9] अस्पृश्यता के इस कलंक ने भारतीय समाज में दलित वर्गों के शोषण में अपमान

१. याज्ञवल्क्य, १। १६७ पर अपरार्क; गौतम, १७।६ पर हरदत्त।
२. स्मृतिचन्द्रिका, १।३१ में उद्धृत।
३. वही।
४. याज्ञवल्क्य ३।३० पर विज्ञानेश्वर तथा अपरार्क; याज्ञवल्क्य, ३।२९२ पर अपरार्क; स्मृतिचन्द्रिका, २। ३११।
५. स्मृत्यर्थसार, १४१।
६. ८१, १०८-११।
७. २। १३-१४।
८. याज्ञवल्क्य ३।२९२ पर अपरार्क; स्मृतिचन्द्रिका, २।३०४-३०८; स्मृत्यर्थसार, ७६-७८; प्रायश्चित्त प्रकरण, १११-११४।
९. देखिये, याज्ञवल्क्य ३।३० पर अपरार्क; स्मृतिचन्द्रिका, देवण भट्ट कृत, मैसूर १९१४, २।३१०-३११; स्मृत्यर्थसार, ७७; प्रायश्चित्त प्रकरण, ११०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एवं तिरस्कार का विषाद और जोड़ दिया। जिस समाज में मनुष्य मनुष्य को अस्पृश्य समझे, जहाँ किसी दलित वर्ग के प्रतिनिधि के दर्शन मात्र से अथवा उसकी छाया मात्र से शोषक वर्गों के सदस्य अपने को अपवित्र समझ कर निरर्थक प्रायश्चित्त करें, उस समाज में विदेशी आक्रमणों के समक्ष एकता, भ्रातृत्व-भावना, समान सहयोग एवं समान त्याग कहां मिल सकते हैं ? यह कहना कि भारतीय समाज तो सदा ही विभिन्न वर्गों तथा जातियों में विभाजित रहा है, तथा यह केवल इस युग की विशेषता नहीं है, यह सिद्ध नहीं कर सकता कि इस प्रकार की जाति प्रथा ने देश को किसी भी समय शक्ति प्रदान की। यदि जाति प्रथा के बावजूद शिवाजी ने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की, तो इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि इस सामाजिक विभाजन ने शिवाजी के हाथ शक्तिशाली बनाये। इससे तो केवल यही सिद्ध होता है कि शिवाजी असाधारण प्रतिभाशाली एवं समर्थ जन-नायक था, जिसने केवल अपनी योग्यता से इन कठिनाइयों से भी ऊपर उठकर अपने निश्चित लक्ष्य की पूर्ति की।[1] यह भी विचारणीय है कि शिवाजी द्वारा स्थापित मराठा शक्ति चिरस्थायी न रही। इसके क्या कारण थे ? क्या पेशवाओं ने मराठों की राजनीतिक शक्ति पर अधिकार नहीं कर लिया था ? जातिभेद एवं तदुत्पन्न गृह-कलह ने भारतीय समाज को निर्विवाद रूप से निश्चय ही सर्वदा क्षीण बनाया। भारतीय मुसलमान कहां से आये ? सभी जानते हैं कि भारतीय उप-महाद्वीप में रहने वाले मुसलमान बड़ी संख्या में मुस्लिम आक्रमणों से पहले भी हिन्दू अथवा बौद्ध रूप में भारत के निवासी थे। मुस्लिम आक्रमणों की सफलता ने, इस्लाम की भ्रातृ-भावना ने, पैगम्बर के धर्म में जातिपांति तथा उस पर आधारित विषम भेदभाव के अभाव ने हिन्दू समाज के दलित वर्गों को नव प्रेरणा दी, नवीन प्रकाश दिया, नई आशायें दीं। यही कारण था कि इतनी बड़ी संख्या में निम्न वर्गों के हिन्दुओं ने इस्लाम अंगीकार किया। यह असत्य है कि सारे भारतीय मुसलमानों को तलवार के माध्यम से ही इस्लाम स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया। यह भी स्मरणीय है कि बहुत से सवर्ण हिन्दुओं ने भी सहर्ष इस्लाम स्वीकार किया।

उत्तरी भारत के राजवंश, गुहिलपुत्र (गुहिलौत) प्रतिहार (गुर्जर) चाप तथा चाहमान, तथा दक्षिण के चौलुक्य आदि छठी-सातवीं शताब्दी से राजनीतिक रंगमंच पर दृष्टिगोचर हुए। राष्ट्रकूट, चन्देल, परमार, कच्छप घात तथा गाहड़वाल आदि और भी बाद में आये। कुछ विद्वानों के अनुसार परमार, चौलुक्य, चाहमान तथा प्रतिहार विदेशी हूणों तथा गुर्जरों की सन्तान थे[2]। चन्देल तथा गाहडवाल आदि गोंड तथा भर आदि जातियों की सन्तान थे।[3] इस संदर्भ में इस कथा का भी उल्लेख अनुचित न होगा कि मुनि वशिष्ठ द्वारा प्रज्वलित आबू

---

१. देखिये, यू० एन० घोषाल, स्टडीज़ इन इंडियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पृ० ३६०-६३, जहाँ उन्होंने यह तर्क दिया है कि जाति प्रथा तो अति-प्राचीन है, तथा इस युग की विशेषता नहीं है। किन्तु क्या इससे यह सिद्ध हो सकता है कि जाति-प्रथा ने भारत को मुस्लिम आक्रामकों का सामना करने में किसी प्रकार अधिक समर्थ बनाया ?

२. स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, चतुर्थ संस्करण, ऑक्सफोर्ड, १९२४, पृ० ३४०-४१, ४२७-३१।

२. वही।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के अग्निकुण्ड से चार मुख्य क्षत्रिय कुलों की उत्पत्ति हुई, तथा इस प्रकार परशुराम द्वारा क्षत्रियों के समूल नाश के पश्चात पुनः पृथ्वी पर क्षत्रिय अवतरित हुए। यह सत्य है कि राजपूतों का उद्गम एक स्थान अथवा एक जाति से नहीं हुआ। नवविजेताओं ने क्षत्रिय पद प्राप्त करने के लिए ब्राह्मणों का धार्मिक आधिपत्य स्वीकार किया, तथा इस प्रकार सर्वोच्च वर्ग द्वारा सामाजिक शोषण को और पुष्ट बनाया।

विदेश यात्रा अथवा समुद्र यात्रा वर्जित कर दी गई। 'स्मृति-चन्द्रिका' में समुद्रयात्रा करनेवाले तीनों उच्चवर्णों में से किसी भी पुरुष के साथ सामाजिक सम्बन्ध वर्जित है, चाहे उसने प्रायश्चित्त ही क्यों न कर लिया हो।[1] स्मृत्यर्थसार में भी समुद्र यात्रा का निषेध है।[2] फिर भी चोलों ने शैलेन्द्रों से युद्ध किया, तथा तेरहवीं शताब्दी तक भारतीय सौदागर फ़ारस की खाड़ी तथा मेडागास्कर तक, और दूसरी ओर दक्षिणी चीन तक जाते रहे। परन्तु भारतीय ग्रंथों में समुद्र यात्रा का धार्मिक निषेध तत्कालीन संकीर्णता एवं कूप-मंडूक वृत्ति का परिचायक है। समय के साथ यह धारणायें श्रृंखलायें बन गईं, जिन्होंने भारतीय साहस तथा उद्यम को कुंठित कर दिया, तथा देश संसार से पिछड़ गया।

सती प्रथा पहले की अपेक्षा इस काल में और भी अधिक प्रचलित थी। विज्ञानेश्वर तथा अपरार्क दोनों ही सती प्रथा का साग्रह अनुमोदन करते हैं, तथा यही बात स्मृत्यर्थसार में भी दृष्टिगोचर होती है। किन्तु स्मृति चन्द्रिका में इस बर्बर प्रथा की कटु भर्त्सना की गई है।[3] ऐसे अभिलेख भी मिलते हैं जिनमें विधवा रानियों, राजकुमारियों तथा अन्य उच्च कुलीन महिलाओं द्वारा दिये गये दानों का उल्लेख है। इसके विपरीत राजधरानों तथा उच्च अधिकारियों के कुलों की स्त्रियों के विधवा हो जाने पर सती हो जाने के नाना उदाहरण मिलते हैं। राजतरंगिणी में ऐसे बहुत से उदाहरण प्राप्त होते हैं।[4] अलबेरूनी[5] के अनुसार विधवा स्त्री या तो जीवन भर वैधव्य का अभिशाप भोग सकती थी, या सती हो सकती थी। प्रायः वह सती होना पसन्द करती थी, क्योंकि जीवित रहने पर उसे मृत्युपर्यन्त असह्य पारिवारिक एवं सामाजिक उपेक्षा तथा उत्पीड़न झेलना पड़ता था। अलबेरूनी लिखता है कि राजाओं की स्त्रियों को उनकी इच्छा के विरुद्ध भी जला दिया जाता था। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि सती प्रथा इस काल में पहले की अपेक्षा अधिक व्यापक हो गई थी। स्त्रियों के प्रति समाज का यह अत्याचार, वैधव्य का तिरस्कार, विधवा का अनादर एवं उत्पीड़न, उसका बलात् भस्मीकरण, विधवा विवाह की भर्त्सना आदि ने भारतीय नारी का हृदय सदैव विद्यमान वैधव्य के भय से आतंकित कर दिया। इसके दो परिणाम हो सकते हैं—कायरता एवं भीरुता का संचार, अथवा जीवन की अनिश्चितता में भोग विलास तथा असंयमित, मनोवांछित प्रणय-लालसा का प्रसार। तत्कालीन साहित्य एवं कला में भी नारी केवल पुरुष के मनोविनोद की साधन मात्र दृष्टिगोचर होती है। उसकी स्वतन्त्र सत्ता का तो कहीं

१. स्मृति चन्द्रिका पृ० १। ३०।
२. स्मृत्यर्थसार पृ० २।
३. वही पृ० ३। ५९४-९७।
४. राजतरंगिणी पृ० ७।१०३,४७८-८०; ८।३६७,६९,४४५,१४४०-४४।
५. अलबेरूनी का भारत, पृ० ३९५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आभास ही नहीं होता। उसका सुख, वैभव, दुःख तथा पराभव पुरुष के भाग्य पर ही आधारित था। ऐसी सामाजिक दशा में दलित नारी यदि वीरों तथा विजेताओं को जन्म दे, तो यह वास्तव में आश्चर्य का विषय होगा।

मदिरापान का प्रचलन शूद्रों में बेरोक था ही, किन्तु राजघरानों में भी सामान्य रूप से सुरापान होता था। उनके नौकर-चाकर भी विवाह तथा अन्य उत्सवों पर मदिरापान कर उन्मत्त हो जाते थे। 'विक्रमांकदेव चरित' में राजा की सहवासिनी स्त्रियों द्वारा खुलकर मदिरा-पान करने का उल्लेख है।[1] 'मानसोल्लास' के अनुसार भी राजा को अपनी पत्नियों को विवाह समारोहों में सुरापान कराना चाहिए।[2] कथासरित् सागर से स्पष्ट है कि राजा अपने मंत्रियों के साथ अथवा अपने अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ स्वच्छन्द रूप से मदिरापान करता था। पारिवारिक समारोहों तथा विवाहोत्सवों में भी मदिरापान का विशेष आयोजन होता था।[3] मदिरापान ने हिन्दू शासकों को प्रमादी बनाकर राजकार्य से उदासीन कर दिया, तथा उनका मुख रति तथा प्रीति की ओर मोड़ दिया। तराइन के द्वितीय युद्ध में भी प्रमादी पृथ्वीराज की उन्मत्त विलासिता शत्रुओं की विजय का कारण बनी।

आर्थिक कारण :

यह निर्विवाद है कि तुर्क विजय से पूर्व भारत अति समृद्ध था। कृषि, उद्योग तथा व्यवसाय उन्नत थे।[4] मगध चावल के लिए प्रसिद्ध था। कश्मीर केसर तथा अंगूरों के लिए विख्यात था, मलाबार मसालों के लिए, तथा कनाडा चन्दन के लिए। तत्कालीन कोशों में फसलों तथा खेतों के सूक्ष्म वर्गीकरण से खेती का विकास स्पष्ट होता है। कृषि की उन्नति के लिए सिंचाई के साधनों का निर्माण हुआ। पांड्य राज्य से मुक्ताओं का संसार भर में वितरण होता था। गुजरात का बना कपड़ा तथा पकी हुई खालें दूरवर्ती अरब देशों में भी बिकती थीं। वारंगल के राज्य से सबसे उत्तम रूई के वस्त्र निर्यात होते थे। मलाबार पूर्व तथा पश्चिम के व्यापार का केन्द्र था। यहाँ के बन्दरगाहों पर एक ओर चीन से, दूसरी ओर फ़ारस की खाड़ी से, तथा अरब तटवर्ती जहाज आया जाया करते थे। दक्षिणी भारत के नाना देशी व्यापार संघ की भांति भारतीय व्यापारी ब्रह्मा तथा सुमात्रा तक जाया करते थे। भारतीय नगरों का वैभव तथा भारतीय शासकों की शानशौकत, भारतीय मन्दिरों के अपार धन की भाँति देश की समृद्धि के परिचायक थे। सभी विदेशी लेखक इसके साक्षी हैं। किन्तु मजदूरों, किसानों तथा छोटे व्यापारियों की दशा के विषय में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती। इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय नृपतियों के धन-वैभव ने, तथा भारतीय मंदिरों की संचित अतुल सम्पत्ति ने आक्रामक लुटेरों को चुम्बक की भांति आकृष्ट किया।

---

१. ११।४४-६८।

२. ३। १३२९।

३. ३४।९३; ३६। ६७; ३९।२०७; ४०। २; ४३। ६४; १०३।२००; ११०।१२४-३०; १११।१८।

४. देखिये, दि स्ट्रगिल फॉर एम्पायर, पृ० ५१५-५२७; घोषाल, स्टडीज इन इंडियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पृ० ३६५-६६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यापारियों द्वारा जनता के शोषण का विवरण 'राजतरंगिणी' में प्राप्त होता है। कल्हण ने मोटे पेट वाले, मस्तक, पलकों, कान की लोरों तथा वक्षःस्थल आदि पर चन्दन लेपन करने वाले सेठों का चित्र प्रस्तुत किया है जो सामान्य जनता का शोषण द्वारा रक्तपान करते हैं।[1] क्षेमेन्द्र ने व्यापारियों द्वारा क्रय-विक्रय में, झूठी तौल में, सूदखोरी में, जनता का सामान अपने पास गिरवी रखने में, दिन दहाड़े चोरी का आरोप लगाया है।[2] यह लोग अपने आप को धार्मिक पुरुष के रूप में दर्शाने का प्रयास करते थे, धर्म ग्रन्थों का श्रवण करते थे, तथा द्वादशी, पितृ दिवस, संक्रमण, सूर्य तथा चन्द्रग्रहण के अवसरों पर देर तक स्नान करते थे, किन्तु कभी दान में कौड़ी भी नहीं देते थे।[3] धर्म उनके लिए केवल शब्दों में सन्निहित था, कर्म में नहीं। मजदूरों तथा कृषकों की दशा शोचनीय थी, अतः जब वे बेगार पर जाते थे, तो अपनी सम्पत्ति भोजनार्थ इन सेठों के यहाँ गिरवीं रख देते थे।[4] व्यापारी मीठा बोलते थे, तथा समय की कठिनता पर खेद प्रकट करते थे, निर्धनों की सहायता करने का अभिनय करते थे, तथा उनकी समस्त सम्पत्ति का अपहरण कर लेते थे।[5] दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि तथा बाढ़ आदि से उन्हें प्रसन्नता होती थी, क्योंकि ऐसी प्राकृतिक विपदाओं में खाद्य सामग्री बहुत ही महंगी बिकती थी, और उन्हें असाधारण लाभ होता था।[6]

उपमिति भव प्रपंचकथा में भी व्यापारियों द्वारा जनता के बेईमानी द्वारा शोषण का उल्लेख है।[7] यहाँ तक कि वे हिजड़ों तथा स्त्रियों तक का व्यापार करते थे।

क्षेमेन्द्र ने सामान्य जनता की निर्धनता का हृदय विदारक विवरण दिया है। निर्धन जन नौकरी करते थे, नंगी पृथ्वी पर सोते थे, निराहार रहते थे, सर्दी गर्मी का वहन करते थे, तथा नारकीय जीवनयापन करते थे।[8] अपने स्वामियों द्वारा बुरी तरह पिट-पिट कर, रातों

---

१. राजतरंगिणी, ८।१३३,३४।
ललाटदृक्पुटश्रोत्रद्वन्द्वहृन्न्यस्तचन्दनः।
षड्बिन्दुर्वृश्चिक इव क्षणात्प्राणान्तकृत्वणिक्॥
पाण्डुश्यामो ग्रिधूमार्द्रः सूच्यासो गहनोदर।
तुम्बीफलोपमः श्रेष्ठी रक्तं मांसं च कर्षति॥

२. क्षेमेन्द्र, कला विलास, २।४।
क्रयविक्रयकूटतुलालाघव निक्षेपरक्षणव्याजैः।
एते हि दिवसचौरा मुष्णन्तिमुदाजनं वणिजः॥

३. वही, २।६–७ न ददाति कर्पदिकामेकाम्।

४. वही, २।११।

५. वही, २।१२, १३।

६. क्षेमेन्द्र, देशोपदेश, २।३४; देखिये, एम० ए० स्टाइन, दि टर्म दिनार एण्ड दि मोनेटरी सिस्टम ऑफ कश्मीर, राजतरंगिणी, अंग्रेजी अनुवाद, परिशिष्ट, टिप्पणी, एच।

७. पृ० ३८, ४२७, ५००, ५५४।

८. क्षेमेन्द्र, सेव्यसेवकोपदेश, २०। भूमिशायी निराहारः शीतवातातपक्षतः।
मुनिव्रतोऽपि नरक्लेशमश्नाति सेवकः॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाग-जाग कर सेवक अपने शरीर का क्षय कर देता था।[1] क्षुद्र वेतन से शरीर और आत्मा को एक साथ रखना दूभर हो जाता था, और वृथा ही सेवक स्वामी की दया की आशा करता था।[2] न जाने कितने लोग निर्धनता के अभिशाप से बचने के लिए सन्यास ग्रहण कर लेते थे।[3]

कलचुरि कर्ण के समकालीन ग्यारहवीं शताब्दी के अपभ्रंश कवि बब्बर ने धनहीन वर्ग का करुण चित्र प्रस्तुत किया है। जाड़े की सर्दी में, वर्षा में, उनके कृश शरीर ठिठुरते थे। भूख जीवन के दुःख को और भी विषम बना देती थी। खाली पेट और दुःखी हृदय उन्हें मूक बना देते थे।[4]

कवि पुष्पदंत के अनुसार निर्धनों को मृत्यु का भी भय नहीं था, क्योंकि जीवन में उन्हें अपने स्वामियों का अत्याचार एवं निष्ठुरता का दिन प्रति दिन वहन करना पड़ता था।[5] निर्धनता के संताप का करुण विवरण हेमचन्द्र सूरि (११२३ ई०) के प्राकृतग्रंथ 'भव भावना' में प्राप्त होता है। कौशाम्बी का एक नागरिक विलाप करता है: "मैं धनहीन हूँ, किन्तु लोग विलास कर रहे हैं। मेरे बच्चे रोते हैं। मैं अपनी स्त्री को क्या दूँ? मेरे पास राज्याधिकारियों को देने के लिए कुछ भी नहीं है। मेरे सम्बन्धी अपनी सम्पत्ति के मद में मस्त हैं। अन्य धनवान लोग मेरा तिरस्कार करते हैं, और मुझे बैठने का स्थान भी नहीं देते। आज घर में न घी है, न तेल, न नमक, न ईंधन, न कपड़ा। मिट्टी का बर्तन भी रिक्त है। कल मेरे परिवार का क्या होगा? मेरी पुत्री की उम्र बढ़ रही है। पुत्र इतना छोटा है कि कुछ कमा नहीं सकता। परिवार के सदस्य बीमार हैं, और मेरे पास उनकी चिकित्सा के लिए धन भी नहीं है। पत्नी रुष्ट है, बहुत से अतिथि आ गये हैं। घर पुराना है, चूता है, मेरी स्त्री झगड़ती है। राजा पथभ्रष्ट है। अब इस देश में रहना सम्भव नहीं है। क्या मैं कहीं और चला जाऊँ? क्या करूँ? किस जल में डूब जाऊँ, क्या पृथ्वी के दूसरे छोर पर चला जाऊँ?....किस ईश्वर की प्रार्थना करूँ? मेरा शत्रु अभी जीवित है, मेरा ईश्वर मेरे विरुद्ध है। धनवान अपना ऋण वापस चाहते हैं। कहाँ जाऊँ[6]?"

इन सभी उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन भारतीय समाज में निर्धन वर्ग का बाहुल्य था। धनी वर्ग अल्प संख्यक था, तथा इनके और धनहीनों के बीच में महान अन्तर था। इसमें सन्देह नहीं कि दरिद्रता मनुष्य को गिरा देती है; उसके आदर्शों को धूलि-

---

१. क्षेमेन्द्र, सेव्यसेवकोपदेश, १९।
स्वमांसविक्रयासक्तः प्रभुवेतालघट्टितः।
निः सत्वः प्रलयंयाति रात्रिसेवासु सेवकः॥

२. वही, १५।

३. वही, ८।

४. प्राकृत पैंगल, सम्पादक, सी० एम० घोष, बिबिलियोथिका इंडिका, ५४५।

५. उत्तर पुराण, पृ० २६७-६८।

६. बुद्ध प्रकाश, सम ऐस्पेक्ट्स ऑफ इंडियन कल्चर ऑन दि ईव ऑव मुस्लिम एग्वेजन्स, दि रिसर्च बुलेटिन (आर्ट्स) ऑफ दि यूनीवर्सिटी ऑफ दि पंजाब, १९६२, संख्या ३९, पृ० १७-१८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धूसरित कर देती है; उसकी आशाओं तथा आकांक्षाओं पर पानी फेर देती है; उसके सिद्धान्तों का उन्मूलन कर देती है, उसका नैतिक अधःपतन कर देती है; उसे भीरु एवं कायर बना देती है; बेईमान कपटी एवं चाटुकार बना देती है। जीवन से भयभीत रहने वाले मनुष्य आत्मरक्षा का क्या उपाय कर सकते हैं ? "भुभुक्षितः किम् न करोति पापं" मानव जीवन प्रत्येक परिस्थिति में सत्य सिद्ध होता है। जिसने जीवन में केवल दुःख ही देखा हो, वह अपने और पराये, मित्र और शत्रु, देशी और विदेशी का भेद क्या जाने। यही कारण था कि भारतीय विचारधारा में 'कोउ नृप होउ हमें का हानी' जैसे पलायनवादी सिद्धान्त प्रतिपादित हुए। यही कारण था कि भाग्यवादी भारतवासियों ने मुस्लिम आक्रामकों का आगमन अपने कर्मों का फल मान कर आत्मसमर्पण कर दिया। इसका यह तात्पर्य नहीं कि सर्वत्र विदेशी आक्रामकों का स्वागत किया गया। किन्तु ऐक्य के अभाव ने, राजनीतिक विभाजन ने, पारस्परिक कलह ने, अनुशासनहीनता ने तथा जन साधारण के दारिद्रय ने आक्रामकों का कार्य अपेक्षाकृत सरल बना दिया। राजाओं तथा सामन्तों द्वारा भारी कर-वसूली के कारण भी प्रजा में निर्धनता एवं असहायता का संचार हुआ। यह कहना कि भारतीय इतिहास में सदैव ही धनी तथा निर्धनों के मध्य बड़ा अन्तर रहा है,[1] यह सिद्ध नहीं करता कि भारतीय पराभव पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यदि यह अन्तर सर्वदा रहा है, तो यह भी न भूलना चाहिये कि विदेशी आक्रमणकारियों को भारत में प्रायः सफलता ही मिली है।

धार्मिक कारण :

तत्कालीन भारतीय समाज में सदा की भांति धर्म तथा धार्मिक क्रिया-कलापों का प्राधान्य था। अतः यह विचारणीय है कि मुस्लिम आक्रामकों द्वारा उत्पीड़ित भारतीय समाज के धैर्य, मनोबल तथा सुरक्षा प्रयास पर विभिन्न धार्मिक गतिविधियों तथा प्रथाओं का क्या प्रभाव पड़ा। बौद्ध तथा ब्राह्मण, दोनों ही धर्म तान्त्रिक प्रभाव से परिप्लावित हो उठे थे, तथा आध्यात्म ने इस नये मार्ग का सहारा पकड़ लिया था। महायान के उच्चादर्श तथा सार्वभौम प्रेम एवं करुणा के सिद्धान्त अब इतने महत्वपूर्ण न रह गये थे तथा जन साधारण के जीवन में उनका स्थान निरर्थक अन्धविश्वास तथा अनैतिक क्रियाओं ने ग्रहण कर लिया था। मंत्र, मंडल तथा अन्य गूढ़ क्रियाओं ने नैतिक एवं आध्यात्मिक विचारों की प्रगति कुंठित कर दी। अन्तिम सत्य अथवा शक्ति को पुरुष तथा स्त्री के रूप में देखा जाने लगा। बौद्ध उसे उपाय तथा प्रज्ञा के रूप में देखते थे। ब्राह्मण धर्मानुयायी उसे शिव एवं शक्ति के रूप में देखते थे। इस प्रकार के विचारों ने उन कामकेन्द्रित क्रियाओं तथा अनुष्ठानों को जन्म दिया जो शीघ्र ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गये, तथा जिन्होंने जनता के नैतिक अधःपतन में विशेष योग दिया। तन्त्रवाद के अभ्युदय के विषय में, उसके आदर्शों के विषय में चाहे जो भी कहा जाय, इसमें सन्देह नहीं कि तंत्रवाद की कामोत्पादक क्रियाओं ने निर्द्वन्द्व विलास को बल देकर नैतिकता पर प्रहार किया, अप्राकृतिक काम-क्रीड़ाओं का प्रचार किया तथा सामाजिक दायित्व की भावना को दुर्बल बनाया।[2] चाहे तन्त्र के सिद्धान्त कितने ही उत्कृष्ट क्यों न रहे हों, उन्हें यथार्थ करने का निर्दिष्ट मार्ग

१. देखिये, घोषाल, स्टडीज इन इंडियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पृ० ३६५।

२. घोषाल, स्टडीज इन इंडियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पृ० ३६७–६८, के कथनानुसार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खतरों से भरा था। न जाने कितने अनुयायी पथभ्रष्ट हो नष्ट हो गये, और अन्तिम लक्ष्य अप्राप्य रहा।

यौन नैतिकता पर धर्म द्वारा किये प्रहार ने निश्चयतः भारतीय समाज को दुर्बल बनाया। तत्कालीन प्रसिद्ध संस्कृत कवि धोयी अपने 'पवनदूतम्' में कृष्ण के मंदिर में देवदासियों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है, तथा उनकी तुलना लक्ष्मी से करता है, मानों वे ही स्वयं इन नर्तकियों के रूप में मुरारी की सेवा के लिए अवतरित हुई हों।[1] तत्कालीन अभिलेखों में भी एक-एक मंदिर में सैकड़ों देवदासियों का उल्लेख है, जिनके रूप-लावण्य तथा व्यक्तिगत सौन्दर्य की आनन्द विभोर होकर प्रशंसा की गई है।[2] देवदासियां अथवा तामिल देवराडियार साधारणतः सभी मंदिरों में रहती थीं। महमूद के आक्रमण के समय सोमनाथ के मंदिर में ५०० नर्तकियां थी।[3] चौजुकुअ के अनुसार गुजरात में चार हजार मंदिर थे, जिन में बीस हजार से अधिक देवदासियां रहती थीं, जो मूर्तियों को भोजन तथा पुष्प अर्पित करते समय दिन में दो बार गीत गाती थीं।[4] अलबेरूनी के अनुसार भारत के शासक ब्राह्मण पुरोहितों के विरोध के बावजूद देवदासी प्रथा को प्रोत्साहित करते थे, ताकि प्रजा उनकी ओर आकृष्ट हो और उनसे प्राप्त धन द्वारा सेना आदि का व्यय निकाला जाय।[5] अनुमान लगाया जा सकता है कि जिस देश के मंदिर वासना के केन्द्र बन जायें, जहाँ धर्म प्रणय-प्रधान बन जाय, जहाँ की सेना का पोषण यौन व्यापार जनित धन से हो, वह देश साहसी तथा कटिबद्ध आक्रामकों का सामना अधिक नहीं कर सकता।

रतिलाल मेहता के अनुसार तत्कालीन तांत्रिक सिद्धान्तों तथा क्रियाओं में ऐसे घृणास्पद, गर्हित एवं भयानक तत्वों का समावेश था कि मानविक व्यभिचार कदाचित् उससे आगे कुछ सोच भी न सके।[6] यद्यपि तन्त्रवाद अपनी गूढ़ता के कारण सीमित रहा, फिर भी ऐसे धर्म से सामान्य चरित्र को बल न मिल कर ठेस ही पहुँचती है।

बौद्ध धर्म के विलोप में भी तन्त्रवाद का योग रहा। "गुह्य समाजतन्त्र" जैसे ग्रंथों में कहा गया है कि कठिन तथा कष्टदायक नियमों के अनुसरण से कदापि सिद्धि नहीं हो सकती; किन्तु कामोपभोग तथा अपनी समस्त इच्छाओं की पूर्ति से मनुष्य को अवश्य सफलता प्राप्त हो सकती है[7]। इस ग्रंथ के अनुसार न चैत्य-निर्माण की आवश्यकता है, न बौद्ध ग्रंथों के पठन की;

तंत्रवाद का भारतीय चरित्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। किन्तु यदि जनता इस प्रभाव से बची रहती, तो वज्रयान तथा शाक्त आदि सम्प्रदाय जनप्रिय न हो पाते।

१. पवनदूतम्, श्लोक २८।
२. देखिये, एन० जी० मजूमदार, इन्स्क्रिप्शन्स ऑफ बंगाल, पृ० ३५ (श्लोक ३०)।
३. हबीब, सुल्तान महमूद ऑफ ग़ज़नी, पृ० ४९।
४. चू फान चे, संपादित हर्थ एण्ड राकहिल, ९२।
५. अलबेरूनीज़ इंडिया, भाग १, पृ० १९-२३।
६. नैपालीज बुद्धिस्ट लिट्रेचर, पृ० २६१।
७. गुह्य समाजतंत्र, बी० भट्टाचार्य द्वारा संपादित, (जी० ओ० एस०), खंड ५३, अध्याय ७, पृ० २७।

दुष्करैर्नियमैस्तीव्रैः सेव्यमानो न सिध्यति।
सर्वकामोपभोगैस्तु सेवयंश्चाशु सिध्यति॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और न त्रिरत्न की उपासना की ही आवश्यकता है।[१] अपने अनुयायियों को ग्रंथकार प्राणियों की हत्या, मिथ्या भाषण, चोरी, तथा पर-स्त्री-गमन करने का निर्देश देता है।[२] उन्हें घोड़ों, हाथियों, कुत्तों, गायों, मनुष्यों का मांस तथा रक्त भक्षण करने की अनुमति देता है।[३] धार्मिक क्रिया कलापों में स्त्रियों का प्रयोग अनिवार्य रूप से प्रतिपादित किया गया है।[४] शत्रु सेना को रोकने के लिए, उसका नाश करने के लिए, विशेष मंत्रों का प्रतिपादन किया गया।[५] परन्तु मुस्लिम आक्रमणों की झंझा के सम्मुख मंत्र निरर्थक सिद्ध हुए।

अनंगवज्र की 'प्रशोपाय विनिश्चयसिद्धि' में भी इसी प्रकार के सिद्धांतों का प्रतिपादन है। स्त्रियों का साहचर्य सर्वदा आवश्यक है, क्योंकि वे पृथ्वी पर प्रज्ञापारमिता की विभिन्न स्वरूप हैं। धार्मिक अनुष्ठानों में माँ, बहन, पुत्री, भांजी आदि सभी का प्रयोग किया जा सकता है। ब्राह्मण, शूद्र, तथा कुरूपा एवं लंगड़ी-लूली स्त्रियों का भी इन काम-प्रधान धार्मिक क्रिया कलापों में प्रयोग किया जा सकता है।[६]

'ज्ञानसिद्धि' के लेखक इद्रभूति के अनुसार वज्रसत्व का कोई भी अनुयायी कभी भी कोई पाप नहीं कर सकता था। उसके लिए न किसी भोजन का निषेध था, न किसी पेय का, और न किसी स्त्री का।[७] लेखिका लक्ष्मीकरा के ग्रन्थ 'अद्वयसिद्धि' में भी स्पष्ट घोषणा है कि स्त्रियाँ मूर्तिमान प्रज्ञा हैं।[८] वास्तव में इस प्रकार के बौद्ध तांत्रिक ग्रन्थ बहुत बड़ी संख्या में लिखे गये। केवल उनके नामों का एक तिब्बती संग्रह तीन खण्डों में आता है।

मुस्लिम आक्रामकों के भीषण आघात ने बौद्धों का विलयन अवश्यम्भावी बना दिया। ब्राह्मण धर्म ने बुद्ध को विष्णु का अवतार मान बौद्ध धर्म को आत्मसात कर लिया। किन्तु जैन धर्म गुजरात तथा राजपूताने में आज भी विद्यमान है। जैनियों पर तन्त्र का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

'शैव और शाक्तों पर तन्त्र का विशेष प्रभाव पड़ा। शाक्त तो तन्त्र के पर्याय हो गये, तथा अनैतिक यौन क्रिया-कलापों का अनुगमन करने लगे। शैवों में भी कापालिक तथा काल-मुख सुरा तथा स्त्री के सन्दर्भ में अति गर्हित क्रियाओं का प्रतिपादन एवं पालन करने लगे।

---

१. गुह्य समाजतंत्र, बी० भट्टाचार्य द्वारा संपादित, (जी० ओ० एस) खंड ५३, अध्याय १७, पृ० १४२।
२. वही, अध्याय १६, पृ० १२०।
३. वही, पृ० १०२। गोमांस हयमांसेन श्वानमांसेन चित्रिणा।
४. गुह्यसमाज तंत्र, पृ० १६१; सेकोद्देशटीका, एम० ई० करेली द्वारा संपादित, (जी० ओ० एस०) खं० ९०, पृ० २४।
५. गुह्यसमाज तंत्र, अध्याय १३, १४, १५, पृ० ६६,६७,८४,८७,९६।
६. बी० भट्टाचार्या, टू वज्रयान वर्कस (जी० ओ० एस०), खंड ४४, पृ० २२, २३;
जनयित्री स्वसारं च स्वपुत्रीं भागिनेयकाम्।
कामयन तत्वयोगेन लघुसिद्धेद्धि साधकः।
७. वही, पृ० ३३।
८. साधनमाला, खं० २, भूमिका, पृ० ४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तन्त्र का बोलबाला होते हुए भी उत्तर भारत में धर्म के अन्य उच्च रूपों का उच्च वर्गों द्वारा अनुसरण एवं प्रचलन भी होता रहा। किन्तु यह निर्विवाद है कि अनैतिकता ने देश को शिथिल तथा प्रमादी बनाया, और स्वतन्त्रता की रक्षा के दायित्व के प्रति उदासीनता उत्पन्न की।

बौद्ध ग्रन्थों की भांति शैव तांत्रिक ग्रन्थ भी पुरुष की कामाकांक्षाओं को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं। पुरुष को भोजन में, मैथुन में, तथा अन्य समस्त कार्यों में मनचाहा भोग करना चाहिये।[1] इस मत के अनुयायी के लिए किसी प्रकार के नियम अथवा प्रतिबन्ध की आवश्यकता नहीं है। मत्स्येन्द्र नाथ द्वारा योगिनी कौल सम्प्रदाय का कहीं आसाम में प्रतिष्ठान हुआ, जिसका मुख्य सिद्धान्त धार्मिक कृत्यों में स्त्रियों के साथ निर्द्वन्द सम्भोग था। अतः उसके कौलज्ञान निर्णय में स्त्रियों पर ही बल दिया गया।[2] मांस तथा सुरा का प्रयोग पूर्णतः वांछनीय है।[3] पांच पवित्र वस्तुएँ, विष्टा, मूत्र, वीर्य, रक्त तथा मज्जा हैं।[4] वज्रोलि, अप्रोलि तथा सहजोलि क्रियाओं में नाथ सम्प्रदाय के अनुयायी मैथुन आदि क्रिया करते थे।[5]

'रुद्रयामल' नामक ग्रन्थ में वशिष्ठ के महाचीन जाने का वृत्तान्त दिया गया है, जहाँ वह मांस, मदिरा, मैथुन आदि के माध्यम से पूर्ण योगी बने।[6]

साधारण साहित्य में भी शैव संन्यासियों के क्रिया कलापों का विस्तृत विवरण मिलता है। राजशेखर की 'कर्पूरमंजरी' में शैव, संन्यासी भैरवानन्द के सिद्धान्तों का वर्णन है। 'मैं मन्त्र और तन्त्र कुछ नहीं जानता। मेरे गुरुओं ने मुझे तप और समाधि से मुक्त कर दिया है। सुरा तथा सुंदरी के उपभोग द्वारा मैं प्रसन्नतापूर्वक मोक्ष की ओर अग्रसर हो रहा हूँ। केवल उमा का प्रेमी पति ही हमें सुरा तथा सुन्दरी के सुख के साथ मोक्ष का मार्ग दिखा सकता है।'[7]

मांस, मदिरा तथा नारी का उपभोग ही कौल सम्प्रदाय का मुख्य सिद्धान्त है। कृष्ण मिश्र के 'प्रबोधचन्द्रोदय' में भी सोम सिद्धान्त नामक गुरु इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। उसके अनुसार स्त्री सम्भोग में ही निर्वाण निहित है। इसे वह 'नित्यसुख' की संज्ञा देता

---

१. कौलज्ञाननिर्णय, बागची द्वारा सम्पादित, पृ० ९०।
गच्छंस्तिष्ठन् (स्वपन्) जाग्रद् भुज्यमाने च मैथुने।
भवदारिद्र्यशोकैश्च विष्ठमूत्रादिभक्षणे।
विचिकित्सो नैव कुर्वीत इन्द्रियार्थैः कदाचन।

१. वही, पृ० ८०।
पूजनीया प्रयत्नेन कुमार्थश्च कुलाश्रितैः।

३. वही, पृ० ६९।

४. वही, पृ० ३६।

५. गोरक्षपद्धति, पृ० ४८।

६. तन्त्रसार, परिशिष्ट, पृ० २३।

७. राजशेखर, कर्पूरमंजरी, सी० आर० लैनमैन द्वारा अनूदित (एच० ओ० एस०) खं० ४, पृ० २३५।
मज्जं पिबामो महिलं रमामो मोक्खं च जामो कुलमग्गलग्गा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है।[1] वह मनुष्य की हड्डियों की माला पहनता है, श्मशान में रहता है, और कपाल में भोजन करता है।[2] वह भैरव का उपासक है, और अपने आराध्य देव को मानव-मांस, मानव-रक्त आदि का चढ़ावा अर्पित करता है। वह सर्वदा एक कपाली स्त्री के साथ रहता है, तथा मदिरा को आत्मा के स्वतन्त्रीकरण का साधन समझता है।

अपभ्रंश कवि पुष्पदंत के 'जसहरचरिउ' में नाथ योगियों का विवरण है.[3] जो मदिरा, गांजा, धतूरा आदि का मुक्त रूप से सेवन करते थे।[4] 'कूलार्णव तन्त्र' में मदिरापान द्वारा प्राप्त सुख के सात स्तरों का उल्लेख है—आरम्भ, तरुणोल्लास, यौवनोल्लास, प्रौढ़ोल्लास, तदन्तोल्लास, उन्मनोल्लास, अनवस्थोल्लास। अन्तिम स्तर पर आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाता है।[5]

सिद्धों द्वारा सुरा तथा सुन्दरी का उपभोग नाना स्थानों पर वर्णित है।[6] संसार त्याग करके वे नीच जाति की स्त्रियों, चाण्डालियों तथा डोम्बियों के साथ रहते थे।[7] कुछ स्त्रियाँ तो अपनी सासों, ननदों, देवरानियों, जेठानियों तथा माताओं तक का वध करके उनके साथ सन्यासिनी हो जाती थीं।[8] इन पद्यांशों का प्रतीकात्मक अर्थ दिया जाता है, पर इसमें संदेह नहीं कि ये तत्कालीन अनैतिकता के गर्त की ओर इंगित करते हैं।

तेरहवीं शताब्दी के 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में 'नीलपट' सम्प्रदाय के अनुयायियों का उल्लेख है, जो सदा स्त्रियों का आलिंगन करते रहते थे, और सबके सामने उनके साथ सम्भोग करते थे। यदि कोई उनका कुशल क्षेम पूछता तो वे कहते थे कि जब तक संसार के सारे प्राणी स्त्री न बन जायें, सारे पर्वत मांस की ढेरी न बन जायें, सारी नदियाँ मदिरा की स्रोत न बन जायें, कोई नीलपट सुखी नहीं हो सकता।[9] मालवा के शासक भोज ने उन्हें निष्कासित भी किया और मृत्यु दण्ड भी दिया[10]। वे अर्द्ध नारीश्वर की भांति व्यवहार-रूप प्रस्तुत करते थे।

वैष्णव भी काम सेवी प्रक्रियाओं में शैवों से पीछे न थे। निम्बार्क नामक तैलंग ब्राह्मण ने सहस्रों गोपियों द्वारा घिरे हुए कृष्ण का रूप प्रस्तुत किया है, जिनकी मुख्य प्रिया राधा थी। निम्बार्क वृन्दावन में रहता था, और उसके अनुयायी भी अधिकतर उत्तर में ही मिलते

---

१. प्रबोधचन्द्रोदय, अंक ३।
तत्र स्त्री सम्भोगादिव्यतिकरेण सुखान्तरं नास्ति।

२. प्रबोधचन्द्रदय, ३।१२।

३. जसहरचरिउ, हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित, कारंजजैन सीरीज, पृ० ६।१३।

४. शकूर मुहम्मद, गोपीचन्द्रेर सन्यास, कलकत्ता यूनिवर्सिटी संस्करण, भाग २, पृ० ४३१–४३२।

५. कौलमार्ग रहस्य, एस० सी० विद्याभूषण द्वारा सम्पादित, पृ० ४०–४१।

६. चर्यागीतिकोश में विरुवापाद, पृ० ९; वही कराहपाद, पृ० ३०; वही, गुराडरीपाद, पृ० १२।

७. चर्यागीतिकोश में भुसुकपाद, पृ० १५९।

८. चर्यागीतिकोश में कराहपाद, पृ० ३८।

९. पुरातनप्रबन्ध संग्रह, जिनमुनिविजय द्वारा सम्पादित (एस० एच० जी०), पृ० ९।

१०. पुरातन प्रबन्ध संग्रह, जिनमुनिविजय द्वारा सम्पादित (एस० एच० जी०), पृ० ९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। राधा और कृष्ण की प्रणय गाथा प्रायः अश्लील गीतों में गायी जाती थी। यह गीत 'धमालि' कहलाते थे, जो दो प्रकार के होते थे। कुछ गीत तो इतने अश्लील होते थे, कि वे केवल गांव के बाहर गाये जाते थे। चंडीदास ने ऐसे बहुत से गीतों का संकलन 'कृष्णकीर्तन' में किया है।[1] जयदेव के 'गीतगोविन्द' में भी राधा और कृष्ण की प्रणय का रोचक वर्णन है। नारायणदास ने 'सर्वांगसुन्दरी' नामक टीका में इसका अत्यन्त कामप्रधान अर्थ किया है। पर-स्त्री-गमन का आदर्श वैष्णवों के 'परकीया' प्रेम (अविवाहित स्त्री के साथ प्रेम) के सिद्धान्त में निहित है, जिसे स्वकीया अर्थात् स्वपत्नी प्रेम से उच्च माना गया है। डा० दिनेशचन्द्र सेन ने दो प्राचीन प्रमाणों का उल्लेख किया है जिनसे सिद्ध होता है कि परकीया और स्वकीया सिद्धान्तों के अनुयायियों के बीच शास्त्रार्थ हुआ करते थे। स्वकीया प्रेम के अनुयायी परास्त होते थे, और उन्हें परकीया आदर्श स्वीकार करना पड़ता था।[2]

अरब लेखक शराफ़-अल-जमां ताहिर मर्वज़ी अपने ग्रन्थ 'तबाइ अल-हयवां' में हिन्दू धर्म की गर्हित रीतियों का उल्लेख करता है।[3]

यदि हम तांत्रिक ग्रन्थों का प्रतीकात्मक विश्लेषण भी करें, फिर भी तत्कालीन धर्म के प्रवक्ताओं द्वारा ऐसे कामोत्तेजक प्रतीकों का चयन अवश्यमेव उनकी विलासोन्मुख मनोवृत्ति का परिचायक है। निष्पक्ष दृष्टिकोण के समाज की इस प्रकार की गतिविधियों से केवल एक ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है। विलासिता ने भारतीयों को भीरू तथा कर्त्तव्य-विमुख बना दिया था। जब वे बाह्य आक्रमणों का वेग न थाम सके, तो उनकी पराजय ने उन्हें पुनः तथा बार-बार स्वतंत्रता संघर्ष करने के लिये प्रेरित नहीं किया। ध्वस्त मनोबल के कारण भारतीय राजे, सामन्त तथा प्रजा, नाना प्रकार के पलायनवादी एवं गर्हित धार्मिक क्रिया-कलापों के शिकार हो गये। सादगी से जीवन व्यतीत करने वाले, भाई-चारे के सूत्र में बंधे भाग्यवादी वीर मुसलमान आक्रामकों ने हिन्दू प्रतिरोध का दुर्बल प्रयास निष्फल कर दिया।

बड़े-बड़े मन्दिरों का निर्माण इस युग की विशेषता थी। ये मंदिर अतुल सम्पत्ति, वैभव एवं व्यभिचार के केन्द्र बन गये। विभिन्न राज्यों का जो धन प्रजा-हित एवं सुरक्षा के कार्यों में व्यय होना चाहिये था, मन्दिरों के सृजन, अलंकरण एवं पोषण में व्यय हुआ। धर्मान्ध जनता भी पुरोहितों एवं पुजारियों के शोषण की शिकार बनी। अन्ध-विश्वास ने भारतीयों को आत्मरक्षा का दायित्व देवताओं पर थोपने के लिए प्रेरित कर उन्हें अकर्मण्य बनाया। मन्दिरों के अपार धन ने महमूद जैसे आक्रामकों को बार-बार देश पर प्रहार करने के लिये आकृष्ट किया। भारत के शासक अपने राज्यों की रक्षा में असमर्थ रहे; और मन्दिरों के असहाय देवता भी अपने धन एवं वैभव की रक्षा न कर सके। मूर्तियां टूटीं, मन्दिर ध्वस्त हुए, और देश की संचित सम्पत्ति विदेशियों के हाथ लगी।

यदि तत्कालीन मन्दिरों की शिल्पकला का अवलोकन किया जाय, तो उनमें प्रस्तुत

---

१. दिनेशचन्द्र सेन, बंगाली लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर, पृ० १९६।

२. वही; टिपिकल सिलेक्शन्स फ्रॉम बंगाली लिटरेचर, भाग २, पृ० १६३८–१६४३।

३. तुरुकून व—मदहाहिबु शनी अतुन। तबाइ अल-हयवां, बी० मिनोर्सकी द्वारा सम्पादित, रायल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन, १९४२, अध्याय १२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यौन चित्रों का प्राधान्य अवश्यमेव इतिहास के विद्यार्थी को प्रभावित करेगा। विद्वानों ने यहां तक कल्पना की है कि जैसे प्रणय एवं सम्भोग के चित्र मन्दिरों की दीवारों पर खोदे जाते थे, वैसे ही वास्तविक चित्र अन्दर उपासक तथा देवदासियां प्रस्तुत करते थे। मध्ययुगीन कला का वैयाकरण भोज निर्देश करता है कि मन्दिरों तथा अन्य भवनों की दीवारों की सुन्दरियों के मैथुन चित्रों से तथा नवयुवकों के कामोत्तेजित रूपों से अलंकृत करना चाहिये।[1] काम जीवन का धर्मोपदिष्ट पुरुषार्थ है। इसी पर प्रजनन आधारित है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानकर्त्ताओं के अनुसार काम से ही मनुष्य के हृदय में समस्त उच्च भावों एवं आदर्शों की उत्पत्ति होती है। अतः काम को गर्हित अथवा अनैतिक अथवा गोपनीय समझना अनुचित है। तथापि जीवन में काम के अतिरिक्त अन्य पुरुषार्थ भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उड़ीसा तथा खजुराहो के तथा तत्कालीन अन्य मन्दिरों पर अंकित सहस्रों मैथुन चित्रों से तो यही लगता है कि जीवन तथा धर्म का सार केवल शारीरिक प्रणय में ही सन्निहित है। इसमें सन्देह नहीं कि कला के ये अद्वितीय उदाहरण तत्कालीन तंत्रवाद, अन्ध-विश्वास, अवांछनीय क्रियाकलापों तथा व्यापक अनैतिकता पर प्रकाश डालते हैं। विदेशी आक्रमणों से सन्तप्त भारत तंत्रवाद एवं मैथुन के सुगम माध्यम से आत्म-रक्षा नहीं कर सकता था।

●

१. समरांगण सूत्रधार, (जी० ओ० एस०), ३४, पृ० ३३–३४; देखिये, हरमान गोएट्ज, फाइव थाउजण्ड इयर्स ऑफ इंडियन आर्ट, १९६०, पृ० १३४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपसंहार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्राट हर्ष की मृत्यु होते ही उसका भव्य साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया, तथा विभिन्न शक्तियां पुनः साम्राज्य निर्माण के अन्तर्द्वन्द्व में जूझ उठीं। राजनीतिक रंगमंच पर कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार, बंगाल के पाल, तथा मान्यखेट के राष्ट्रकूट मुखरित हो उठे। किन्तु जब भारत में इन शक्तियों का प्रभाव बढ़ रहा था, पश्चिमी एशिया में प्रसारवान इस्लाम का विजयध्वज अनेक साम्राज्यों को धूलिसात कर भारतीय सीमा की ओर अग्रसरित हो रहा था। और ७१२ ई० में 'इस्लाम के दीवाने' सिन्ध के शासक दाहिर से आ टकराए, तथा उसकी सत्ता की इतिश्री कर सिन्थ पर अधिकार स्थापित कर लिया।

उपर्युक्त तीनों भारतीय शक्तियों में वैभव, शौर्य एवं धन-धान्य में 'महोदयश्री' के शासक अग्रगण्य थे। भारत के अन्तस्थल गंगा जमुना के दोआब में स्थित 'महोदयश्री' राजनीतिक प्राथमिकता का प्रतीक बन गई थी। गुर्जर, प्रतिहार, पाल तथा राष्ट्रकूट कन्नौज पर अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए परस्पर चिरकालिक संघर्ष में रत रहे। उन्होंने इस ओर ध्यान भी नहीं दिया कि अरब साम्राज्य के अभ्युदय एवं प्रसार से उनका भी भविष्य प्रभावित हो सकता था। सिन्ध की आधारशिला से अरब कभी भी अन्य भारतीय राज्यों के विरुद्ध आक्रामक अभियान कर सकते थे। परन्तु आत्म-गौरव में उन्मत्त भारत के भाग्य-विधाता भावी संकट को बिल्कुल न पहचान सके। अरबी व्यापारियों के प्रसार द्वारा उन्हें इस्लाम की आक्रामक प्रसारवादी प्रवृत्ति का आभास हो जाना चाहिए था। उनकी अस-तर्कता तथा विदेशियों के विरुद्ध आक्रामक नीति का सर्वथा अभाव भावी भारतीय पराभव के लिए उत्तरदायी सिद्ध हुए।

दसवीं शताब्दी के अन्त में भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर तुर्क शक्ति का प्रसार बढ़ा। शाहीय वंशीय शासकों ने मुसलमानों का मार्ग रोकने का असफल प्रयास किया। ग्यारहवीं शताब्दी भारत के लिए भीषण संकट का उपहार ले प्रारम्भ हुई। सुल्तान महमूद ने देश पर नाना आक्रमण कर भारतीय वैभव धूलि-धूसरित कर डाला। भारतीय शासकों ने असावधानी, प्रमाद अथवा कायरता के उदाहरण प्रस्तुत किये। महमूद की आशातीत सफलता तथा मंदिरों के विध्वंस एवं अप्रत्याशित लूट-पाट ने देश के नैतिक बल का अपहरण कर आर्थिक दृष्टिकोण से भी दारिद्र्य का प्रसार किया। भारतीय शासकों तथा सामन्तों की कमर टूट गई। सीमान्त अनाथ एवं अरक्षित हो गया, तथा परिणामतः वहाँ तुर्क सत्ता स्थापित हो गई। भारत पर महमूद के आक्रमणों का इतिहास संकट के समक्ष भी विभाजक भारतीय प्रवृत्तियों का दुःखद वृत्तान्त है। भारतीय शासकों ने अनुभव से भी कुछ न सीखा। न तो उन्होंने अपनी सामरिक प्रणाली में ही वांछित परिवर्तन किये, न सामूहिक प्रतिरोध के प्रयास किये, न सीमान्त रक्षा का समुचित प्रबन्ध किया; और न कभी संकट स्रोत पर दृढ़ निश्चय हो प्रहार करने की योजना ही बनाई। कूप-मंडूक वृत्ति के शिकार अधिकतर मदान्ध भारतीय शासकों ने अपने अपने द्वार पर ही शत्रु का अभिनन्दन किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महमूद के आक्रमणों की झंझा से विक्षिप्त भारत शीघ्र ही विस्मृति के आवरण में अपने पुराने घाव भूल गया, तथा पुनः नवोदित राजवंशों में राजनीतिक प्रभुता का संघर्ष प्रारम्भ हो गया। कान्यकुब्ज के गाहड़वाल, जेजाकभुक्ति के चन्देल, सांभर के चौहान, बंगाल के सेन, मध्यप्रदेश के कलचुरि, गुजरात के चौलुक्य तथा मालवा के परमार पारस्परिक रस्साकशी में जूझ उठे। इस डेढ़ सौ वर्षों के युग को साम्राज्यवादी अन्तर्संघर्ष का काल कह सकते हैं। धन, स्त्री, भूमि आदि के लिए भारत के ये प्रतिभा-सम्पन्न राजवंश सर्वदा आपस में लड़ते रहे। परिणामतः पारस्परिक वैमनस्य इतना बलवान हो गया कि बाह्य शक्ति द्वारा भी किसी राजवंश के नाश से अन्य शासकों को चिन्ता की अपेक्षा प्रसन्नता हुई। एकता का अभाव सदा दौर्बल्यजनक होता है। भारतीय शासकों को सीमान्त पर विकसित होनेवाली उस मुस्लिम शक्ति का आभास तक नहीं था जिसने कालान्तर में उन्हें आत्मसात कर लिया।

यदि मुहम्मद ग़ोरी के स्थान पर महमूद ग़ज़नवी पुनः अवतरित हो भारत पर दृष्टि-पात करता, तो तुरन्त इस देश का परिचित, विभाजित रूप पहचान लेता। वही फूट, अजेय वैमनस्य, स्वार्थपरता, विलासिता, निरर्थक पारस्परिक संघर्ष, भारत चित्र के अभिन्न अंग थे। गुजरात में मुँह की खाने के उपरान्त दूसरा मार्ग पकड़ मुहम्मद ग़ोरी ने ११९१ ई० में तराइन के मैदान में अजमेर एवं दिल्ली के अधिपति पृथ्वीराज से लोहा लिया, किन्तु फिर पराजित हुआ। विजयी पृथ्वीराज ने न तो शत्रु का पीछा ही किया, और न सीमान्त की रक्षा का समुचित प्रबन्ध। चौहान विलासिता के सुख-स्वप्नों में भूल ही गया कि ग़ोरी पुनः आक्रमण कर सकता था। और हुआ भी यही। मुइज़्ज़ुद्दीन ने ११९२ ई० में पृथ्वी-राज को पुनः तराइन के रणक्षेत्र में आ ललकारा। परन्तु शक्तिशाली भारतीय शासक विकट विपत्ति के समक्ष भी मदिरा और महिला न भुला सका। अर्ध-सुप्त-अर्ध-जागृत पृथ्वीराज भारत की स्वतंत्रता की रक्षा न कर सका। मुइज़्ज़ुद्दीन विजयी हुआ, तथा भारत में मुस्लिम राज्य का शिलान्यास हुआ। अन्य भारतीय शासक भी बारी बारी से परास्त हुए, तथा इस देश की राजनीतिक रूपरेखा ही बदल गई। विभाजन, वैमनस्य, पारस्परिक युद्ध, सामरिक अयोग्यता एवं सामाजिक दोष पहले की भांति भारतीय शक्तियों की पराजय के लिए उत्तरदायी रहे। मुसलमानों का उत्साह, उनकी एकता, भ्रातृ-भावना तथा अनुशासन, उनके धार्मिक तथा आर्थिक लक्ष्य उनके अजेय पराक्रम के सहायक अंग थे।

इस राजनीतिक पतन के परोक्ष में धार्मिक अधोगति एवं सामाजिक वैषम्य ने मानसिक तथा नैतिक दौर्बल्य का संचार किया। समाज असंख्य जातियों तथा वर्गों में विभाजित हो गया था। जातिवाद की कठोरता ने देश गतिहीन बना दिया। शासकों ने इस अन्तर एवं कलहयुक्त विभाजन को मिटाने का कोई प्रयास नहीं किया। सेना में भी ऊँच-नीच के भाव विद्यमान रहे। छुआ-छूत ने देश के सामाजिक जीवन को विषधर की भांति डस लिया।

धर्म के नाना नवीन रूपों ने सनातन नैतिक अवलम्बनों पर तीखा प्रहार कर जीवन की व्यावहारिक गति-विधि झकझोर दी। वज्रयान, सहजयान, तन्त्रवाद, वाममार्ग आदि ने व्यभिचार को धर्म की संज्ञा देकर मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों को सामान्य व्यावहारिक अनुशासन से मुक्त कर दिया। देवालय कामशिल्प से आच्छादित हो गए; मंदिरों के प्रांगण देवदासियों के नूपुरों से गुंजरित हो उठे; अपार सम्पत्ति ने पुरोहितों तथा मठाधीशों को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विलासिता के गर्त में ढकेल दिया; देवदासियों के यौन व्यापार से राज्य-सेनाओं का खर्चा चलने लगा। ऐसे धार्मिक अथवा सामाजिक सन्दर्भ में शत्रु से मोर्चा लेने की दृढ़ता कहां परिलक्षित होगी ?

भारतीय सेनानायक हारकर भी यह न सीख सके कि द्रुतगामी अश्वारोही स्थूल हस्ति सेना की अपेक्षा कहीं अधिक सफलता प्राप्त कर सकते थे। विदेशी घुड़सवार तीरन्दाजों ने भारतीय हाथियों तथा सैनिकों के मुँह मोड़ दिये। उनकी तीव्र गति, सहसा आक्रमण की नीति, निर्णय के क्षण में सुरक्षित सेना का प्रयोग, अर्ध-चन्द्राकार सेना व्यूह आदि ने भारतीयों को भौंचक्का कर दिया। किन्तु कटु अनुभव भी उनके लिए निष्फल रहे। उन्होंने अपने युद्ध के ढंग न बदले। परिणाम-स्वरूप एक के बाद दूसरे, दूसरे के बाद तीसरे युद्ध में इतिहास ने अपने आपको दुहराया। पराजय का आवृत्त विस्तृत होता चला गया। मुस्लिम शक्ति सत्तारूढ़ हो गई। भारतीय इतिहास का नवीन युग प्रारम्भ हुआ। यद्यपि कश्मीर, नेपाल, आसाम, उड़ीसा तथा दक्षिण आदि के प्रदेश मुस्लिम सेना से कुछ काल के लिए और मुक्त रहे, इसका कारण भौगोलिक ही है।

"मध्ययुगीन हिन्दू भारत के राज्य जिस प्रकार साम्राज्य निर्माण में असमर्थ थे, उसी प्रकार दृढ़ सन्धि करने में। उनकी विशाल तथा स्थूल सेनाओं ने, जो सदा लड़ती रहती थीं, वीर तो अवश्य उत्पन्न किये, किन्तु तुर्कों का सामना करने में, जिनका सैन्य-विज्ञान तथ्यहीन अयोग्य सिद्धान्तों अथवा प्राचीन परम्परा से बोझिल नहीं हो पाया था, सर्वथा असमर्थ रही[1]।"

१. दि वन्डर दैट वाज इंडिया, १९६१, पृ० १३६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहायक ग्रन्थों की सूची

संस्कृत अपभ्रंश तथा प्राकृत ग्रंथ

अर्जुन वर्मन, रसिक संजीवनी, बम्बई, १८८९ ।

अपरार्क, याज्ञवल्क्य स्मृति पर भाष्य, आ० सं० सी०, पूना, १९०३–४ ।

अब्दुल रहमान, सन्देशरासक, बम्बई, १९४५ ।

अग्नि पुराण, पंचानन तर्करत्न द्वारा संपादित, बंगवासी प्रेस, कलकत्ता ।

अत्रिस्मृति, धर्मशास्त्र संग्रह, जीवानन्द विद्यासागर द्वारा संपादित, कलकत्ता १८७६ ।

अंगिरस स्मृति––अंगिरस के विश्वरूप, अपरार्क, मेधा तिथि, हरदत्त आदि ने अनेक उद्धरण दिये हैं। जीवानन्द के संग्रह में इस अंगिरस स्मृति के केवल ७२ श्लोक मिलते हैं ।

अथर्ववेद, संपादक, आर० रॉथ और डब्ल्यु० डी० हिटनी, बर्लिन, १८५६ ।

आपस्तम्बधर्मसूत्र, हरदत्त की टीका सहित, संपादक, हलस्यनाथ शास्त्री, कुम्भकोणम, १८९५ ।

औशनषधर्मसूत्र, डेकन कॉलेज संग्रह (दो अप्रकाशित प्रतियां) कौटिल्य, विश्वरूप, हरदत्त ने औशनष का कई जगह उल्लेख किया है ।

औशनष स्मृति, इसमें मनु, भृगु, प्रजापति के साथ उशना (औशनष) का नाम भी आया है। इसमें पुराण, वेदान्त आदि की चर्चा तो है किन्तु राजनीति विषयक विवरण नहीं है। मिताक्षरा तथा अपरार्क में उशना के गद्यांश पद्यांश दोनों आये हैं ।

कल्हण, राजतंरगिणी, कलकत्ता, १८३५ ई० ।

कृष्ण मिश्र, प्रबोध चन्द्रोदय, त्रिवेन्द्रम, १९३६ ।

कोक्कोक, रति रहस्य, संपादक, सदानन्द शास्त्री, लाहौर ।

कृष्णानन्द, आगमवागीश, तंत्रसार ।

कौल मार्ग रहस्य, एस० सी० विद्याभूषण द्वारा संपादित ।

कौल ज्ञान निर्णय, संपादक, डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची, कलकत्ता, सं० १९३४ ।

कौटिल्य, अर्थशास्त्र, मैसूर, १९०९ ।

गोपीनाथ दीक्षित, संस्काररत्नमाला ।

गोरखनाथ, गोरक्ष पद्धति, बम्बई, वि० सम्वत्, १९७० ।

गौतमधर्मसूत्र, सम्पादक, स्टेंजसर, लन्दन, १८७६, हरदत्त की टीका के साथ, पूना, १९१० ।

गुह्य समाजतन्त्र, सम्पादक, हरप्रसाद शास्त्री, बड़ौदा, १९३१ ।

गणेशदास बदरा, राजदर्शिनी, यह पुस्तक पृथ्वीराज रासो आदि ग्रन्थों के आधार पर १८४७ ई०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में लिखी गई है। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक नहीं है। इंडिया आफिस क्र० सं० ५०७।

चतुर्भाणि (शृंगारहाट) वासुदेव शरण अग्रवाल तथा मोतीचन्द्र द्वारा सम्पादित, बम्बई, १९५९।

चन्द्रशेखर, सुरजन चरित महाकाव्य, कलकत्ता, १९५१।

चण्डेश्वर, गृहस्थरत्नाकर, बिब्लियोथिका इंडिका, १९२५।

चमोगीत कोश, सम्पादक, पी० सी० बागची तथा शांतिभिक्षु शास्त्री।

जसहरचरिउ, हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित, कारंजा जैन सीरीज।

जयसिंह सूरी, हम्मीर मदमर्दन, बड़ौदा, १९२०।

जयसिंह सूरी, सुकीर्तिकल्लोलिनी, जी० ओ० एस०, बड़ौदा।

जयदेव, गीत गोविन्द, बम्बई, १९२९।

जयानक, पृथ्वीराज विजय, अजमेर, १९४१।

जल्हण, सूक्ति मुक्तावली, बड़ौदा, १९३८।

जिनपाल, खरतरगच्छपट्टावलि, सिंघी जैनमाला, बम्बई।

जिनविजय जी, द्वारा सम्पादित, पुरातन प्रबन्ध संग्रह, कलकत्ता, १९३६।

जिनसेन प्रथम, आदि पुराण, उत्तर पुराण के साथ महापुराण में सम्पादित, इन्दौर, वि० सं० १९७३-७५।

जीनराज, द्वितीय राजतरंगिणी, सम्पादक, पी० वी० टसन, बम्बई, १८९६।

दामोदर गुप्त, कुट्टनीमतम्, अभिदेव विद्यालंकार, वाराणसी, १९६१।

देवण भट्ट, स्मृति चन्द्रिका, सम्पादक, एल० श्रीनिवासाचार्य, ६ भाग, मैसूर, १९१४–२१।

देवल स्मृति, सम्पादक, छुट्टनलाल स्वामी, मेरठ, वि० सं० १९८४।

धनंजय, दशरूप, कोलम्बिया यूनीवर्सिटी इण्डो-इरानियन सीरीज, खंड ७, १९१२।

धनपाल,भविष्यत्कथा, जी० ओ० एस०, बड़ोदा, १९२३।

धोयी, पवन दूतम्, सम्पादक, मनमोहन चक्रवर्ती, (जे० एस०एस० वो० १९०५,पृ० ५३-६८); सम्पादक, चिन्तामणि चक्रवर्ती, कलकत्ता, १९२६।

नयचन्द्र, रम्भामंजरी, बम्बई, १८८९।

नयचन्द्र सूरी, हम्मीर महाकाव्य, बम्बई, १८७६।

नागवर्मा, कर्णाटक भाषाभूषण, बंगलौर, १८८४।

नारदपुराण, क्षेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा सम्पादित, बम्बई।

पतंजलि महाभाष्य, सम्पादक एफ० कीलहॉर्न, ३ भाग, बम्बई, १८९२–१९०९।

पद्मगुप्त, नव साहसांक चरित, बम्बई, १८९५।

पाराशर-स्मृति, मध्वाचार्य भाष्य सहित, बम्बई, १८९३–१९११।

प्राकृत पैंगलम्, सम्पादक, सी० एम० घोष, बिब्लियोथिका इंडिका, क्र० सं० ५४५।

प्रह्लादनदेव, पार्थपराक्रम व्यायोग, बड़ौदा, १९१७।

पुष्पदन्त, महापुराण, सम्पादक, पी० एल० वैद्य, खण्ड १, बम्बई, १९३७–४१।

पुष्पदंत, नायकुमार चरिउ, सम्पादक हीरालाल जैन, कारंजा जैन सीरीज।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुष्पदंत, जसहरचरिउ, सम्पादक, पी० एल० वैद्य, कारंजा जैन सीरीज।
'पृथ्वीराज प्रबन्ध' को मुनिजिनविजय ने सम्पादित करके 'पुरातन प्रबन्ध' संग्रह में सिंघी जैन ग्रन्थमाला में प्रकाशित कराया है। इसमें कई प्रबन्धों का संग्रह है, १९३६।
पृथ्वीराज रासो, चन्द्रवरदाई, सम्पादक, श्यामसुन्दर दास, वाराणसी, १९०४।
बालचन्द्र सूरी, वसन्त विलास महाकाव्य, बड़ौदा, १९१७।
बौधायनधर्मसूत्र, सम्पादक ई० हुल्ट्स, लाइपज़िग, १८८४।
बृहद्धर्म पुराण, कलकत्ता, विक्रम सम्वत्, १३१४।
भवदेव भट्ट, प्रायश्चित प्रकरण, सम्पादक, गिरीशचन्द्र वेदान्ततीर्थ, राजशाही, १९२७।
भोज, समरांगण सूत्रधार, दो खण्ड, सम्पादक, गणपति शास्त्री बड़ौदा, १९१४–२५।
भोजराज, सरस्वती कंठाभरण, कलकत्ता, १८९४।
मनुस्मृति, वी० एन० मांडलिक द्वारा सम्पादित, बम्बई, १८८६।
मदन, पारिजात मंजरी, लाइपज़िग, १९०६।
मत्स्य पुराण, आ० स० सी० पूना, १९०७।
मत्स्येन्द्रनाथ, कौल ज्ञान निर्णय, पी० सी० बागची द्वारा सम्पादित कलकत्ता, १९३४।
मेरुतुंग, प्रबन्ध चिन्तामणि, जिनविजय जी द्वारा सम्पादित, बम्बई, १८८८।
यादव प्रकाश, वैजयन्ती, सम्पादक, जी० ओपर्ट, मद्रास, १८९३।
रमाप्रसाद चन्दा, गौड़राज माला, राजशाही, बंगला सम्वत्, १३३९।
राजशेखर, कर्पूर मंजरी, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९४८।
राजशेखर, कर्पूर मंजरी, सी० आर० लेनमैन द्वारा अनूदित, (एच० ओ० एस०), खण्ड ४।
राजशेखर, विद्धशाल मंजिका, वी० आर० आरवे द्वारा सम्पादित, पूना, १८८६।
राजशेखर, काव्य मीमांसा, सी० डी० दलाल तथा आर० ए० शास्त्री द्वारा सम्पादित, बड़ौदा, १९३४।
राजशेखर, प्रबन्ध कोश, सम्पादक हीरालाल, गुजराती सभा, बम्बई।
रासमाला, जी० के० फारबेस द्वारा सम्पादित, ऑक्सफोर्ड, १९२५।
लघु भारत, भाग २, पृ० १४०, जे० ए० एस० बी०, ६५, २६ में उद्धृत।
लक्ष्मीकरा, साधनमाला, सम्पादक, बी० भट्टाचार्य, जी० ओ० एस०, बड़ौदा, १९२८।
लक्ष्मीधर, कृत्यकल्पतरु, रंगस्वामी आयंगर द्वारा सम्पादित; बड़ौदा, १९४१।
लक्ष्मीधर, विरुद्ध विधिविध्वंस, इंडिया आफिस लायब्रेरी, लन्दन, के कैटलाग, भाग ३, पृ० ४९०।
वल्लभदेव, सुभाषितावली, बम्बई, १८८६।
वराह पुराण, सम्पादक, हृषिकेश शास्त्री, कलकत्ता, १८९३।
बाणभट्ट, हर्षचरित, सम्पादक, जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता, १८९२।
व्यासस्मृति, धर्मशास्त्र संग्रह, खण्ड २, पृ० ३२१–४२, कलकत्ता, १८७६।
विल्हण, विक्रमांकदेव चरित, बम्बई, १८७५।
विल्हण, कर्ण सुन्दरी, बम्बई, १८१८।

State Museum Library Lucknow

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विद्यापति, पुरुष परीक्षा, बम्बई, १९१५ ।
विश्वरूप, याज्ञवल्क्य स्मृति पर भाष्य, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज, १०२२–२४ ।
विज्ञानेश्वर, मिताक्षरा, याज्ञवल्क्य स्मृति पर भाष्य, बम्बई, १९०९ ।
वैखानस धर्मसूत्र, पं० टी० गणपति शास्त्री, द्वारा सम्पादित, त्रिवेन्द्रम संस्कृत माला, १९१३ ।
शकूर मुहम्मद, गोपीचन्देर सन्यास, कलकत्ता यूनिवर्सिटी संस्करण ।
शातातप-स्मृति, विश्वरूप, हरदत्त, अपरार्क ने शातातप को धर्मवक्ताओं में गिना है। इंडिया आफिस पुस्तकालय के पुस्तक सूची में १३६२ वां ग्रन्थ शातातप स्मृति का है जो १२ अध्यायों में है । अनेक धर्मग्रन्थों में शातातप का उद्धरण मिलता है ।
शारंगधर पद्धति, सम्पादक, पी० पीटर्सन, बम्बई, १८८८
सूरज प्रकाश, सिद्धर्शि सूरी, उपमिति, भवप्रपंचकथा, सम्पादक, पी० पीटर्सन तथा जैकोबी, कलकत्ता, १९०९ सम्पादक, देवचन्द्र लालभाई, बम्बई, १९१९ ।
संशोधन मुक्तावली, भाग १–४, वी० वी० मिराशी, एकोद्देश टीका, एम० ई० करेली द्वारा सम्पादित, जी० ओ० एस०, बड़ौदा, खण्ड ९०, १९४१ ।
सोमेश्वरदेव, मानसोल्लास, २ खण्डों में सम्पादित, बड़ौदा, १९२५, १९३९ ।
सोमेश्वर, कीर्तिकौमुदी, बम्बई, १८८३ ।
सोमदेव, नीतिवाक्यामृत, माणिकचन्द्र ग्रन्थ माला सीरीज, क्र० सं० २२ ।
सोमदेव, ललित विग्रहराज नाटक, सम्पादक, एफ० कीलहॉर्न, १९०१ ।
सोमदेव, कथा सरितसागर, २ खण्ड, सम्पादक, केदारनाथ शर्मा, पटना, १९६० । अंग्रेजी अनुवाद, टॉनी, २ खण्ड, कलकत्ता, १८८० ।
सोड्ढल, उदयन सुन्दरी कथा, जी० ओ० एस०, बड़ौदा ।
स्वयंभू, पौमचरिउ, सम्पादक, एच० सी० भयाणी, सिंधी जैन ग्रन्थमाला, ४९ ।
संध्याकर नन्दी, रामचरित, सम्पादक, आर० सी० मजूमदार, आर० जी० बसाक, राजशाही, १९३१ ।
संस्कार प्रकाश, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी ।
हलायुध, अभिधान रत्नमाला, लन्दन, १८६१ ।
हारीत संहिता, बंगवासी प्रेस, कलकत्ता, वि० सं०, १३१६ ।
हिरण्यकेशि धर्मसूत्र, यह हिरण्यकेशि कल्प का २६ वां और २७ वां प्रश्न है। यह स्वतन्त्र रचना नहीं प्रतीत होती है ।
हेमचन्द्र, द्वयाश्रम महाकाव्य, बम्बई, १९१५ ।
हेमचन्द्र, कुमारपाल चरित, बम्बई, १९००, १९३६ ।
हेमचन्द्र, देशीनाम माला, कलकत्ता, १९३१ ।
हेमचन्द्र, सिद्ध हेमचन्द शब्दानुशासन, वाराणसी, १९०५ ।
श्रीधरदास, सदुक्तिकर्णामृत, कलकत्ता, १९२१ ।
श्रीधर, स्मृत्यर्थसार, सम्पादक, रंगनाथ शास्त्री, पूना, १९१२ ।
श्रीहर्ष, नैषध चरित, बम्बई, १९१९ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षेमेन्द्र, समयमातृका, काव्यमाला, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई।
क्षेमेन्द्र, औचित्य विचार चर्चा, सम्पादक, हरीदास, संस्कृत सीरीज में सम्पादित, बनारस, १९३३।
क्षेमेन्द्र, कला विलास काव्यमाला, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।
क्षेमेन्द्र, देशोपदेश, सम्पादक, मधुसूदन कौल, पूना, १९२३।
क्षेमेन्द्र, सेव्यसेवकोपदेश, काव्यमाला, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।
क्षेमेन्द्र, कवि कंठाभरण, काव्यमाला सीरीज, संख्या ४, बम्बई, १८८७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अरबी तथा फ़ारसी ग्रन्थ

अबूरेहाँ अलबेरूनी, किताबुल हिन्द, अनुवादक ई० सी० सचाऊ, अलबेरूनीज इंडिया, लन्दन, १९१४।

अबुलफ़िदा, तकवीमुल-बुलदान, पेरिस।

अबूनस्र उत्बी, तारीख-उल-यामिनी, कैरो, १८६९।

अबूअली अहमद, तजारिबुल-उमम, इस ग्रन्थ का परिचय एवं संदर्भ मुहम्मद नाज़िम ने अपनी पुस्तक लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ सुल्तान महमूद में दिया है, देखिये उक्त पुस्तक का पृष्ठ ३, टिप्पणी ४।

अबू-फज़ल-बैहकी, तारीखे बैहकी (तारीखे सुबुक्तगीन) कलकत्ता, १८७२।

अबू-फज़ल-बैहकी, तारीखे-मसूदी, तेहरान, १९४५।

अब्दुल क़ादिर बदायूनी, मुन्तखबुत-तारीख, कलकत्ता, १९६८।

अलाउद्दीन अतामलिक बिन बहाउद्दीन मुहम्मद उल जुवाइनी, तारीखे-जहाँ गुशाँ, लन्दन, १९१२–१६; तेहरान संस्करण, हिजरी १३११।

अबुल फज़ल, आइने-अकबरी, कलकत्ता, १८६७–७७।

अल तबरी, तारीखे-उल-रसूल, लीडेन, १८८१–८२।

अबूजैद हसन सैराफी, यात्रा विवरण, पेरिस, १८११ ई०, यह यात्रा विवरण विवरण सुलेमान सौदागर की पुस्तक सिलसिलातुत्तवारीख के परिशिष्ट के रूप में प्रकाशित हुआ है।

इब्ने-उल-असीर, अल-कामिलफित्तारीख, सी० जे० टार्नवर्ग द्वारा संपादित, लीडेन, १८५१-७६। उपर्युक्त पुस्तक का उद्धरण इलिएट एण्ड डाउसन के भाग में भी अनूदित है।

इब्ने-हौकल, किताब-सूरत-उल-अर्द, लीडेन, १९३८-३९।

इब्ने-जाफिर, अख़वारुद्दुवाली मुनकाति, (बृटिश म्युजियम ओरिएण्टल, ३६८५) नाज़िम ने अपनी पुस्तक लाइफ एण्ड टाइम्स सुल्तान महमूद के पृष्ठ ८ पर संदर्भ प्रस्तुत किया है।

इब्ने-उल-गौजी, अलमुन्तजम फित्तारीख-उल-मुलूकवलउमम, हैदराबाद, १९३८–४१।

इब्ने खुर्दाद्ब, किताबुल मसालिकवल् ममालिके, लीडेन, १८८९।

इस्तखरी, किताबुल-मसालिकुल-ममालिक, लीडेन, १९२७।

इदरीसी, नुज़हतुल मुश्ताक, मेड्रिड, १७९९। उपर्युक्त पुस्तक इलि० डाउ० के भाग १ में भी अनूदित है। लंदन, १८६७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनसुरी, दीवान, संपादित, यहिया करीब, तेहरान, १९५४ ।
एसामी, फुतूहुस्सलातीन, अलीगढ़, १९५६; आगरा, १९३८ ।
कज़वीनी, आसारुल-बिलाद (गोटेगन) यूरोप, १८४८ ।
कामुल तवारीख, बुलक द्वारा संपादित, १८७७ ।
काज़ी अहमद गफ्फारी, जहांनआरा, (ब्रिटिश म्यूजियम ओरिएण्टल,१४१) ।
ख्वाजा मसूद-बिन-साद, दीवान-ए-सालमान, तेहरान, १८७९ ।
चचनामा, इसकी मूल अरबी प्रति उपलब्ध नहीं है। मुहम्मद अली बिन अबूबकर कूफी ने इसका फारसी में अनुवाद १२१६ ई० में किया था। इलिएट एण्ड डाउसन ने उसी से अंग्रेजी अनुवाद किया है ।
तवाह-अल-हयवां,बी० मीनोर्सकी द्वारा संपादित, रायल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन,१९४२ ।
तुहफत-उल-मुजाहदीन, रोलैंडसन द्वारा संपादित ।
नरशखी, तारीखे बुखारा, तेहरान, १९३९ ।
निजामुलमुल्क, सियासतनामा, तेहरान, १९५६ ।
निजामुद्दीन अहमद, तबकाते अकबरी, कलकत्ता, १९१३–४० ।
फ़सीही, मुजमले फसीही,(गिब मेमोरियल ट्रस्ट फण्ड मैन्युस्क्रिप्ट) । इस पाण्डुलिपि का उल्लेख मुहम्मद नाज़िम ने भी अपनी पुस्तक सुल्तान महमूद में संक्षिप्त रूप से किया है । उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १२ ।
फखरे मुद्ब्बिर, आदाब-उल-मलूक,अलीगढ़, १९५६ ।
फखरे मुद्ब्बिर, तारीख फखरुद्दीन मुबारक शाह, लन्दन, १९२७ ।
फरूखी, दीवान, तेहरान, १९३२ ।
बुजुर्ग बिन शहरयार, किताब अजायबुल हिन्द, लन्दन, १९२८ ।
बिलाजुरी, फुतूह-उल-बुल्दान, कैरो, १९५९ ।
मसूदी, मुरुजुज़ जहब व मआदनुल जौहर, पेरिस, १८६१-७७ ।
महमूद गर्दीजी, किताब ज़ैन-उल-अखबार, बर्लिन, १९२८ ।
मिनहाज-उस-सिराज, तबकाते नासिरी, अलीगढ़, १९५६ ।
मुतह्हर बिन ताहिर मुकद्सी, किताबुलवदअवत्तारीख, पेरिस, १८९९ ।
मुहम्मद क़ासिम फ़रिश्ता, तारीखे फरिश्ता, लखनऊ, १९०५; कलकत्ता, १९११; लन्दन, १८२७ ।
मर्वज़ी, शराफ अल जमातहीर, यू० मिनोर्सकी द्वारा संपादित, लन्दन, १९४२ ।
मीरखुर्द, सियारुल औलिया, दिल्ली, हिजरी १३०२ ।
यहिया बिन अहमद बिन अब्दुल्लाह सिरहिन्दी, तारीखे मुबारकशाही, एम० हिदायत हुसैन, द्वारा संपादित, कलकत्ता, १९३१ ।
रशीदुद्दीन, जामिउत-तवारीख (बृटिश म्युजियम, ७६२८) । नाजिम ने भी अपनी पुस्तक 'सुल्तान महमूद' में पृष्ठ १० पर इसका संक्षिप्त परिचय दिया है ।
शबानकार-ए-मुहम्मद-बिन-अली, मज्म-उल-अनसाब-फित्तारीख, इस्ताम्बूल, ९०९ ।
शेख इब्ने बतूता, अजायबुल अस्फार, लाहौर, १८९८ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शम्शुद्दीन मुहम्मद बिन अहमद बुशारी मुकद्दसी, अहसनुत तकासीम फीमारफतिल अकालीम, लीडेन, १९०६।

सिब्त-इब्ने-उल-जौज़ी, मिरातुज्ज़मां, (बृटिश म्युजियम ओरिएण्टल, ४०१९) नाज़िम ने भी अपनी सुल्तान महमूद नामक पुस्तक के पृष्ठ ९-१० पर उपर्युक्त पुस्तक का संदर्भ दिया है।

सुलेमान सौदागर, सिलसिलातुत्तावारीख, पेरिस, १८११ ई०।

सद्रउद्दीन हसन निजामी, ताजुल मआसिर, अलीगढ़, १९५६।

सादिक मुहम्मद, सुबहे सादिक (बांकीपुर मैन्युस्क्रिप्ट ४७१)।

हमदुल्लाह मुस्तौफी क़ज़वीनी, तारीखे गुज़ीदा, लन्दन, १९१०–१३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आधुनिक ग्रंथ

ए० कनिंघम, एन्शेण्ट ज्योग्रफी ऑफ इंडिया, द्वि० सं०, कलकत्ता, १९२४।

ए० कनिंघम, ऑर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया रिपोर्ट्स।

ए० कनिंघम, क्वॉइंस ऑफ मिडीवल इंडिया, फ्रॉम दि सेविन्थ सेञ्चुरी डाउन टु दि मुहम्मडन कांक्वेस्ट्स, लन्दन, १८५४।

ए० एल० वैशम, दि वण्डर दैट वॉज इंडिया, लन्दन, १९६१।

ए० एस० अल्तेकर, स्टेट ऐण्ड गवर्नमेंट इन एन्शेण्ट इंडिया, बनारस, १९५५।

ए० एस० अल्टेकर, राष्ट्रकूट्ज एण्ड देयर टाइम्स, पूना, १९३४।

ए० एस० अल्तेकर, हिस्ट्री ऑफ बनारस, १९३७।

ए० एस० अल्तेकर, पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, बनारस, १९५६।

ए० के० मजूमदार, चौलुक्याज ऑफ गुजरात, बम्बई, १९५६।

ए० बी० एम० हबीबुल्ला, फाउण्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया, लाहौर, १९४५।

ए० बी० कीथ, हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, ऑक्सफोर्ड, १९३८।

ए० सी० बनर्जी, राजपूत स्टडीज, कलकत्ता, १९५५।

ए० शीफनर, हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन इंडिया।

आबूस्टोन, इन्सक्रिप्शन्स ऑफ धारावर्ष, विक्रम सम्वत् १२२०, इंडियन एन्टिक्वेरी, ५६, ५०।

इत्सिंग, ए रेकार्ड ऑफ दि बुद्धिस्ट रिलीजन, ऑक्सफोर्ड, १८९६।

इन्द्रजी भगवान लाल तथा ए० एम० जे० जैक्सन, अर्ली हिस्ट्री ऑफ गुजरात, बॉम्बे गज़ेटियर, भाग १, पार्ट १, बम्बई, १८९६।

ई० सचाऊ, अलबेरूनीज इंडिया, लन्दन, १९२१।

ईश्वरी प्रसाद, हिस्ट्री ऑफ मिडीवल इंडिया, इलाहाबाद, १९२८।

ई० दोसाभाई, ए हिस्ट्री ऑफ गुजरात फ्रॉम अर्लिएस्ट पीरिएड टु दि प्रेज़ेन्ट टाइम, बम्बई, १८९४।

ई० थर्स्टन, कास्ट्स एण्ड ट्राइब्स ऑफ सदर्न इंडिया, मद्रास, १९०९।

ई० बी० हैवेल, बनारस, लन्दन, १९०५।

ई० बी० हैवेल, दि आइडियल्स ऑफ इंडियन आर्ट, लन्दन, १९११।

ई० रेनडाट, एन्शेण्ट एकाउन्ट्स ऑफ इंडिया ऐण्ड चाइना (बाई टू मुहमडन ट्रैवलर्स), लन्दन, १७३३।

ई० जी० ब्राउन, ए लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ पर्शिया, ४ खण्ड, लन्दन, १९०२, २४।

इलिएट एण्ड डाउसन, दि हिस्ट्री ऑफ इंडिया ऐज़ टोल्ड बाई इट्ज़ ओन हिस्ट्रोरियन्स, भाग १,२,३,४, लन्दन १८६७-७७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यू० एन० घोषाल, स्टडीज़ इन इंडियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, कलकत्ता, १९६५।
यू० एन० घोषाल, ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन पोलिटिकल आइडियाज़, ऑक्सफोर्ड, १९५९।
यू० एन० घोषाल, ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन पब्लिक लाइफ, बम्बई, १९६६।
यू० एन० घोषाल, कॉन्ट्रीब्यूशन टु दि हिस्ट्री ऑफ दि हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम, १९३०।
उपेन्द्र ठाकुर, दि हिस्ट्री ऑफ सूसाइड इन इंडिया, दिल्ली, १९६३।
एलफिंस्टन, हिस्ट्री ऑफ इंडिया, संपादक, ई० बी० कावेल, लन्दन, १९०५।
एडवर्ड टामस, क्रानिकिल्स ऑफ दि पठान किंग्स ऑफ देहली, लन्दन, १८७१।
कर्नल टाड, ऐनाल्स एण्ड ऐन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, ऑक्सफोर्ड, १९२०।
के० आर० कानूनगो, हिस्ट्री ऑफ जाट्स, कलकत्ता, १९२५।
के० ए० नीलकंठ शास्त्री, चोलाज, (द्वि० स०) मद्रास, १९५५।
के० वी० सुब्रह्मण्यऐय्यर, साउथ इंडियन इन्सक्रिप्शन्स, खण्ड १,२, मद्रास, १९२८, १९३२।
के० एम० पनिक्कर, ए सर्वे ऑफ इंडियन हिस्ट्री, लन्दन, १९४७।
के० एल० बरुआ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ कामरूप, शिलांग, १९३३।
के० एल० दफ्तरी, दि सोशल इन्स्टीट्यूशन्स इन ऐन्शेन्ट इंडिया, नागपुर, १९४७।
के० पी० जायसवाल, हिन्दू पॉलिटी, कलकत्ता, १९२५।
के० पी० जायसवाल, मनु एण्ड याज्ञवल्क्य, कलकत्ता, १९३०।
के० एम० कपाडिया, मैरिज ऐण्ड फैमिली इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड, १९५८।
के० एम० मुंशी, दि ग्लोरी दैट वॉज़ गुर्जरदेश, बम्बई, १९५१।
के० जे० विरजी, ऐन्शेन्ट हिस्ट्री ऑफ सौराष्ट्र, बम्बई, १९५२।
कैटलॉग ऑफ क्वाइन्स इन दि इंडियन म्युजियम, खण्ड २, भाग १।
गंगानाथ झा, स्टडीज इन हिन्दू लॉ, बनारस, १९२४।
चार्ल्स स्ट्यूअर्ट, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, लन्दन, १८१३।
चि० वि० वैद्य, हिस्ट्री ऑफ मिडीवल हिन्दू इंडिया, खण्ड २, पूना, १९२४।
चि० वि० वैद्य, डाउनफॉल ऑफ हिन्दू इंडिया, पूना, १९२६।
चौ-जु-कुअ, चूफ़ान चे, हर्थ तथा रॉकहिल द्वारा अनूदित, सेन्टपीटर्सबर्ग, १९१२।
जी० फैरैण्ड, Relations' des Voyages et Tesetes Geographiques Arabes' Persans et Turks—Relatifs a l' Exlreme Orient du VIIIe an XVIIIe siecles 2vols. Paris, 1913–14.
जी० वी० आचार्य, संपादक, हिस्टॉरिकल इन्सक्रिप्शन ऑफ गुजरात, खण्ड १, २, बम्बई, १९३३–३५।
जी० एस० घुये, कास्ट एण्ड क्लास इन इंडिया, न्यूयार्क, १९५०।
जे० स्टर्यक, साउथ कनारा मद्रास डिस्ट्रिक्ट मैनुअल, मद्रास, १८९४-९५।
जे० बर्जेस, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ वेस्टर्न इंडिया, भाग ९, लन्दन, १९०३।
जे० बर्जेस, ऐन्टिक्विटी ऑफ काठियावाड़ एण्ड कच्छ, लन्दन, १८७६।
जे० एन० समद्दर, ग्लोरीज ऑफ मगध, पटना।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जे० एन० फ़र्कुहर, एन आउट लाइन ऑफ दि रिलीजस लिटरेचर ऑफ इंडिया, लन्दन १९२०।
जे० सी० राय, ऐन्शेन्ट इंडियन लाइफ कलकत्ता, १९४८।
तारानाथ, हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन इंडिया, अनुवादक, यू० एन० घोषाल तथा एन० दत्त।
ताराचन्द, इन्फ्लूऐंस ऑफ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर, इलाहाबाद, १९६३।
टी० डब्ल्यू० आर्नोल्ड, दि प्रीचिंग ऑफ इस्लाम, १९१६।
डी० सी० सेन, टिपिकल सिलेक्शन फ्रॉम बंगाली लिट्रेचर, भाग २।
दशरथ शर्मा, अर्ली चौहान डाइनेस्टी, दिल्ली, १९५९।
डी० सी० गांगुली, हिस्ट्री ऑफ परमार डाइनेस्टी, ढाका, १९३३।
डी० सी० गांगुली, दि ईस्टर्न चौलुक्याज, बनारस, १९३७।
डी० आर० भंडारकर, ए लिस्ट ऑफ इन्सक्रिप्शन्स ऑफ नार्दर्न इंडिया इन ब्राह्मी, एपि० इंडि०, १९, २३।
दिनेशचन्द्र सेन, बंगाली लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर।
डी० नियोगी, दि इक्नॉमिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इंडिया, कलकत्ता, १९६२।
एन० एन० घोष, अर्ली हिस्ट्री ऑफ कौशाम्बी, इलाहाबाद, १९३५।
एन० एल० डे, ज्यॉग्रफिकल डिक्शनरी ऑफ ऐन्शेण्ट इंडिया, कलकत्ता, १९२७।
एन० एस० बोस, हिस्ट्री ऑफ चन्देलाज ऑफ जेजाकभुक्ति, कलकत्ता, १९५६।
एन० एम० मजूमदार, ए हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन ऐन्शेन्ट इंडिया, कलकत्ता, १९१६।
एन० जी० मजूमदार, इन्सक्रिप्शन्स ऑफ बंगाल, भाग ३, राजशाही, १९२९।
पावेल प्राइस, ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया, लंदन, १९५५।
प्रतिबल भाटिया, दि परमार्ज़, नई दिल्ली, १९६७।
प्राणनाथ, ए स्टडी इन दि इकनामिक कण्डीशन ऑफ ऐन्शेन्ट इंडिया, लन्दन, १९२९।
पी० वी० काणे; हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, खण्ड १, २, ३, ४, ५, पूना, १९३०-५३।
पी० वी० काणे, मैरिजेबिल एज ऑफ गर्ल्स इन ऐशेन्ट इंडिया, झा कमेमोरेशन वौल्यूम, पूना, १९३७।
पी० एन० प्रभु, हिन्दू सोशल आर्गेनाइज़ेशन, १९५८।
पीटर्सन, मैन्युस्क्रिप्ट १८८७, संख्या, २२०।
पी० सी० चक्रवर्ती, दि आर्ट ऑफ वॉर इन ऐन्शेण्ट इंडिया, ढाका, १९४१।
एफ० डब्ल्यु० टामस, म्यूचूअल इन्फ्लूएंस ऑफ मुहम्मडन्स ऐण्ड हिन्दू इन इंडिया, केम्ब्रिज, १८९२।
एफ० ई० पार्जिटर, मारकण्डेय पुराण, कलकत्ता, १९०४।
फिलिफ के हिट्टी, हिस्ट्री ऑफ दि अरब्स, लन्दन, १९३७।
एफ० डे, दि लैंड ऑफ पेमाल्स।
एफ० जे० मोनहन, दि अर्ली हिस्ट्री ऑफ बंगाल, ऑक्सफोर्ड, १९२५।
बुद्ध प्रकाश, सम ऐस्पेक्ट्स ऑफ इंडियन कलचर ऑन दि ईव ऑफ मुस्लिम इन्वेजन्स, चण्डीगढ़, १९६२।
बुद्ध प्रकाश, स्टडीज इन इंडियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, आगरा, १९६२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्वेश्वरनाथ रेऊ, हिस्ट्री ऑफ राष्ट्रकूट्ज़, जोधपुर, १९३३ ।
बी० भट्टाचार्य, टू ब्रजयान वर्क्स, (जी० ओ० एस०) खण्ड ४४ ।
बी० के सरकार, पॉजिटिव बैकग्र उण्ड ऑफ हिन्दू सोशियोलॉजी, १९१४ ।
बी० एन० पुरी, दि हिस्ट्री ऑफ गुर्जर प्रतिहार्ज़, बम्बई, १९५७ ।
बी० के० घोष, इंगलिश ट्रान्सलेशन ऑफ जौलीज़ हिन्दू लॉ एण्ड कस्टम्स, १९२८ ।
बी० पी० मजूमदार, सोशियो इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इंडिया, कलकत्ता, १९६० ।
बी० सी०सेन,सम हिस्टॉरिकल ऐस्पेक्ट्स ऑफ दि इन्सक्रिप्शन्स ऑफ बंगाल, कलकत्ता,१९४२।
एम०ए०स्टाइन, दि टर्म दिनार एण्ड दि मोनेटरी सिस्टम ऑफ कश्मीर, राजतरंगिणी अनुवाद ।
एम० रंगाचार्य, लाइफ एण्ड टीचिंग्स ऑफ रामानुज ।
एम० नाज़िम, दि लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ सुल्तान महमूद ऑफ गज़नी, केम्ब्रिज १९३१ ।
एम० हबीब, सुल्तान महमूद ऑफ गज़नी, दिल्ली, १९५१ ।
एम० हबीब तथा खालिक अहमद निजामी, ए क़ॉम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग ५, दिल्ली १९७० ।
एम० डब्ल्यु मिर्जा, लाइफ एण्ड वर्क्स ऑफ अमीर खुसरो, लाहौर, १९३५ ।
यदुनाथ सरकार, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग २, कलकत्ता, १९४८ ।
यदुनाथ सरकार, मिलिटरी हिस्ट्री ऑफ इंडिया, कलकत्ता ।
आर० के०मुखर्जी, एशेन्ट इंडियन एजूकेशन, (द्वि० स०), लन्दन, १९५१ ।
आर० सी० दीक्षितार, वॉर इन एन्शेन्ट इंडिया, मद्रास, १९४८ ।
आर० सी० स्मैल, क्रूसेडिंग वॉरफेयर ए कान्ट्रीब्यूशन टु मिडिवल मिलिटरी हिस्ट्री ।
आर० सी० मजूमदार, दि स्ट्रगिल फॉर एम्पायर, बम्बई, १९५७ ।
आर० सी० मजूमदार, ऐन्शेण्ट इंडिया, वाराणसी, १९५२ ।
आर० सी० मजूमदार, हिन्दू रिएक्शन टु मुस्लिम इन्वेजन्स, एम० एम० पोद्दार कमैमोरैशन वौल्यूम, पृष्ठ ३४१-३५१ ।
आर० सी० मजूमदार, दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, द्वि०स०, बम्बई, १९६४ ।
आर० सी० मजूमदार, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, खण्ड १, ढाका, १९४३ ।
आर० सी० मजूमदार, दि क्लासिकल एज, बम्बई, १९७० ।
आर० सी० दत्त, ए हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेशन इन एन्शेन्ट इंडिया, कलकत्ता, १८९० ।
आर० ए० जयराज भाई, फॉरेन इन्फ़्लूएन्स इन इंडिया, बम्बई ।
आर० एस० त्रिपाठी, हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, बनारस, १९३७ ।
आर० जी० भंडारकर, दि अर्ली हिस्ट्री ऑफ दि दक्कन, कलकत्ता, १९२८ ।
आर० डी० बनर्जी, पाल्ज़ ऑफ बंगाल, मेमायर्स ऑफ दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, ५, ३, कलकत्ता, १९१५ ।
रतिलाल मेहता, नेपाली बुद्धिस्ट लिटरेचर ।
राम करन, हिस्ट्री ऑफ दि राठौर्स, सर आशुतोष मुखर्जी सिल्वर जुबली, खण्ड १, २, ३ ।
आर० नियोगी, दि हिस्ट्री ऑफ गाहड़वाल डाइनेस्टी, कलकत्ता, १९५९ ।
ललन जी गोपाल, दि इकनॉमिक लाइफ इन नार्दर्न इंडिया, वाराणसी, १९६५ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेविस राइस, मैसूर एण्ड कुर्ग फ्राम इन्सक्रिप्शन्स, लन्दन, १९०९ ।
वी० ए० स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, चतुर्थ संस्करण, ऑक्सफोर्ड, १९२४ ।
वी० ए० स्मिथ, ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया, ऑक्सफोर्ड, १९२३ ।
वी० वी० मिराशी, इन्सक्रिप्शन्स ऑफ दि कलचुरि चेदि एरा, उटकमंड, १९५५ ।
वासुदेव उपाध्याय, सोशियो-रिलिजस कण्डीशन ऑफ नार्थ इंडिया, वाराणसी, १९६४ ।
वाटर्स, आन युवान च्वांगस् ट्रेवल इन इंडिया, खण्ड १, २, लन्दन, १९०४-५ ।
वी० पी० मजूमदार, सोशियो इक्नॉमिक हिस्ट्री ऑफ नादर्न इंडिया, कलकत्ता, १९६० ।
विनय कुमार सरकार, फोक एलीमेन्ट्स इन हिन्दू कल्चर, लन्दन, १९१७ ।
एस० के मित्र, दि अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो, कलकत्ता, १९५८ ।
एस० खुदाबख्श, कान्ट्रीब्यूशन टु दि हिस्ट्री ऑफ इस्लामिक सिविलाइजेशन, कलकत्ता, १९०५।
एस० डी० सिंह, एन्शेन्ट इंडियन वॉरफेयर, लीडेन, १९६५ ।
एस० एच० होडीवाला, स्टडीज इन इण्डो मुस्लिम हिस्ट्री, बम्बई, १९३९ ।
एस० एम० एच० नैनार, अरब ज्योग्रफर्स नॉलेज ऑफ सदर्न इंडिया, मद्रास १९४२ ।
एस० आर० शर्मा, क्रेसेन्ट इन इंडिया ।
सर० डब्ल्यु म्योर, दि ख़िलाफत इट्स राइज़ डिक्लाइन एण्ड फॉल, एडिनबरा, १९१५ ।
सर डब्ल्यु० हेग, केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग १, ३, केम्ब्रिज, १९२८ ।
एस० सी० सरकार, सम टिबेटन रेफरेन्सेज टु मुस्लिम एडवान्स इन बिहार एण्ड बंगाल, (पी० आई० एच० आर० सी०), १९४२ ।
सैमुअल बील, बुद्धिस्ट रेकॉर्ड्स ऑफ दि वेस्टर्न वर्ल्ड, खण्ड १, २, लन्दन, १९०६ ।
सैमुअल बील, लाइफ ऑफ ह्वेनसांग, बाई हुइली, लन्दन, १९११ ।
सैयद अमीर अली, स्पिरिट ऑफ इस्लाम, लन्दन, १९२२ ।
सी० ई० वासवर्थ का 'दि अर्ली इस्लामिक हिस्ट्री ऑफ ग़ोर' नामक शोध निबन्ध, सेन्ट्रल एशियाटिक जर्नल, भाग, ६, १९६१ ।
सी० ई० वासवर्थ, दि गजनवीज देयर एम्पायर इन अफ़गानिस्तान एण्ड ईस्टर्न इरान, एडिनवर्ग १९६३ ।
सी० मोबेल, डफ, क्रॉनालॉजी ऑफ इंडिया ।
स्टेनली लेनपूल, मिडिवल इंडिया अण्डर मुहम्मडन रूल, लण्दन, १९०३ ।
एच० डी० संकलिया, आर्कियोलॉजी ऑफ गुजरात (इन्क्लूडिंग काठियावाड़), बम्बई, १९४१ ।
एच० सी० रेवर्टी, नोट्स ऑन अफ़गानिस्तान, लन्दन, १८८० ।
एच० ए० रॉस, ए ग्लॉसरी ऑफ दि ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स ऑफ दि पंजाब ।
एच० एच० रिसले, दि ट्राइब्स ऑफ बंगाल, कलकत्ता, १८९१ ।
एच० सी० राय, दि डाइनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इंडिया, भाग १, २, ३, कलकत्ता, १९३१-३५ ।
हरमान गोएट्स, फाइव थाउजेण्ड इयर्स ऑफ इंडियन आर्ट, १९६० ।
डब्ल्यु० बार्थोल्ड, तुर्किस्तान डाउन टु दि मंगोल इन्वेजन, लन्दन, १९२८ ।

——

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिन्दी-ग्रंथ

आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, दिल्ली सल्तनत, चतुर्थ संस्करण, आगरा, १९६२ ।
आदितुर्क कालीन-भारत (अनुवादक) सैय्यद अतहर अब्बास रिज़वी, अलीगढ़, १९५६ ।
इब्नेखलदून का मुकद्मा, सैय्यद ए० ए० रिज़वी द्वारा अनूदित, लखनऊ, १९६१ ।
कर्नल टाड, राजस्थान का इतिहास, इलाहाबाद, १९६१ ।
केशवचन्द्र मिश्र, चन्देल और उनका राजत्वकाल, वाराणसी, वि० स० २०११ ।
कौटिल्य, अर्थशास्त्र, संपादक, देवदत्त शास्त्री, इलाहाबाद, १९५७ ।
गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, इलाहाबाद, १९५१ ।
गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, राजपूताना का इतिहास, भाग १, अजमेर, १९३६ ।
चन्द्रगुप्त वेदालंकार, बृहत्तर भारत, हरद्वार, १९३९ ।
जयशंकर मिश्र, ग्यारहवीं सदी का भारत, अलबेरूनी के आधार पर एक सांस्कृतिक अध्ययन, वाराणसी, १९६८ ।
जगनिक, आल्हाखण्ड ।
जवाहर लाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी, नई दिल्ली, १९६६ ।
जोधराज, हम्मीर रासो, संपादक श्याम सुन्दर दास, काशी ।
परमाल रासो, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।
पी० वी० काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग १, लखनऊ ।
बुद्धप्रकाश, एशिया के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास की रूपरेखा, लखनऊ १९७१ ।
बिश्वेश्वरनाथ रेऊ, राजा भोज, इलाहाबाद, १९३२ ।
बीसलदेव रासो, नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस, १९२७ ।
बेनी प्रसाद, भारत की प्राचीन सभ्यता, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९३१ ।
भगवत शरण उपाध्याय, गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, लखनऊ, १९६९ ।
भगवत शरण उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, पटना, १९५७ ।
मोतीचन्द्र, काशी का इतिहास, बम्बई, १९६२ ।
मोतीचन्द्र, सार्थवाह, पटना, १९५३ ।
रघुनाथ सिंह, कश्मीर कीर्ति कलश, दिल्ली, १९६९ ।
रजनीकान्त शर्मा, अलबेरूनीकालीन भारत (अनूदित) इलाहाबाद, १९६७ ।
राजबली पांडेय, हिन्दी साहित्य की पीठिका, काशी, १९५८ ।
राहुल सांस्कृत्यायन, मध्य एशिया का इतिहास, खण्ड १, २, पटना, १९५६, ५७ ।
रासोसार, संपादक, श्यामसुन्दरदास, वाराणसी, १९०४ ।
लक्ष्मण शास्त्री जोशी, वैदिक संस्कृति का विकास, बम्बई, १९५७ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वासुदेव शरण अग्रवाल, हर्ष चरित, एक सांस्कृतिक अध्ययन, पटना, १९५३ ।
विपिन विहारी त्रिवेदी, चन्दबरदाई और उनका काव्य, इलाहाबाद, १९५२ ।
वी० वी० मिराशी, कलचुरी नरेश और उनका राजत्वकाल, भोपाल, वि० सं०, २०२२ ।
सुलेमान सौदागर, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, १९२२ ।
सैय्यद सुलेमान नदवी, अरब और भारत के सम्बन्ध, इलाहाबाद, १९३० ।
हम्मीर रासो, नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस, १९२९ ।
हरदत्त वेदालंकार, हिन्दू विवाह का इतिहास, लखनऊ, १९७० ।
हीरालाल, मध्य प्रदेश का इतिहास, वाराणसी, १९३९ ।

बंगाली

निहार रंजन राय, बांगलार इतिहास, कलकत्ता, बंगला सम्वत्, १३५६ ।
आर० डी० बनर्जी, बांगलार इतिहास, भाग १, कलकत्ता ।
सुकुमार सेन, बांगला साहित्येर इतिहास, भाग १, द्वितीय संस्करण, कलकत्ता, १९४८ ।
सुकुमार सेन, चर्यागीत पदावली, बर्दवान, १९५६ ।

उर्दू-ग्रंथ

गुलाम मुहम्मद, मीरात मुहम्मदी, यानी मुकम्मल इस्लामी तवारीखे गुजरात, सूरत, १३४२ हि० ।
ज्वाला प्रसाद 'वर्क़', तारीख़ क़दीम आर्यावर्त, भाग २ ।
मौलाना सैय्यद अबूज़फर, तारीखे सिंध, आजमगढ़, १९४७ ।
मौलाना अब्दुल हलीम, 'शरर' तारीखे सिंध, लखनऊ, १९०९ ।
मौलवी मुहम्मद जकाउल्ला, तारीखे हिन्दुस्तान, खण्ड १,२,३४, अलीगढ़, १९१४ ।
सैय्यद सबाहुद्दीन अब्दुल रहमान, हिन्दुस्तान के अहद वस्ता का फ़ौजी निज़ाम, आजमगढ़ १९६० ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्र-पत्रिकायें

इस्लामिक कल्चर, हैदराबाद ।
इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, कलकत्ता ।
इंडियन ऐन्टिक्वेरी, बम्बई ।
इंडियन कल्चर, कलकत्ता ।
एनाल्स ऑफ दि भंडारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना ।
ऐपिग्राफिया इंडिका, दिल्ली ।
ऐपिग्राफिया कर्नाटिका, बंगलौर ।
ऐन्शेण्ट इंडिया, डिपार्टमेंट ऑफ ऑर्कियोलॉजी, दिल्ली ।
जर्नल ऑफ दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता ।
जर्नल ऑफ दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन ।
जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता ।
जर्नल ऑफ दि बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना ।
जर्नल ऑफ दि बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना ।
जर्नल ऑफ दि डिपार्टमेंट आफ लेटर्स, कलकत्ता यूनीवर्सिटी ।
जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसाइटी लेटर्स, कलकत्ता ।
जर्नल ऑफ दि पंजाब हिस्टॉरिकल सोसाइटी ।
जर्नल ऑफ दि आंध्र हिस्टॉरिकल रिसर्च सोसाइटी, राजमहेन्द्री ।
जर्नल ऑफ दि यूनीवर्सिटी ऑफ बॉम्बे ।
दि जर्नल ऑफ दि उत्तर प्रदेश हिस्टॉरिकल सोसाइटी, लखनऊ ।
दि रिसर्च बुलेटिन (आर्ट्स) यूनीवर्सिटी ऑफ पंजाब, चण्डीगढ़ ।
नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वाराणसी ।
न्यू इंडिया ऐन्टिक्वेरी, बम्बई ।
पटना यूनीवर्सिटी, जर्नल ।
प्राची, कुरुक्षेत्र ।
बंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, कलकत्ता ।
भारतीय विधा, बम्बई ।
मुस्लिम यूनीवर्सिटी जर्नल, अलीगढ़ ।
माडर्न रिव्यू, कलकत्ता ।
रिसर्च बुलेटिन ऑफ कालेज ऑफ इण्डोलॉजी, बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी ।
सेन्ट्रल एशियाटिक जर्नल ।
सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग ।
हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड, कलकत्ता ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गज़ेटियर, मैमोइर्स तथा कोश

इम्पीरियल ग़जेटियर ऑफ इंडिया, भाग १८
उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स
गया डिस्ट्रिक्ट गजेटियर
डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, बदायूं
डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, उन्नाव
डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, हरदोई
पंजाब डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, भाग २७
बॉम्बे गजेटियर, भाग १
राजपूताना गजेटियर ।
मैमोइर्स ऑफ दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, दिल्ली ।
मैमोइर्स ऑफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता ।
उर्दू हिन्दी शब्द कोश, लखनऊ ।
एन्साइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम, लीडेन
पारिभाषिक शब्द संग्रह, दिल्ली
वृहद् हिन्दी कोश, वाराणसी
मोनियर विलियम्स, संस्कृत इंगलिश डिक्सनरी, ऑक्सफोर्ड ।
लोग़त किशोरी, लखनऊ ।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुक्रमणिका

अ

अगस्त्य १४८
अजय देव १९२
अजय पाल १३५,१८६,१८७
अजय राज १३०
अजय गढ़ १४९,१९३
अजमेर ७९,१०४,१३०,१३१,१३२, १६३,१८२,१८४,१८५,१८६ १८९,१९१,२११
अजय सिंह १५१
अर्जुन ९९,१०२,१३५
अजरबैजान ५
अटलांटिक ६,१३
अटक ८५
अडक्क मल १३०
अणहिल पाटन १९१,१९२
अर्णोराज १७०
अतिस दीपंकर ३७
अतून ३
अनन्त वर्मन १४०
अन्द खूद (अन्ध खूद) २०४,२०९
अन्हिलवाड़ १०१,१०४,१०६,१३०, १३३,१३४,१७३,१९०, १९१,२०९,२११
अन्दलूसिया १७
अन्हिल पाटन १३३
अफ़गानिस्तान १४,७१,७२,८४,१३२, १६५,२०६
अफ्रिका १०
अब्बास १६५
अब्बासी १५
अब्दुलमलिक ५,७३
अबुलफजल १७१
अबू बक्र ३,४
अबू अली १६५
अबू जैद ६४,६५
अबू जैद सराफी १२३
अबू-उल-फतह ८५
अबू-अब्दुल्ला-मुहम्मद-अत-ताई १००
अबू-जैद अलहसन ११९
अबू मंसूर मुहम्मद ७३
अबू बक्र लविक ७४
अबू इशाक इब्राहीम ७४,७६
अबू-अली-लविक ७४,७५
अबू मंसूर सुबुक्तगीन ७६
अबू जाफ़र ७४
अबू अली बलमी ७३
अमन १६
अमीर खुसरोशाह १२९,१३१,१७०
अमीर मंसूर ७५
अमोघ वर्ष २३,२५,३४,४४,४५, ४६,४८
अरब ३,८,१०२,११९,१२४, १५१,२१३,२३३,२४१ २४५
अरावली १०६
अरि सिंह १३५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलबेरूनी ७,८४,९३,११०,११३,
११४,११५,११६,११७
११८,११९,१२०,१२१
१२२,२१२,२१३,२१४
२३२,२३७
अल मसूदी १५१
अल हज्जाज इब्ने युसुफ ५,६,७,८,९,१०,
१४,१६
अल बिलाजुरी १३
अल इदरीसी ११६,११७,११८
अल वलीद ५,७
अल-सुल्तान अल मुअज़्ज़म १६५
अल मामू ७१
अल क़ादिर बिल्लाह ८४
अलप्तगीन ७२,७३,७४,७६,८३
अलाउद्दीन हुसेन १३९,१६५,१६६,२०४
अली ४,५,६
अली नागौरी १९५
अली मेज २०२,२०४
अली मर्दान खल्जी २०४
अली किरमाज १६६
अलौर १०
अवन्ति २३,३२
अशस बिन मुहम्मद ७३
असनी १८८,१९३
असद बिन सामान ७१
असीवन की गंज़ी शहीदन १६३
अहमद ७१,७२
अहमद नियाल्तगीन ३७,१२७,१४७,१६१
अहमद बिन इस्माइल ७२

आ

आक्सस २०९,२११
आगर १८६
आनन्द-पाल ३०,८५,८६,८७,८८,८९,
९०,९१,९२,९३,९८,९९,
१०१,११३,११८,१४६,
१५५,२२३,२२६
आदित्यपुर ४५
आनन्दपुर ५४
आबू १३३,१३४,१६७,१७१,
१९१,२३१
आर्मीनिया ५,६
आमू नदी ७१
आभोड़ १४१
आयशा ३
आर्यावर्त १६९
आरिजे ममालिक १९५
आल्हा १७४
आलिवर क्राम्वेल २२२
आसाम ३५,२२१,२४७

ओ, औ

ओदन्तपुरी ३३,१९६,१९७
ओमान ९
औड्र ५५

इ, ई

इन्द्र तृतीय २७,४५,४७,१४४,१४५
इस्लाम ३,४८,८७,१०९,११०,
१३६,२३१,२३७,२४५,
इन्द्रजित १५१
इल्तुतमिश १३०,१८९
इन्द्ररथ १३८
इन्द्र भूति २३८
इलादगीज २०४
इब्ने असीर १६२,१६६,२०५
इन्दरपत १८१,१८७
इमाम तकी फ़क़ीह १६३
इज्जुद्दीन हुसेन १६५
इलाह १७८,१७९
इज्जुद्दीन हुसेन बिन-खारमिल १६८,१८८,
२०४
इन्द्र १९,४७
इन्द्रसिंग १९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इराक ४,५,६,७,९
इफरीकिया ७
इन्द्रायुध ४२
इब्ने-उल-फकीह १२४
इब्ने-उल-असीर ८४
इब्नेखुर्दाद्ब ११५,११७
इशतपाल ७७
इस्माइल ७१,७२,८३
इब्राहीम ७५
इलक खां ७१,८४
ईरान ४,५,७,१०,१०२,१६४

उ, ऊ

उदयपुर १३७,१३८
उदयादित्य १३९,१५०
उज्जयिनी (उज्जैन) २३,२४,२५,४१,८९,१२८,२२७
उमापति धर १४०
उड़ीसा (उत्कल) ३४,३९,१४६,२००,२२१,२४७
उच्च (उच) १३५,१३६,१६६,१६७,१८३,४०६
उदण्डपुर १९७
उदयनराज १७८
उन्नाव १६३
उमय्या ५,१५
उबैदुल्ला १०
उमर द्वितीय १२
उमान ६
उमर ४,९
उस्मान ४,५,९
उक़बा ५
उत्बी ८४,९४
उन्द ८९
ऊन ८५

ए

एलफिंस्टन २११,२१२
एसामी १७७,१७९,१८७,१९५
एटा १८८
एशियायी कोचक ४

ऐ

ऐबक वेक २०४

क

कन्नौज १०,१५,२३,२४,२५,२६,२७,२९,३०,३१,३२,३३,३४,४२,४३,४४,४५,७८,७९,८९,९५,९७,९९,१००,१०१,१२७,१२८,१२९,१३०,१३२,१४०,१४२,१४७,१५०,१५५,१५६,१६३,१७१,१७४,१८३,१८८,१८९,१९२,२४५
कर्ण ३७,३८,१२७,१३४,१३८,१३९,१४७,१४८,१४९,२३५
करीतलाई १४४
कर्णाट १३९
कलिंगराज १४२
कहला १४२
कर्नाट ३८,२२७
कच्छ ७,१३,१०६,१३३,२२७
कलचुरि २५,२९,३७,३८,१२७,१४१,१४५,१४६,१४७,१५३,२२५
कलिंग २४,४५,१४०
कनिंघम १५३,१५४
कश्मीर ८,१५,१८,७७,८७,९४,९५,१०१,१०२,११०,१२९,१४६,१५४,१६३,२२१,२४७
कच्छपघाट २९,१५६
कल्याण कटक १३३
कल्हण २१९,२१४,
कर्पूरी देवी १७०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करतोया २०३,२०४
करम पट्टन (कर बट्टन)– २०१,२०२
कर्मान २०६
करमख १६९
कवामुलमुल्क रुकमुद्दीन हज्जा १७७
कर्मनाशा १९६
कश्मंडी १९५
कनोल १७६
कन्या कुमारी १६
कम्बुज १९,४४
कन्नड़ २९
करमान ६
कर्क ४४,४७
कर्क द्वितीय ४६
कर्नाटक ४७
कक्क ५४
कक्कुक ५४
कनक मंजरी ६३
करामती सम्प्रदाय ८६
कमलुक ७७
कल्लण ७१
काबुल या काबुलिस्तान १४,३२,७१
काशगर ७१
कालिंजर २८,४६,७८,७९,८९,९९,१०२, १११,१२८,१४३,१५४,१५५, १५६,१५७,१५८,१६१,१७१ १९३,१९७,२०६।
काफिरिस्तान १०१
काठियावाड़ २५,२७,१०६
कामरूप ३८,३९,४०,१४०,१९२,१९९,२०२ २०३
कांची ४०,४३,४४,२२७
कामदेव ४६
काल्पी ४५
काम्बोज ३४,३६
कान्यकुब्ज २९,१२७,१२८,१३०,२२७ २४६
कांगड़ा ३२,१४८
काशी १२७,१४०,१५१,१७२,१७३,१७४, २२७
कायंद्रा १६७
काल्पी १९३
काशह्रद १६७
कान्ह १३२
कार्तवीर्य हैहय १४१
किरात २४
किकनान (किकरन) ९
किराद् (जोधपुर) १६२
किल्हड़ १६२
कीर्तिवर्मन द्वितीय ४१
कीर ३२,१२७
कीर्तिपाल १६७
कीर्ति वर्मन १५६,१५७
कीर्तिराज १३८
कीर्तिवर्मा १४९
कुतुबुद्दीन ऐबक— १३२,१७८,१७९,१८१, १८४,१८५, १८६,१८७, १८८,१८९,१९०,१९१, १९२,१९३,१९४,१९७, १९८,२१०
कुतुबुद्दीन हसन १६५
कुस दाह ७६
कुरान ११०,२१३
कुरेश ३
कुमारपाल ४०,१३४,१८९
कुलोतुंग ३९
कुतैबा ५,६
कुरु ३२
कुबेर १९
कुमार कोटा २०१
कुर्मिकोटा २०२
कुंवरपाल १८९
कुमार देवी १६१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुल चन्द्र १३३,१४६
कुंतल १४८,१५४
कुशी नगर १४२
कूंच २०१,२०४
केरल ४३
कैस्पियन सागर ७१
कैड़ा २५
क़ैरवान नगर ५
कैवर्त ३९
कैमास १३२,१७०
कैलाश १३८
कोंकण १६,५५,१३४,२२७
कोरिया १९
कोटा १९२
कोइल (कोल) १८६,१८९
कोकल्लदेव १४२,१४४,१४६
कोशल १४४,१५४
कोटाटवि १४०
कौटिल्य १०८,२१९
कौशाम्बी २४,१४०,२३५
कौवती १०
कौल सम्प्रदाय २३९
कंठ कोट १०४,१०६
कंबोज ३३
कंस १५७
कंचुका १५३
कृष्ण ४१,२४१,१५७
कृष्ण द्वितीय २५,२७,४५,१४४
कृष्ण तृतीय २८,२९,४६,४७,५६
कृष्ण राज ४५,१३३,१४१

ख

ख़्वारिज़्म ६,९,७१,७८,९५,१८७,२०४,२०६
ख़्वारिज़्म टकास २०४
ख़्वाजा मजदुद्दीन १६३
खरबक १७८,१८०
खरमिल १७९
खजुराहो १५२,१५४,१९३,२४२
खरबक मुकद्दम १७९
खलीफा हिसाम ६
खलीफा अलवलीद ६
खानदेश ४१
खालीम पुर ३२
खालिद बिन वलीद ४
खारमिल १७९
खाशरुद १६४
खांडेराय १७६,१८०
खुरासान ५,६,७,७१,७२,७३,८३,८४,९६,
१६६,२०४,२११,२२७
खुलम ७३
खुरमेल १७८
खुसरो मलिक १६८,१६९,१८३
खेटक २५
खैबर १४,१३५,१३६,१६८
खैरा १५०
खोट्टिग ४६,१३७
खोतान १९

ग

गया १४७
गया कर्ण १५०
गज़नी ७२,७४,७६,७७,८३,८६,८७,८८,९१
९२,९४,९७,९८,१०१,१०६,१०७,
११२,१२७,१२८,१३३,१५४,१८५,
१८७,१९०,१९५,२०५,२०६
गर्दीज़ी ८४
ग्वालियर २३,२४,८९,९९,१०२,१५५,१८४,
१८९,१९०,२०६
गर्मसीर १९५
गर्जिस्तान १६५,१६९
गयासुद्दीन १६६,२०४
गयासुद्दीन महमूद २०६
गांगेय देव ३७,११९,१२४,१३८,१४७,१४८
१५६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गांधार १८,३२
गाहड़वाल ३१,१२७,१६२,१७२,१७४,१८३, १८७,१८८,१९२,१९९
गाडरार घट्ट १६७
ग्राहरिपु १३३
गाधिपुर १२८
गुजरात ४०,४१,४४,४५,५६,१०४,१०६, १११,१२१,१२७,१२९,१३१, १३२,१३३,१३४,१३६,१३८, १३९,१४८,१५७,१६१,१६७, १७१,१८३,१८५,१९१,१९२, २३३,२३८,२४६
गुर्जर प्रतिहार ३०,३१,१२७,१४४,१४५, १४७,२४५
गुड़ पुर १७०
गूजक ७७
गूज १६६
गोपाल वर्मन ७७
गोविन्द ४४
गोरखपुर २५,१४३
गोविन्द द्वितीय २४,४१,४२
गोविन्द तृतीय ३३,४२,४३,४४,४५,४७
गोपाल तृतीय ४०
गोपाल गौड़ ३१
गोपाल द्वितीय ३६
गोविन्द राय १७७,१७९,१८०,१८४
गोविन्द चन्द्र १२९,१४०,१४८,१६१,१६२ १७२
गोविन्दराज १३२,१६२,१८५
गोविन्द पाल १९७
गोहराम १८१,१८४,१८६,१९६
गोर १६४,२०६
गोपामऊ १६३
गोदावरी १३७
गोमल १३६
गौड़ २४,३२,३५,३६,३७,३८,३९,४५,१३९, १४४,१४६,२००
गौहाटी २०३
गंड ३०,९९,१००,१५५,१५६,२२३
गंगा २७,२९,३२,३९,४०,४१,४२,४४,४५, ४७,८७,८८,९१,९२,९४,९५,९७,९८, ९९,१०३,१११,११२,१२३,१४३, १४७,१६१,१७२,२१०
गंग ४३,२००
गंगवाडी ४३
गंगमार सिंह ४७

च

चन्द्रमा १५१
चन्दवरदायी १३१,१३२,१५७,१७१
चंदावर १३०,१७४,१८८,१९२
चन्देल २५,२७,२८,२९,३०,३६,३७,१२७, १४६,१५१,१५५,१७४,१७५
चन्द्र वर्मा १५१
चन्दर राय ९८
चक्र स्वामी ९२,९३
चन्द्र पाल ९८
चंडेश्वर १२१,१२२
चण्डीदास २४१
चक्रायुध २४,३३,४३
चचनामा ८
चन्देरी २८
चम्बल (चर्मणावती) २६
चण्ड महासेन २६
चन्द्र १९,३६,३८
चटगांव ३६
चन्द्रावती १८८
चन्द्रलेखा १७२
चन्द्रशेखर १७१
चक्रदेव १२८,१५०,१६८
चन्द्रसेन १८६
चन्द्रगुप्त मौर्य २२०
चतुर्थ गोविन्द १४५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चार्ल्स मार्तेल ६
चामुण्ड राय १७३
चापोत्कट १३३
चांद राय १२८
चिनाब ७६,७७,२०५
चित्रकूट २८,४६,१४३
चित्तूर १२
चित्तौड़ १९५
चीन ३,६,७,९,१०,१३,१६,१९,१७३
चुनार १९५
चेदि २८,१४४
चेदिराज गयाकर्ण १५७
चो-जु-कुअ ११९
चोल ४३,४५,४६,१४८
चौहान २६,७९,१२७,१६९,१७०, १७३,१८३
चौड़ गंग १४०

छ

छत्तीस गढ़ १४३

ज

जर्थुत्री असद ७१
जय १५२
जयपाल ३०,३४,७६,७७,७८,७९,८०,९७, १०१,११३,१२४,१४६,१५४,१५५, २१६,२१८,२२३,२२६
जक्सर्टी ७१,८४
जमुना ८७,८८,९१,९२,९६,९७,९९, १०३,१११,११२
जल्हण ५२
जबल तारिक ६
जयसिंह ९,१२,१२९,१३९,१४८,१४९, १५०,१५१,१९५
जयपुर ३२
जयचन्द १२९,१३०,१३२,१४०,१७१, १७२,१७३,१७४,१८३,१८८,१८९
जम्मू १६८
जयदेव २४१
जयशक्ति १५२
जर्यासिह सोमेश्वर १३४
जगनिक १३२
जयवर्मन देव १५७
जाबुल या जाबुलिस्तान १४,७१,७२
जार्जिया ५,६
जापान १९
ज़ाहवी २०५
जांजगीर (जाजल्ल नगर) १४२
जियाउद्दीन तुलाकी १७५
जित्तूर १९५
जिब्राल्टर ६
जुनैद १२ १३,२३,३१
जुज़ २६
जुवायनी २०५
जूक ७६
जेजाक भुक्ति ३१,१४२,१५१,१५२,१८३, १९३,२४६
जैत्र सिंह १९५
जैक्सन १३५
जोधपुर २३
जौनपुर १३०,१८८,१८६

झ

झटराय १८५,१८९
झांसी २७,४२,४३,४५
झेलम २०५

ट

टक्क (पंजाब) ५५
टकीनाबाद १६६
ट्रांस आक्सियाना ७१
टेसीफोन ४

ड

डहगन १६१
डाहर ६१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त

तर्दवाडि ४६
तरुजैपाल (त्रिलोचनपाल) ३०
तराइन १३०,१३२,१६३,१६८,१७४,
१७६,१७८,१८२,१८३,१८६,१९५,
२०६,२१८,२२३,२२६,२४६
तबर हिन्दा १७५,१८२
तंत्रवाद २४२
तृतीय शंकरगण १४६
तृतीय अमोघवर्ष १४५
तारानाथ ३२,१९७
तांग ७
तारिक ६
तारवान १७६
ताजुद्दीन यालदुज़ १७८,२०६
तिब्बत १९,३५,२०१
तिस्ता करतोया २०१,२०२
तिओरी (त्रिपुरी) १४७
तिरहुत १४०,१५६
तुंग ९४,९५
तुर्क १११,१६१
तुरुष्क २४
तुर्किस्तान १४,२०१
तुर्की १६७
तुग़रिल १९४
तुरुष्कों १६७
तुरुष्क दण्ड १२८,१६२
तुम्माण १४२
तूस ७३
तूर्स ६
तैल द्वितीय ४६,४७,१३७,१४६
तोरमाण कमलुक ७७
तोरवान १७६

थ

थान गढ़ १८९,१९४
थाना ८
थानेश्वर ९,३२,९२,९३,११३,१७४

द

दम्यक २०४
दंति दुर्ग ४०,४१
दमिश्क ४
दण्डी १९
दशार्ण १७२
दरबरस १९०
दाऊद ८७,९२
दाऊद-बिन-नसर ८६
दाहिर ७,८,९,१०,११,१२,१३,१४,
१५,१७,२४५
द्वारवती २२७
दिल्ली ७८,७९,८९,१३०,१३१,१३२,
१६९,१७१,१८४,१८५,१८६,
१८७,१८८,१९१,१९५,२०५,
२०६,२१०,२११
दिद्दा ५७
दिनाजपुर २०१
द्वितीय युवराज देव १४६
द्वितीय कोकल्ल १४६,१४७
द्वितीय लक्ष्मणराज १४५,१४६
द्वितीय शंकरगण १४४
द्वितीय रत्नदेव १५०
देव शिलिम (देव स्वामिन) १०६
देवल ७,८,१०,११,१४,१५,११६,१२२
१६९
देवपाल २५,२८,३३,३४,३५,४४,१५४
देवकोट २००,२०१,२०४
देवगिरि १३०,१३६,१७३
देवगढ़ १५६,१५७
देववर्मा १४८,१५६
देवपारा १४०
द्वोरप वर्धन १४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ध

धर्मपाल २४,२५,३२,३३,४२
धंग २९,१२१,१५२,१५३,१५४
धंधुक १३३
धंगदेव १५४,१५५
धारावर्ष परमार १७१,१९०
धारा १३९
ध्रुव ३१,४१,४२,४७
धौलापुर २६

न

नज़्द ६
नसर-बिन-अहमद ७२
नसर द्वितीय ७२
नस्र ६,७६
नगरकोट ८७,९०,९१,१०४,१०७
नर्मदा २५,४२,४५,१२३,१३२,१४३,१७३
नन्दिपुरी ४०
नवसार ४०
नन्दिवर्धन ६३
नरसिंह द्वितीय ४५
नरसिंह चालुक्य २७
नयपाल ३७,३८,१४७
नदिया १४०,१९८,१९९,२००
नड्डलु १६७
नहरवाल १३६,१६७,१८५
नन्तुक १५१,१५२
नट्टा देवी १४४
नरसिंह १५०
नन्दन ९४
नन्द ९९
नाग १०१
नारायणपुर (अलवर राज्य) ९१
नारायण पाल २५,३५,३६
नागभट्ट द्वितीय २४,३३,३४,४३,१३०, १५१
नागभट्ट प्रथम २३
नान्य देव ३९,१४०
नालन्दा १९,१९७
नागदा १९५
नागा १९
नागौर १६७
नागार्जुन १७०
नासिरुद्दीन २०६
नाडोल १९०,१९२
नारायण दास २४१
नादोल १३४
नाचिराज १५०
निडर भीम ९३,९६,९९
निजामुद्दीन ३०,१३६
निज़ामी १९०
नीशापुर ८३
नील नदी ३,६
नील पट २४०
नूह-बिन-नसर ७२
नेपाल ३३,१२१,२२७,२४७
नैरुन ११,१३,१५
नैपोलियन २१९

प

पतंजलि १०८
परमदेव १०६,२०६
पंजाब १८,३२,३३,७२,८९,९५,९६, १०२,१३१,१३२,१३३,१६५, १६७,१६९,१८२,१८७
पल्लव ४०,४२,४३
परान्तक ४५
प्वातिये ६
पंजगुर १०
परमार २८,२९,३७,१२७,१४६
परमहंस १९
परमर्दि (परमाल) १३२,१५७,१७०,१७१, १७४,१९३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पंचपतन (पकपत्तन) १६१
पटियाला १७५
पंचपुर १६१
पल्लव १४८
पटना १२९
पद्मगुप्त १३७
पयोष्णी (पूर्णानदी) १४५
प्रभुदेवी ५२
प्रतापगढ़ २५,१४३
प्रहराज शर्मन १७२
प्रयाग १४०,१४७,१७४
प्रथम लक्ष्मणराज १४४
प्रतीहार १५,२४,२७,२८,३४,४२, ४५,४७,१४५
प्रथम जाजल्लदेव १४२
प्रथम शंकरगण १४४
पृथ्वीराज १२९,१३०,१३१,१३२,१७० १७१,१७२,१७३,१७४,१७६, १७७,१७८,१८०,१८१,१८२, १८३,१८४,१९२,१९३,२११, २१८,२२६,२३३,२४६
पृथ्वीराज प्रथम १६१
पृथ्वी वर्मन १५७
प्राग्ज्योतिष ३४,४०
पाल २५,३५,३८,४२,४७,१४८,२४५
पांड्य ३४,४३,१४५
पाईकोर (वीरभूमि) ३७
पा-ल-न (बलूचिस्तान) १८
पिरीतिगीन ७५
पिरेनीज ६
पुलकेशिन ४०
पुष्यदंत २४०
पुलकेशिन द्वितीय ४०,१४१
पेशावर ७८,८५,८८,८९,१३५,१३६, १६८,१६९,१७७

फ

फ़रगाना ७१
फ़रशोर १६८
फ़र्रुखाबाद २०६
फ़ख्रे मुदब्बिर २११
फ़रिश्ता ८४,१३६,१६६,१७४,१९०, १९४,२०५
फ़ारस ४,२३३
फाराहरुद १६४
फ्रांस ६,२१९
फिलिस्तीन ६
फिरोज़कोह १६६
फोरबेस १३५

ब

बग़दाद २७,७१,८६,२०४
बल्ख ५,६,९,७३,८३,८७
बकर-बिन-मलिक ७३
बंगमती (बेगमती) २०२,२०३,२०४
बंगाल २५,२७,३२,३५,३६,३८,३९, ४२,१२१,१२७,१४४,१५४, २००,२०३,२०४,२४५,२४६
बनारस ११०,१६१,१६२,१७३,१७४, १८८,१९२,१९३
बरन (बुलन्द शहर) ९६
बहरीमद २३
बंग ३७,३८,४४,४५,१३९,१४५, १९८,१९९
बल्हरा (बल्लभराज) ४७,४८
बरार ३३
बसरा ४,६
बलूचिस्तान ४,९
बहरैन ६
बर्मा १९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुहम्मद बख्तियार खल्जी १४०,१९५,१९६, १९७,१९८,१९९, २००,२०१,२०२, २०३,२०४,२१८
बदायूँ १६१,१६३,१९२,१९५,१९७,२०६
बहराम १६७
बहलीम १६७
बयाना १९४
बहाउद्दीन तुगरिल १८९
बल्लन १९०
बरिन्द २०१
बलखां १६९
बहाउद्दीन साम १६५,१६६
बहराइच १६३
बहराम शाह १६५
बर्नादी २०३,२०४
बब्बेरा १६९
बशिष्ठ २३१
बल्लाल १३४,१४०
बदामी १४१
ब्रह्मपाल ८९
ब्रह्मा १९
ब्रह्मपुत्र २०२,२०३
ब्रजवर्मा १४८
ब्रह्मदेव १४३
बाजौर १०१
बारी ९९,१००,१४७,१५५
बाजीराय ८५,८६,८८
बालिस्तान (बलूचिस्तान) ८५
बान गंगा ९०
बाणभट्ट १०
बामियान १६५,१६६
बारन १८६,१८७
बारप १३३
बामराजदेव १४३
बालहर्ष १४४
बाहरराज १४२
ब्राह्मनाबाद ११,१२
बिलकतिगीन ७५
बिदूर (बिहार) १९७
बिहार १२१,१६३,१९८,२००
बिग्रहराज द्वितीय ३६
बिक्रमपुर २००
बिलग्राम १६३
बीजापुर ४६
बीसलदेव विग्रहराज चतुर्थ १६१,१७१,१८६
बुखारा ६,९,७३,७४,७५,७६,८३
बुस्त ७४,७६
बुन्देल खण्ड २४,२५,२९,४६,१०१,१२७, १४३,१७०,१७१,१७४
बुदैल ९,१०
बुलन्द शहर १८६
बुरधनकोट २०२,२०३
बुद्धराज १४१
बूंदी १९२
बूलर १३५
बेंगी ४४,४५
बैहाक़ी ३७,९४
बोलन ९,१४
बोरदो ६
बोगी भावन २०१
बोगरा २०१

भ

भट्टीय ७१
भटिंडा ८५,८६,८८,१११,१७५,१७६
भड़ौच ८,१३,१४,२३,४४
भारत १०२,१०८,१२७,१४८,१८७
भारतवर्ष २०५
भीम द्वितीय १९१
भिक्षाचर ५७
भिउली १९५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भिनमाल १३३
भीम ४५,७७,१३२,१३३,१३४,१३६, १३९,१४८,१९०
भीमदेव १०४,१०६,१३५,१६७
भीमपाल ९३,९४,९६,१००,२२३
भीमराज १२४
भीम प्रथम १२१,१३३
भीम सलुविक ४३
भीम माल १३
भीम द्वितीय १३६,१७१,१८५
भुक्ति ४०
भूटान २०१,२०२
भेरा ८७
भैरव २४०
भोज २३,२५,२६,३२,३४ ३५,४५,१३७, १३८,१३९,१४७,१४८,२४२
भोपाल ४३,४५
भोज द्वितीय २७
भोला १७९

म

मक्का ३
महमूद ग़जनवी २९,३०,३१,३७,७७,७९,८३, ८४,८५,८६,८७,८८,८९,९०, ९१,९२,९३,९४,९५,९६,९७, ९८, ९९, १००, १०१, १०२, १०३,१०४,१०५,१०६,१०७, १०८,१०९,११०,१११,११२, १२४,१२७,१२८,१३३,१३८, १४६,१४७,१५५,१५६,१५८, १६५,१६८,२०९,२१२,२१३, २१५,२१६,२२३,२२६ २२७, २३७,२४१,२४५,२४६
मुकद्दसी ११९
मसूद १०६,१६१
महावन ९६,१४६
मंसूर ७३
मथुरा ९५,९६,९७,१०१,१०७,१४६
मसूदी १२२,१६५
मदनपाल ४०,१३९,१६१
महात्मा गांधी ५७
मंदौर २३
महाशिव गुप्त ३८
महीपाल २७,२८,३६,३७,३८,४५,१४५
महीपाल द्वितीय ३९
मगध ३५,४४,४५,१२९,१४८,१९६
महेन्द्रपाल २७,३५,१४५
मकरान ४,७,८,९,१०,१४,१५
मदनदेव २९
महेन्द्र द्वितीय २८
महेन्द्र पाल प्रथम २६,३६
महियर २९
मद्र ३२
महानदी ३७
मंगोलिया १९
महेश्वरपुर १८
मलिक जियाउद्दीन १७७
मलिक-हुसामुद्दीन-अगूल-बेक १९५
मछली शहर १८८
मदन वर्मन १३४,१५६,१५७,१७४
महोबा १३२,१५१,१५३,१५७,१७१, १७४,१९३
मदनपुर १७०,१७४
मलिक हुसामुद्दीन अगुल ज़ाक १८८
महमूद बिन-सुबुक्तगीन १६२
मसूद तृतीय १६१
मलिक-बहाउद्दीन-तुग़रिल १९४
मसूद-साद-सालमन १६१,१६२
मशरिक-उल-अनवर १६३
महीप राय १६६
महोदय श्री १३०,२४५
मत्स्येन्द्र नाथ २३९
महोत्सवपुर (महोबा) १४६,१५१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मल्लिकार्जुन १३४
मदन चंद १२९
मलय १३८
महीचन्द्र १२७
मंगलेश १४१
मऊ १५७
मास्को ३
मालवा १३, २४,२५,२७,२९,३२,३३ ४४,४५,४६,१२७,१२९,१३३, १३७,१३८,१३९,१४४,१४८, १४९,१५४,१६२,१७३,१९२, २४०
मान्यखेट ४६,१४४,२४५
मालाबार १६
मालदा २००,२०१
मालही १२९
महिष्मती १४१
मिहिर भोज २४,२५
मिदनापुर ४०
मिथिला ३९,१४०
मिस्र ४,५,७
मिनहाज-उस-सिराज १३६,१६५,१६६,१६७, १६९,१७६,१८७,१८८, १९४,१९६,१९८,२०१, २०४,२११
मिर्जापुर १३०,१८९,१९५
मीरान मुलहीम १६५
मीनू चिहर २२७
मुल्तान १२,१५,२७,७७,८६,८७,८८,९२, १०७,१२४,१३५,१३६,१६६, १६७,१६९,१७७,१७९,२२१
मुंज (हटावा) ९८
मुहम्मद-बिन-कासिम ६,८,१०,१२,१३,१४, १५,१७,८६
मुतहहिर १२१
मुहम्मद ३,११,१६५,२२२
मुंगेर २४,३३,३४,१२९
मुआविया ४,५
मुर्शिदाबाद २०१
मुहम्मद शेरान २०१
मुइज्जुद्दीन मुहम्मद-बिन-साम मुहम्मद ग़ोरी ७२,१२७,१३०,१३१,१३२,१३५, १३६,१६४,१६६,१६७,१६८,१६९, १७२,१७४,१७६,१७७,१७८,१७९, १८०,१८१,१८२,१८३,१८४,१८५, १८६,१८७,१८८,१८९,१९०,१९१, १९४,२००,२०४,२०५,२०६,२०९, २१०,२११,२१२,२१६,२१८,२२१, २२१,२२७,२४६
मुहम्मद-बिन-महमूद १९५
मुकल्ब १७८
मुहम्मद-बिन-सूरी १६५
मुइजुद्दीन उशी १७७
मुंज १३८
मुखलिंगम १३८
मूसा ६
मूलराज द्वितीय १३५,१६७
मूलराज १३६,१६७
मूलराज सोलंकी १३३
मेरुतुंग १२०,१३३,१३७,१३८,१६७
मैसोपोटामिया ५
मेद १४
मेज २०१,२०२,२०४
मेवाड़ १६९
मेरठ १८६,१८७
मोरक्को ६
मौलाना-रजीउद्दीन हसन सगानी १६३
मौलाना सिराजुद्दीन १६९

य

यशःकर्ण ११९,१५०
ययाति ३८
यजीद ५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यमन ७
यमाम ६
यशःपाल देव ३१
यशोधर्मन २२०
यशोविग्रह १२७
यशोवर्मन १५३,१५४
यज्जुन १७४
याकूब-ए-लैश ७२
युवराज कृष्ण ४६
युवराज द्वितीय १३७
युवराजदेव १४५,१४६
यूरोप १०,१०८,२२१
यौवन श्री ३८

र

रति ललिता ६५,६६
रणथंभौर १३२,१८४,१८५,२११
रत्नपुर १४१,१४२,१४३,१५०
रामचन्द्र ११४
राजाराम ११४
रामियान ११९
रामगंगा ९९,१००
राय कुलचन्द ९६
राज्यपाल २९,३०,३६,९८,९९,१००, १४७,१५५,१५६
राजराज प्रथम ६३
राजशेखर ५२,१४५,२३९
राष्ट्रकूट २४,२५,३२,३३,४०,४४, ४५,४६,११२,१४४,१९२ २४५
राजौर २३
रामपाल ३९
रामभद्र ३४
रानीबाई ११
रावर ११
राजेन्द्र चोल ३६,३७
राढ़ ३६,३८,१३९,२००,२०१
राय लखमनियां १९८,१९९
राय करन १९०,१९१
रावी १६१
रायसल २०५
राधा २४०,२४१
राजी १३३
रायपुर १४३
रायबरेली १४३
रासन १५२
राहिल १५१,१५२,१५३
रंगमती २०३

ल

लल्लीय ७१,७७
लमगान १८,७६,७७,७८,८४
लगतुर्मान ७७
लमुन्दक ग्राम ३१
लक्ष्मीकर्ण ३७,१३३,१३४,१५७
लक्ष्मणसेन १४०,१७४,१९८,१९९,२००
लखनौती १९६,२००,२०१,२०२
लक्ष्मणावती २००
लवण १६१
लक्ष्मीकरा २३८
लक्ष्मणराज १३३,१४३
लक्ष्मणदेव १५०
लाहौर ९३,१२९,१३५,१३६,१६६,१६९, १७३,१७५,१७६,१७७,२०५
लाट ४५,१३३,१४६
लाखानौर २००,२०१
लाखनपाल १६१
लौहकोट ९५,१०१,१०२
लंका ७,१६

व

वहौबा ३
वत्सराज २३,२४,३२,३३,४२,४३
वत्स २४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वरेन्द्री ३९,२०१
वलीद ७
वज्रदामन २९
वज्रयान २०
वली १६९
वब्बेरा १३१
वाराणसी १२१,१४७,१५०,१६१
वाक्पति मुंज १३६,१३७,१४६
वामराज देव १४३,१४४
वाहर राज १४३
वाक्पति १५२
वासुदेव १३०
विद्याधर ३०,९९,१३८,१५४
विष्णु १९,१२१,१५३,१५४,२३८
विक्रमादित्य द्वितीय ४०,४३
विजयांका ५२
विकट नितम्बा ५२
विदर्भ २४
विक्रमादित्य षष्ठम ३८
विल्हण ३८,१५०
विग्रहपाल तृतीय ३७,३८,३९,१४८
विजयादित्य ४४,१५०
विजयपाल २८,२९,१५६
विनायकपाल द्वितीय २७,२८
विन्ध्याचल २७,१३१
विग्रहपाल द्वितीय ३६
विजय राय १४
विजय कर्ण १८९
विजय मंदिर गढ़ १८९
विक्रमशील १९७
विजय चन्द्र १२९,१३०,१६१,१७२
विसलदेव विग्रहराज चतुर्थ १६९
विग्रहराज १७०
विज्ञानेश्वर २२९,२३२
विजेन्टाइन २२३
विग्रहराज चौहान १३३
विक्रमादित्य पंचम १३८
विजयसेन १३९,१४०
विद्याधर देव १५६
विजयशक्ति १५२
विजोला १३१
विग्रहराज चतुर्थ बीसलदेव १३०,१३१
विजय सिंह १५१
विद्यापति १५०
वीरमदेव १०६
वीरभूमि २०१
वीरसेन १३९
वीरगुण १४०
वेंगी ४३
वेरावल १७१
वैहिन्द ८५,८७
वैद्यदेव ४०
वृन्दावन ९७,२४०

स

समरकन्द ६,९,७१
सरस्वती नदी १०४,१२४,१३२
सतलज नदी ८८,१६१
स्पेन ३,६,१०,१८
सम्मैद १३
स्वर्णनगर १३
स्याम १९
स्कन्द १९,१७८,१८२,१८४
सदौसान १४
समाना १८१,१८४
सरहिंद १७५,१७९
सम्सामुद्दीन १९६
समरजीत १७४
सतगांव १९८
सल्लक्षण पाल १९०
स्यालकोट १६८ १६९
सनाई १६२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्कन्धावार २२९
स्कन्द गुप्त २२०
सल्लक्षण वर्मन १५७
सामानी ७१,७२,७३,८४
सांभर ७९,१०६,१३०,१३३,१३४,२४६
सामन्तदेव ७७
सारुग़ ९५
सांगली ताम्रपत्र ४६
साइप्रस ४
साद ४
स्यूटा ६
सागर १४४
सिन्ध ८,९,१०,११,१२,१५,१६,१७, १८,२४,२६,८६ १०६,१६९, १७९,२०६,२२७
सिन्धुनद १०,१५,२३,३४,७२,८७,८८, ८९,१११,१३३
सिकन्दर ४
सिंहल १९,४४,१५४
सिंहपुर ३२
सिंहल (लंका) ७,२२७
सिजिस्तान ६
सिरसा १७६
सिरोही १९२
सिसरागढ़ १७४
सिद्धराज १५७,१७३
सिहिलट १९५
सिहिली १९५
सिंहबल १७०
सिलहाको २०३
सिरोह १९२
सिद्धराज जयसिंह १२९
सिन्धुराज अथवा सिंधुल १३६,१३७,१३८
सीस्तान ८५
सीरुर ४४
सीरिया ५,६,१५
सीयक ४६
सीजिस्तान १४,१५
सीयक हर्ष (सीयक द्वितीय) १३७
सुबुक्तगीन ७५,७७,७८,७९,८०,८३,८५, ८६,१४६,१५४,१६५
सुखपाल ८७,८८
सुलेमान २५,३४,११७,११८,१२०
सुभद्रा ५२
सुआन-त्सुंग ७
सुनार गांव १९८,१९९
सुल्तानकोट १८९,१९०,१९४
सुंदरवन १९९
सुल्तान इब्राहीम १६५
सेन ३८,३९,४०,१२७,१९९
सेहबान ११
सेल्यूकस २२०
सेलजुक १५६,१६५,२२७
सैयदहसन १६२
सैयद-सालार मसूद गाजी १६१
सैफुद्दीन सूरी १६५
सैफुद्दीन मुहम्मद १६६
सोमनाथ ७,१०३,१०५,१०६,१०७, १०८,१११,११२,११४, १३३,१३४,१४६,१९२
सोमदेव ५६,१३१
सोमेश्वर ५६,१३५,१३८,१४९, १७०,१७८,१९२
सोमपुरी (राजशाही) ३३
सोमेश्वर प्रथम ३८
सोढ़देव १४२
सौम सिंह ५६
सौराष्ट्र २८,१३३
संकनात १९९,२००
संग्रामराज ९४,९५
संकाकोट २००
संजन २३,४३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संजर १६५
संयोगिता १३२,१७१,२१८
श्री वल्लभ ३४
श्रीमार ३४

श

शरबा ९८
शन्सब १६५
शन्सबनी १६४,१६५
शाक्य मुनि १०१
शाहीय वंश १०१
शाकम्भरी १२७,१३०,१३६,१६९,१८४
शिव १९
शिवनाग १५६
शिवाजी २२१,२३१
शिवि २२७
शील भट्टारिका ५२
शीशम ११
शेख रज़ीउद्दीन हसन सग़ानी १६७
शेख मुहनुद्दीन १६३
शीराज १०
शंकर वर्मन १२०
शंकर गढ़ १४१,१४२

ह

हरद्वार ९९
हर्ष २८,४२,१५३,२४५
हनीबाल ४
हरिश्चन्द्र २३,१३०,१८८,१८९,२०६
हसन ५
हज़रत उमर ८
हर्ष वर्धन १०
हजमौत १६
हसन निज़ामी १८५,२०४,२११
हरिराज १८४,१८५,१८९
हसन अरनाल १९३
हरिपुर १७२
हम्मीर १३१,१६१,१६९,१७०
हम्मुक १३३
हाजीपुर १६३
हारीरुद १६४,२१०
हांसी १६१,१८१,१८६
हिज़ाबुद्दीन हसन अदीब १९५
हिन्दूकुश १०१,१३४
हिमालय २७,३४,१३१,१५४,१७३,२०२
हिरात ७२
हिशाम १२,१३,१६
हुगली ४०
हुमायूँ १८३
ह्वेन त्सांग १८,१९,५७,१२३
हेमचन्द्र सूरि १३४,२२९,२३५
हेमवती १५१
हेमराज १५१
हेरम्बपाल १५४
हैदराबाद ११,४१

क्ष

क्षेमेन्द्र २१५,२१९,२३४

त्र

त्रिपुरी १३८,१४१,१४२,१४३,१४४,
१४५,१४६,१४७,१५०
त्रिपूली १९५
त्रिभुवनपाल १३६
त्रिलोचनपाल ३०,३१,९३,९४,९५,९६,
९९,१००,१५५
त्रैलोक्य वर्मन १३०,१५१,२०६
त्रिशंकु ५५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

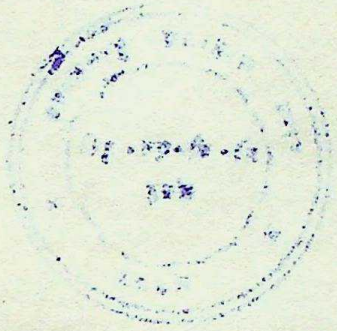

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस ग्रन्थ में इस काल के इतिहास पर अनुसन्धान, गवेषणा तथा समालोचना के स्वतन्त्र निर्णयात्मक रूप प्रस्तुत किये गये हैं।.....तत्कालीन भारतीय जनजीवन के अध्ययन की दिशा में यह ग्रन्थ एक महत्वपूर्ण प्रयास है। उपर्युक्त काल के अध्ययन एवं इतिहास-निर्माण में प्रस्तुत ग्रन्थ एक विशिष्ट मौलिक योगदान है।

प्रो० डॉ० सर्वदमन सिंह
लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रस्तुत ग्रन्थ में लेखक ने मुस्लिम आक्रामकों की सफलता एवं भारतीय आक्रान्ताओं की असफलताओं एवं उनकी प्रतिक्रियाओं का विशद रूप से वर्णन करके भारतीय इतिहास को एक सारगर्भित एवं महत्वपूर्ण ग्रन्थ दिया है। विषय विवेचन में निष्पक्षता श्लाघनीय है।

प्रो० भगवती प्रसाद पान्थरी
काशी विद्यापीठ, वाराणसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh